जैन संस्कृत महाकाव्य परम्परा और अभयदेव कृत जयन्तविजय

डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी

साहित्य निकेतन, कानपुर

लेखक को इस पुस्तक पर लखनऊ विश्वविद्यालय
द्वारा डॉक्टरेट उपाधि से सम्मानित किया गया।

मूल्य रु० ६५.००

संस्करण मार्च १९८४

साहित्य निकेतन, शिवाला रोड, गिलिस बाजार, कानपुर-२०८००१, द्वारा प्रकाशित
तथा देश सेवा प्रेस, १० सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

सस्कृत साहित्य के विकास मे जैन सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है क्योकि ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियो मे ही सस्कृत भाषा शिष्ट समाज की भाषा हो चुकी थी। भारत के समस्त दार्शनिको ने दर्शन शास्त्र के गूढ और गहन ग्रन्थो का प्रणयन सस्कृत भाषा मे आरम्भ किया। जैन कवियो और दार्शनिको ने प्राकृत के समान ही सस्कृत भाषा को भी अपनाकर काव्य और दर्शन के क्षेत्र को अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओ के द्वारा समृद्ध बनाया। किन्तु खेद का विषय है कि जैन सस्कृत साहित्य का अधिकाश भाग अभी तक प्रकाश मे नही आ सका है और न उसके उचित मूल्याङ्कन का ही प्रयास किया गया है। अत जैन सस्कृत साहित्य के इसी महत्त्व को स्वीकार करते हुए लेखक ने जैन कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य को अपने शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का विषय बनाया।

'जयन्तविजय' महाकाव्य अपने काव्यात्मक गुणो एव ऐतिहासिक महत्त्व के कारण सस्कृत साहित्य मे प्रमुख स्थान रखता है। इसमे राजा विक्रमसिंह के पुत्र जयन्त का वर्णन किया गया है। राजा विक्रमसिंह मगध के पृथित सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय है तथा जयन्त उन्ही के पुत्र कुमार गुप्त है। कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य मे सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय को प्राप्त होने वाली 'सिहविक्रम' उपाधि के आधार पर उनका नाम विक्रमसिंह किया है तथा विजयो के आधार पर उनके पुत्र कुमार गुप्त का नाम जयन्त रखा है। अत प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण कथानक के आधार पर किया गया है।

'जयन्तविजय' के काव्यात्मक महत्त्व के विषय मे कोई सन्देह नही है। यह एक प्रसाद गुणयुक्त काव्य है जो कि अनायास ही पाठक को कालिदास की कृतियो का स्मरण करा देता है। सस्कृत साहित्य के इतिहास लेखको यथा बलदेव उपाध्याय, कृष्णमाचारी, दासगुप्त, रामजी उपाध्याय प्रभृति विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे 'जयन्त-विजय' के साहित्यिक पक्ष की प्रशसा की है।

यह महाकाव्य निर्णय सागर प्रेस, बम्बई मे १६०२ ई० मे प्रकाशित हुआ है। यद्यपि इसमे यत्र-तत्र श्लोक कुछ खण्डित से प्रतीत होते है फिर भी काव्य मे प्रवाह की कमी नही परिलक्षित होती। काव्य के आरम्भ एव अन्त मे दी गयी ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति कवि की गुरु परम्परा के परिचय मे सहायक सिद्ध होती है।

प्रस्तुत ग्रथ मे सात अध्याय दो भागो मे विभक्त है प्रथम भाग सस्कृत के प्रमुख जैन महाकाव्यो से सम्बन्धित है जिसमे सस्कृत के जैन महाकाव्यो को अध्ययन की दृष्टि से दो भागो मे विभक्त किया गया है—१ चरित नामान्त महाकाव्य, २ इतर नामान्त महाकाव्य। चरित नामान्त महाकाव्यो का प्रमुख उद्देश्य पुण्य पुरुषो के चरितो को बुद्धिजीवी वर्ग तक पहुँचाना रहा है किन्तु इतर नामान्त महाकाव्यो का लक्ष्य अलकृत शैली के महाकाव्य गुणो का प्रस्तुतीकरण करना है। इस अध्याय का

द्वितीय भाग कवि तथा काव्य के परिचय से सम्बन्धित है। कवि ने स्वय अपने काव्य मे अपने विषय मे कोई विशद परिचय नही दिया है। अत बाह्य साक्ष्यो एव ग्रथ के अन्त मे दी गयी प्रशस्ति के आधार पर सक्षिप्त जानकारी ही प्राप्त होती है। यही पर कवि का परिचय, समय निर्धारण, काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण एव ग्रन्थ परिचय का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही काव्य के महत्त्व का निर्देश करते हुए काव्य का प्रतिसर्ग कथानक भी सक्षेप मे प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय महाकाव्य के काव्यात्मक गुणो से सम्बन्धित है। इसमे महाकाव्य के लक्षणो के आधार पर इसकी समीक्षा की गयी है। महाकाव्य के भी नाटक की भाँति तीन प्रमुख तत्त्व है कथानक (वस्तु), नायक (नेता) तथा रस। इसके अन्तर्गत महाकाव्य के सभी लक्षणो का समावेश हो जाता है। कथानक के अन्तर्गत रचना का उद्देश्य, मङ्गलाचरण, नामकरण कथानक का आधार कथानक का विस्तार, अवान्तर प्रसङ्ग, वर्णन प्रसङ्ग, सन्धियोजना एव पुरुषार्थचतुष्टय निरूपण का विवेचन प्रस्तुत है। नायक के साथ प्रतिनायक का भी विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रस्तुत लक्षणो के आधार पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन के अतिरिक्त छन्द, अलङ्कार तथा रीति के सम्बन्ध मे महाकाव्य के लक्षणो के आधार पर 'जयन्तविजय' की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

तृतीय अध्याय ऐतिहासिक है। इसके भी दो भाग किये गये है। जिसमे से प्रथम भाग मे 'जयन्तविजय' महाकाव्य के कथानक के स्रोत एव गठन पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है क्योकि जैन सस्कृत काव्यो का कथास्रोत वैदिक पुराणो के स्थान पर लोक प्रचलित कथाओ एव श्रमण परम्परा के पुराणो से सग्रहीत है। महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य ऐतिहासिक होते हुए भी लोक-प्रचलित कथाओ से बहुत कुछ प्रभावित है। अत उन प्रभावो की यहाँ पर विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इसके साथ ही रत्नावली, कर्पूरमञ्जरी, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, कुवलयमाला वराङ्गचरित, महापुराण तथा रघुवश के 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर प्रभाव को भी प्रदर्शित किया गया है। अध्याय के द्वितीय भाग मे मुख्य पात्रो की ऐतिहासिकता एव चरित्र-चित्रण प्रस्तुत है। राजा विक्रमसिंह तथा जयन्त ऐतिहासिक पात्र है। इन ऐतिहासिक पात्रो के साथ ही अन्य पात्रो की भी योजना हुई है जिनका महाकाव्य के कथानक की मुख्य घटना से सम्बन्ध है।

चतुर्थ अध्याय मे रीति, गुण, अलङ्कार एव छन्दोयोजना का विधान है। 'जयन्तविजय' की रीति वैदर्भी है एव इसमे सभी गुणो का सद्भाव है। प्रसाद गुण तो रचना मे सर्वत्र विद्यमान है। साथ ही वीर तथा रौद्र रस के स्थलो मे ओज तथा शृङ्गार एव करुण के प्रसङ्ग मे माधुर्य गुण का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। काव्य मे अलङ्कारो का भी अपना विशेष महत्त्व है। अत चतुर्थ अध्याय मे ही 'जयन्तविजय' की अलङ्कार योजना का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। महाकवि अभयदेव ने यद्यपि अलङ्कार विषयक किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नही की तथापि 'जयन्तविजय' के आधार पर सैद्धान्तिक रूप मे वे ध्वनिवादी विचारधारा

के समर्थक प्रतीत होते हैं। उन्होने अलङ्कार, गुण, रीति एव रस का वही महत्त्व स्वीकार किया है जो रसवादी आचार्यों को अभीष्ट है। अर्थात् उन्होने रस को काव्य की आत्मा एव अलङ्कार को उसके अलङ्करण के रूप मे स्वीकार किया है। इसीलिए यहाँ पर महाकाव्य मे प्रयुक्त अलङ्कार का मात्र निर्देश न करके उनके रसानुकूल एव वर्णनानुरूप प्रयोग को भी ध्यान मे रखा गया है। साथ ही कला पक्ष प्रधान अलङ्कारो का एव ऐसे अलङ्कारो को जो स्वत प्रस्फुटित है, पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि ने जिन रूढिगत उपमानो का प्रयोग किया है अथवा प्राचीन कवियो के अलङ्कार प्रयोग का अनुकरण किया है उसका भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शब्दालङ्कारो मे अनुप्रास, यमक तथा श्लेष का विवेचन है। इस प्रकार कवि अभयदेव का जयन्तविजय' महाकाव्य विदग्ध-मण्डना नारी की भाँति शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनो से ही विभूषित है। महाकाव्य मे रस के प्रवाह मे छन्दो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत इसी अध्याय मे 'जयन्तविजय' की छन्दोयोजना का भी निरूपण है। छन्दोयोयना के अन्तर्गत 'जयन्तविजय' मे प्रयुक्त छन्दो का 'सुवृत्ततिलक' के आधार पर विनियोग प्रदर्शित करन के उपरान्त उसी के आधार पर इसम प्रयुक्त छन्दो के गुण-दोषो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पञ्चम अध्याय वर्णन प्रसङ्ग से सम्बन्धित है क्योकि इन वर्णन प्रसङ्गो के द्वारा जयन्तविजय' ने काव्य सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है। प्रसिद्ध आलङ्कारिक दण्डी ने वस्तु वर्णन को आवश्यक समझते हुए सर्गबन्ध महाकाव्य के लक्षण म नगर, समुद्र, नदी, सरोवर, पर्वत, वन, ऋतु, विवाह, यात्रा, चन्द्रोदय-सूर्योदय चन्द्रास्त सूर्यास्त आदि के वर्णन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सम्कृत साहित्य की इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कवि अभयदेव ने जयन्तीपुरी का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। राजाओ की सेना का प्रयाण एव युद्ध का वर्णन चित्ताकर्षक है। सूर्यास्त का वर्णन कवि सम्प्रदाय सिद्ध-प्रसिद्ध प्रतीको—सूर्य और कमलिनी, भ्रमर और नलिनी एव चक्रवाक और चक्रवाकी का आश्रय लेकर उत्प्रेक्षा, उपमा एव रूपक आदि अलङ्कारो के माध्यम से किया गया है। इसी समय सन्ध्या का मनोहारी चित्र प्रस्तुत है। सूर्यास्त होते ही सर्पणशील अन्धकार शनै-शनै आकाश मण्डल को आच्छादित कर लेता है। अन्धकार के पश्चात् यथाक्रम चन्द्रोदय का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। चन्द्रोदय वर्णन मे रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख एव समासोक्ति का आश्रय लिया गया है। प्रभात वर्णन की ओर कवि की विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्रभात वर्णन का उल्लेख विस्तार के साथ किया गया है। यहाँ पर कवि की कल्पना का आधार सूर्य, भ्रमर एव कमल हैं जिनकी ओर कवि की दृष्टि गयी है। दैनिक जीवन मे सरोवर का भी विशेष महत्त्व है। अत सरोवर का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे ऋतु वर्णन की परम्परा का भी निर्वाह हुआ है। बसन्त की मादकता, ग्रीष्म की प्रचण्डता, वर्षा ऋतु की हरीतिमा ने कवि को अधिक प्रभावित एव आकर्षित किया

है। अत यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा प्रस्तुत यह वर्णन मनमोहक एव हृदयग्राही है।

रस तो काव्य शरीर की आत्मा ही है। अत षष्ठ अध्याय मे रस का निरूपण किया गया है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य का अङ्गीरस वीर है जो कि युद्ध प्रधान काव्य होने के कारण उचित ही है। इसके पश्चात् शृङ्गार को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है जिसका वणन दोलान्दोलन, पुष्पावचय एव जलकेलि के प्रसङ्गो द्वारा हुआ है। इसके अतिरिक्त जयन्त के शैशव वर्णन के अवसर पर वात्सल्य रस, युद्ध वर्णन के प्रसग मे रौद्र रस के साथ ही वीभत्स, भयानक, अद्भुत एव शान्त रस की भी यथास्थान मनोरम व्यञ्जना हुई है। इस महाकाव्य मे भाव प्राधान्य के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। अत अध्याय के अन्त मे भाव योजना पर भी प्रकाश डाला गया है।

सप्तम अध्याय आदान-प्रदान स सम्बन्धित है। अध्ययन की दृष्टि मे इस अध्याय को भी दो भागो मे विभक्त किया गया है। प्रथम भाग मे 'जयन्तविजय' पर पूर्ववर्ती कवियो के काव्यो का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। इसमे सर्वाधिक प्रभाव जिनसेन के 'महापुराण' तथा कविकुलगुरु कालिदास का दृष्टिगोचर होता है। इन कवियो के अतिरिक्त जिन कवियो ने अभयदेव को प्रभावित किया है उनमे भारवि, माघ, श्रीहर्ष तथा बिल्हण का नाम 'मुख है। इसके साथ ही महासेन, असग, वादिराज, हरिश्चन्द्र तथा जिनपाल उपाध्याय आदि जैन कवियो की कृतियो का साम्य भी प्राप्त होता है। अध्याय क द्वितीय भाग मे परवर्ती साहित्य पर जयन्तविजय' के प्रभाव को प्रदर्शित किया गया है क्योकि जैनकवि अर्हद्दास, वर्द्धमान तथा मुनिभद्रसूरि की रचनाओ मे भी एकाध स्थल पर 'जयन्तविजय' से भाव साम्य मिलता है।

ग्रथ क अन्त मे परिशिष्ट की याजना की गयी ह। इसके भी तीन भाग है। सर्वप्रथम पञ्चपरमेष्ठि भक्ति के निरूपण पर प्रकाश डाला गया है, क्योकि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य म इसके नाम का निर्देश करते हुए इसके महत्त्व को प्रतिपादित किया है। जयन्तविजय' महाकाव्य मे सुभाषितो की भी भरमार है। अन द्वितीय भाग मे प्रयुक्त प्रमुख सुभाषितो का उल्लेख किया गया है और अन्त मे शोध-प्रबन्ध की सहायक सूची सलग्न है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध गुरुवर डॉ० शिव शेखर मिश्र प्रोफेसर तथा अध्यक्ष सस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ के कुशल निर्देशन मे लिखा गया है। अत मै उनके प्रति किन शब्दो मे कृतज्ञता प्रकट करू जिन्होने मेरे शोध कार्य का पथ-प्रदर्शन ही नही किया वरन् अपने निर्देशन एव सुझावो द्वारा मेरी शोध कार्य सम्बन्धित समस्त समस्याओ का समाधान किया तथा जिनकी अनवरत सहायता से प्रबन्ध को यह मौलिक रूप प्रदान किया जा सका।

ग्रथ के प्रकाशन हेतु उ० प्र० शासन द्वारा आशिक आर्थिक अनुदान प्राप्त हुआ जिसक कारण यह जिज्ञासुओ के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। अन्त मे, मैं साहित्य निकेतन, कानपुर के सचालक महोदय के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने इस ग्रथ को प्रकाशित कर अपने सस्कृत साहित्यानुराग का परिचय दिया है।

महाशिवरात्रि
स० २०४० वि०

रामप्रसाद त्रिपाठी

विषयानुक्रम

१	सस्कृत के जैन महाकाव्यो की परम्परा	१-४४
२	जयन्तविजय महाकाव्य का महाकाव्यत्व	४५-६८
३	जयन्तविजय महाकाव्य की ऐतिहासिकता	६९-१००
४	जयन्तविजय महाकाव्य मे रीति, गुण, अलकार तथा छद	१०१-१८८
५	जयन्तविजय महाकाव्य मे वर्णन प्रसग	१८९-२२८
६	जयन्तविजय महाकाव्य मे रस निरूपण	२२९-२६१
७	आदान-प्रदान	२६३-३२६
	परिशिष्ट	३२७-३४३

प्रथम अध्याय

संस्कृत के जैन महाकाव्यों की परम्परा

संस्कृत के जैन महाकाव्यों की परम्परा

जैन संस्कृत काव्य का आविर्भाव

कविता हृदय के ऊपर गहरा प्रभाव डालती है। इसीलिए सामान्य जनता के हृदय तक दर्शन तथा धर्म के दुरूह तथ्यो को पहुँचाने के लिए धर्म-प्रचारक बहुत पुराने समय से कविता का सहारा लेते आये हैं और आज भी ले रहे हैं। जैन दार्शनिको का काव्यकला की ओर आकृष्ट होने का यही रहस्य है। उन्होने ईसवी सन् की तीसरी-चौथी शताब्दी से ही ग्रन्थ-प्रणयन आरम्भ कर दिया था। इस समय प्राकृत भाषा जन-सामान्य की भाषा थी। अत आरम्भिक अवस्था मे जैनाचार्यों ने प्राकृतभाषा मे लोकपरक सुधारवादी रचनाओ का प्रणयन किया, किन्तु ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियो मे सस्कृत भाषा शिष्ट समाज की भाषा थी। अत जैनाचार्यों का ध्यान इस ओर गया और उन्हें अपने विचारो को शिष्ट समाज तक पहुँचाने के लिए इस भाषा का अध्ययन करना पडा। डॉ० भोलाशङ्कर व्यास के शब्दो मे---'जैनो को अपने मत एव दर्शन को अभिजात वर्ग पर थोपने के लिए, साथ ही ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं का खण्डन करने के लिए सस्कृत को चुनना पडा।'[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा के क्षेत्र मे जैन काव्य साहित्य किसी एक भाषा मे बद्ध नही रह सका, वरन् प्राकृत तथा सस्कृत भाषा के साथ ही नाना जनपदीय भाषाओ---तमिल, कन्नड, मराठी, गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी आदि मे भी विशाल काव्य साहित्य की रचना हुई। इसीलिए भारतीय साहित्य के विकास मे जैनाचार्यों के सहयोग की डॉ० विटरनित्स ने मुक्त-कण्ठ से प्रशसा की है---

'I was not able to do full justice to the literary achievements of the jainas But I hope to have shown that the jainas have contributed their full share to the religious, ethical and scientific literature of ancient India '[2]

काव्य निर्माण की दृष्टि से ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी मे समन्तभद्र ने सस्कृत भाषा मे स्तुति काव्य का सर्जन कर जैनो के मध्य सस्कृत काव्य की परम्परा का शुभारम्भ किया। सस्कृत भाषा मे जैन काव्य की यह परम्परा द्वितीय शती से

---

१ सस्कृत कवि दर्शन, चौखम्बा वाराणसी, वि० स० २०२५, आमुख पृ० १८।

२ The jainas in the histoy of Indian literature by Winternitz. Edited by Jina Vijai Muni, Ahmedabad 1946, p 4

आरम्भ होकर अठारहवी शती तक निर्बाध रूप से चलती रही। यद्यपि ईसा की आरम्भिक शताब्दियो से पाँचवी शताब्दी तक कतिपय कृतियो का ही उल्लेख मिलता है, किन्तु पाँचवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक प्राप्त रचनाओ को हम प्रतिनिधि रचनाएँ कह सकते है। इसके अनन्तर अठारहवी शताब्दी तक जैन कवियो की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं और अब भी यत्र-तत्र उनका प्रणयन हो रहा है। जैन कवियो की सबसे प्रमुख विशेषता तो यह है कि सस्कृत काव्य के विकास काल मे जितने काव्य ग्रथो का प्रणयन हुआ उमसे अधिक ग्रन्थो का प्रणयन तो उन्होने ह्रासोन्मुख काल मे भी किया।

जैनाचार्यों की काव्य-सम्बन्धी मान्यताएँ

जैनाचार्यों ने काव्य के स्वरूप का प्रतिपादन भी किया है, यद्यपि उनकी परिभाषाएँ सस्कृत के आचार्यों से बहुत कुछ मेल खाती है।

जैनाचार्यों मे हेमचन्द्र का प्रमुख स्थान है। उन्होने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

'अदोषौ सगुणौ सालकारौ च शब्दार्थौकाव्यम्।'[1]

इस सूत्र की वृत्ति करते हुए भी उन्होने लिखा है—

'चकारो निरलकारयोरपि शब्दार्थयो क्वचित्काव्यत्वख्यापनार्थ ।'

आचार्य हेमचन्द्र की यह परिभाषा आचार्य मम्मट की परिभाषा पर पूण आधारित है। इसी प्रकार 'काव्यानुशासन' मे आचार्य हेमचन्द्र ने एक स्थल पर लोकोत्तर कवि कर्म को ही काव्य माना है, किन्तु उनकी यह मान्यता आचाय मम्मट की 'काव्य लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म' इस उक्ति पर आधारित है।

आचाय हेमचन्द्र के पश्चात् दूसर जैन आचार्य वाग्भट है। इन्होने काव्य की परिभाषा 'शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्राय सालकारौ काव्यम्' इस प्रकार करके इस सूत्र की वृत्ति मे 'प्राय सालकाराविति निरलकारयोरपि शब्दार्थयो क्वचित्काव्यत्व ख्यापनार्थम्' लिखा है।[2] वाग्भट की परिभाषा भी आचार्य मम्मट से प्रभावित है।

जैन कवियो ने अपने महाकाव्य मे भी काव्य सम्बन्धी विचारधाराओ को व्यक्त किया है। 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य के रचयिता हरिचन्द्र सूरि रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाली वाणी का काव्य मानते है। उनके अनुसार रमणीय अर्थ से रहित ललित पदो की योजना सहृदयो के मन को आह्लादित नही कर सकती। इसीलिए महाकवि की वाणी रसवती एव पीयूषवर्षी होनी चाहिए जिससे पाठक आनन्द-विभोर हो सके—

---

१ हेमचन्द्र—काव्यानुशासन।
२ वाग्भट—काव्यानुशासन।

हृद्यार्थवन्ध्या पदबन्धुराऽपि वाणी बुधाना न मनोधिनोति ।
न रोचते लोचनवल्लभाऽपि स्नुहीक्षरत्क्षीरसरिन्नरेभ्य ।।
जयन्ति ते केऽपि महाकवीना स्वर्गप्रदेशा इव वाग्विलासा ।
पीयूषनिष्यन्दिषु येषु हर्षं केषा न धत्ते सुरसार्थ लीलाम्[1] ।।

हरिचन्द्र सूरि की काव्य सम्बन्धी यह मान्यता पण्डितराज जगन्नाथ की 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्' इस परिभाषा से मिलती-जुलती है ।

जिनपाल उपाध्याय ने अपने 'सनत्कुमार चरित' मे भानुमती की कन्याओं का वर्णन करते हुए काव्य के अनिवार्य तत्वो पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार अलङ्कारों से सुमज्जित, रसपूर्ण, दोष-रहित सद्गुणो से युक्त ललित पदो की योजना ही काव्य है —

जात्यजाम्बूनदाल कृतिप्रोज्ज्वला-
श्चक्रिरेऽङ्के समस्तेऽपि ता कन्यका ।
सद्रसा दोषरिक्ता सुशब्दश्रिय
सत्कवे काव्यवाचा यथा सद्गुणा ।।[2]

अभय कुमार चरितकार ने काव्य मे रस की अनिवार्य सत्ता को स्वीकार किया है । उनके अनुसार काव्य की आत्मा रस है—

महाकवे काव्यकृतौ यथा रसो
जल्पे यथा तार्किक चक्रचक्रिण ।[3]
तथा क्वचिद्विश्राम मनोऽस्य भूरुहे
काव्ये प्रसन्ने सरसे कवेर्यथा ।।[4]

जिनप्रभ सूरि ने भी 'श्रेणिक चरित' मे अनेक स्थलो पर काव्य के स्वरूप को व्यक्त किया है । उनके अनुसार रसयुक्त, रमणीय पद एव अलकारो को धारण करने वाली, मनोरम, दोषरहित रचना ही काव्य है —

पक्वदाडिमबीजानि राजादनफलानि च
रसाढ्या मृदुमृद्वीका काव्य माला इवोज्ज्वला ।।
व्यजनानि रसाढ्यानि विनिर्माय प्रभूतश ।
केऽपि सचस्करु क्वाऽपि काव्यानि कवयो यथा ।।[5]
अभूत्तस्य प्रिया रम्यपदालकार धारिणी ।
धारिणी नाम हृद्येव सुकवे काव्यपद्धति ।।

---

१ हरिचन्द्र सूरि, धर्मशर्माभ्युदय १/१५६ ।
२ जिनपालोपाध्याय सनत्कुमारचरित्र १५/४६ ।
३ चन्द्रतिलक उपाध्याय, अभय कुमार चरित ४/७२
४ वही, ४/१७२ ।
५ जिनप्रभ सूरि, श्रेणिक चरित ४/२२४-११० ।

मनोरम पदन्यासा सदगरुचिरा सदा ।
नन्द्याद् गीर्विशदश्लोका जिन मूर्तिरिवामला ॥[1]

'हम्मीर महाकाव्य' के रचयिता नयचन्द्रसूरि भी काव्य मे रस की अनिवार्यता स्वीकार करते है—

कविता वनिता गीति-प्रायो नादो रसप्रदा ।
उद्‌गिरन्ति रसोद्रेक गृह्यमाणा पुर-पुर ॥[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, कि जैन कवियो की काव्य सम्बन्धी परिभाषाए भिन्न-भिन्न है । किसी ने यदि भावपक्ष को ध्यान म रखा है तो दूसरे ने कलापक्ष का समर्थन किया है । इसीलिए यदि कोई अलङ्कारो को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानता है तो दूसरा रस को काव्य का प्राण कहता है । इस प्रकार कोई एक परिभाषा काव्य के स्वरूप को व्यक्त नही करती है । किन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि जैन कवियो ने रस को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है और उनकी परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की 'वाक्य रसात्मक काव्य' परिभाषा के बहुत निकट है ।

जैन सस्कृत महाकाव्यों का स्वरूप—

भारतीय एव पाश्चात्य विचारधाराओ का सम्यक् अनुशीलन करने से ज्ञात होता ह कि जैन सस्कृत कवियो ने महाकाव्य-विषयक सस्कृत के प्राचीन लक्षणकारो के आदर्शों का पालन किया हे । इसीलिए उनके महाकाव्यो म पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है । किन्तु फिर भी अनेक स्थलो पर विभिन्नताएँ है—

जैन सस्कृत काव्यो का प्रमुख उद्देश्य निवाण की प्राप्ति है । इसके लिए प्राणी तप, त्याग एव अहिसा का आश्रय लेता हे तथा अपने पुरुषार्थ के द्वारा अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करता ह । ये वर्णाश्रम व्यवस्था को भी स्वीकार नही करते है तथा जातिवाद के कट्टर विरोधी है ।[3] इनके अनुसार मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका का सघ ही समाज है और यह समाज पारस्परिक सहयोग पर ही निर्भर है ।

जैन सस्कृत काव्य देवता, ऋषि तथा मुनि के स्थान पर सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा व्यक्ति, तीर्थकर, शूरवीर या सामान्य जन को नायक के रूप मे स्वीकार करते है । नायक इन्द्रिय-दमन तथा सयम-पालन के द्वारा अपने चरित्र का विकास करता है । उसका लक्ष्य धम, अर्थ एव काम का सेवन कर मोक्ष की प्राप्ति करना होता है । इन महापुरुषो की सेवा करने के लिए स्वर्ग मे देवी, देवता का शुभागमन भी होता है ।

---

१ जिनप्रभ सूरि, श्रेणिक चरित, १/३१,३ ।
२ नयचन्द्रसूरि, हम्मीर महाकाव्य, १४/३७ ।
३ उत्तर पुराण—भारतीय ज्ञानपीठ काशी १९५४, ७४/४९२ ।

जैन सस्कृत काव्यो का कथास्रोत वैदिक पुराणो के स्थान पर लोक-प्रचलित कथाओ एव श्रमणिक परम्परा के पुराणो से सगृहीत है । कवियो ने कथावस्तु को जैन धर्म के अनुकूल बनाने का पूर्ण प्रयास किया है ।

जैन सस्कृत काव्यों का नायक समाज के लिए आदर्शभूत होता है । उसका व्यक्तिगत जीवन ही सामाजिक जीवन होता है, क्योकि तप, त्याग एव सयम द्वारा ही वह परम पुरुषार्थ की प्राप्ति करता है ।

जैन सस्कृत काव्यो की कथावस्तु अनेक जन्मो से सम्बद्ध है । प्राय प्रत्येक काव्य के अर्धाधिक सर्गों मे कई जन्मो की विभिन्न परिस्थितियो और वातावरण के बीच मे विविध घटनाओ का चित्रण किया गया है । इसीलिए काव्य के आरम्भिक सर्गो मे पाठक काव्यानन्द का अनुभव करता हुआ अन्तिम सर्गों मे आध्यात्मिकता की मन्दाकिनी मे डूब जाता है ।

जैन सस्कृत काव्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है । अत आत्मा के अमरत्व एव जन्म-जन्मान्तरो के सस्कारो को प्रदर्शित करने के लिए उनमे अनेक जन्म के आख्यानो को जोड दिया गया है । इससे काव्यात्मकता के साथ दार्शनिक तत्वो का समावेश हो गया है । किन्तु कवियो ने दार्शनिक आख्यानो को सरस बनाकर काव्यात्मकता की रक्षा की है ।

सस्कृत कवियो के काव्य वैदिक साहित्य का आश्रय लेते हैं जब कि जैन सस्कृत कवियो के काव्य श्रमण सस्कृति के प्रमुख आदर्श अहिंसा का सहारा लेते है । इन काव्यो का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है ।

जैन सस्कृत कवियो का लक्ष्य समाज सुधार रहा है, क्योकि मनुष्य कही भ्रमात्मक मार्ग का आश्रय न ले ले इसीलिए उन्होने इस मार्ग की निन्दा कर मोक्ष, कर्मयोग, जीवन शोधन, गृहस्थाचार एव मुनि आचार पर प्रकाश डाला है । दार्शनिक एव सदाचार सम्बन्धी तत्वो का निरूपण भी उन्होने काव्य की मधुमय शैली मे किया है ।

जैन सस्कृत काव्यो के वस्तु वर्णन मे भी विभिन्नता दिखलायी पडती है । प्रत्येक कवि किसी नगरी का वर्णन करने के पूर्व उसके द्वीप, क्षेत्र एव देश का वर्णन करता है । उदाहरणार्थ जयन्तीपुरी का वर्णन करते समय कवि अभयदेव ने जम्बूद्वीप और उसकी समृद्धि, भारतवर्ष और उसका वैभव, मगध देश एव उसका ऐश्वर्य वर्णन करने के उपरान्त जयन्तीपुरी का वर्णन किया है ।[१] संस्कृत काव्य मे बिना किसी क्षेत्र एव द्वीप का निर्देश किये हुए ही कवि नगरी का वर्णन करता है ।[२]

---

१ कवि अभयदेव, जयन्तविजय १/२५-२६ ।

२ कवि अश्वघोष, सौन्दरनन्द १/४७-५८ ।

यहाँ पर डॉ० विंटरनित्स का कथन भी जैन सस्कृत काव्य की विशेषताओ के निष्कर्ष के रूप मे उल्लेखनीय है—

'Its characteristic features are the following It disregards the system of castes and asramas, its heroes are, as a rule, not Gods and Rsis, but kings or merchants or even Sudras The subjects of poetry taken up by it are not Brahmanic myths and legends, but popular tales, fairy stories, fables and parables It likes to insist on the misery and sufferings of Samsara, and it teaches a morality of compassion and Ahimsa, guite distinct from the ethics of Brahmanism with its ideals of the great sacrificer and generous supporter of the priests and its strict adherence to the caste system '[१]

उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर जैन कवियो ने ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी से ही काव्यो का प्रणयन आरम्भ किया और अठारहवी शती पर्यन्त यह सस्कृत काव्य-परम्परा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रही ।

जैन सस्कृत महाकाव्यो के निर्माण के मूलभूत प्रेरणा स्रोत

राजनैतिक आश्रय– 'सस्कृत काव्य से प्रथम अवतार सात्विक भावना से नितान्त अनुप्राणित आश्रय के वातावरण मे होता है, परन्तु उसका अभ्युदय सरस्वती के वरद-पुत्रों को आश्रय देकर कवि कला को प्रोत्साहन देनेवाले राजाओ के दरबार मे होता है । सस्कृत के मान्य कवियो का सम्बन्ध वैभवशाली महीपालो के साथ सर्वदा स्थापित था । विक्रमादित्य के बिना न कालिदास का उदय सम्भव था और न हर्षवर्धन के बिना बाणभट्ट का ।'[२] इस कथन से स्पष्ट है कि राजाओ के आश्रय मे ही कवियो की प्रतिभा अपना चमत्कार प्रदर्शित करती है । राजाओ के दरबार प्राचीन काल मे कला और कौशल, दर्शन शास्त्र, सस्कृत तथा सभ्यता के केन्द्र रहे है । महाकाव्यो के नायक पौराणिक देवता की तरह लक्ष्मीपुत्र पृथ्वीपति भी रहे है । ऐसी स्थिति मे सस्कृत महाकाव्य राजसी वातावरण से नितान्त प्रभावित रहे है ।

जैन कवियो को भी यह राजसी वातावरण सुलभ था । ये राजागण जैन कवियो के साथ सहिष्णुता का व्यवहार ही नही करते थे अपितु उनका अत्यधिक आदर-सत्कार भी करते थे । इसीलिए उनकी प्रेरणा से उन्होने कतिपय महाकाव्यो की रचना की तथा उन्हे अपने महाकाव्य का नायक बनाया । राजाओं के साथ सेठ, सार्थवाह, धर्मात्मा व्यक्ति, तीर्थंकर, शूरवीर या सामान्य जन भी इन्हे नायक के रूप

---

१ The Jainas in the History of Indian literature. By Dr M. Winternitz Ed Jina Vijai Muni Ahmedabad 1946 A D, p 5

२ आचार्य बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, अष्टम सस्करण, पृ० १२३ ।

मे मान्य हैं । इनकी रचनाओ मे किसी व्रत का माहात्म्य या किसी महापुरुष का चरित्र-चित्रण मिलता है । कवि अभयदेव विरचित 'जयन्त-विजय' महाकाव्य मे पञ्चपरमेष्ठी[1] नमस्कार के माहात्म्य का वर्णन किया गया है । अमरचन्द्र सूरि ने 'पद्मानन्द' महाकाव्य की रचना की है जिसमे जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का चरित्र चित्रित है । प्रस्तुत महाकाव्य का निर्माण पद्म मन्त्री की प्रार्थना पर किया गया । अत पद्म को आनन्दित करने के कारण ही इसका नाम 'पद्मानन्द'[2] रखा गया । इसी प्रकार इन्होने 'बालभारत' महाकाव्य की रचना वायट निवासी ब्राह्मणो की प्रार्थना पर की है जिसका कथानक लोक-विश्रुत पाण्डवो के चरित्र से सम्बन्धित है । इसी प्रकार देवानन्द सूरि की आज्ञा पाकर देवप्रभ सूरि ने 'पाण्डव चरित' की तथा अपने गुरु जिनपालोपाध्याय की आज्ञा से चन्द्र तिलक उपाध्याय ने 'अभय कुमार चरित' की रचना की है । अमरचन्द्र सूरि, बालचन्द्र सूरि, उदयप्रभ सूरि, माणिक्यचन्द्र सूरि और नयचन्द्र सूरि जैसे प्रमुख कवियो को भी राजाश्रय प्राप्त था । नयचन्द्र सूरि ग्वालियर नरेश वीरम देव के तथा अन्य कवि गर्जरेश्वर वीरधवल वीसलदेव के महामात्य वस्तुपाल की विद्वन्मण्डली मे थे । इन कवियो को धन का लोभ नही था फिर भी इन्होने अपने आश्रयदाता प्रभुओ का गुणगान किया तथा उन्हे अपने महाकाव्य का नायक बनाया ।

धार्मिक भावना— जैन कवियो का प्रमुख लक्ष्य जैन धर्म का प्रचार एव प्रसार था । अत उन्होने धार्मिक चेतना एव भक्ति-भावना से प्रेरित होकर महाकाव्यो की रचना की । उनकी इस भावना की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओ मे स्पष्ट परिलक्षित होती है । इस प्रकार जैन कवियो का एक ओर लक्ष्य स्वान्त सुखाय काव्य की रचना करना था तथा दूसरी ओर उसके माध्यम से जनसाधारण मे जैन धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करना था । इसीलिए उन्होने सरल से सरल भाषा मे अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया । उनका साहित्य विद्वद्वर्ग के लिए ही न होकर जन-सामान्य के लिए है । उन्होने जैन धर्म के जटिल सिद्धान्तो का प्रतिपादन न करके अहिसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य आदि पर विशेष बल दिया है । उनके प्रेमाख्यान काव्य मे भी धार्मिक भावना की स्पष्ट छाप है । महाकाव्यो का प्रमुख लक्ष्य भी यही है । इस प्रकार जैन सस्कृत महाकाव्यो के निर्माण मे धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति का प्रमुख लक्ष्य रहा है ।

पारस्परिक गच्छीय स्पर्धा – जैन महाकाव्यो के निर्माण मे पारस्परिक गच्छीय स्पर्धा भी प्रेरणा-स्रोत रही है । इसका प्रमुख कारण यह है कि जैन धर्म आरम्भ से ही विभिन्न गच्छो मे विभाजित हो गया था । यथा —चन्द्र गच्छ, नागेन्द्र

---

१ कवि अभयदेव, जयन्तविजय, तृतीय सर्ग ।

२ कवि अमरचन्द्र सूरि, पद्मानन्द महाकाव्य, १९/६१ ।

गच्छ, राजगच्छ, चैत्रगच्छ, पूर्णतल्ल गच्छ, वृद्ध गच्छ, धर्मघोष गच्छ आदि। इन गच्छो मे रहनेवाले मनीषियो को राजाश्रय तो प्राप्त ही था किन्तु ये लोग धन के लोभी न थे। अत उन आश्रयदाताओ से प्राप्त धन को वे अपनी गच्छीय प्रतिष्ठा एव साहित्य-निर्माण मे व्यय करते थे। यही कारण है कि पाँचवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक काव्य ग्रन्थो का निर्माण उतनी तीव्र गति और प्रचुर मात्रा से नही हो सका जितना कि ग्यारहवी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक दिखलायी पडता है। दसवी शताब्दी के पूर्व कतिपय काव्य ग्रन्थो का ही प्रणयन हुआ था किन्तु बाद के चार वर्षों मे इनकी सख्या सैकडो मे पहुँच चुकी थी। जिसका प्रमुख कारण पारस्परिक स्पर्धा था क्योकि किसी गच्छ के विद्वान् द्वारा निर्मित कृति को देखकर दूसरे गच्छ के विद्वान् गच्छीय प्रतिष्ठा हेतु अनेक कृतियो का निर्माण कर डालते थे। इस प्रकार जैन मनीषियो ने पारस्परिक गच्छीय स्पर्धा के कारण अनेक काव्य-कृतियो का निर्माण किया।

जैन महापुरुषो के आदर्श जीवन जैन कवियो ने उन लौकिक महापुरुषो से प्रभावित होकर महाकाव्यो की रचना की जिन्होने जैन धर्म के उत्थान के लिए मन, वाणी एव कर्म से प्रयत्न किया था। सिद्धराज जयसिह, परमार्हन कुमारपाल, महामात्य वस्तुपाल, जगड्दास आदि ऐसे धर्मात्मा व्यक्ति थे जिनके आदर्श जीवन से समाज ने शिक्षाएँ ग्रहण की थी। ऐसे उन महापुरुषो के जैन धर्मानुकूल जीवन मे प्रभावित होकर जैन मनीषियो ने उन्हे अपने महाकाव्य का नायक बनाया और उनका प्रशस्ति-गान किया। उनके इस प्रशस्ति-गान मे कही भी चाटुकारिता की गन्ध नही आने पाई है। उदाहरणार्थ—जगडू की अद्भुत दानशीलता ने सर्वानन्द सूरि को 'जगडू-चरित', कुमारपाल की अद्भुत धर्म-भावना ने जयसिह सूरि को 'कुमारपाल चरित' तथा वस्तुपाल की जैन धर्म के प्रति अविचल निष्ठा ने बालचन्द्र सूरि को 'वसन्त-विलास' एव उदय प्रभ सूरि को 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य की रचना के लिए विवश किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन महापुरुषो के आदर्श जीवन भी जैन महाकाव्यो के निर्माण के प्रेरणास्रोत रहे है।

सस्कृत के मूर्धन्य कवियो का प्रभाव सस्कृत साहित्य के ख्यातिप्राप्त कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियो की काव्यकृतियो से प्रेरणा पाकर भी जैन कवियो ने अनेक काव्यो की रचना की। इन कवियो का प्रमुख लक्ष्य सस्कृत के कवियो की पक्ति मे स्थान प्राप्त करना था। अत उन्होने उन कवियो की शैली का अनुकरण किया। मुनिभद्र सूरि ने अपने 'शान्तिनाथ चरित' मे आत्मश्लाघा करते हुए बडे गर्व के साथ कहा कि जिन्हे कालिदास, भारवि माघ और श्रीहर्ष के काव्यो मे भी दोष दिखलायी पडते हैं उन्हे इस काव्य मे सर्वत्र गुण ही मिलेगे—

ये दूषान प्रतिपादयन्ति सुधिय श्रीकालिदासोक्तिषु
श्रीमद्भारविमाघपण्डितमहाकाव्यद्वयेऽप्यन्वहम् ।

श्रीहर्षामृतसूक्तिनैषधमहाकाव्येऽपि ते केवलम्
यावद् वृत्तविवर्णनेन भगवच्छान्तेश्चरित्रे गुणान् ।।[1]

इसी प्रकार ग्वालियर शासक वीरमदेव तोमर की उक्ति कि 'प्राचीन कवियो के सदृश मनोहर काव्य की रचना अब कौन कर सकता है' सुनकर नयचन्द्र सूरि ने हम्मीर महाकाव्य की बडे गर्व के साथ रचना की तथा उसे महाकाव्य कहा। कवि के शब्दो मे—

काव्य पूर्वकवेर्न काव्य स-श कश्चिद् विधाताऽधुने-
त्युक्ते तोमरवीरमक्षितिपते सामाजिकै ससदि ।
तदभ्रूचापलकेलिदोलितमना शृगारवीराद्भुत
चक्रे काव्यमिद हमीरनृपतेर्नव्य नयेन्दु कवि ।।[2]

इन कविया के अतिरिक्त हरिचन्द्र ने 'धर्मशर्माभ्युदय'[3] तथा वस्तुपाल ने नरनारायणानन्द'[4] की रचना कर उन्हे महाकाव्य की सज्ञा दी । इस प्रकार इन कवियो की गर्वोक्तियाँ स्वय ही कालिदास जैसे प्रमुख कवियो की श्रेणी मे स्थान प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा का व्यक्त करती है ।

जैन सस्कृत महाकाव्यो का वर्गीकरण एव उनकी प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ

जैन सस्कृत महाकाव्यो का विभाजन प्रमुख रूप से तीन वर्गों मे किया जा सकता है—

१ पौराणिक महाकाव्य,
२ ऐतिहासिक महाकाव्य,
३ शास्त्रीय महाकाव्य ।

पौराणिक महाकाव्यो के अन्तर्गत उन महाकाव्यो को लिया गया है जिनका आधार पुराण रहे है । जैसे महाकवि महासेन का 'प्रद्युम्नचरित' । इस महाकाव्य की रचना जिनसेन प्रथम के हरिवश पुराण के आधार पर की गयी है ।

ऐतिहासिक महाकाव्यो के अन्तर्गत उन महाकाव्यो की गणना की जाती है जिनका आधार ऐतिहासिक महापुरुष रहे है । जैसे नयचन्द सूरि का हम्मीर महा-

---

१ मुनिभद्र सूरि, शान्तिनाथ चरित, प्रशस्ति श्लोक—१३ ।
२ नयचन्द्र सूरि, हम्मीर महाकाव्य १४/४३ ।
३ इति महाकवि हरिचन्द्रविरचिते धर्मशर्माभ्युदये महाकाव्ये प्रथम सर्ग ।
—कवि हरिश्चन्द्र, धर्मशर्माभ्युदय, प्रथम सर्ग की पुष्पिका ।
४ नरनारायणानन्दो नाम कन्दो मुदामिदम् ।
तेन तेने महाकाव्य वाग्देवीधर्मसूनुना ।।
—कवि वस्तुपाल, नरनारायणानन्द १६।४० ।

काव्य'। इस महाकाव्य मे नायक हम्मीरदेव इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुष है जिन्होने वि० स० १३५७ के श्रावण मास मे अलाउद्दीन खिलजी के साथ युद्ध करते हुए वीर-गति प्राप्त की है।

शास्त्रीय महाकाव्यो के अन्तर्गत वे महाकाव्य आते है जिनकी रचना जैन महाकवियो ने सस्कृत के उत्कृष्ट कवियो की पक्ति मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा से की है। जैसे मुनिभद्र सूरि का 'शान्तिनाथ चरित'। इसमे कवि ने बडे गर्व के साथ अपने को कालिदास आदि प्रमुख कवियो से महान् बताया है।

पौराणिक महाकाव्यो की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ

१—जैन महाकाव्यो मे जैन धर्म के शलाका पुरुषो के चरित्र का वर्णन किया गया है। ६३ शलाका पुरुषो के अतिरिक्त अन्य धार्मिक पुरुषो के जीवन चरित्र भी इसमे वर्णित हुए है। कभी-कभी किसी व्रत, तीर्थ, पञ्च नमस्कार आदि के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भी काव्य की रचना की गयी है।

२—इन जीवनचरितो की उद्गम भूमि जैन आगम, भाष्य तथा महापुराण रहे है। कवियो ने कथानक मे परिवर्तन हेतु कल्पनाशक्ति का आश्रय नही लिया है।

३—इन कवियो का प्रमुख लक्ष्य कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना रहा है। अत कथा रस की अपेक्षा सर्वत्र धर्मभाव की प्रधानता परिलक्षित होती है। आत्म-ज्ञान, ससार की नश्वरता, विषय त्याग, वैराग्य भावना श्रावको के आचार का प्रतिपादन तथा नैतिक जीवन की उन्नति के लिए आदर्शो की योजना इन कृतियो के मुख्य विषय रहे है।

४—इन काव्यो मे कर्मफल की अनिवार्यता दिखलाने के लिए चरित्र नायको एव उनसे सम्बन्धित पूर्व भवो की कथा को मूल कथा के आवश्यक अग के रूप मे कहा गया है क्योकि इस जन्म मे पात्रो को प्राप्त होने वाला सुख-दुःख उनके पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।

५—इन महाकाव्यो मे अलौकिक एव अप्राकृत तत्त्वो की प्रधानता परिलक्षित होती है क्योकि समय-समय पर विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, देव, राक्षस आदि उपस्थित होकर पात्रो की सहायता करते है, किन्तु उनकी उपस्थिति का सम्बन्ध पूर्व जन्म के कर्मों से बताकर अस्वाभाविकता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्र, स्वप्न और शकुन-अपशकुन मे विश्वास रखने वाले व्यक्तियो का वर्णन भी इन काव्यो मे मिलता है।

६—इन काव्यो मे पहले ब्राह्मण, बौद्ध एव चार्वाक आदि दर्शनो के सिद्धान्तो का वर्णन हुआ है और उसके पश्चात् उनका खण्डन करके जैन धर्म के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है।

७—किसी-किसी काव्य मे प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग भी मिलता है क्योकि काम, मोह, अहकार, सुगति धर्म, अज्ञान, राग और द्वेष आदि भावो को पात्रो का रूप दिया गया है।

८—अनेक काव्यो मे स्तोत्रो की योजना की गयी है जिनमे तीर्थंकरो या पौराणिक पुरुषो या मुनियो की स्तुति हुई है।

९ इन काव्यो का लक्ष्य जन-साधारण को प्रभावित करना रहा है, क्योकि जन-साधारण को प्रभावित करने के लिए कथात्मक साहित्य ही सर्वोत्तम साधन है। इसीलिए इन काव्यो की मूल कथा के साथ अनेक अवान्तर कथाओ को जोड दिया गया है। जिससे कथानक मे शिथिलता दृष्टिगोचर होती है।

१०—रस की दृष्टि से अधिकाश काव्यो मे शान्त रस को अङ्गीरस के रूप मे स्वीकार किया गया है तथा अङ्गरूप मे शृङ्गार, वीर, रौद्र, भयानक आदि रसो का वर्णन भी हुआ है। जीवन की अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बाद किसी मुनि के उपदेश श्रवण के द्वारा जीवन और ससार मे विरक्त हो जाना ही इन सभी पौराणिक काव्यो का लक्ष्य रहा है। इसीलिए शान्त रस की प्रधानता सर्वत्र परि-लक्षित होती है।

११—इन सभी काव्यो के कथानक का प्रारम्भ प्राय एक-सा ही हुआ है। जैसे—तीर्थंकरो की स्तुति पूर्व कवियो और विद्वानो का स्मरण, सज्जन-दुर्जन चर्चा, देश, नगर, राजा-रानी का वर्णन तीर्थंकर या मुनि का नगर के बाहर उद्यान मे आना, राजा या नगरवासियो का वहाँ पहुँचना देखना-सुनना और फिर सवाद रूप मे पूरी कथा का कहना आदि।

१२— इन काव्यो के मध्य मे महाकाव्योचित वर्ण्य विषयो—नदी, पर्वत, सागर, प्रात, सन्ध्या रात्रि, चन्द्रोदय सुरापान, सुरति, जलक्रीडा, उद्यान क्रीडा, वसन्तादि ऋतु, शारीरिक सौन्दर्य, जन्म, विवाह, युद्ध और दीक्षा आदि के वर्णन प्रस्तुत कर समग्र जीवन के चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गयी है।

१३— इन महाकाव्यो मे कही-कही महाकाव्य परम्परा विरुद्ध क्षत्रिय कुलोत्पन्न धीरोदात्त राजा को नायक न बनाकर मध्यम श्रेणी के किसी वणिक आदि पुरुष को नायक बनाया गया है। इसके अतिरिक्त कही-कही किसी स्त्री को प्रमुख पात्र के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

१४—इन काव्यो मे अनेक प्रेमाख्यान काव्य भी है जिनमे प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, सैनिक अभियान, नगरावरोध, युद्ध और विवाह आदि को विशेष महत्त्व दिया गया है।

१५—शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार 'सर्गबद्धो महाकाव्यम्' अर्थात् महाकाव्य को सर्गबद्ध होना चाहिए। पौराणिक महाकाव्य भी अधिकतर सर्गबद्ध हैं। किन्तु

कुछ महाकाव्यो का विभाजन उत्साह, पर्व लम्भक आदि नामो से हुआ है। जैसे— अमरचन्द्र सूरि का 'बालभारत' पर्वों और सर्गों मे, माणिक्यचन्द्र सूरि का 'नलायनम' स्कन्धो और पर्वों मे तथा 'लीलावती कथासार' उत्साहो मे विभाजित हुआ है।

१६—इन सभी काव्यो की रचना शिक्षित या पण्डित वर्ग के लिए न होकर जन-साधारण के लिए हुई है। इसीलिए इनकी भाषा सरल है तथा मुहावरो, लोकोक्तियो एव देशज शब्दो का प्रयोग भी भाषा को प्रवाहमयी बनाने मे सहायक सिद्ध हुआ है।

१७—इन महाकाव्यो मे अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। अन्य छन्दो मे उपजाति मालिनी, वसन्ततिलका आदि छन्दो का प्रयोग भी हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के अर्धसम और विषम वर्णिक छन्दो तथा अप्रचलित छन्दो का प्रयोग भी देखने को मिलता है। जिनमे षटपदी (छप्पय), कुण्डलिक (कुण्डलिया), आख्यानकी वैतालीय तथा वेगवती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वर्णिक छन्दो मे छन्दशास्त्र के नियम के अनुसार जहाँ-जहाँ यति का विधान है वहाँ अन्त्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा छन्द को नवरूपता प्रदान की गयी है। इस अन्त्यानुप्रासता के प्रयोग से छन्दो मे गेयता का गुण अधिक आ गया है और लय मे गतिशीलता भी देखने को मिलती है। किन्तु इस अन्त्यानुप्रास का प्रयोग प्रत्येक चरण के अन्त मे ही न होकर मध्य मे भी हुआ है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ

१—ऐतिहासिक महाकाव्यो की रचना अधिकतर राजाओ के आश्रय मे हुई है। इसीलिए इन कवियो ने अपने आश्रयदाताओ को सन्तुष्ट करने के लिए उनकी झूठी प्रशसा की है। उन्होने उन अशो को बिल्कुल छोड दिया है जिनके द्वारा आश्रयदाताओ के उत्कर्ष मे बाधा दीख पडती है।

२—इन महाकाव्यो मे नायक की वीरता या माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए दिग्विजय आदि का काल्पनिक वर्णन भी हुआ है तथा कही-कही उसके उत्कर्ष को करने के लिए प्रतिनायक की कल्पना भी की गयी है।

३—इन काव्यो की मुख्य कथा तो ऐतिहासिक रही है किन्तु उसमे अतिशयोक्तिपूर्ण और काल्पनिक घटनाओ की भी कमी नही है।

४—इनमे नायक की वश-परम्परा और उसके कुल की उत्पत्ति का वर्णन पुराणो के आधार पर किया गया है। जैसे चौलुक्य वश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक से हुई बतायी गयी है।

५—शास्त्रीय महाकाव्यो की भाँति इन महाकाव्यो मे भी ऋतु-वर्णन, जलक्रीडा, वनविहार, सयोग, वियोग, युद्ध, पुत्रोत्पत्ति आदि का वर्णन भी मिलता है।

शास्त्रीय महाकाव्यों की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ

१—शास्त्रीय महाकाव्यो के आदर्श भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि के महाकाव्य रहे है। किन्तु इनकी कथावस्तु अत्यन्त ही स्वल्प है। इसीलिए इन महाकाव्यो मे वस्तु-व्यापार का अनावश्यक विस्तार किया गया है।

२—इन महाकाव्यो मे कवियो ने स्थान-स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पना-वैभव दिखलाने का प्रयत्न किया है।

३—इन महाकाव्यो की रचना करते समय लक्षणग्रन्थो मे प्राप्त अधिकाश महाकाव्य सम्बन्धी नियमो का पालन किया गया है।

४—इन महाकाव्यो मे कवियो ने अलकृति और भाषा की साज-सज्जा पर विशेष बल दिया है, क्योकि उनका आदर्श किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषध महाकाव्य की भाषा रही है। इसीलिए इन महाकाव्यो की भाषा-शैली उदात्त, प्रौढ और कही-कही दुर्बोध भी मिलती है।

५—रस की दृष्टि से इन महाकाव्यो मे शृगार, वीर और शान्त रस को अङ्गीरूप मे तथा अन्य रसो को अङ्ग रूप मे स्वीकार किया गया है।

६—इन महाकाव्यो मे कवियो ने स्थान-स्थान पर विविध शास्त्र-विषयक ज्ञान को प्रतिपादित किया है।

जैन संस्कृत महाकाव्यो की परम्परा का विकास-क्रम

जैन कवियो ने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय महाकाव्य के रूप मे अनेक काव्यो की रचना की। इन काव्यो का प्रमुख उद्देश्य पुण्य पुरुषो के चरितो को बुद्धिजीवी वर्ग तक पहुँचाना रहा है। अत इनके काव्यो मे चरित नामान्त महाकाव्यो की प्रधानता है। अध्ययन की दृष्टि से उनके प्रमुख काव्यो को यहाँ पर दो भागो मे विभक्त किया जा रहा है—

१ चरित नामान्त महाकाव्य, २ इतर नामान्त महाकाव्य।

चरित नामान्त महाकाव्य

वराङ्ग चरित जैन चरित महाकाव्यो के अन्तर्गत सस्कृत का सर्वप्रथम चरित काव्य जटासिंह नन्दी का 'वराङ्ग चरित'[1] है। जटासिंह नन्दी का समय ईसवी सन् की आठवी शती का पूर्वार्ध माना गया है। इस काव्य मे बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ तथा श्रीकृष्ण के समकालीन वराङ्ग नामक पुण्य पुरुष का जीवन-चरित अंकित किया गया है। काव्य का नायक धीरोदात्त गुणो से सम्पन्न है। उसके चरित्र के माध्यम से ही जैन धर्म के सिद्धान्तो का विवरण प्रस्तुत करना कवि का प्रमुख

१ माणिकचन्द जैन ग्रन्थमाला संख्या ४०, बम्बई १९३८। सपादक ए० एन० उपाध्ये।

लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही उसने ३१ सर्गों की सृष्टि की है। इन सर्गों मे से चतुर्थ से लेकर दशम तक तथा छब्बीसवे एव सत्ताईसवे सर्ग को निकाल देने पर भी कथा मे किसी प्रकार की कमी नही आने पाती है, क्योकि इस काव्य मे जैन तत्त्वो का निरूपण इतना अधिक हुआ है कि जिससे पाठक का मन ऊब जाता है। यो तो इस काव्य मे प्रसाद गुण के प्राचुर्य के कारण सर्वत्र आकर्षण है। उदाहरणार्थ एक तथ्य का स्वाभाविक चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

निदाघमासे व्यजन यथैव करात् कर सर्वजनस्य याति।
तथैव गच्छन् प्रियता कुमारो वृद्धि च बालेन्दुरिव प्रयात ॥[1]

अपि च—

चलत्पताकोज्ज्वल केशमाला प्राकार काञ्चि स्तुतितूर्यनाद।
प्रपूर्ण-कुम्भोरु-पयोधरा सा पुराङ्गना लब्धपतिस्तुतोष ॥[2]

प्रस्तुत श्लोक मे कवि ने नगरी की समता अङ्गना से की है।

वराङ्ग की यह कथा आगे चलकर जैन समाज मे इतना अधिक लोकप्रिय हुई कि धरणि पण्डित ने (१६५० ई० के लगभग) कन्नड भाषा मे इस काव्य की रचना की तथा लालचन्द्र पाण्डेय ने १८२७ वि० स० मे १४वी शती के संस्कृत के कवि वर्धमान के वराङ्गचरित का हिन्दी मे अनुवाद किया।

चन्द्रप्रभचरित—महाकवि वीरनन्दि ने 'चन्द्रप्रभचरितम्'[3] नामक महाकाव्य की रचना की। इस काव्य मे आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के जीवनचरित का वर्णन किया गया है। महाकवि वादिराज (ई० १०२५) ने अपने पार्श्वनाथ चरित' इस काव्य तथा कवि दोनो के नामो का उल्लेख किया है जिसमे स्पष्ट है कि काव्य के रचयिता वीरनन्दि का समय ई० सन् की दसवी शताब्दी है—

चन्द्रप्रभाभिसम्बद्धा रसपुष्टा मन प्रियम्।
कुमुद्वतीव नो धत्ते भारती वीरनन्दिन ॥[4]

इस महाकाव्य मे १८ सर्ग है जिनमे चन्द्रप्रभ के सात भवो की कथा विस्तार के साथ वर्णित हुई है। भाषा-शैली की दृष्टि से कवि कालिदास का अनुयायी है, क्योकि व्याकरण-सम्मत भाषा की मञ्जुलता, मधुरता और सरसता इस काव्य की प्रमुख विशेषता है। यथा—उदय के समय अरुणवर्ण चन्द्रमा को देखकर कवि उसे पूर्व दिशा के मस्तक पर सुशोभित जपा पुष्प की रमणीक कल्पना करता है—

---

१ वराङ्ग चरित, २८/६।
२ वही, ११/६६।
३ काव्यमाला ग्रन्थाक ३०, निर्णयसागर, बम्बई १९१२।
४ पार्श्वनाथ चरित १/२०।

> चिरमाविधिरोहदम्बरे विधुबिम्ब क्षणमुद्गमारुणम् ।
> अनयद् हरिदिग्वधू जपाकुसुमापीडवितर्कभङ्गिनाम ।।[१]

अपि च—

> तिमिरेभमधुनं हिंसितु शशिहिंसाय गुहाश्रित नगा ।
> शरणागतरक्षण सता नहि जातु व्यभिचारमेष्यति ।।[२]

अर्थात पर्वतो ने कन्दराओं मे आकर छिपे हुए अन्धकाररूपी हाथी को मारने के लिए चन्द्रमारूपी सिंह को नही सौंपा क्योकि सज्जनो का शरणागत की रक्षा करने का स्वभाव कभी नही बदल सकता है ।

प्रस्तुत काव्य मे कवि वीरनन्दि का प्रमुख लक्ष्य जीवन् को निर्वाण की ओर ले जाना है । इसीलिए प्राचीन कवियो के भावो से प्रभावित होने पर भी उनमे मौलिकता है तथा रसपेशल पदावली मे भावों के अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है । जिसके परिणामस्वरूप उन्हे अपने उद्देश्य की पूर्ति मे पूर्ण सफलता मिली है ।

कवि वीरनन्दि के अतिरिक्त सर्वानन्द सूरि ने भी तेरहवी शताब्दी मे जैनो के *अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित के आधार पर 'चन्द्रप्रभचरित' काव्य की रचना* की जो अभी तक अप्रकाशित है ।

वर्धमानचरित[३]—महाकवि असग ने दसवी शताब्दी मे ही 'शान्तिनाथचरित' एव 'वर्धमानचरित' नामक दो महाकाव्यो की रचना की । उनके ये दोनो काव्य महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो की कसौटी पर खरे उतरते हैं । इनके 'शान्तिनाथ चरित' मे सोलहवे तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित चित्रित किया गया है । इस काव्य मे दार्शनिक तत्त्वो की बहुलता के कारण प्रकृत रस तथा कथावस्तु का वर्णन एकदम दब-सा गया है ।

कवि असग का 'वर्धमान चरित' निस्सन्देह ही उच्चकोटि का काव्य है जिसके १८ सर्गों मे महावीर स्वामी का जीवन-चरित वर्णित है । इस काव्य की कथावस्तु 'उत्तर पुराण' के ७४वे पर्व से ली गयी है किन्तु कवि ने कथावस्तु को महाकाव्योचित बनाने के लिए पर्याप्त काट-छाँट की है । उदाहरणार्थ—उसने पुरूरवा और मरीचि के आख्यान को छोडकर श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के आँगन मे पुत्रजन्मोत्सव के कथानक को जोड दिया है जिससे आरम्भ स्थल अत्यन्त ही रमणीय बन पडा है । इस काव्य की शैली वैदर्भी है तथा प्रसाद गुण का

---

१ चन्द्रप्रभ चरित १०/३० ।
२ वही १०/२६ ।
३ सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्र० रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर, सन् १९३१ ई० ।

आधिक्य है । कवि ने भावो को सजाने के लिए अलङ्कारो का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया है। इसीलिए मार्मिक स्थलों पर उपयुक्त रस की अनुभूति होने लगती है। कवि के शब्दो मे—वसन्त के शुभागमन पर मलयानिल नर्तक के द्वारा लता-रूपी अङ्गनाओ का यह नर्तन अत्यन्त सुखकारी प्रतीत होता है—

अनर्तयत् कोकिलपुष्करध्वनि. प्रयुक्तभृङ्गस्वनगीतशोभिते ।
वनान्तरङ्गे स्मरबन्धिनाटक लताङ्गता दक्षिणवातनर्तक ।।[१]

कवि सौन्दर्य-चित्रण मे भी अत्यन्त निपुण है

जङ्घा मृदुत्वेन हृता नितान्त विसारता सत्कदली प्रयाता ।
पयोधराभ्या विजित च यस्या मालूरमास्ते कठिन वनान्ते ।।[२]

अर्थात् श्रेष्ठ कदली वृक्ष उसकी जघाओ की मृदुता के समक्ष लज्जित होकर ही निस्सारता को प्राप्त हो गया तथा अत्यन्त कठोर बेल उसके पयोधरो से जीते जाने के कारण ही वन मे निवास करने लगा ।

पार्श्वनाथ चरित—जैन सम्प्रदाय के २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन वृत्त भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के कवियो के लिए विशेष आकर्षक रहा है। इसीलिए इन सभी भाषाओ के कवियो ने उनके जीवनवृत्त का ग्रहण कर महाकाव्यो की रचना की है। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित वादिराज सूरि का 'पार्श्वनाथ चरित'[३] भी अन्य कवियो के लिए प्रेरणास्रोत रहा है । इस काव्य के माध्यम से जहाँ एक ओर उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है वही दूसरी ओर तार्किक कुशलता का । उन्होंने सिंह चक्रेश्वर या चालुक्य चक्रवर्ती जयसिंह देव की राजधानी मे निवास करते हुए शक सम्वत् ९४७ (सन् १०२५ ई०) कार्तिक शुक्ला तृतीया को अपने पार्श्वनाथचरित की रचना[४] की । अत उनका समय ११वी शती का पूर्व-भाग है। इन्हे षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति और जगदेक मल्लधारी की उपाधियाँ प्राप्त थी जो उनके दार्शनिक ज्ञान का परिचायक हैं । कवि का प्रस्तुत श्लोक भी इसी ओर ध्यान आकृष्ट करता है—

वादिराजमनुशब्दिकलोको वादिराजमनुतार्किकसिंह ।
वादिराजमनुकाव्यकृतस्ते वादिराजमनुभव्यसहाय ।।[५]

---

१ वर्धमानचरित २/५२ ।
२ वही, ५/१८ ।
३ स० प० मनोहर लाल शास्त्री, प्र० माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई वि० स० १९७३ ।
४ शकाब्दे नागवार्धिरन्ध्रगणने सवत्सरे क्रोधने,
मासे कार्तिक नाम्निबुद्धि यहितेशुद्धे तृतीयादिन ।
सिंहे याति जयादिके वसुमती जैनीकथेय मया,
निष्पत्ति गमिता सती भवतु व कल्याण निष्पत्तये ।।—पा० च०, प्र० ५ पद्य ।
५ एकीभावस्तोत्र, श्लोक २६ ।

अर्थात् समस्त वैयाकरण, तार्किक और भव्य सहायक वादिराज से हीन हैं। अर्थात् उनकी समता नही कर सकते हैं।

'पार्श्वनाथ चरित' की कथावस्तु का मूलस्रोत उत्तर पुराण है जिसमे ७३वें पर्व मे पार्श्वनाथ के चरित का वर्णन हुआ है किन्तु संस्कृत भाषा मे काव्य रूप मे 'पार्श्वनाथचरित' लिखने का श्रेय वादिराज को ही है । इस काव्य मे १२ सर्ग हैं। काव्य की भाषा-शैली माधुर्य गुणपूर्ण है, जो कि कवि की भाषा पर असाधारण अधिकार का द्योतक है।

इस रचना के अतिरिक्त माणिक्यचन्द्र सूरि[१], विनयचन्द्र सूरि[२], सर्वानन्द सूरि[३] तथा भावदेव सूरि[४] ने भी पार्श्वनाथ चरित नामक काव्य की रचना की।

प्रद्युम्नचरित -महाकवि महासेन ने 'प्रद्युम्नचरित'[५] नामक महाकाव्य की रचना की। इनका समय दसवी शती है। प्रद्युम्नचरित काव्य के चौदह सर्गों मे श्रीकृष्ण के रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न का चरित वर्णित किया गया है। प्रद्युम्न की कथा जिस प्रकार भागवत (दशम स्कन्ध अ० ५२-५५) तथा विष्णुपुराण (पचम अश अ० २६-२७) मे प्रसिद्ध है उसी प्रकार जैनधर्मियो मे भी लोकप्रिय है। जिनसेन ने हरिवश पुराण' तथा गुण भद्राचार्य ने 'उत्तर पुराण' मे प्रद्युम्न के चरित का वर्णन किया है। कविवर महासेन के 'प्रद्युम्न चरित' के वर्णन का आधार भी यही 'हरिवश पुराण' ही रहा है क्योकि हरिवश पुराण की कथावस्तु तथा प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु मे पर्याप्त साम्य है । भागवत के प्रेमी भक्तो के लिए यह महाकाव्य नितान्त मनमोहक है। काव्य की भाषा सरलता, स्वाभाविकता एव प्रसादमयता मे समन्वित है। शीतल वायु के प्रवाहित होने से ससार कांप रहा है । बादलो से मूसलाधार वृष्टि हो रही है । कृषक लोग काँपते हुए हलोपकरणो को खेतो मे छोडकर घर चले गये हैं—

> सीत्कारवायुपरिकम्पित विश्वलोके
> वेगाद् विमुञ्जति जल नववारिवाहे ।

---

१ ताडपत्रीय प्रति शान्तिनाथ भण्डार, खम्भात, ग्रथ सं० २०७ जिन रत्नकोश पृ २४४।

हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन, हस्तलिखित प्रतियाँ क्र० सं० १९१८ और १९६८।

३ ताडपत्रीय प्रति—सघवी पाडा भण्डार, पाटन सं० २७।

४ यशोविलास जैन ग्रन्थमाला, सन् १९१२, इसका सारानुवाद अंग्रेजी मे ब्लूमफील्ड ने वाल्टीमोर से सन् १९१९ में प्रकाशित कराया।

५ माणिक्यचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित वि० १९७३।

सर्वं हलोपकरण च विहाय तस्मिन्
कृच्छ्राज्जगाम भवनं प्रतिवेपिताङ्ग ॥[१]

महाकवि महासेन का प्रमुख लक्ष्य प्रसाद मधुरा वाणी द्वारा संस्कृत काव्य की रस सरिता को प्रवाहित करना रहा है। इसीलिए काव्य की शैली वैदर्भी है। दुरूह से दुरूह विषय को सरल ढग से कहना कवि के काव्य की प्रमुख विशेषता है।

शान्तिनाथ चरित[२] — इस काव्य की रचना मुनिभद्र सूरि ने पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना से प्रेरित होकर की है, क्योकि उनकी स्पष्ट गर्वोक्ति है कि जिन्हे कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यो मे दोष दीख पडते हैं उन्हे इस काव्य मे सर्वत्र गुण ही गुण दीख पडेंगे —

ये दोषान् प्रतिपादयन्ति सुधिय श्री कालिदासोक्तिषु
श्रीमद्भारविमाघपण्डित महाकाव्यद्वयेऽप्यन्वहम् ।
श्रीहर्षामृतसूक्ति नैषध महाकाव्येऽपि ते केवलं
यावद्वृत्तविवर्णनेन भगवच्छान्तेश्चरिते गुणान् ॥[३]

मुनिभद्रसूरि का समय १४वी शती का मध्यकाल है क्योकि इन्होने समाज मे पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित की थी जिससे प्रभावित होकर तत्कालीन बादशाह फिरोज तुगलक (राज्यकाल १३५१-१३८८ ई०) उनका बडा आदर करता था। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख उन्होने काव्य की प्रशस्ति मे किया है।[४]

'शान्तिनाथ चरित' महाकाव्य मे १९ सर्ग है तथा काव्य का आधार मुनि देवसूरि कृत 'शान्तिनाथ चरित' है क्योकि कवि ने कथास्रोत के सम्बन्ध मे स्वय लिखा है—

पूज्य श्री मुनिदेवसूरिरचित श्री शान्ति तीर्थेश्वर
प्रख्याताद्भुत काव्यदर्शन तया काव्य मयेद कृतम् ।

---

१ प्रद्युम्नचरित ५/१०४ ।
२ यशोविलास ग्रन्थमाला मे (सख्या २०) वाराणसी से प्रकाशित प० हरगोविन्द दास तथा बेचरदास द्वारा सशोधित ।
३ शान्तिनाथ चरित प्रशस्ति—१३ पद्य ।
४ तस्यश्रीगुणभद्रसूरिसुगुरु पट्टावतसोऽभवद् ।
य श्री शाहिमुहम्मदस्य पुरत क्ष्मापालचूडामणे ॥
—शान्तिनाथ चरित प्रश -७।
चातुर्यं गुणभद्रसूरिगुरो शास्त्रेषु सर्वेष्वपि ।—शान्ति० प्रश०-८ ।
तच्छिष्यो मुनिभद्रसूरिरजनि स्याद्वादिसभावन ।
श्री पेरोजमहीमहेन्द्रसदसि प्राप्तप्रतिष्ठोदय ॥—वही, ९ ।

उत्सूत्र यदि भाव किंचिदपि तद्नाऽऽदेयमेतत् सताम्
स्याद् नूनं न च निर्वत्ति रचयतीव्यालोच्यबुद्धयाधिकम् ॥[१]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि मुनिभद्र सूरि ने इस काव्य की समस्त अवान्तर कथाएँ मुनिदेव सूरि के 'शान्तिनाथ चरित' से ग्रहण की हैं । दार्शनिक तत्त्व और धर्म सिद्धान्त भी उक्त काव्य से ही लिये गये है ।

महाकाव्य की दृष्टि से 'शान्तिनाथ चरित' एक सफल रचना है, क्योंकि शास्त्रीय परम्परा के अनुसार इस काव्य का कथानक लोकविश्रुत सोलहवे तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ के जीवनचरित से सम्बन्धित है ।

इस काव्य की भाषा मे प्रौढ़ता, लालित्य और अनेकरूपता के दर्शन होते है । अधिकाश स्थलो पर उसमे बोधगम्यता और सरलता है । भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है । उसकी शब्द योजना सघटित और भावानुकूल है ।

मुनिभद्र सूरि कृत 'शान्तिनाथ चरित' के अतिरिक्त 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार माणिक्यचन्द्र सूरि[२] तथा पौर्णमिकगच्छीय अजितप्रभ सूरि[३] एव भावचन्द्र सूरि[४] कृत 'शान्तिनाथ चरित' महाकाव्य का भी उल्लेख मिलता है ।

कुमारपाल चरित —आचार्य हेमचन्द्राचार्य ने 'कुमारपालचरित'[५] नामक महाकाव्य की रचना १२वी शताब्दी मे की । कुछ लोग इस काव्य को द्वयाश्रय काव्य भी कहते है जिसका प्रमुख कारण यह है कि यह काव्य सस्कृत तथा प्राकृत दोनो भाषाओ मे लिखा गया है । प्रस्तुत काव्य का मुख्य उद्देश्य अपने समय के राजा कुमारपाल के चरित का वणन करना है । इस काव्य मे २० सर्ग हैं जिनमे चौलुक्यवशीय राजाओ का चित्रण हुआ है ।

इस काव्य की भाषा सरल एव प्रसाद गुण सम्पन्न है क्योंकि कवि ने यद्यपि भट्टि महाकाव्य के समान अपने सिद्ध हेमशब्दानुशासन के उदाहरणो का प्रयोग किया

---

१ शान्तिनाथ चरित प्रशस्ति, श्लोक १० ।

२ जिनरत्नकोश पृ० ३८ , हेम चन्द्राचार्य ज्ञान मन्दिर प्रति ४६/८६५ ।

३ जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर स० १९७३, जिन रत्नकोश पृ० ३७९, बिब्लियो० इण्डिका । इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से स० २००३ मे प्रकाशित हो चुका है ।

४ जिन रत्नकोश पृ० ३७९, जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास पृ० ५१६, जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर १९११, गुजराती अनुवाद भावनगर स० १९७८ मे प्रकाशित ।

५ अभय तिलक गणि विरचित स टी० सहित बम्बई संस्कृत एव प्राकृत सीरीज १९१५ एव १९२१ ई० मे दो भागो मे प्रकाशित ।

है किन्तु फिर भी ऐतिहासिक कथानको मे रोचकता, मधुरता और काव्योचित भाव-प्रवणता की कमी नही है। यथा—

घाराप्रविष्टमथ कौलटिनेयबुद्ध्या प्राक्चाटकैरभिव चटकारिपक्षी।
जग्राह मालवपति युधि नर्तितासि नाटेरक सपुलकश्चुलुकप्रवीरै ॥[1]

इस काव्य के अतिरिक्त चरित्र सुन्दर गणि (चरित्र भूषण) ने १५वी शताब्दी मे 'कुमारपाल चरित' नामक दूसरे महाकाव्य की रचना की।[2] जिस महाकाव्य मे भी महाकाव्योचित लक्षणो का पूर्णरूपेण निर्वाह हुआ है।

धन्यकुमार चरित—इस काव्य की रचना गुणभद्र द्वितीय ने १२वी शताब्दी मे की। गुणभद्र नाम के अठारह मुनियो का उल्लेख दिगम्बर शाखा मे प्राप्त होता है किन्तु सस्कृत काव्य के निर्माता के रूप मे दो नाम ही उल्लेखनीय है। प्रथम गुणभद्र आचार्य जिनसेन के शिष्य थे जिन्होने 'उत्तर पुराणचरित' एव जिनदत्तचरित' नामक दो ग्रन्थो का प्रणयन किया। द्वितीय गुणभद्र माणिक्यसेन के प्रशिष्य और नेमिसेन के शिष्य थे। इन्होने 'धन्यकुमार चरित' नामक काव्य की रचना की। डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ने इनका समय बारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण बताया है।[3]

इस काव्य की कथावस्तु का आधार 'उत्तर पुराण' है तथा इसकी एक प्रति आमेर शस्त्र भण्डार जयपुर तथा दूसरी प्रति दि० जैन मन्दिर दिल्ली मे है। अभी तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

सनत्कुमार चरित—इस उत्कृष्ट काव्य की रचना जिनपाल उपाध्याय ने भक्ति भावना से प्रेरित होकर की है। कवि का स्वय कथन है—

किमपि चरितमित्थ तुर्यचक्राधिनेतु
सुकृतकृति फलाविर्भाविक देहभाजाम्।
व्यरचि लसद तुच्छोत्साहतस्तद्गुणौघ
ग्रथन सलिल केली कौतुकित्वान्मयैतत् ॥[4]

काव्य के अन्त मे दी गयी प्रशस्ति के अनुसार जिनपाल गणि चन्द्रकुल की प्रवरवज्र शाखा के मुनि तथा खरतर गच्छ के सस्थापक जिनेश्वर सूरि की परम्परा मे जिनपति सूरि के शिष्य थे। खरतर गच्छ की वृहद गुर्वावली के अनुसार जिनपाल ने स० १२ ५ मे दीक्षा ग्रहण की थी।[5] स० १२६६ मे उन्हे अपने गुरु द्वारा उपाध्याय

---

१ द्वयाश्रय महाकाव्य १४/७२।
२ जैन आत्मानन्द सभा भावनगर म १६७३, जिन रत्नकोश पृ० ६२।
३ जैन सन्देश (शोधाक ८) २८ जुलाई १६६० ई०, पृ० २७६ तथा जैन सन्देश (शोधाक ७), १० अक्टूबर १६६३ ई०।
४ सनत्कुमार चरित २४/११२।
५ खरतर गच्छ वृहद गुर्वावली, सम्पादक मुनि जिन विजय पृ०, ४४।

पद प्राप्त हुआ तथा स० १२७३ मे प० मनोजानन्द को हराकर उन्होने नगर कोट के राजा पृथ्वीचन्द्र से 'जयपत्र' प्राप्त किया। जिनपाल उपाध्याय का स्वर्गवास स० १३११ मे हुआ।[1] 'अभयकुमार चरित' (स० १३१२) के रचयिता चन्द्र तिलक गणि को जिनपाल उपाध्याय ने धार्मिक ग्रन्थो को पढाया था।[2] जिसका उल्लेख चन्द्र तिलक उपाध्याय ने स्वय अभयकुमार चरित की प्रशस्ति मे किया है—

सम्यगध्याप्य निष्पाद्य यश्चान्तेवासिनो बहून्।
चक्रे कुम्भ ध्वजारोप गच्छ प्रासाद मूर्द्धनि ॥
श्री जिन पालोपाध्याय मौलेस्तस्यास्य सन्निधौ।
मयोपादायि नद्यादि मूलागमाङ्ग वाचना ॥
श्री जिन पालोपाध्याय कृता त्वि प्रेरणामहम्।
चरित्रकरणे प्राप सरस्वत्युपदेशवत् ॥[3]

श्री मोहनलाल दलीचन्द के अनुसार जिनपाल उपाध्याय ने स० १२६२ मे 'षट्स्थानकवृत्ति' और उसके पश्चात् 'सनत्कुमार चरित' महाकाव्य की रचना की अत स्पष्ट है कि 'सनत्कुमार चरित' की रचना १२६२ के बाद हुई।

प्रस्तुत महाकाव्य मे २४ सर्ग है जिनमे सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित्र मनोहर शैली मे वर्णित है। काव्य का कथानक सुगठित एवं व्यवस्थित है तथा परस्पर घटनाओ की सम्बद्धता के कारण कथानक मे अविच्छिन्नता एव धारावाहिकता की कमी नही है। आलङ्कारिको द्वारा निर्दिष्ट समस्त महाकाव्योचित लक्षणो का सफल निर्वाह प्रस्तुत महाकाव्य मे हुआ है।

पाण्डवचरित—इस महाकाव्य[4] की रचना देवप्रभ सूरि ने हर्षपुरीय गच्छ मुनिचन्द्र सूरि के शिष्य देवानन्द सूरि के अनुरोध से की। सम्पादको के अनुसार इसका रचना-काल वि० स० १२७० है।[5]

इस महाकाव्य मे १८ सर्ग है तथा इसका कथानक लोक-प्रसिद्ध पाण्डवो के चरित्र पर आधारित है। जैन महाकाव्य होने के कारण नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन भी इस महाकाव्य मे हुआ है। प्रस्तुत महाकाव्य मे लगभग आठ हजार श्लोक है किन्तु भाषा-शैलीगत प्रौढ़ता एव उदात्त कवित्व कला का अभाव है। कवि ने इस अभाव को दूर करने के लिये अनेक अलङ्कारो का प्रयोग किया है। अतएव

---

१ खरतर गच्छ बृहद गुर्वावली, सम्पादक मुनि जिन विजय पृ०, ५० ।
२ अभय कुमार चरित प्रशस्ति, श्लोक ३८-४० ।
३ वही ।
४ काव्यमाला सिरीज, बम्बई १९११, जि० र० को० पृ० २४२ ।
५ जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास (मो० द० देसाई) मे पाण्डव चरित का रचना-काल स० १२७० के लगभग माना गया है।

अलङ्कारो की छटा दर्शनीय है। इसके साथ ही पाण्डवचरित एक धार्मिक काव्य है, इसलिए अनेक स्थलो पर धार्मिक उपदेशो की योजना भी हुई है।

मल्लिनाथ चरित[1]—इस महाकाव्य के रचयिता विनयचन्द्र सूरि हैं। काव्य के अन्त मे दी गयी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य की रचना रविप्रभ सूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभ तथा नरसिंह सूरि के अनुरोध से हुई और इस महाकाव्य का सशोधन कनकप्रभ सूरि के शिष्य प्रद्युम्न सूरि ने किया।[2]

यह एक 'विनयाङ्कित' महाकाव्य है। इसमे आठ सर्ग है। सर्गों का नामकरण वर्ण्य-विषय के आधार पर हुआ है। इस महाकाव्य मे मूल कथा के साथ अनेक अवान्तर कथाओ की योजना भी हुई है जिसके परिणामस्वरूप कथानक मे शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। प्रथम से तृतीय सर्ग तक कथा म प्रवाह है किन्तु चतुर्थ सर्ग मे कथा की गति मन्द हो जाती है तथा उत्तरोत्तर शिथिल होती जाती है। श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार इस काव्य मे मल्लिनाथ को स्त्री माना गया है।

इस महाकाव्य की भाषा प्रसादगुणमयी, सरल एव भावपूर्ण है। कवि को अपनी भाषा पर अच्छा अधिकार है। प्रसङ्ग के अनुसार भाषा मे यदि एक ओर मधुरिमा एव स्निग्धता है तो दूसरी ओर आजपूर्णता एव गम्भीरता है। जनप्रचलित लोकोक्तियो एव सूक्तियो का प्रयोग भी कवि की अपनी विशेषता है। अलङ्कार योजना मे भी कवि को अपूव सफलता प्राप्त हुई है।

इस रचना के अतिरिक्त शुभवर्धन गणि,[3] भट्टा० सकल कीर्ति[3] और भट्टा० प्रभाचन्द्र[4] कृत 'मल्लिनाथ चरित' महाकाव्य का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

मुनिसुव्रत चरित—आठ सर्गो मे विभक्त 'विनय' शब्दाङ्कित प्रस्तुत महाकाव्य[5] श्री विनयचन्द्र सूरि की रचना है। इसमे मुनि सुव्रत स्वामी के चरित्र का वर्णन किया गया है। अवान्तर कथाओ की बहुलता के कारण कथानक मे शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इसमे अनक पात्र है, किन्तु मुनि सुव्रत के चरित्र का ही विकास हो सका है। कवि प्रकृति वर्णन के प्रति उदासीन है किन्तु जैन महाकाव्य होने के कारण जैन धर्म के नियमो और सिद्धान्तो का प्रतिपादन प्रमुखता से हुआ है।

---

१ पण्डित हरगोविन्ददास एव बेचरदास द्वारा सम्पादित तथा धर्मभ्युदय प्रेस बनारस (वीर निर्वाण स० २४३८) द्वारा प्रकाशित।

२ प्रशस्ति श्लोक—६।

३ हीरालाल हसराज, जामनगर १६३०।

४ जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता स० १६६७, हिन्दी गजाधर लाल शास्त्री। इसकी प्राचीन ह० लि० प्रति सं० १५१५ की मिलती है।

५ जिन रत्नकोश पृ० ३०३।

६ लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी (बडोदा) वि० स० २०१३ जिन रत्नकोश पृ० ३११।

कवि को अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाषा को सजाने के लिए अनेक सूक्तियों एव मुहावरो का प्रयोग किया गया है जिसके परिणामस्वरूप भाषा मे सजीवता एव भावमयता आ गयी है। संस्कृत काव्य होने पर भी इसमें यत्र-तत्र प्राकृत का प्रयोग हुआ है।

नेमिनाथ चरित—इस महाकाव्य के रचयिता तपागच्छ के हरिविजय सूरीश्वर के पट्टधर कनक विजय पण्डित के प्रशिष्य और वाचक विवेक हर्ष के शिष्य गुण विजयगणि हैं। ग्रन्थ के अन्त मे दी गयी प्रशस्ति के अनुसार उन्होंने इस काव्य की रचना जोत विजयगणि के अनुरोध से की थी।

इस महाकाव्य मे नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन किया गया है। इस वर्णन मे उनके पूर्व के नव भवो का वर्णन है। इसके साथ ही नेमिनाथ और राजीमती का नव भवो से उत्तरोत्तर आदर्श प्रेम, राजीमती के साध्वी जीवन, नेमिनाथ की बालक्रीडाएँ, दीक्षा, केवल ज्ञान तथा मोक्ष गमन का सुन्दर चित्रण भी इस महाकाव्य मे हुआ है।

गुण विजयगणि की इस रचना के अतिरिक्त अन्य अप्रकाशित नेमिचरितो का उल्लेख भी मिलता है जिनमे तिलकाचार्य, नरसिंह, भोज सागर, हरिषेण, मगरस तथा मल्लि भूषण के शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त का नाम प्रमुख है।[1] ब्रह्मनेमिदत्त की कृति का नाम 'नेमि निर्माण काव्य' तथा 'नेमिपुराण[2]' भी है जिसका रचना काल स० १६१३ है। इस महाकाव्य मे १६ सर्ग है तथा कवि ने अपने को मूलसघ सरस्वती गच्छ का माना है।

श्रेणिक चरित—इस महाकाव्य[3] की रचना लघु खरतर गच्छ के सस्थापक तथा चन्द्रगच्छीय जिनेश्वर सूरि के प्रशिष्य और जिनसिंह सूरि के शिष्य जिनप्रभ सूरि ने की। जिनप्रभ सूरि मुस्लिम शासक मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे तथा उसके द्वारा बहुत सम्मानित भी हुए थे। महाकाव्य की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उन्होने स० १३५६ वि० मे इस महाकाव्य की रचना दयाकर मुनि की प्रार्थना पर की थी—

> स्कन्दास्येषुकृशानुशीतगुमिते सवत्सरे वैक्रमे
> बालेन्दु प्रतिपत्तिथौ विषगते सम्पूर्णमेतच्छनौ।
> आदर्शं व्यधितो दयाकर मुनि काव्यप्रियोऽस्यादिमम्
> आरम्भेऽस्य निमित्तभावमभजत्तस्यैव चाभ्यर्थनात ॥[4]

---

१ जिन रत्नकोश पृ० २१७-१८।

२ इसका अनुवाद प० उदयलाल कासलीवाल ने किया है—दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, स० २०११।

३ जिन रत्नकोश पृ० १८६ और ३९९, जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग पालिताना से केवल प्रथम सात सर्ग प्रकाशित, शेष ग्यारह सर्ग अब भी अप्रकाशित।

४ श्रेणिक चरित—प्रशस्ति श्लोक २।

'श्रेणिक चरित' महाकाव्य में अठारह सर्ग हैं, किन्तु कथानक का क्रमिक विकास लक्षित नही होता। महाकाव्य के प्रारम्भिक ग्यारह सर्गों मे जिनेश्वर और उनके उपदेशो की प्रधानता है। ये सर्ग धार्मिक वातावरण से परिपूर्ण हैं किन्तु बाद के सर्गों मे कथानक एकदम मुड जाता है। इन सर्गों मे देव द्वारा दिये गये हार के खो जाने और उसकी तत्परता से खोज का वर्णन किया गया है तथा महाकाव्य के अन्तिम सात सर्गों मे धार्मिक वातावरण का अभाव है। इस महाकाव्य का दूसरा नाम 'दुर्गवृत्तिद्वयाश्रय महाकाव्य' भी है।

महाकाव्य की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। धीरोदात्त गुण-सम्पन्न महाराज श्रेणिक इसके नायक हैं। इस महाकाव्य का अङ्गी रस शान्त है किन्तु अङ्ग के रूप में अन्य रसो की भी योजना हुई है। इस महाकाव्य मे उदात्त भाषा-शैली, प्रौढ कवित्व कला, गम्भीर पाण्डित्य, उच्च आदर्श एवं मानव जीवन की विविधता के दर्शन भी प्राप्त होते हैं। 'श्रेणिक चरित' को महाकाव्य की श्रेणी मे रखा गया है। कवि की स्वयं स्वीकारोक्ति है—

इति श्री जिनप्रभ सूरि विरचिते दुर्गवृत्तिद्वयाश्रय महाकाव्य चतुर्मुनिचरित्र-लाभवर्णनो नाम अष्टादश सर्ग ॥[1]

श्रेयासनाथ चरित—इस महाकाव्य[2] की रचना मानतुङ्ग सूरि ने स० १३३२ मे की।[3] मानतुङ्ग सूरि चन्द्रगच्छीय रत्नप्रभ सूरि के शिष्य थे। इस महाकाव्य मे उन्होने ग्यारहवें तीर्थकर श्रेयासनाथ के चरित्र का वर्णन किया है। महाकाव्य का आधार देवभट्टाचार्य विरचित प्राकृत 'श्रेयासनाथ चरित' है। इस महाकाव्य मे १३ सर्ग है। प्रत्येक सर्ग का नाम वर्ण्य विषय के आधार पर किया गया है। काव्य-शास्त्रीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है तथा सर्ग के अन्त मे छन्द-परिवर्तन किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे सम्पूर्ण सर्ग के कथानक को प्रस्तुत करना 'श्रेयासनाथ चरित' महाकाव्य की अपनी विशेषता है।

इस महाकाव्य की भाषा सरल तथा वैदर्भी रीति से युक्त है। इसमे पग-पग पर अनुप्रास मण्डित पदविन्यास उपलब्ध होता है। मुहावरो, लोकोक्तियो और सूक्तियो का इस चरित की भाषा मे अभाव है। सादृश्यमूलक अलङ्कारो मे उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग इस चरित मे अधिक हुआ है।

---

१ श्रेणिक चरित—पुष्पिका अठारहवे सर्ग की।
२ जिन रत्नकोश, पृ० ४००, जैन आत्मानन्द सभा भावनगर।
३ श्रेयासनाथ चरित, प्रशस्ति श्लोक १२।

इस रचना के अतिरिक्त भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (स० १७२२-३३) कृत श्रेयासनाथ चरित नामक दूसरी रचना का भी उल्लेख मिलता है ।[1]

अममकुमार चरित—इस महाकाव्य[2] की रचना कवि चन्द्र तिलक ने वि० स० १३१२ में की ।[3] शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षणो से समन्वित इस महाकाव्य का विभाजन १२ सर्गों मे किया गया है । महाकाव्य की शैली पौराणिक है किन्तु कथा अस्त-व्यस्त एव जटिल है क्योकि स्थान-स्थान पर अनेक नवीन अवान्तर कथाओ की योजना हुई है और इन अवान्तर कथाओ का सम्बन्ध बहुत दूर जाकर मूल कथा से जुडता है । हाँ इतना सत्य है कि कवि द्वारा वर्णित कथावस्तु अत्यन्त रोचक है तथा महाकाव्य की भाषा मुहावरेदार है । उदाहरणार्थ कुछ सूक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

यथैक पतित कूपे पतेत्कि परोऽपि हि । —५/४४२

करगे हि ककणे कि दर्पणेनेह भवेत्प्रयोजनम् । —४/३६५

भुजगाना प्रयातानि जानन्ति भुजगा खलु । —७/६६३

कुमारपाल चरित—इस महाकाव्य के रचयिता हेमचन्द्र सूरि है । यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है । जैन काव्यो के प्रेरक धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु या श्रद्धालु श्रावक रहे है । अमरचन्द्र, बालचन्द्र, उदय प्रभ, माणिक्यचन्द्र और नयचन्द्र आदि कवियो की राजदरबार म पर्याप्त प्रतिष्ठा थी । जयसिह कुमारपाल की राजसभा मे आचार्य हेमचन्द्र सूरि को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था । गुजरात का यह चौलुक्य नरेश वैसे तो शैवधर्मी था किन्तु आचार्य हेमचन्द्र और तत्कालीन अनेक जैन धनिको और विद्वानो के कारण उसने जैन धर्म और उसके सिद्धान्तो को समझने, उनका अनुसरण करने एव प्रचार करने मे बडा ही योगदान दिया था । इसीलिए जैन विद्वानो ने इसके चरित को लेकर महाकाव्य, लघुकाव्य, नाटक, प्रबन्ध तथा कथा-ग्रन्थ लिखे है । प्रस्तुत 'कुमारपाल चरित' मे तत्कालीन गुजरात का राजनैतिक और सास्कृतिक इतिहास प्रामाणिकरूप से निबद्ध किया गया है । जैन कवि राजाश्रय प्राप्त होने पर भी धन की कामना से निस्पृह थे । इसीलिए उन्होने चाटुकारिता की प्रवृत्ति के बिना ही यथार्थ घटनाओ का चित्रण किया है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है ।

---

१ जिन रत्नकोश, पृ० ४०० ।

२ जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर १९१७ ई० ।

३ चक्षु शीतकरत्रयोदशमिते (१३१२) सवत्सरे विक्रमे ।
काव्य भव्यतम समर्थित मिद दीपोत्सरे वासरे ।।
—अन्तिम प्रशस्ति श्लोक ।

जगडूचरित—इस महाकाव्य[1] मे प्रत्येक सर्ग के अन्त मे दी गयी पुष्पिका से ज्ञात होता है, कि इसके रचयिता धनप्रभ सूरि के शिष्य सर्वानन्द है। इस महाकाव्य मे सात सर्ग है। श्री मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई के अनुसार इस महाकाव्य का रचनाकाल विक्रम की चौदहवी शताब्दी है।[2] जगडूचरित एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमे निम्नलिखित तथ्यो की जानकारी प्राप्त होती है—

१—वि० स० १३१२ से १३१५ तक गुजरात मे भयकर दुर्भिक्ष पड़ा था तथा उस भीषण दुर्भिक्ष मे भूख से मरते हुए प्राणियो को जगडू शाह ने बचाया था। इस दुर्भिक्ष मे वीसलदेव जैसे प्रतापी राजाओ के पास भी अन्न नही था।

२—इस समय गुजरात मे वीसलदेव, मालवा मे मदन वर्मा और काशी मे प्रताप सिंह शासन करता था।

३– वि० स० १३१२ से १३१५ तक गुजरात मे समुद्री व्यापार उन्नति पर था। भारतीय जहाज समुद्रपार देशो मे जाते थे।

४—वीसलदेव के दरबार मे सोमेश्वर आदि प्रमुख कवि रहा करते थे।

ऐतिहासिक महाकाव्य होने पर भी प्रस्तुत महाकाव्य मे रमणीयता की कमी नही है। कवि कल्पना मे शेषनाग भद्रेश्वर नगर की रक्षा हेतु दुर्ग के रूप मे कुण्डली बनाये हुए स्थित है—

यत्रश्रिय त्रातुमिवाहिराज पातालमध्यात्परिखामिषेण।
आविर्बभूवोन्नदुग दम्भान्निरन्तर कुण्डलितोरुकाय ॥[3]

इसी प्रकार कवि द्वारा प्रस्तुत भ्रान्तिमान अलङ्कार की योजना भी दर्शनीय है—

नानारत्नमयालयद्युतिभरे जम्भारिचापभ्रम।
विभ्राणे मरुधूपधूमनिवहे व्योम्न्यभ्ररूपे सति।
अश्रान्त मधुरे मृदङ्गनिनदेऽप्युज्जृम्भमाणे पुन-
र्नृत्य यत्र वितेनिरेऽपि शिखिन क्रीडानस्थायिन ॥[4]

अर्थात् भद्रेश्वर नगर के भवनो मे नाना रत्नो की द्युति के कारण इन्द्रधनुष का भ्रम, अगरु धूप के धूम्र के कारण पयोधरो का भ्रम तथा गीत-नृत्य के अवसर पर सम्पन्न होने वाले मृदग निनाद से मेघ-गर्जन का भ्रम उत्पन्न होने से मयूर भ्रमित हो नृत्य करने लगते है।

---

१ आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला सिटी १६२५ ई०।
२ जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ४३४।
३ जगडूचरित २/२।
४ वही, २/१७।

इतर नामान्त महाकाव्य

इतर नामान्त महाकाव्य से अभिप्राय उन महाकाव्यों से है जिनके अन्त में 'चरित' शब्द का प्रयोग नही हुआ है। यद्यपि इन महाकाव्यो मे भी तीर्थंकर या महापुरुषो के चरित का वर्णन किया गया है फिर भी कुछ विशेषताओ के कारण ये महाकाव्य चरित नामान्त महाकाव्य से पृथक् हो जाते है। चरित नामान्त महाकाव्यो का मुख्य उद्देश्य जहाँ एक ओर चरित प्रतिपादित कर चारित्रिक अभ्युत्थान प्रदर्शित करना है वही दूसरी ओर इतर नामान्त महाकाव्यो का लक्ष्य अलंकृत शैली के महाकाव्य गुणो का प्रस्तुतीकरण करना है। इस प्रकार इतर नामान्त महाकाव्यो को हम शास्त्रीय महाकाव्य भी कह सकते हैं। अब प्रस्तुत अध्याय मे कुछ प्रमुख इतर नामान्त महाकाव्यो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य—इस महाकाव्य[1] की रचना कवि हरिश्चन्द्र ने ई० सन् की १०वी शती मे की। इसमे २१ सर्ग हैं जिनमे पन्द्रहवे तीर्थंकर धर्मनाथ के जीवनचरित का वर्णन किया गया है। महाकाव्य का आधार आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर पुराण का ६१वाँ पर्व है। इस महाकाव्य मे शास्त्रीय महाकाव्य के समस्त लक्षण विद्यमान है। महाकाव्य की भाषा अत्यन्त प्रौढ एव परिमार्जित है। कवि को भाषा पर असाधारण अधिकार है। इसीलिए वाक्यो मे शब्द यथास्थान जडे हुए प्रतीत होते है। कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त मे अपने को महाकवि और अपने काव्य को महाकाव्य कहा है—

इति महाकविहरिचन्द्रविरचिते धर्मशर्माभ्युदये महाकाव्ये प्रथम सर्ग[2]।

नेमिनिर्वाण महाकाव्य—इस महाकाव्य[3] की रचना महाकवि वाग्भट प्रथम ने की। वाग्भट प्रथम का समय दसवी शताब्दी है। उन्होने इस महाकाव्य मे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवनचरित का वर्णन किया है। महाकाव्य की कथावस्तु का आधार कवि जिनसेन प्रथम द्वारा रचित हरिवश पुराण है किन्तु कवि ने अनेक स्थलो पर परिवर्तन किये हैं। यथा अरिष्टनेमि की जन्म-तिथि श्रावण शुक्ल षष्ठी बतायी गयी है जिसका 'हरिवश पुराण' से मेल नही बैठता है।[4] 'उत्तर पुराण' मे उसी तिथि का उल्लेख हुआ है।[5] किन्तु जीवन वृत्त हरिवश पुराण के समान प्राप्त होता

---

१ निर्णयसागर, बम्बई, १६३३ ई०।

२ धर्मशर्माभ्युदय, पुष्पिका-प्रथम सर्ग।

३ नेमिनिर्वाणम्, सं० शिवदत्त शर्मा और काशीनाथ शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १६३६ ई०।

४ शुद्ध वैशाखजत्रयोदशतिथौ हरिवश पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ काशी १६६२।

५ श्रावणे सिते षष्ठ्या···उत्तर पुराण, भारतीय ज्ञानपीठ काशी १६५४ ई०। ७१/१६६-७०।

है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने महाकाव्य की रचना करने के पूर्व 'हरिवंशपुराण', 'उत्तर पुराण' तथा 'तिलोयपण्णत्ति' जैसे जैन ग्रन्थो का अध्ययन किया था।

इस महाकाव्य की भाषा अत्यन्त सरस है। किन्तु कवि ने कुछ ऐसे छन्दों का प्रयोग किया है जिनका कालिदास, भारवि, माघ आदि न तो पूर्ववर्ती कवियो ने ही प्रयोग किया है और न वीरनन्दि हरिश्चन्द्र आदि परवर्ती कवियो ने। यथा—चण्डवृष्टि। इस महाकाव्य मे नायिका के नख-शिख का वर्णन अन्य महाकाव्यो की भाँति प्राप्त नही होता। यह कवि के काव्य की अपनी विशेषता है।

नरनारायणानन्द महाकाव्य—इस महाकाव्य[1] की रचना महाकवि वस्तुपाल ने ईसा की तेरहवी शताब्दी मे की। ये राजा वीर धवल तथा उसके पुत्र वीसलदेव के महामात्य थे। तत्कालीन साहित्य मे इनकी प्रशसा मुक्तकण्ठ से की गयी है।[2]

कवि वस्तुपाल का जन्म अनहिलवाड के एक शिक्षित परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम अश्वराज तथा माता का नाम कुमार देवी था। विजयसेन सूरि इनके गुरु थे।[3] हरिहर, सोमेश्वर तथा अन्य कवियो ने इनका उपनाम वसन्तपाल रखा था।[4] इसीलिए बालचन्द्र ने इनके जीवन से सम्बन्धित अपने काव्य का नाम 'वसन्त विलास' रखा है।

नरनारायणानन्द महाकाव्य का आधार महाभारत है जिसमे कवि ने सुभद्राहरण के मार्मिक प्रसङ्ग को ग्रहण कर काव्य की रचना की है। काव्य मे

---

१ नरनारायणानन्द महाकाव्यम् स० सी० डी० दलाल और आर० अनन्त कृष्ण शास्त्री, प्र० सेन्ट्रल लाइब्रेरी बडौदा, सन् १६१६ ई०।

२ (क) गिरनार के शिलालेख मे—'धर्म सूनु सरस्वत्या' और 'शारदा प्रतिपन्न-पत्य', 'महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल और सस्कृत साहित्य मे उसकी देन' ले० डा० भोगीलाल साडेसरा, प्र० जैन सस्कृति सशोधन मण्डल, वाराणसी सन् १६५६ ई०, पृ० ५५।

(ख) वस्तुपाल यशोवीरौ सत्य वाग्देवता सुतौ।
एकोदान स्वभावोऽभूदुभयोरन्यथा कथम् ॥
—कीर्तिकौमुदी सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन बम्बई वि० स० २०१७।

३ नागेन्द्रगच्छमुकुटामरचन्द्र सूरिपादाब्जभृगहरिभद्रमुनीन्द्र शिष्यात्।
व्याख्यावतो विजयसेनगुरो सुधाभमास्वाद्य धर्मपथि सत्पथिकोऽभवद्य ॥
—नरनारायणानन्द १६/३२।

४ स्यात प्राप वसन्तपाल इति यो नामाद्वितीय मुदा।
विद्वद्भि परिकल्पित हरिहर श्रीसोमशर्मादिभि ॥
—नरनारायणानन्द १६/३८।

आद्योपान्त श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रीति का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य मे १६ सर्ग है। अन्तिम सर्ग मे कवि ने अपना, अपनी वश-परम्परा तथा अपने गुरु का परिचय दिया है। मूल कथानक से इस सर्ग का कोई सम्बन्ध नही है।

भाषा, रीति, गुण अलकार एव छन्द-योजना की दृष्टि मे भी यह एक भव्य एव प्रौढ काव्य है। कवि को भाषा पर असाधारण अधिकार है। इनकी भाषा की प्रमुख विशेषता प्रसग के अनुकूल रूप-परिवर्तन की क्षमता है।

वसन्तविलास महाकाव्य—इस महाकाव्य[1] की रचना महाकवि बालचन्द्र सूरि ने की। इसमे १४ सर्ग है जिसमे धोलका (गुजरात) के राजा वीर धवल के प्रसिद्ध अमात्य वस्तुपाल के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। इसमे कुल मिला-कर १०२१ पद्य है जिनकी सख्या अनुष्टुप मान से १५१६ हो जाती है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह की प्रशसा की गयी है क्योकि उन्ही के विनोदार्थ[2] इस काव्य की रचना की गयी है।

'वसन्तविलास' महाकाव्य एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। अत ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो की समस्त विशेषताएँ प्रस्तुत महाकाव्य मे प्राप्त होती है। यह महाकाव्य तत्कालीन गुजरात के इतिहास पर निश्चय ही पर्याप्त प्रकाश डालता है।

'वसन्तविलास' महाकाव्य की कथावस्तु वैसे तो छोटी है किन्तु उसका महाकाव्योचित ढग से विस्तार किया गया है। पात्रो का चरित्र-चित्रण करने मे कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। धीरोदात्त गुणो से युक्त सद्वशोद्भूत वस्तुपाल इसके नायक है। कवि मित्रो ने उनका नाम वसन्तपाल भी रखा है। अत महाकाव्य के चरितनायक वसन्तपाल के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत काव्य का नाम 'वसन्तविलास' किया गया है।

'वसन्तविलास' महाकाव्य की भाषा सरल, कोमल और स्वाभाविक है किन्तु कही-कही उसमे दीर्घ समासयुक्त पदावली का प्रयोग भी हुआ है। अत ऐसे स्थलो पर भाषा अस्वाभाविक एव क्लिष्ट हो गयी है।[3] वैसे तो कवि ने भाषा को प्रवाहमयी बनाने के लिए सूक्तियो का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया है।[4] भाषा को सजाने के लिए ही विविध अलकारो की योजना भी प्रस्तुत महाकाव्य मे प्रचुर मात्रा मे हुई है। महाकाव्य के परम्परागत नियमो के अनुसार ओंकारात कवि ने प्रत्येक

---

१ गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, बडौदा १९१७ जिन रत्नकोश पृ० ३४४।

२ श्री वस्तुपालाङ्गभुवो नवोक्ति प्रियस्य विद्वज्जन मज्जनस्य।
श्री जैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्य मनीयं एतत् ॥
—वसन्तविलास, १/७५।

३ वसन्तविलास, १०/२६-३।

४ वही, १०/७,१७ तथा २३।

सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करके सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन भी किया है किन्तु कुछ सर्गों मे विविध छन्दो की योजना भी हुई है। इस प्रकार शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार 'वसन्तविलास' एक सफल महाकाव्य है।

मुनिसुव्रत महाकाव्य—इस महाकाव्य[1] की रचना महान कवि अर्हदास ने चौदहवीं शताब्दी मे की। इसमे बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। मुनि गुणभद्रकृत उत्तर पुराण पर आधारित यह काव्य दश सर्गों मे समाप्त होता है। इस काव्य का दूसरा नाम 'काव्यरत्न' भी है।[2]

'मुनिसुव्रत महाकाव्य' वैराग्यमूलक महाकाव्य है। अतएव इसमे शान्त रस की प्रधानता है किन्तु यत्र-तत्र हास्य और वात्सल्य रस के भी दर्शन होते हैं। इसके साथ ही वीर, रौद्र वीभत्स और भयानक रसो का इसमे सर्वथा अभाव है। काव्य की भाषा प्रौढ एव सरस है। कवि ने उसे सजाने के लिए विविध प्रकार के अलङ्कारो का प्रयोग किया है। सर्गों का विभाजन वर्ण्य-विषय के आधार पर हुआ है तथा शास्त्रीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग है और सर्गान्त मे उस छन्द का परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है।

बालभारत महाकाव्य—'वीर' शब्दाङ्कित यह महाकाव्य[3] प्रसिद्ध कवि श्री अमरचन्द्र सूरि की रचना है जिसका प्रणयन उन्होने तेरहवी शताब्दी के चतुर्थ चरण मे किया। यह महाकाव्य १८ पर्वों मे विभाजित है। एक पर्व मे एक से अधिक सर्ग है। कुल सर्गों की सख्या ४४ है। इसमे महाभारत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन सक्षेप मे किया गया है।

महाकाव्य की दृष्टि से 'बालभारत' एक सफल रचना है। लोक-विश्रुत वीर पाण्डव इसके नायक है जिनमे एक धीरोदात्त नायक के समस्त गुण उपलब्ध है। सर्गों का नामकरण भी वर्ण्य-विषय के आधार पर किया गया है।[4] पात्रो का चरित्र-चित्रण करने मे भी कवि को सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरणार्थ—सत्पक्ष के नियन्ता स्वय भगवान श्रीकृष्ण हैं जिनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य ही सत्पक्ष की स्थापना तथा असत्पक्ष का विनाश है।

इस काव्य की भाषा वैदग्ध्यपूर्ण, परिमार्जित, प्राजल और प्रवाहमयी है।

---

१ जैन सिद्धान्त भवन, आरा १६२६, जिन रत्नकोश, पृ० ३१२।

२ यद्वर्ण्यते जैनचरित्रमत्र चिन्तामणिर्भव्य जनस्य यच्च।
हृद्यार्थरत्नैकनिधि स्वय मे तत्काव्यरत्नाभिधमेतदस्तु ॥
—मुनिसुव्रतकाव्य १/२०।

३ काव्यमाला (सख्या ४५) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८६४।

४ उदाहरणार्थ आदि पर्व के प्रथम सर्ग का नाम 'आदिवशावतारो पुरुखप्रभृति-राजचतुष्टय वर्णन है।

इसमे माधुर्य गुण सर्वत्र परिलक्षित होता है तथा कटु शब्दो का इस महाकाव्य मे सर्वथा अभाव है। इसीलिए कवि ने स्वय इसे 'वाणीवेश्म' तथा भाषा रूपी पृथ्वी पर खडा किया गया श्रेय और शोभा का भवन कहा है।[1]

हम्मीर महाकाव्य— वीराङ्कित' हम्मीर महाकाव्य[2] नयचन्द्र सूरि की ऐतिहासिक रचना है। इसमे रणथभौर के चौहानवशी अन्तिम नरेश हम्मीर तथा दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के बीच हुए युद्ध का ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमे चौदह सर्ग है। महाकाव्यीय तत्त्वो की दृष्टि से यह एक उदात्त एव सशक्त रचना है। पात्रो का चरित्र-चित्रण करने मे कवि को अपूर्व सफलता मिली है। प्राकृतिक चित्रणो की भी कमी नही है। हाँ इतना अवश्य है कि युद्ध प्रधान काव्य होने के कारण धार्मिक भावना का अभिव्यक्तीकरण मगलाचरण के पश्चात् सम्पूर्ण महाकाव्य मे कही भी नही हुआ है। रस योजना की दृष्टि से यह अपने युग का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। कवि ने स्वय ही इस काव्य को 'शृङ्गारवीराद्भुत' (१४/४३) अर्थात् शृङ्गार, वीर और अद्भुत रस से युक्त कहा है। इसमे सर्वत्र माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण मण्डित शैली का विन्यास किया गया है। सूक्तियो और सुभाषितो का यथा-स्थान प्रयोग भाषा मे मोहकता ला देता है। काव्य सौन्दर्य वृद्धि हेतु विविधालङ्कारो की योजना भी हुई है। छन्द प्रयोग मे महाकाव्य के छन्दोविधान सम्बन्धी नियमो का प्राय सर्वत्र पालन किया गया है।

पद्मानन्द महाकाव्य—'वीराङ्क' चिह्न से विभूषित पद्मानन्द महाकाव्य[3] महाकवि अमरचन्द्र सूरि की रचना है। इसमे आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के जीवन-चरित का वर्णन १९ सर्गों मे किया गया है। इस महाकाव्य का निर्माण पद्ममन्त्री की प्रार्थना पर हुआ। अत पद्म को आनन्दित करने के कारण इसका नाम पद्मानन्द' रखा गया। इसके साथ ही इसका दूसरा नाम 'जिनेन्द्र चरित' भी वर्ण्य-विषय के आधार पर रखा गया है तथा सर्गों का नामकरण भी वर्णित कथाओ के आधार पर हुआ है।

---

१ वाणीवेश्मनि बालभारत महाकाव्ये तदन्तर्दृगु-
न्मेष प्रेषणिभामि पर्वदशम शान्ति पर्यौ सौप्तिकम्।
तदभाषा भुविबालभारतमहाकाव्येऽनुशास्ति क्रम ॥
—बालभारत सौप्तिक पर्व, श्लोक-११०।
श्रेय श्रीसदन त्रयोदशमिद पत्र प्रपेदे शमम् ॥
—बालभारत अनुशासन पर्व, श्लोक-५१।

२ सपा० नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १८७९, मुनि जिनविजय द्वारा सपादित, राजस्थान ग्रन्थमाला से प्रकाशित।

३ पद्मानन्द महाकाव्य-ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बडौदा १९३२ ई०।

'पद्मानन्द' पौराणिक शैली का शान्त रस पर्यवसायी धार्मिक महाकाव्य है। इसकी समाप्ति ऋषभनाथ की मोक्ष प्राप्ति से होती है। भगवान् ऋषभनाथ के पावन चरित्र की विशेषताओ का चित्रण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है और उसमे उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। प्रकृति-चित्रण भी काव्य मे प्रस्तुत किया गया है। सौन्दर्य चित्रण मे वाह्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अकित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। कथानक मे तत्कालीन समाज मे प्रचलित कतिपय मान्यताओ और रीति-रिवाजो का वर्णन भी यत्र-तत्र हुआ है। इसके साथ ही जैनधर्म के नियमो और सिद्धान्तो का यथास्थान विवेचन कर काव्य को धार्मिक रूप प्रदान किया गया है।

शान्तरस पर्यवसायी काव्य होने के कारण प्रस्तुत काव्य का अङ्गी रस शान्त है किन्तु अङ्ग के रूप मे अन्य रसो की भी योजना हुई है। भाषा की दृष्टि से भी अमरचन्द्र सूरि एक कुशल कलाकार है। उनकी शैली मे वैविध्य के दर्शन होते है। नीतिपरक सूक्तियो मे कवि की भाषा सरल, प्रसाद गुण युक्त एव असमस्त पदावली मे मण्डित दिखलायी पडती है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने यमक, अनुप्रास आदि शब्दालकारो तथा उपमा, रूपक आदि अर्थालकारो की योजना भी की है। काव्य मे प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

नलायनम् महाकाव्य—'नवमगल' शब्दाकित 'नलायनम् महाकाव्य'[1] कवि माणिक्यदेव सूरि की रचना है। इसमे दश स्कन्ध तथा सौ सर्ग है। महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत नल-दमयन्ती के चरित मे सम्बन्धित है जिमका आधार जैन चरित ग्रन्थ है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महाकाव्य के नायक नल तथा नायिका दमयन्ती के चरित्र का ही विकास हुआ है।

प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से यह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है। काव्यकार ने प्रकृति को अलौकिक तथा मानवीकरण दोनो ही रूपो मे चित्रित किया है। सौन्दर्य चित्रण मे उसने नख-शिख पद्धति का अवलम्बन लेकर दमयन्ती के विभिन्न अवयवो का सौन्दर्याकन किया है। इसके साथ ही कवि ने समय की रूढियो परम्पराओ, मान्यताओ तथा रीति-रिवाजो का यत्र-तत्र उल्लेख कर सामाजिक अध्ययन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है।

इस महाकाव्य का अङ्गीरस शान्त है तथा अग के रूप मे अन्य रसो की भी योजना हुई है। कवि को भाषा पर पूर्ण अधिकार है इसीलिए भाषा उसके सकेतो पर नाचती है। उसमे अनुप्रास और यमक का प्रयोग पग-पग पर मिलता है किन्तु इन अलकारो का प्रयोग भाषा-सौन्दर्य मे वृद्धि का सूचक है। श्रुति सुखद अनुप्रास और यमक के प्रयोग से भाषा प्रवाहयुक्त दिखलायी पडती है। महाकाव्यीय

१ तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्य पृ० ३३८।

परिभाषा के अनुसार एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन के नियम का पालन भी किया गया है ।

महाकवि अभयदेव तथा उनका 'जयन्तविजय' महाकाव्य

सस्कृत महाकाव्यो की गौरवशाली परम्परा में 'जयन्तविजय' महाकाव्य अपने काव्यात्मक गुणो के कारण विशेष स्थान रखता है । इसके रचनाकार महाकवि अभयदेव सूरि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अब तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है । उनके परिचय का एकमात्र साधन 'जयन्तविजय' के अन्त मे दी हुई ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति है । प्रशस्ति मे अभयदेव सूरि ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है । जिसके अनुसार चद्रवशरूपी आकाश मे सूर्यतुल्य, श्री वर्धमान प्रभु के चरण-कमलो मे चञ्चरीक जैसा आचरण करने वाले और चरित्रवानो मे अग्रगण्य श्री सूरि जिनेश्वर जी हुए । गङ्गाजल के प्रवाह के समान जिनके स्वच्छन्द यश समूह ने तीनो लोको की पवित्रता को ग्रथित किया था—

आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणि श्रीवर्धमानप्रभो
पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणी ।
स श्रीसूरिजिनेश्वर स्त्रिपथगापाथ प्रवाहैरिव
स्वैर यस्य यशोभरैस्त्रिजगत पावित्र्यमासूत्रितम् ।।[1]

उन (श्री सूरि जिनेश्वर) से अभयदेव नामक सूरि उत्पन्न हुए जिनके प्रभु पार्श्वनाथ ने स्तम्भन मे सन्तोष को प्राप्त किया । जिन्होने सघ साम्राज्य की वृद्धि के लिए अपार धन को उत्पन्न करने वाली निधि के समान गम्भीर अर्थ को प्रकट करने वाली नवाङ्गी वृत्ति का निर्माण किया—

अभवदभयदेव सूरिरस्मात्स यस्य
प्रभुरभजत तोष स्तम्भने पार्श्वनाथ ।
प्रकटित विकटार्थी सघसाम्राज्यवृद्ध्यै
व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्ति नवाङ्ग्या ।।[2]

उन (अभयदेव सूरि) के शिष्य पृथ्वी रूपी सुन्दरी के देदीप्यमान मस्तक मणि के समान सुन्दर और कोमल यश समूह वाले, शान्ति को भी शान्ति प्रदान करने वाले जिन वल्लभ प्रभु हुए । जिनके दोनो चरण-कमल श्री नरवर्मा नरेश के शिर के अग्रभाग पर धारण किये गये रत्नो के ज्योति पुञ्ज से सदैव पुष्ट होते रहते थे—

---

१ जयन्त प्रशस्ति, १ ।

२ वही, २ ।

तच्छिष्यो जिनवल्लभ प्रभुरभूद्विश्वभराभामिनी-
भास्वद्भालललाम कोमलयश स्तोम शमारामभू ।
यस्य श्रीनरवर्मभूपतिशिर कोटीररत्नाङ्कुर-
ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥[१]

निरन्तर हिम के संसर्ग से उत्पन्न वैराग्य से मानो कश्मीर को छोडकर सघन सुगन्ध से प्रफुल्लित देवी सरस्वती विकसित गुण सम्पत्ति से परिचित जिन (इन्हीं जिन वल्लभ प्रभु) के मुखकमल मे निवास करती हुई प्रवाहपूर्ण निर्मल एव उत्तम काव्य रचना के बहाने चिरकाल तक नृत्य करती रही।

कश्मीरानपहाय सततहिम व्यासङ्ग वैराग्यत
प्रोन्मीलद्गुणसपदा परिचिते यस्यास्यपङ्करुहे ।
सान्द्रामोदतरङ्गिता भगवती वाग्देवता तस्थुषी
धारालामलभव्यकाव्यरचना व्याजादनृत्यच्चिरम् ॥[२]

उन (जिन वल्लभ सूरि) से, उनके चरण कमल के भ्रमर तुल्य शान्ति-रूपी कवच से शरीर को आवृत्त किये हुए जिनशेखर नाम के सूरि उत्पन्न हुए। वीरव्रत का आचरण करने वाले जिन्होने तीनो लोको की विजय करने मे लगे हुए कामदेव को भी जीत लिया था—

भृङ्गस्तदङिघ्रकमले जिनशेखराह्व
सूरिस्तत प्रशमवर्मनिरुद्धकाययष्टि ।
जिग्ये जगत्त्रयजय प्रयतोऽपि येन
वीरव्रत कलयता रतिजीवितेश ॥[३]

राग के वैराग्य को प्राप्त होने पर, क्रोधरूपी योद्धा के मान रहित होकर शोकग्रस्त हो जाने पर, मान के अभिमान रहित होने पर कपटी वीर लोभ के क्षोभ को प्राप्त होने पर, युद्ध मे कामदेव के बाण के सकुचित हो जाने पर, अपनी सेना को दैन्यपूर्ण देखकर विजय की आशा त्यागकर मोहरूपी राजा चुपचाप जिन (जिनशेखर) के पास से दूर भाग गया—

वैराग्य यातिरागे भजति विधुरता क्रोधयोधे विमाने
माने नष्टाभिमाने कपटपटुभटे क्षोभमाप्ने च लोभे ।
पञ्चेषौ कुञ्चितेषौ समिति निजमिति प्रेक्ष्य सैन्य सदैन्य
मुक्त्वा येषा जयाशा निभृतमपसृत मोहराजेन दूरम् ॥[४]

---

१ जयन्त प्रशस्ति, ३ ।
२ वही, ४ ।
३ वही, ५ ।
४ वही, ६ ।

उनके बाद अत्यधिक करुणा वाले, क्षमा से शोभित सुन्दर शरीर वाले, विषय समूह को वश मे करने वाले पद्मेन्दु मुनिराज उत्पन्न हुए—

प्रगुणितकरुण क्षमया विराजितश्चारुविग्रहस्तदनु ।
अजनि वशीकृत विषयग्राम पद्मेन्दु मुनिराज ॥[1]

विकसित मालती के समान कान्ति वाली जिन (पद्मेन्दु मुनिराज) की कीर्ति लोको मे भ्रमण करती हुई लक्ष्मी के साथ मैत्री की आकाक्षा से मानो विष्णु की भी कालिमा का अपहरण करती थी ।

उत्फुल्लमल्लीप्रतिमल्लकान्ति कीर्तिर्भ्रमन्ती भुवनेषु यस्य ।
श्रिया सम सौहृदकाक्षयैव मुष्णाति विष्णोरपि कृष्णभावम् ॥[2]

तीनो लोको मे प्रसिद्ध कीर्तिरूपी लता वाले उन्ही (पद्मेन्दु मुनिराज) के शिष्य प्रशसनीय महिमा वाले, सरस्वती की प्रवाहपूर्ण प्रतिमा से विलसित श्री अभयदेव सूरि ने इस 'जयन्तविजय' नामक काव्य की रचना की—

विश्वत्रयप्रथितकीर्तिलतस्य तस्य
शिष्य प्रशस्य महिमाभयदेवसूरि ।
काव्य जयन्त विजय रचयाचकार
सारस्वतप्रसृमरप्रतिभा विलास ॥[3]

महाकवि अभयदेव ने किस स्थान को अपने जन्म और तपश्चरण से गौरवान्वित किया । इसकी जानकारी प्राप्त नही होती । इसके साथ ही उनके बाल जीवन तथा माता-पिता आदि के सम्बन्ध मे भी तथ्य अवगत नही होते ।

काल-निर्धारण

महाकवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के अन्त मे जो प्रशस्ति दी है, उसमे जयन्तविजय के रचना काल का निर्देश करके, काव्य के मङ्गलमय भविष्य की कामना की गयी है । अत कवि के समय के सम्बन्ध मे कोई विवाद नही है । प्रशस्ति मे कहा गया है—

दिक्करिकुलगिरि दिनकर (१२७८) परिमितविक्रमनरेश्वर समायाम् ।
द्वाविंशतिशतमान शास्त्रमिद निर्मित जयतु ॥[4]

अर्थात् विक्रम सवत् १२७८ (१२२१ ई०) मे बाइस सौ श्लोको वाला यह 'जयन्तविजय' काव्य-निर्मित होकर जय को प्राप्त करे । अत स्पष्ट है कि कवि अभयदेव का समय तेरहवी शती है ।

---

१ जयन्त प्रशस्ति, ७ ।
२. वही, ८ ।
३ वही, ९ ।
४ वही, १० ।

काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण

कवि अभयदेव एक उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ काव्य-शास्त्री भी है। सम्भवत उन्होने विभिन्न शास्त्रो का अध्ययन किया था इसीलिए वे कान्त प्रबन्ध और रस को महत्त्व देते हुये कहते हैं—

देव्या गिरा लास्यकलाविलासे रमानुगा कान्तपदप्रबन्धा ।
भवन्ति चक्रेषु महाकवीना चित्र तु सर्वत्र कृतप्रचारा ।।[1]

अत स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि मे रमणीय कलाविलास के लिए रमणीय पद और रस का सन्निवेश अत्यावश्यक है। कोई भी प्रबन्ध तभी सुन्दर और सरस होता है, जब उसमे कान्तपद एव उचित परिणाम मे रस विद्यमान हो।

इससे अनुमान लगाया जा सकता है, कि कवि रस सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है और उनकी यह परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा[2] के अत्यधिक निकट है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे काव्य सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किये है, वे वस्तुत मौलिक तो नही है परन्तु इनके द्वारा उनके सूक्ष्म अध्ययन, विचारशीलता तथा सत्काव्य के सम्बन्ध मे उनके आदर्श का परिचय मिलता है। वे आचार्य दण्डी से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं।

आचार्य दण्डी ने काव्य मे दोषो के साहित्य पर विशेष बल दिया है उनके अनुसार स्वल्प से स्वल्प दोष भी काव्य मे उपेक्षणीय नही समझा जाना चाहिए क्योकि जिस प्रकार शरीर को कुष्ठ रोग का स्वल्प सा दोष भी उसे उपेक्षणीय बना देता है—

तदल्पमति नोपेक्ष्य काव्ये दुष्ट कथञ्चन ।
स्यादवपु सुन्दरमपिश्वित्रेणैकेनदुर्भगम् ।।[3]

कवि अभयदेव का भी कथन है—

उद्वासयत्यात्मविरूपशब्दैर्यो दुर्जन काव्यगृह निविश्य ।
उलूकपक्षीव स दूर एव दोषैकदृष्टिर्विबुधैर्विधेय ।।[4]

अर्थात जो दुष्ट कवि अपने बिगडे हुए शब्दो से काव्यगृह मे प्रवेश करके उसे विकृत कर देता है उसे एक मात्र दोषद्रष्टा उलूक पक्षी की भाँति बुद्धिमानो को दूर ही रखना चाहिए। अत कवि अभयदेव की दृष्टि मे भी काव्य मे दोष उपेक्षणीय नही है। उनका स्पष्ट मत है कि सच्चा कवि यशोविलास की प्राप्ति के लिए

---

१ जयन्तविजय, १/१६।
२ 'वाक्यरसात्मक काव्यम्।'—साहित्य दर्पण।
३ काव्यादर्श, १/७।
४ जयन्तविजय, १/१३।

यत्नशील होकर दोषो को उसी प्रकार दूर कर देता है जिस प्रकार सफल वैद्य शरीर के सुख के लिए काँटे को निकाल देता है—

अभ्यर्थित सोऽपि यशोविलासलास्याय काव्यस्य धुनोति दोषम्
समुद्धरत्ये वहि वैद्यराज शल्य तनो सौख्यकृते कृतार्थ ॥[1]

इसके साथ ही कवि अभयदेव उन कवियो का जय-जयकार भी करते हैं जिनके सत्काव्य के अमृत का प्रवाह विस्फारित नेत्रो वाले सुहृज्जनो के द्वारा पान किया जाता है—

जयन्तु सर्वेऽपि कवीश्वरास्ते यदीय सत्काव्य सुधा प्रवाह ।
विकूणिताक्षेण सुहृज्जनेन निपीयमानोऽप्यतिपुष्यतीव ॥[2]

इस प्रकार उनके ऊपर मम्मट के काव्य लक्षण का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। मम्मट ने 'अदोषौ' और 'सगुणौ' पदो मे इसी भाव को व्यक्त किया है।[3]

कवि अभयदेव ने दुष्ट कवियो की निन्दा करते हुए लिखा है—

न दुर्जनस्यानुनयो गुणाय स्वभावदौर्जन्यमलीमसस्य ।
सुगन्धिलक्षैरपि किं सुगन्धी कर्तुं हि शक्य लशुन कदापि ॥[4]

अर्थात् स्वभाव मे दुर्जनता एव मलिनतापूर्ण दुर्जन का अनुनय भी गुण के लिए उसी प्रकार नही होता जिस प्रकार हजारो सुगन्धियो से युक्त लहसुन को सुगन्धित नही किया जा सकता।

कवि अभयदेव के मतानुसार वास्तव मे वही व्यक्ति कवि कहलाने योग्य है जो कि सरल अर्थात् प्रसाद गुण युक्त काव्य की रचना करने मे दक्ष हो।

वे काव्य के सिद्धान्त का निरूपण करते हुए कहते है—काव्य वही श्रेष्ठ है जिसके आलोक मात्र से अन्य कवि कविता का प्रणयन करने मे समर्थ हो सके। जिस प्रकार चन्दन वृक्षो की गन्ध के सम्पर्क से वन के समस्त वृक्ष चन्दन बन जाते है। उसी प्रकार कवि का सफल काव्य वही है जिसकी सुधामयी उक्तियाँ अन्य कवियो को कवि बनाने मे समर्थ हो सके—

जयन्ति ते सत्कवयो यदुक्त्या बाला अपि स्यु कविता प्रवीणा ।
श्रीखण्डवासेन कृताधिवासा श्रीखण्डता यान्त्यपरेऽपि वृक्षा ॥[5]

---

१ जयन्तविजय, १/१२।
२ वही, १/१८।
३ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि।' —काव्य प्रकाश, सूत्र-१
४ जयन्तविजय, १/१४।
५ वही, १/१०।

इस प्रकार कवि अभयदेव के काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण मे पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

कर्तृत्व

कवि अभयदेव की 'जयन्तविजय' एकमात्र रचना है। इसके कर्तृत्व के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह प्राप्त नही होता है। सभी विद्वान् इसे एक स्वर मे कवि अभयदेव की कृति मानते है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे कवि अभयदेव का स्पष्टत नामोल्लेख है।[१] इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के अन्त मे दी हुई ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति भी इसी कथन की पुष्टि करती है। डा० वी० राघवन ने 'New Catalogus Catalogorum मे जयन्तविजय को कवि अभयदेव की रचना माना है।[३] श्रीवरदाचारी,[४] बल्देव उपाध्याय[५], श्री एस० के० डे[६], रामजी उपाध्याय[७] तथा एम० कृष्णमाचारी[८] आदि अनेक सस्कृत साहित्यकारो ने भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य के रचनाकार के रूप म कवि अभयदेव का ही उल्लेख किया है। अत जयन्तविजय' कवि अभयदेव की रचना है। इसमे किसी प्रकार के सन्देह का स्थान नही है।

ग्रन्थ परिचय

'जयन्तविजय' महाकाव्य की जो प्रति हमे प्राप्त होती है वह निर्णय सागर प्रेस मे प्रकाशित है। यद्यपि इसमे यत्र-तत्र श्लोक कुछ खण्डित से प्रतीत होते है, किन्तु फिर भी काव्य मे प्रवाह की कमी नही परिलक्षित होती। महाकाव्य के परिमाण के सम्बन्ध म कवि ने स्वय जयन्तविजय' की प्रशस्ति मे उल्लेख किया है

---

१ 'इति श्वेताम्बर श्रीमदभयदेवाचार्य विरचिते जयन्तविजय नाम्नि महाकाव्य शब्दाङ्के प्रस्तावनादि निरूपणो नाम प्रथम सर्ग । इसी प्रकार प्रत्येक सर्ग के अन्त मे।

२ विश्वत्रय प्रथित कीर्तिलतस्य तस्य शिष्य प्रशस्य महिमाभयदेवसूरि ।
काव्य जयन्तविजय रचयाचकार सारस्वतप्रसृमर प्रतिभाविलास ॥
--जयन्तविजय, प्रशस्ति श्लोक --६

३ Dr V Reghavan, 'New Catalogus Catalogorum' University of madras P 209

४ V Varadachari, A History of Sanskrit literature P 86

५ आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २६७।

६ Dr S N Dassgupta and S K De, History of Sanskrit literature

७ श्रीरामजी उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रथम भाग।

८ M Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit literature P 197

दिक्करिकुलगिरि दिनकर (१२७८) परिमितविक्रमनरेश्वर समायाम् ।
द्वाविंशतिशतमान शास्त्रमिद निर्मित जयतु ।[1]

इन पक्तियो से स्पष्ट है, कि काव्य की कुल श्लोक-सख्या २२०० है, किन्तु निर्णयसागर प्रेस मे प्रकाशित 'जयन्तविजय' की श्लोक-सख्या केवल १५४८ ही है। कदाचित् कवि ने यह सख्या अनुष्टुप्-परिमाण मे दी है।

महत्त्व

इस काव्य मे अभयदेव की कल्पना-शक्ति, सौन्दर्य-बोध की क्षमता एव सहज अनुभावो की सम्प्रेषणीयता प्रकट होती है। कवि ने वनस्थलियो के लता प्रतान मुकुलित कविताएँ, हरित-श्यामायित सागर तट, अनन्त वनकान्तार, धान की पीत मजरियो मे सुशोभित खेत, कृषक बालाओ का खेतो के प्रति स्नेह, आदर एव प्रणय के मनमोहक चित्र प्रस्तुत करने मे अपनी प्रतिभा का पूरा परिचय प्रस्तुत किया है। दृश्याकन और भावबोधन मे कवि को माघ कवि के समान सफलता प्राप्त हुई है।

सक्षिप्त कथा

प्रथम सर्ग—महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य का विभाजन उन्नीस सर्गो मे हुआ है। सर्वप्रथम ऋषभदेव, नमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान तीर्थंकरो का स्तुति के पश्चात् मगध देश का वर्णन हुआ है। इस समृद्धिशाली देश मे जयन्ती नाम की नगरी है जो अपनी समृद्धि और वैभव के कारण अमरपुरी के समान सुशोभित थी। इस नगरी मे विक्रम सिंह नामक एक महाप्रतापी राजा हुए जिनकी पत्नी का नाम प्रीतिमती था तथा बृहस्पति के समान उनका सुबुद्धि नाम का मन्त्री था।

द्वितीय सर्ग—एक दिन शिशुगज के साथ सरोवर मे क्रीडा करती हुई करिणी को देखकर प्रीतिमती को अपनी अपत्यहीनता की स्मृति आ जाती है। फलस्वरूप वह उदास रहने लगती है। उनकी उदासी का कारण जानकर राजा विक्रम सिंह प्राणो की बाजी लगाकर भी रानी को इस इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते है।

तृतीय सर्ग राजा विक्रम सिंह राजसभा मे आकर अपनी प्रतिज्ञा की चर्चा मन्त्री सुबुद्धि से करते है। मन्त्री इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का साधन 'श्रीपञ्चपरमेष्ठि-नमस्कार मन्त्र' को बताता है। इस नमस्कार का माहात्म्य बताने के लिए वह 'धनावह श्रेष्ठी' का उपाख्यान भी कहता है। नमस्कार-प्रभाव को सुनकर राजा इस व्रत को ग्रहण कर लेते है।

---

१ जयन्तविजय, प्रशस्ति श्लोक-१०।

चतुर्थ सर्ग—एक दिन राजा विक्रम सिंह वेश बदलकर नगर मे परिभ्रमण करते हैं। वे एक नारी का चीत्कार सुनकर उसी ओर चल देते हैं। मार्ग मे एक श्मशानवासी सुर उनका रास्ता रोकता है। नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से राजा युद्ध मे उसे परास्त कर देते हैं। सुर द्वारा दीन भाव से प्राणो की भिक्षा मांगे जाने पर राजा उसे छोड देते है। इस पर प्रसन्न होकर सुर राजा को एक ऐसा मुक्ताहार प्रदान करता है जिसके धारण करने से वन्ध्या स्त्री उदात्त पुत्र उत्पन्न करती है। यहाँ से राजा आगे बढ़ते है। कुछ दूर जाने पर देवता को प्रसन्न करने के लिए चीत्कार करती हुई नारी की बलि देने को उद्यत योगी से उनका युद्ध होता है। राजा उस योगी को परास्त करते है। विजयी राजा पर वह कन्या मुग्ध हो जाती है। राजा विक्रमसिंह सयम की सीमा का निर्वाह करते हैं।

पञ्चम सर्ग—एक सुर आकर राजा को बताता है कि यह कन्या आपकी पत्नी प्रीतिमती की बहिन है। इसका अनुराग आप मे है और यह आपकी पत्नी बनेगी। सुर योगी के वास्तविक स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है और बताता है कि राज्य प्राप्ति के लिए अघोरघट योगी से दीक्षा लेकर इस योगी ने कन्याबलि का उपक्रम किया है। वह (सुर) विक्रम सिह को उनके पूर्व-जन्म का विवरण भी बताता है।

षष्ठ सर्ग—इसके पश्चात् सुर से कन्या का परिचय पाकर राजा विक्रम सिंह कन्या के पिता जितारि के पास कन्या को साथ लेकर जाते है। जितारि सारा समाचार जानकर कन्या का विवाह विक्रमसिंह से कर देता है। नवपरिणीता पत्नी को साथ लेकर राजा जयन्ती नगरी को लौटते हैं और सुर द्वारा प्रदत्त मुक्ताहार प्रीतिमती को देते है, जसके प्रभाव से वह गर्भवती होती है। उचित समय पर उसके पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम जयन्त रखा जाता है। जयन्त बालोचित क्रीडाएँ करते हैं और युवा होने पर उन्हे युवराज बना दिया जाता है।

सप्तम सर्ग—वसन्त ऋतु के पदार्पण करते ही चारो ओर हर्षोल्लास व्याप्त हो जाता है। नवमल्लिका के पुष्पो से वन की शोभा कई गुना बढ़ जाती है। नये पल्लव ताम्रवर्ण की आभा लिये युवको के हृदय मे शृगार रस की भावना को उत्कृष्ट कर रहे हैं तथा उपवन की शोभा युवक-युवतियो को मदोन्मत्त बना रही है।

अष्टम सर्ग—उपवन मे दोला डाला जाता है। इस अवसर पर रमणियो के अनेक प्रकार के कामजन्य विलास दृष्टिगोचर होते हैं। वन विहार के प्रसङ्ग मे पुष्पावचय की क्रीडा सम्पन्न की जाती है। इसके पश्चात् जल-विहार होता है। यहाँ पर हस समूह कमल श्रेणियो मे छिपकर दिन व्यतीत करते हैं। पक्षियो के शुभ कलरव-स्वागत करते हुए दिखलायी पड़ते है।

नवम सर्ग—एक दिन सिंहलभूपति हरिराज का हाथी भाग जाता है और वह मगध की जयन्ती नगरी मे चला आता है । विक्रम सिंह को यह भविष्यवाणी सुनायी पडती है कि इस हाथी के प्रभाव से युवराज जयन्त चक्रवर्ती होंगे । अत वे उस हाथी को पकडने का आदेश देते हैं और हाथी पकड लिया जाता है । सिंहल-भूप का दूत हाथी माँगने आता है, किन्तु विक्रम सिंह दैवदत्त गज को वापिस करने से इन्कार कर देते हैं । फलस्वरूप सिंहल भूप हरिराज जयन्ती नगरी पर आक्रमण कर देता है जिसके प्रतिरोध के लिए जयन्त को ससैन्य भेजा जाता है ।

दशम सर्ग—जयन्त और हरिराज के मध्य घनघोर युद्ध होता है । युद्ध मे सिंहल भूपति हरिराज मारा जाता है और विजय लक्ष्मी जयन्त को प्राप्त होती है ।

एकादश सर्ग—इसके पश्चात् युवराज जयन्त दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं । वे चतुरङ्गिणी सेना के साथ सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर जाते हैं । इस दिशा मे राजाओ से कर वसूलकर उन्हे अपने अधीन बनाते हैं तथा पर्वतीय एव गोडो को अपने बल-पराक्रम से पराजित करते हैं । इसके पश्चात् कलिङ्गराज को पराजित कर, उनके पुत्र को शासन का अधिकारी नियुक्त करते हैं । दक्षिण दिशा के राजा उनका स्वागत करते हैं और बहुमूल्य पदार्थ उपहार मे देते हैं । तदनन्तर केरल, पाण्ड्य, काचीनरेश, कर्नाटक नरेश प्रभृति को अधीन करते हैं । उत्तर दिशा की ओर गमन कर धाराधीश से सम्मानित होकर हूण राजाओ को पराजित करते हैं तथा कामराज से सम्मानित होते हुए अपनी नगरी को लौटते हैं ।

द्वादश सर्ग—एक दिन सेना के मध्य से जयन्त अदृश्य हो जाते हैं जिससे महाराज विक्रम सिंह बहुत विकल हो जाते है । विद्याधर नरेश महेन्द्र अपने पुत्र के लिए गगन विलासपुर के राजा पवनगति से उसकी पुत्री कनकवती की याचना करता है पर पवनगति उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर देता है । कनकवती अनुरूप वर की प्राप्ति के लिए शासन देवता की आराधना करती है । प्रसन्न होकर शासन देवता उसके लिए जयन्त का अपहरण करके जिन मन्दिर पर ले जाते हैं । यहाँ जयन्त जिनबिम्बि के दर्शन कर धर्मसूरि की देशना सुनते हैं और श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं ।

त्रयोदश सर्ग—उपवन मे जयन्त और कनकवती एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो जाते है । पवनगति भी कनकवती का विवाह जयन्त के साथ कर देते हैं ।

चतुर्दश सर्ग—जब महेन्द्र चक्रवर्ती को यह ज्ञात होता है कि पवनगति ने उसके पुत्र की उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह पवनगति पर आक्रमण कर देता है । युद्ध मे जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होती है । जयन्त महेन्द्र पुत्र को करद बनाकर पवनगति के साथ अपने नगर को लौट आते है ।

पञ्चदश सर्ग—एक दिन जयन्ती नगरी के उद्यान मे सुस्थिताचार्य आते है। राजा विक्रम सिंह उनकी वन्दना के लिए जाते है। राजा आचार्य की देशना सुनकर बहुत प्रभावित होते हैं। उनका मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है और उन्हे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। इस सभा मे एक विद्वान् का आचार्य के साथ सर्वज्ञ विषय पर विवाद होता है। वह विद्वान् आचार्य के साथ शास्त्रार्थ मे पराजित हो जाता है। इसी समय जयन्त आकर पिता को प्रणाम करते है जिससे वातावरण मे हर्ष की लहर दौड जाती है।

षोडश सर्ग—कुछ दिनो के उपरान्त कुमार जयन्त हस्तिनापुर के राजा वैरिसिंह की पुत्री रतिसुन्दरी के स्वयवर मे जाते है। वहाँ रतिसुन्दरी जयन्त के गले मे वरमाला पहनाती है। विवाह के पश्चात् जयन्त अपनी पत्नी के साथ राजधानी जयन्ती नगरी मे लौट आते है।

सप्तदश सर्ग—विद्यादेवी जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्वभवो का वर्णन करती हुई बताती है कि वे पूर्वभव मे भिक्षा माँगकर निर्वाह करते थे। एक बार उन्होने भिक्षा मे प्राप्त अन्न मे से मासोपवास करने वाले मुनि को पारणा कराया। इसी कारण उन्हे इस जन्म मे राज्यपद प्राप्त हुआ है।

अष्टादश सर्ग—इसके पश्चात् कवि ने परम्परागत ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतु का विस्तृत वर्णन किया है। ग्रीष्म मे आतप का सन्ताप जितना कष्ट दे रहा था, वर्षा के आते ही वह समाप्त हो गया। शरद् मे सभी व्यक्तियो को आनन्द प्राप्त होता है।

एकोनविंशति सर्ग—वैरिसिंह अपने जामाता जयन्त को हस्तिनापुर का राज्य-भार सौप कर दीक्षा ग्रहण कर लेते है। जयन्त हस्तिनापुर से जयन्ती नगरी की ओर प्रस्थान करते हैं। विक्रम सिंह भी जयन्त को राज्य सौपकर प्रव्रजित हो जाते है। जयन्त नीति से प्रजा का पालन और जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार करते है। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर जिन मन्दिर मे पूजा महोत्सव के अवसर पर सौधर्मपति भी आते है और जयन्त को अर्धासन प्रदान करते है। सर्ग के अन्त मे सत्पात्रदानमहिमा सम्बन्धी इस श्लोक के साथ कथानक की समाप्ति होती है—

> इत्थ नन्दापनिषदुदयात्स्वानुभूतप्रभाव
> स्ताव स्ताव मुनिवितरण भक्तिसन्दर्भगर्भम्।
> सार्व सर्व गुरुरविजन तत्र सोत्कण्ठमुच्चै
> कुर्वन्नुर्वीमवनितिलक श्रीजयन्त प्रशस्ति॥[1]

---

१ जयन्तविजय, १९/८१।

द्वितीय अध्याय

'जयन्तविजय' महाकाव्य का महाकाव्यत्व

'जयन्तविजय' महाकाव्य का महाकाव्यत्व

अलंकार शास्त्र के आचार्यों ने महाकाव्य के सम्बन्ध मे अपनी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रतिपादित की हैं।

उनका अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि महाकाव्य के कुछ प्रमुख अग हैं जिनके अन्तर्गत अन्य समस्त गौण तत्त्वो का ममाहार हो जाता है। ये हैं—कथानक, नायक और रस। आचार्य धनञ्जय ने इनका उल्लेख नाटक के पक्ष में किया है। उनके अनुसार नाटक के प्रमुख तीन तत्त्व हैं—वस्तु, नैता तथा रस[1]। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि अलङ्कार शास्त्रियो ने भी इन्ही तत्त्वो को ध्यान मे रखकर महाकाव्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत की। अत महाकाव्य की आलोचना करने के लिए इन तीनो अङ्गो की विस्तृत विवेचना आवश्यक है।

कथानक

उद्देश्य—किसी भी काव्य की रचना करने के पीछे कवि का कोई न कोई उद्देश्य छिपा रहता है। साधारणत कवि काव्य की रचना कीर्ति अथवा अर्थ प्राप्ति के लिए करता है। भामह ने भी काव्य का प्रयोजन कवि के पक्ष मे कीर्ति तथ श्रोता के पक्ष मे प्रीति बतलाया है।[2] आचार्य मम्मट ने उसकी और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होने इन दो उपर्युक्त उद्देश्यो के अतिरिक्त अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमगल का परिहार तथा कान्तासम्मित उपदेश का समावेश भी काव्य के प्रयोजनो मे कर दिया है।[3] किन्तु जैन कवि होने के कारण कवि अभयदे का प्रधान लक्ष्य जयन्त-कथा के सहारे पञ्चपरमेष्ठिनमस्कार मन्त्र की महिमा बतान रहा है। काव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक है। किन्तु कवि ने अपने समय की प्रचलित लोककथाओ को भी महाकाव्य के अन्तर्गत लिया है। क्योकि कथावस्तु मे जोड़े गये अनेक कथानक भी लोक प्रचलित है, पर कवि ने उन्हे पौराणिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। कथावस्तु के निर्वाह मे कवि को अपूर्व सफलता भी प्राप्त हुई है।

---

१ वस्तुनेतारसस्तेषा भेदक।—दशरूपक १-११।

२ धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधु काव्यनिबन्धनम्।—काव्यालङ्कार १-२।

३ काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोऽपदेशयुजे॥—काव्यप्रकाश १-२।

प्रारम्भ—सस्कृत ग्रन्थो के आरम्भ मे मङ्गलाचरण की परम्परा रही है। कवि अभयदेव भी ग्रन्थ के आरम्भ मे ही अपने इष्ट देवता की प्रार्थना करते हुए ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति हेतु कामना करते है। महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कार के अतिरिक्त आशीर्वाद अथवा वस्तु निर्देश से भी होता है जैसा कि आचार्य दण्डी तथा विश्वनाथ ने निर्देश किया है।[1] 'जयन्तविजय' महाकाव्य का मङ्गलाचरण समन्वयात्मक है। मङ्गलाचरण का श्लोक इस प्रकार है—

श्रेयासि विश्राणयतादजस्र नाभेयदेवस्य पदाम्बुज व ।[2]
समस्त सम्पन्मधुबद्धरागा यत्र त्रिलोकी भ्रमरीव भाति ॥

अर्थात् नाभेयदेव का चरण कमल आप लोगो को निरन्तर कल्याण प्रदान करता रहे। जिस चरण कमल मे त्रिलोकी सम्पूर्ण सम्पत्ति रूपी मधु मे अनुराग लगाये हुए भ्रमरी की भाँति सुशोभित होता है।

यहाँ सज्जनो के आशीर्वादरूप मङ्गलाचरण है। इसके साथ कवि ने अपने इष्ट देव के प्रति नमस्कार भी व्यक्त किया है। नाभेयदेव के चरण कमल मे तीनो लोको का अनुराग होने के कारण हमारा ध्यान उनके प्रति होने वाली त्रिभुवन की भक्ति की ओर आकृष्ट हो जाता है और उसी भक्तिभावना का प्रतिपादन जयन्तविजय का प्रधान लक्ष्य है। अत यहाँ पर वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण भी माना जा सकता है। इस प्रकार मङ्गलाचरण की तीनो विशेषताओ का समन्वय करने के कारण कवि अभयदेव का यह मङ्गलाचरण साहित्य मे अपनी विशिष्टता रखता है।

नामकरण नामकरण का आधार कथानक की कोई प्रमुख घटना अथवा पात्र होता है। महाकाव्य के नामकरण के विषय को भामह अथवा दण्डी ने अपने लक्षण मे स्थान नही दिया है किन्तु विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण मे महाकाव्य के नाम के सम्बन्ध मे अपना मत दिया है। उनके अनुसार महाकाव्य का नाम कवि, कथानक, मुख्य घटना, नायक अथवा किसी पात्र के आधार पर रखा जाता है।[3] प्रस्तुत महाकाव्य 'जयन्तविजय' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका नाम नायक के नाम पर आधारित है। इसमे महाकाव्य के नायक जयन्त की दिग्विजयो का वर्णन किया गया है। अत उन्ही विजयो के आधार पर इस महाकाव्य का नाम 'जयन्तविजय' रखा गया है। महाकाव्य के नाम श्रवण मात्र से ही पाठक को कथावस्तु का आभास हो जाता है एव ग्रन्थ के प्रति उसकी रुचि जाग्रत हो जाती है। कवि ने काव्य की कथावस्तु हेतु कल्पना का आश्रय भी लिया है। इसी लिए मगध मे जयन्ती नामक नगरी का उल्लेख किया है

---

१ क) आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्।—काव्यादर्श १/१४।
२ जयन्तविजय, १/१।
३ कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।—साहित्यदर्पण ६/३२४।

भोगावतीं भोगिपतिं सुरेन्द्रोऽमरावतीं प्रत्यधिकानुरागम् ।
मुमोच चारुत्वमवेक्ष्य यस्या सा तत्र नाम्नास्ति पुरी जयन्ती ॥[1]

अर्थात् जिस नगरी की चारुता को देखकर शेषनाग ने भोगावती तथा इन्द्र ने अमरावती के प्रति अधिक प्रेम छोड़ दिया ऐसी नाम के अनुरूप जयन्ती नगरी है ।

इसी जयन्ती नगरी मे जयन्त नामक राजा हुए जिनकी विजयों का वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य मे हुआ है । अत कवि ने अपने काव्य का नाम 'जयन्तविजय' रखा है ।

कथानक का आधार 'जयन्तविजय' महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक है, क्योकि इसमे मगध देश के राजा जयन्त की विजयो का वर्णन किया गया है । किन्तु कवि ने अपने समय की प्रचलित लोककथाओ को भी महाकाव्य मे स्थान दिया है । इसके साथ ही महाकाव्य मे समकालीन परम्पराओ और मान्यताओ को भी ग्रहण किया गया है । अघोरघण्ट योगी से दीक्षा लेकर एक नृपति का राज्य प्राप्ति के लिए मान्त्रिक अनुष्ठान करना तथा उसमे नारी के बलिदान की तैयारी करना[2] ईसवी सन् की ११वी-१२वी शती की तान्त्रिक परम्परा का प्रतिफल है । राजा विक्रमसिंह को पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति उत्पन्न करने वाले मुक्ताहार की प्राप्ति पौराणिक मान्यता है । इस प्रकार का वर्णन पुराणो मे प्राप्त होता है । प्रीतिमती का नायिका की बहन होना और आगे चलकर नायक के साथ उसका विवाह हो जाना रत्नावली नाटिका[3] तथा कर्पूरमञ्जरी सट्टक[4] से गृहीत है । इसी प्रकार सिंहलभूपति के हाथी को विक्रमसिंह के द्वारा रोका जाना और हाथी मे दैवी चमत्कारो का समारोप करना भास के नाटको[5] एव प्राचीन प्रचलित अन्धविश्वासपूर्ण चमत्कारो का ही प्रभाव है । जयन्त का अदृश्य होना और पवनगति की पुत्री कनकवती से उनका विवाह होना 'कुवलयमाला'[6] तथा 'वराङ्गचरित'[7] से गृहीत है । जयन्त का दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना एव रतिसुन्दरी के स्वयवर मे हस्तिनापुर जाना जिनसेन के 'महा-पुराण'[8] और कालिदास के 'रघुवश'[9] से गृहीत है । इस प्रकार जयन्तविजय

१ जयन्तविजय १/४१ ।
२ वही, ४/३७-४४ ।
३ रत्नावली नाटिका मे रत्नावली वासवदत्ता की बहन है ।
४ कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे कर्पूरमञ्जरी चन्द्रपाल की रानी विभ्रमलेखा की बहन है ।
५ Sanskrit Drama, by A B Keith Oxford, 1924, P 102 ।
६ कुवलयमाला सिन्धी० १९५९, पृ० २६-३० ।
७ वराङ्गचरित १२/४५-४ ।
८ महापुराण, ज्ञानपीठ १९५१, पर्व २८-३७ ।
९ रघु दिग्विजय चतुर्थ सर्ग एव इन्दुमती स्वयवर षष्ठ सर्ग ।

महाकाव्य की कथावस्तु का स्रोत ऐतिहासिक होते हुए भी पुराण एवं लोककथाओ पर पूर्णरूप से आधारित है ।

महाकाव्य की कथावस्तु के निर्वाह मे कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है । पन्द्रहवे सर्ग मे दार्शनिक सिद्धान्त और सत्रहवें सर्ग मे जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्व भव का वर्णन कथा-प्रवाह को अवरुद्ध नही करते है । पौराणिक तत्त्वो के आ जाने से कथा-प्रवाह मे यत्र-तत्र शैथिल्य तो अवश्य आ गया है किन्तु क्रम भङ्ग नही होने पाया है । महाकाव्य मे पात्रो के वार्तालाप नाटकीय सजीवता को लिए हुए है । कथावस्तु व्यापक है क्योकि इसका सम्बन्ध अनेक पात्रो के साथ है । अघोरघण्ट, योगीन्द्र और मत्सरी ब्राह्मण का समावेश कथानक मे गति उत्पन्न करने के लिए किया गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'जयन्तविजय' की कथावस्तु मे यद्यपि पुराण एव लोककथाओ को पर्याप्त स्थान मिला है फिर भी कवि को अपने लक्ष्य को पूरा करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है ।

कथानक का विस्तार—कथानक के सम्बन्ध मे आचार्यो का मत है कि महाकाव्य का कथानक विस्तृत होना चाहिए तथा इसका निबन्धन सर्गो मे होता है । भामह ने इसके लिए महत्[1] तथा दण्डी ने असक्षिप्त[2] शब्दो का प्रयोग किया है । भाव दोनो का समान है । दण्डी ने सर्गों के 'अनति विस्तीर्ण' होने पर बल दिया है[3] । किन्तु विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य मे आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए जो विस्तार मे न बहुत छोटे हो और न बहुत बडे ।[4]

महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य की कथावस्तु १६ सर्गों मे विभक्त है । इन सर्गों का रूप न तो अधिक विस्तृत ही है और न अधिक सक्षिप्त । सस्कृत साहित्य के महाकाव्यो के समान ही इसका विस्तार किया गया है । अत ऐसा प्रतीत होता है कि कथानक के विस्तार के सम्बन्ध मे जयन्तकार भामह दण्डी तथा विश्वनाथ से प्रभावित है । उन्होने कथानक के विस्तार हेतु अनेक अवान्तर प्रसङ्गो की योजना भी की है । कवि का प्रमुख लक्ष्य तो महाकाव्य के माध्यम मे

---

१ सर्गबन्धो महाकाव्य महता च महच्च यत् ।
　　　　भामह काव्यालकार १ १६
२ अलकृतमसक्षिप्त-रसभाव निरन्तरम् ।
　　　　—काव्यादर्श १ १८ ।
३ सर्गैरनति विस्तीर्णै श्रव्यवृत्तै सुसन्धिभि ।
　　　　वही १ १८ ।
४ नीति स्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिकाइह ।
　　　　—साहित्य दर्पण ६ ३१६ ।

पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के माहात्म्य का प्रतिपादन करना ही रहा है। अत जयन्त कथा के सहारे उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु सफल प्रयास किया है।

अवान्तर प्रसंग—महाकाव्य मे मुख्य कथा के अन्तर्गत उपकथाओ की योजना का भी विधान है। दण्डी के अनुसार महाकाव्य को सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तो से युक्त होना चाहिए।[1] रुद्रट के अनुसार भी महाकाव्य मे मुख्य कथा के अन्तर्गत अवान्तर प्रकरणो की रचना की जानी चाहिए।[2] 'जयन्तविजय' महाकाव्य की मुख्य घटना पञ्चपरमेष्ठि के माहात्म्य का प्रतिपादन करता है। कवि ने इस प्रमुख घटना को जयन्त की विजय से जोड दिया है और महाकाव्य का नाम 'जयन्तविजय' रखा है। इसके अतिरिक्त भी महाकाव्य मे अनेक अवान्तर प्रसगो की योजना हुई है। यथा श्मशानवासी सुर का आगमन तथा उसके द्वारा राजा को मुक्ताहार देना,[3] अघोरघण्ट योगी द्वारा नारी की बलि देने के लिए उद्यत होना,[4] सिंहल-भूपति हरिराज द्वारा जयन्ती पर आक्रमण[5] तथा जयन्त द्वारा उसका वध होना,[6] शासन देवता द्वारा जयन्त का कनकवती के लिए अपहरण[7] तथा जयन्त द्वारा कनकवती के पिता पवनगति पर आक्रमण करने वाले महेन्द्र चक्रवर्ती का वध होना,[8] जयन्ती नगरी के उद्यान मे सुस्थिताचार्य का आगमन[9] और मत्सरी ब्राह्मण के साथ उनका शास्त्रार्थ होना,[10] तथा विद्यादेवी द्वारा जयन्त और रति सुन्दरी के पूर्वभवो का वर्णन करना,[11] आदि। इन अवान्तर वर्णनो के द्वारा नायक के व्यक्तित्व के विभिन्न गुण यथा विनम्रता, शौर्य, उदारता, शरणागत, वत्सलता आदि उद्घाटित किये गये है। साथ ही ये प्रकरण महाकाव्य के मुख्य रस वीर रस के परिपोष मे भी सहायक सिद्ध हुये है।

वर्णन प्रसग—सस्कृत महाकाव्यो मे अवान्तर प्रसगो के अतिरिक्त वर्णन प्रसगो के समावेश की भी एक विशिष्ट परम्परा रही है। कालिदास, भारवि इत्यादि महाकवियो ने अपने महाकाव्यो मे नायक के जन्म, विद्याभ्यास, यौवन, विविध प्रकार की क्रीडाओ के साथ ही नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतुओ इत्यादि के वर्णनो का समावेश कथा-प्रवाह मे रोचकता लाने के लिये तथा काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि के

---

१ सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेत लोकरञ्जनम्।—काव्यादर्श १-१९।
२ सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तर प्रकरणानि कुर्वीत।—रुद्रट १६-१९।
३ जयन्तविजय, ४/१५-३४।
४ वही, ४/३०-४५।
५ वही, ६/५०-५६।
६ वही, १०/७३।
७ वही, १२/३।
८ वही, १[illegible]/१०६।
९ वही, १५/१।
१०. वही, १५/८,१०,१२,१७,२२,४२।
११ वही, १७/६-३०।

लिये किया है । महाकाव्य की परिभाषा करने वाले आलंकारिको ने इन महाकाव्यो के उदाहरण पर इस प्रकार के वर्णनो को महाकाव्य की परिभाषा मे ही सम्मिलित कर लिया । दण्डी के अनुसार महाकाव्य के कथानक मे, नगर, समुद्र, पर्वत, षड्-ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सूर्यास्त, उद्यान, जलक्रीडा, मद्यपान, सुरतोत्सव विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्रणा, दूतप्रयाण, युद्ध, नायक इत्यादि वर्णनो का होना आवश्यक माना गया है ।[1]

इसीलिये परवर्ती कवियो ने अपने महाकाव्यो मे अवसर न रहने पर भी परम्परा निर्वाह के लिए इन सभी वर्णनो का समावेश आवश्यक माना है जिसके परिणामस्वरूप महाकाव्यो मे कथाप्रवाह की अपेक्षा वर्णन प्रधान होने लगे हैं । इन्ही लम्बे-लम्बे वर्णनो के कारण कथा-प्रवाह शिथिल हो जाता है तथा पाठक का मुख्य कथा के साथ तारतम्य टूट जाता है ।

महाकवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इन वर्णनो को स्थान दिया है *किन्तु कवि द्वारा प्रस्तुत ये वर्णन कथानक के प्रवाह मे किसी प्रकार की शिथिलता* का आभास नही होने देते । महाकाव्य मे प्रयुक्त इन वर्णनो द्वारा नायक जयन्त तथा ग्रन्थ के अगी एव अन्य रसो का परिपाक हुआ है । ग्रथ के आरम्भ मे कवि अभयदेव मगध देश का वर्णन प्रस्तुत करते हैं । इसी समृद्धिशाली देश मे जयन्ती नामक नगरी है जो अपनी समृद्धि और वैभव के कारण अमरपुरी के समान सुशोभित है । इस नगरी वर्णन के अतिरिक्त नायक के रण-प्रयाण, युद्ध आदि का सजीव वर्णन भी हुआ है । नायक जयन्त के युवावस्था मे प्रवेश करने पर ही वसन्त ऋतु का आगमन हो जाता है और इस अवसर पर उपवन मे झूला डाला जाता है । कवि द्वारा प्रस्तुत वह दोला विलास, पुष्पावचय एव जलकेलि वर्णन युवको के हृदय मे शृगार रस की भावना को उद्दीप्त कर देता है । इसी समय कवि ने सूर्यास्त एव चन्द्रोदय का मनोहारी चित्र भी खीचा है । इन वर्णनो के अतिरिक्त कवि ने परम्परागत ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतु का भी वर्णन किया है । ग्रीष्म के आतप का सन्ताप प्राणियो को अत्यधिक कष्ट देता है किन्तु वर्षा ऋतु के आते ही वह समाप्त हो जाता है तथा शरद ऋतु समस्त प्राणियो के लिय आनन्ददायक होती है । कवि द्वारा प्रस्तुत ये वर्णन कथा-प्रवाह मे बाधक न होकर, सौन्दर्यवर्धक सिद्ध हुए हैं । कवि अभयदेव समय एव परिस्थिति का विशेष ध्यान

---

१ नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनै ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवै ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्चकुमारोदयवर्णनै ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥

—काव्यादर्श १/१६-१७ ।

रखते हैं क्योंकि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—जयन्त के युवावस्था मे प्रवेश करने पर वसन्त ऋतु का आगमन।

अत स्पष्ट है कि 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे आये हुए वर्णन प्रसंग नायक जयन्त के चरित्र के कोमल पक्ष का उद्घाटन करते हैं। अधिक क्या कहा जाय, ऋतुएँ भी उनका ध्यान रखती हैं। कवि के शब्दो मे—

न परमुग्रमय रतिसुन्दरी प्रियतम सहते निज शासनात्।
इति भयादिव कम्पितमानसस्त्वरितमुग्रऋतु प्रपलायत ॥[1]

अर्थात् रतिसुन्दरी के प्रियतम (जयन्त) अपने शासन द्वारा अत्यन्त उग्रता को सहन नही कर सकते। इसीलिए भय से काँपती हुई (यह उग्र ग्रीष्म) ऋतु शीघ्र भाग गयी।

वे एक आदर्श नृपति है। उनके राज्य मे मेघ समय पर वर्षा करने है और जनता ईति-भीति के डर से मुक्त दिखलायी पडती है—

तस्मिन्मही पालयति क्रमाप्ता नयाचिते पचमलोकपाले।
ववर्ष काले जलद समस्त प्रशस्यसस्योद्गममूल बीजम् ॥[2]

इस प्रकार कवि द्वारा प्रस्तुत वर्णन प्रसग महाकाव्य की कथावस्तु हेतु सहायक सिद्ध हुए है। दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट वर्णनो मे से समुद्र, विप्रलम्भ इत्यादि के लिए कथानक मे अवसर न रहने के कारण उन्हे महाकाव्य मे स्थान नही दिया गया है।

कथानक की सन्धियाँ—अलकारशास्त्रियो ने महाकाव्य मे नाटकीय पञ्च-सन्धियो की योजना का भी विधान किया है। भामह,[3] दण्डी,[4] रुद्रट[5] तथा विश्वनाथ[6] आदि प्रमुख आचार्य महाकाव्य के कथाविस्तार को सन्धियो मे युक्त मानते हैं। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने भी इन आचार्यों का समर्थन किया है किन्तु उन्होने कथानक मे रसाभिव्यक्ति के अनुकूल ही सन्धियो की योजना को उचित माना है। उनके अनुसार सधि तथा सन्ध्यगो का योजना केवल शास्त्र की मर्यादा के लिए ही नही अपितु रसाभिव्यक्ति की अपेक्षा की जानी चाहिए।[7] इसी लिए महाकाव्य मे सन्धियो को उतना महत्त्व प्राप्त नही है जितना कि नाटक मे।

---

१ जयन्तविजय १८/१५।
२ वही, १६/७१।
३ 'पञ्चभि सन्धिभिर्युक्तम्'—काव्यालकार १/२०।
४ श्राव्यवृत्तं सुसन्धिभि।—काव्यादर्श १/१८।
५ सधीनपि सश्लिष्टास्तेषामन्योन्य सबधात्।—काव्यालकार १६/१६।
६ अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटक सन्धय।—साहित्यदर्पण ६/३१६।
७ सन्धिसन्ध्यङ्गघटनम् रसाभिव्यक्तयपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रस्थिति सम्पादनेच्छया ॥—ध्वन्यालोक ३/१२।

नाटकीय इतिवृत्त पाँच अर्थ प्रकृतियो—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य एव पांच अवस्थाओ—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम से विभक्त किया गया है। सन्धियाँ इन्ही अर्थ प्रकृतियो एव अवस्थाओ के मिश्रण से बनती हैं।[1] इस प्रकार सन्धियाँ पाँच हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण।[2]

मुखसन्धि—मुखसन्धि कथानक की वह अवस्था कहलाती है जहाँ पर काव्य की प्रमुख घटना की सूचना सर्वप्रथम मिलती है अर्थात् प्रमुख घटना के बीज का उपन्यास होता है। धनञ्जय के अनुसार मुखसन्धि मे नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पायी जाती है[3]। 'जयन्तविजय' महाकाव्य की मुख्य घटना जयन्त का राज्याभिषेक है। जिसकी सूचना हमे महाकाव्य के द्वितीय सर्ग मे ही प्राप्त हो जाती है। इस सर्ग मे अपने शिशु गज के साथ सरोवर मे क्रीडा करती हुई करिणी को देखकर प्रीतिमती को अपनी अपत्यहीनता की स्मृति आ जाती है और वह उदासीन रहने लगती है क्योकि—

नभस्थलीव द्युनिमद्विना कृता निशेव शीतद्युतिमण्डलाज्झिता।
महौषधीवोन्मदवीर्यवर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशस्यते ॥[4]

अर्थात् सूर्य के बिना आकाश चन्द्रमा के बिना रात्रि, विशिष्ट शक्ति के बिना औषधि के समान सन्तानहीन स्त्री की प्रशसा नही होती।

अपि च—परा जनन्या जनयत्यनारत महाकुलीनस्तनयो नयाश्रित।
महर्घतामेधयते गुणश्रियो न किं यशोराशिरदम्भ सौरभ ॥[5]

अर्थात् नीतिमान, महाकुलीन, अदम्भी, यशोराशि रूप पुत्र क्या गुणयुक्त माता की मागता को नही बढाता। अर्थात् माता के गौरव को अवश्य बढाता है।

प्रीतिमती सोचने लगती है कि स्त्रियाँ चरित्रवान् पुत्र के द्वारा ही पति के अति गौरव को प्राप्त करती हैं क्योकि रत्न की खान प्रकाण्ड (अत्यधिक) मणियो से बहुमूल्यता को क्या प्राप्त नही करती अर्थात् अवश्य प्राप्त करती है—

किमन्यदाप्नोत्यतिगौरव वि (व) धृ प्रियस्य पुत्रै खलु वृत्तशालिभि।
महार्घ्यता रत्नखनी न किं भजेन्मणिप्रकाण्डैरिति सा व्यचिन्तयत् ॥[6]

---

१ अर्थ प्रकृतय पञ्च पञ्चावस्था समन्विता।
यथा सख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्चसन्धय ॥—दशरूपक १/२२।
२ मुख प्रति मुख गर्भ' सावयर्शोपसहृति।—वही १/२४।
३ मुख बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ॥—वही १/२५।
४ जयन्तविजय २/२।
५ वही, २/४।
२ वही, २/७।

इस प्रकार रानी प्रीतिमती के चिन्तित होने पर राजा विक्रम सिंह अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी उसकी इस इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं—

निवेश्य सदेहपदेऽपि जीवित प्रिये प्रिय ते त्वरित करोत्यद ।
न चेज्जनोऽय ज्वलने प्रवेशत पतङ्गता याति तदा विनिश्चतम् ।।[1]

प्रतिमुख सन्धि—धनञ्जय के अनुसार मुख सन्धि मे बोया गया बीज जब अकुरित होकर कुछ दिखायी दे तथा कुछ स्पष्ट रहे वहाँ प्रतिमुख सन्धि होती है ।[2] जयन्तविजय के चतुर्थ सर्ग मे राजा विक्रमसिंह को सुर द्वारा एक ऐसा मुक्ताहार प्राप्त होता है जिसके धारण करने से वन्ध्या स्त्री भी उदात्त पुत्र उत्पन्न करती है । कवि के शब्दो मे—

इदमुदात्तसुताय मृगीदृशा भवति कण्ठतले विनिवेशिता ।
इति निशम्य सता द्रुतमाददे प्रणयिना हि समाधि विधिस्तथा ।।[3]

अर्थात् यह हार मृगनयनियो के कण्ठतल मे पहनाये जाने पर उदात्त सन्तान होती है । इस प्रकार से सुनकर राजा ने उस हार को शीघ्र ही ले लिया ।

इस प्रकार इस सर्ग मे जयन्त की उत्पत्ति रूप बीज कुछ स्पष्ट हो जाता है किन्तु हार को लेकर आगे चलने पर राजा विक्रम सिंह का एक योगी से युद्ध होता है । यह योगी देवता को प्रसन्न करने के लिये चीत्कार करती हुई नारी की बलि देने को उद्यत है । युद्ध मे योगी परास्त होता है । विजयी राजा पर वह कन्या मुग्ध हो जाती है । पञ्चम सर्ग मे सुर आकर बताता है कि यह कन्या आपकी पत्नी प्रीतिमती की बहिन है । इसका अनुराग आपमे है और यह आपकी पत्नी बनेगी । सुर योगी के वास्तविक स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है और बताता है कि राज्य प्राप्ति के लिये अघोरघण्ट योगी से दीक्षा लेकर इस योगी ने कन्या बलि का उपक्रम किया है । वह (सुर) विक्रमसिंह को उनके पूर्व जन्म का पूरा विवरण भी बताता है । छठे सर्ग मे सुर से कन्या का परिचय पाकर राजा विक्रमसिंह कन्या के पिता जितारि के पास कन्या को साथ लेकर जाते है । जितारि कन्या का विवाह विक्रमसिंह से कर देता है । नवपरिणीता पत्नी को साथ लेकर राजा विक्रमसिंह जयन्ती नगरी को लौटते हैं और सुर द्वारा प्रदत्त मुक्ताहार प्रीतिमती को देते है जिसके प्रभाव से वह गर्भवती होती है ।

इस प्रकार राजा को चतुर्थ सर्ग मे मुक्ताहार की प्राप्ति होती है किंतु वे मार्ग मे अन्य कार्यक्रमों मे व्यस्त हो जाते है । फलत जो जयन्त की उत्पत्ति रूप बीज

---

१ जयन्तविजय, २/३१ ।
२ लक्ष्यालक्ष्यतयोदभेदस्तस्य प्रतिमुख भवेत् ।—दशरूपक १ ३० ।
३ जयन्तविजय, ४/३४ ।

का स्पष्टीकरण हुआ था वह अस्पष्ट हो जाता है और छठे सर्ग मे आकर जब वे मुक्ताहार प्रीतिमती को देते हैं तो उसी हार के प्रभाव से प्रीतिमती गर्भ धारण करती है। इस प्रकार अस्पष्ट बीज पुन स्पष्ट हो जाता है। अत चतुर्थ सर्ग मे राजा को उदात्त पुत्र उत्पन्न करने की क्षमता वाले मुक्ताहार की प्राप्ति से लेकर छठे सर्ग मे मुक्ताहार के धारण करने से प्रीतिमती के गर्भवती होने तक के वर्णन मे प्रतिमुख सन्धि की योजना का सफल निर्वाह हुआ है।

गर्भ सन्धि—जब बीज के दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है तो गर्भसधि होती है।[1] जयन्तविजय महाकाव्य के ग्यारहवे और बारहवे सर्ग मे गर्भ सन्धि मानी जा सकती है क्योकि महाकाव्य के नायक जयन्त गर्भित (अन्तर्निविष्ट, गायब) रहते है। इन सर्गों मे एक ओर राजा विक्रमसिंह जयन्त के दिग्विजय के समाचार को सुनकर प्रसन्न होते है तो उसी क्षण ही उनके अदृश्य होने से चिंतित हो उठते है। इस प्रकार बीज के लाभ-अलाभ, प्रसन्नता-चिंता के द्वन्द्व का चित्रण प्रस्तुत महाकाव्य मे करके गर्भ सन्धि की सफल योजना की गई है।

अवमर्श सन्धि—जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन (लोभ) से फल प्राप्ति के विषय मे विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा जहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो, वहाँ अवमर्श सन्धि कहलाती है।[2]

जयन्तविजय महाकाव्य के तेरहवे-चौदहव सर्ग मे अवमर्श सन्धि है। तेरहवे सर्ग मे उपवन मे जयन्त और कनकवती एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो जाते है। यह जानकर पवनगति भी कनकवती का विवाह जयन्त के साथ कर देता है। कनकवती से विवाह हो जाने पर जयन्त के राजधानी लौटने की सभावना होती है किन्तु फिर भी सन्देह बना रहता है, क्योकि विघ्न-बाधाओ से मुठभेड अभी समाप्त नही होती है। विद्याधरेश चक्रवर्ती महेन्द्र जैसे प्रबल शत्रु से जयन्त को लोहा लेना पडता है क्योकि जब महेन्द्र चक्रवर्ती को यह ज्ञात होता है कि पवनगति ने उसके पुत्र की उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह पवनगति पर आक्रमण कर देता है। युद्ध मे जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होती है। जयन्त महेन्द्र पुत्र को करद बनाकर पवनगति के साथ अपने नगर को लौट आते है। इस प्रकार फल प्राप्ति की नियत सभावना और विघ्न-बाधाओ के कारण इसकी

---

१ गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषण मुहु ।—दशरूपक १/३६ ।

२ क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थ सोऽवमर्श इति स्मृत ।।—दशरूपक १/४४ ।

सदिग्धता के द्वन्द्व मे यहाँ जो नाटकीयता का विकास हुआ है उसमें अवमर्श सन्धि का सुन्दर निर्वाह है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार ही इस सन्धि मे महाकाव्य के प्रधान चरित्र का पौरुष और भी अधिक उद्दीप्त रूप मे प्रकट हुआ है।

निर्वहण सन्धि कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो इधर-उधर बिखरे हुए है, जब एक साथ एकत्रित हो जाते है तो निर्वहण सन्धि होती है।[1]

जयन्तविजय महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग मे निर्वहण सन्धि का निर्वाह हुआ है क्योकि राजधानी जयन्ती लौटने पर जयन्त को राजा विक्रम सिंह राज्य सौंपकर प्रव्रजित हो जाते हैं—

अथाद्यमात्मानमिवात्मज स शुभे निवेश्याहनि यौवराज्ये।
निनायकाल ललितैर्विलासैस्तत्सनिधानात्तनुराज्यचिन्त.॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् शुभ मुहूर्त मे राजा विक्रम सिंह अपने प्रथम पुत्र (जयन्त) को युवराज पद पर करनियुक्त राज्य की चिन्ता से मुक्त हो गये और वे राजा जयन्त ललित विलासो से समय व्यतीत करने लगे।

राजा जयन्त भी एक कुशल शासक है क्योकि वे कुछ ही दिनो मे अपने गुणो के कारण लोकप्रिय हो जाते है और प्रजा वैरि सिंह को भूल जाती है—

अत्यन्तविस्मारितवैरिसिंहक्षमाधिराज स्वगुणै प्रजानाम्।[3]

इस प्रकार 'जयन्त विजय' महाकाव्य मे नाटकीय पञ्च सन्धियो की योजना का भी सफल निर्वाह हुआ है।

पुरुषार्थ चतुष्टय निरूपण—अलङ्कार शास्त्रियो ने महाकाव्य का प्रमुख उद्देश्य चतुर्वर्गफल प्राप्ति माना है। आचार्य दण्डी के अनुसार उदात्तादिगुणान्वित चतुर नायक की चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन महाकाव्य मे आवश्यक है।[4] आचार्य रुद्रट का यही मत है।[5] किन्तु साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ का मत दण्डी तथा रुद्रट से पृथक् है। उनके अनुसार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का वर्णन तो महाकाव्य मे आवश्यक है किन्तु इनमे से किसी एक का वर्णन महाकाव्य के फल के रूप मे होना चाहिए।[6]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि सभी आचार्यों ने महाकाव्य मे पुरुषार्थ चतुष्टय

---

१ बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हितत्॥ —दशरूपक १/४८।
२. जयन्तविजय, १६/५६। ३ वही, १६/१।
४. चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्त नायकम्। —काव्यादर्श १/१५।
५ तत्र महन्तोयेषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्ग। —काव्यालङ्कार १६/५।
६ चत्वारस्तस्यवर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवेत। —साहित्य दर्पण ६/१८।

निरूपण पर बल दिया है । कवि अभयदेव वस्तुत भक्त थे और जैन सम्प्रदाय के होने के कारण उनकी जैन धर्म मे अटूट आस्था थी । कवि के ही शब्दो मे—

जैनस्तु धर्मो हृदि जागरूक. स्यादैहिकामुष्मिकसौख्यहेतु ।[1]

अर्थात् हृदय में जागरूक होता हुआ जैन धर्म ऐहिक (इस लोक) और आमुष्मिक (पारलौकिक) दानो के सुख का कारण होता है ।

उन्होने यद्यपि जैन धर्म के नियमो तथा सिद्धान्तो का प्रतिपादन महाकाव्य मे अति विस्तार के साथ नही किया है किन्तु फिर भी पन्द्रहवे सर्ग मे उनका कवि स्वरूप बहुत कुछ तिरोहित हो गया है और धार्मिक तत्त्व का निरूपण ही प्रधान हो गया है । इस सर्ग मे सर्वज्ञता के सम्बन्ध मे ब्राह्मण और जैन सिद्धान्तो का विवरण शास्त्रार्थ के रूप मे देकर ब्राह्मण विचारधारा पर जैन विचारधारा की विजय दिखलायी गयी है ।[2] महाकाव्य के नायक जयन्त मे भी धर्म के प्रति आस्था है । जिन शासन देवता जया द्वारा अपहृत किये जाने के बाद उद्यान मे वे श्री धर्मसूरि को देखते ही उन्हे प्रणाम करते है और उनके उपदेशो को ध्यानपूर्वक सुनते है ।

श्रृणु सगुण जयन्त जैनधर्मं सकलसुखोपयिक भवद्वयेऽपि ।
इति गुरुवचने स बद्धतृष्ण समजनि चातकवत्पयोदनीरे ॥[3]

उनकी जिनेश्वर मे भी अतुल भक्ति है । वे जिन मन्दिरो मे भक्तिपूर्वक जिनबिम्ब की अर्चना करते हैं । जिनेश्वर मे उनकी प्रगाढ भक्ति को देखकर स्वय इन्द्र उनकी प्रशसा करते हैं –

धन्योऽसि राजन्सफल तवैव राज्य धन जन्म च जीवित च ।
दु खार्दितेऽपीह मनुष्यभावे यस्यातिभक्तिर्जिनपुङ्गवेषु ॥[4]

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य का प्रधान लक्ष्य धर्म की प्राप्ति है किन्तु इसमे अर्थ का निरूपण भी धर्ममर्यादा मे बँधकर हुआ है । आचार्य भामह ने तो महाकाव्य का उपदेश सदैव अर्थोपदेश ही माना है । उनके अनुसार—

चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत ।[5]

अर्थात् महाकाव्य मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो वर्गों को स्थान दिया जाता है किन्तु उसका उपदेश सदैव अर्थोपदेश ही होता है ।

जयन्तविजयकार कवि अभयदेव भामह के इस मत को स्वीकार नही करते

---

१ जयन्तविजय १/२० ।
२ वही, १५/८, १०, १२, १७, २२, ४२ ।
३ वही, १२/४७ ।   ४ वही, १६/७७ ।
५. काव्यालङ्कार, १/२१ ।

है क्योंकि उनकी दृष्टि मे सज्जनो की यह विचारधारा है कि अर्थ और काम यह दोनो ऐहिक सुख के लिए हैं भव के उद्भव के लिए नही—

तत्रार्थकामद्वयमैहिकार्थं भवोद्भवत्वेन सता मत न ।[1]

अत स्पष्ट है, कि इनके द्वारा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति नही हो सकती । जयन्त एकादश सर्ग मे दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते है, किन्तु जो राजा उनकी अधीनता को स्वीकार कर लेते हैं वे उन्हे परेशान नही करते है तथा जो बहुमूल्य पदार्थ उन्हे उपहार मे प्राप्त होते हैं । वे उन्हे सहर्ष स्वीकार करते हैं ।

सर्वस्वदानत केचिन्मानभङ्गाच्च केचन ।
शरण्य शरणीकृत्य मार्गभूपास्तमन्वयु ।।[2]

अर्थात् कुछ राजाओ ने उन्हे अपना सर्वस्व दानकर तथा कुछ ने अपना अभिमान छोडकर उन राजा की शरण लेकर उनके पीछे चल पडे ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि ने 'काम' को निरूपण भी बडी कुशलता से किया है । बसन्त ऋतु के पदार्पण करते ही चारो ओर हर्षोल्लास व्याप्त हो जाता है । नवमालिका के पुष्प वन की शोभा को कई गुना बढा देते हैं तथा नये पल्लव ताम्रवर्ण को आभा लिए हुए युवको के हृदय मे शृगार रस की भावना को उद्दीप्त कर देते है । इसी अवसर पर उपवन मे दोला डाला जाता है तथा रमणियो के अनेक प्रकार के कामजन्य विलास दृष्टिगोचर होते है । यथा कोई सुन्दरी भूले पर बैठी आकाश मे ऊपर को बढ जाती है, उसके साथ ही युवको के नेत्र भी चले जाते है । दीर्घाकार क्षेत्र मे पेग लगाने पर भूला तिर्यक् रूप से आगे बढ़ता है जिसमे भुजग-भुजाओ को पकडे हुए सी वह प्रतीत होती है—

व्रजति वियति काचिल्लोल दोलाधिरूढा ।
सह युवजननेत्रै पद्मपत्त्रायताक्षी ।
चलति तदनु धम्यमन्यदीर्घप्रसर्प-
द्भुजगभुजधृतासौ किं चितैरेव सार्द्धम् ।।[3]

इसी प्रकार जलक्रीडा के अन्तर्गत प्रेमियो की यह प्रेमलीला भी दर्शनीय है

पयसि लघुनिलीन कौतुकेनापकर्षत्-
परिहितसि(च)यान्त दक्षयालक्षि कान्त ।
तदनु च स तयोक्त कोऽपिचौरोऽयमेव
सरसविधि बबन्धे बाहुपाशेन सद्य ।।[4]

---

१ जयन्तविजय, १/२० ।
२ वही, ११/७ ।
३ वही, ८/६ ।
४ वही, ८/४१ ।

अर्थात् किसी दक्ष स्त्री के द्वारा पानी में शीघ्रता से डुबकी लगाये हुए कुतूहलवश वस्त्र खीचे जाते हुए कान्त को देख लिया गया। इसके बाद उसके द्वारा 'यह कौन चोर है' इस तरह से कहते हुए बाहुपाश मे शीघ्र पकड लिया गया।

इस प्रकार जयन्तविजय' महाकाव्य मे जो कामकेलि का चित्रण हुआ है वह सर्वथा धर्ममर्यादित है।

मुक्ति तो प्रस्तुत महाकाव्य का परम प्रयोजन है, क्योकि यह एक भक्ति-प्रधान काव्य है। अठारहवें सर्ग मे वैरिसिंह अपने जामाता जयन्त को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर लेते है।[१] उन्नीसवे सर्ग मे राजा विक्रमसिंह भी जयन्त को राज्य-भार सौंपकर प्रव्रजित हो जाते है—

सदस्यभिप्रायमिम निवेद्य सुतस्य सर्वं विदधे तथैव।
अन्ते च योगेन तनुत्यजा स शिश्राय मार्गं सुधिया नृपाणाम्॥[२]

अर्थात् राजा विक्रम सिंह ने सभा मे अपने अभिप्राय को बताकर उमी समय पुत्र को राज्य-भार सौंपकर अन्त मे योग से शरीर छोडने वाले बुद्धिमान राजाओ के मार्ग का आश्रय लिया।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने पुरुषार्थ चतुष्टय का निरूपण भी बडे ही मार्मिक ढग मे किया है।

नायक

महाकाव्य के कथानक का आधार नायक होता है। 'जयतविजय' महाकाव्य के नायक विक्रमसिंह के सुयोग्य पुत्र जयन्त है। लक्षण शास्त्रियो के अनुसार नायक मे कतिपय गुणो का होना आवश्यक माना गया है। दण्डी के अनुसार महाकाव्य का नायक उदात्त एव चतुर होता है तथा वह सदैव ही चतुर्वर्ग फल प्राप्ति के लिए उत्सुक एव प्रयत्नशील रहता है।[२] अन्य आलकारिको ने भी नायक को सर्वगुण सम्पन्न माना है।[३] इसका प्रमुख कारण है महाकाव्य की उपदेशात्मकता। क्योकि

---

१ जयन्तविजय, १८/५६ तथा ६१। २ वही, १९/४१।

२. चतुर्वर्ग फलायत चतुरोदात्त नायकम्। —काव्यादर्श १.१५

३ (क) तत्र त्रिवर्गसक्त समृद्धिशक्ति त्रय च सर्वगुणम्।
रक्त समस्त प्रकृतिं विजगीषु नायक न्यस्यत॥
—रुद्रट-काव्यालकार १६ ८

(ख) नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष प्रियवद।
रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रुढवश स्थिरोयुवा॥
बुद्धयुत्साहस्मृति प्रज्ञा कलामान समन्वित।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक॥ —दशरूपक २/१-२

प्रत्येक कवि के काव्य का सम्बन्ध समाज से होता है। समाज के व्यक्ति कवि के काव्य से प्रभावित होते है। अत कवि को सदैव ऐसे नायक की सृष्टि करनी चाहिए जिससे समाज के व्यक्ति उसके गुणो से प्रभावित हो सकें। इसीलिए नायक के विजगीषु होने पर सभी अलकारिको का विशेष आग्रह है। महाकाव्य के अन्त मे नायक की विजय दिखाने का उद्देश्य सम्भवत समाज के व्यक्तियो को उसके सदाचरण का अनुकरण करने के प्रति प्रोत्साहित करना है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य के नायक जयन्त मे हमे आदर्श नायक के सभी गुणों का समावेश मिलता है। उन्हे राजनीति का ज्ञान होने के साथ ही साथ अपने गौरव का भी पूर्ण ध्यान है। सिंहलेश का दूत जब उनके पिता के पास हाथी वापस करने की माँग करता है और सिंहल भूपति के पराक्रम का भय दिखलाता है तो वे गम्भीर भाव से जो उत्तर देते हैं वह उनकी नीतिनिपुणता का परिचायक है—

> महानिधीनामधिपोऽपि चक्रभृन्नयागत वस्तु न जातु मुञ्चति।
> मतङ्गजस्यास्य मिषात्स्वमन्दिरे रमा प्रविष्टा क्रियते कथ बहि ॥
> द्विषो न पोष्या प्रणिपातमन्तरा निजै पदार्थैरिति भूभृतां नय।
> न जातु तेषा तमपश्यता भवेज्जनाद्विशेष फणिदुग्धपायिन ॥[१]

अर्थात् महानिधि के स्वामी सुदर्शन चक्रधारी भगवान् विष्णु भी नीति से आयी हुई वस्तु को कभी नही छोडते। अत इस हाथी के बहाने से हमारे घर मे प्रविष्ट लक्ष्मी को कैसे बाहर किया जा सकता है। प्रणाम के बिना अपने ही पदार्थों मे शत्रुओ का पालन-पोषण नही करना चाहिए, यह राजनीति है क्योकि बिना वस्तु को देखे हुए कोई विशेषता नही बतायी जा सकती जिस प्रकार दूध पिलाये हुए सर्प मे किसी प्रकार की विशेषता नही होती।

विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का नायक कोई देवता, उच्चवश मे उत्पन्न क्षत्रिय, एकवश मे उत्पन्न कई राजा अथवा कई वशो मे उत्पन्न राजा हो सकते हैं।[२] जयन्त जयन्ती जैसी राजधानी के राजकुमार है। वे क्षत्रिय है तथा क्षत्रियोचित गुणो से युक्त हैं। धनिक तथा धनञ्जय ने भी धीरोदात्त नायक को महान् वीर, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मप्रशसा न करने वाला तथा दृढप्रतिज्ञ बतलाया है।[३] जयन्त वास्तव मे एक धीरोदात्त नायक है। वे बडे शूरवीर है। सिंहलनरेश के प्रति-

---

१ जयन्तविजय ९ ३१, ३३।

२ सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायक सुर।
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वित ॥
एकवशभवाभूपा कुलजा बहवोऽपि वा॥—साहित्यदर्पण ६/३१५

३ महासत्वोऽतिगम्भीर क्षमावान विकत्थन।
स्थिरो निगूढाहकारी धीरोदात्तो दृढव्रत ॥—दशरूपक २/४,५

रोध के लिए पिता को रणक्षेत्र में जाते हुए देखकर वे इन शब्दो द्वारा उन्हे रोककर स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं—

मयि स्थिते हन्त निदेशवर्तिनि स्वय प्रयास कतम प्रभोरिति ।[१]

सिहल नरेश हरिराज के अतिरिक्त वे भिल्ल[२], सुह्म[३] आदि अनेक राजाओ को पराजित कर दिग्विजय करते है । वे जहाँ जाते हैं विजयी होकर ही लौटते है । यही उनकी वीरता का ज्वलन्त उदाहरण हैं । विद्याधरेश महेन्द्र चक्रवर्ती जैसे प्रबल शत्रु का सामना होने पर भी उनके मन मे विकलता का आभास तक नही मिलता । वे बडी निश्चिन्तता के साथ नित्यक्रिया करके सग्राम भूमि की ओर प्रस्थान करते है—

पूर्वाचल चुम्बिनि चण्डरश्मौ विस्मेरवक्त्राम्बुरुहो जयन्त ।
प्रत्यूषकृत्य विधिवद्विधाय सस्मृत्य चान्त स्मरणीयमिष्टम् ॥
प्रदक्षिणीकृत्यपति प्रभूणायुदङ्मुख सगरबद्धलक्ष्य ।
आनन्द दानैरनुजीविवर्ग सग्रामभूमि समलचकार ॥[४]

युद्ध भूमि मे उनके शौर्य पर देवगण भी मुग्ध हो जाते है और उनके जीतने पर भेरी-निनाद तथा पुष्प-वृष्टि करते है

अथ सुरपथवल्गद्दिव्य भेरी निनाद-
द्विगुणित कलभृङ्गारावगर्भ नमस्त ।
शिरसि सुरकराब्जप्रेरित पुष्पवर्ष
न्यपतदवनिभर्तुर्मङ्गलोद्गार सारम् ॥[५]

जयन्त कामदेव के समान सौन्दर्यशाली भी है, क्योकि कनकवती और रतिसुन्दरी उनके अतुल रूप पर प्रथमदर्शन मे ही मुग्ध हो जाती है-—

खेचरेन्द्रदुहितापि कुमार रूपसपदपहस्तितमारम् ।
वीक्ष्य तत्क्षणमभूदनुरागक्षीर सागर तरङ्ग निमग्ना ॥[६]

विनयशीलता उनके चरित्र की एक अन्य विशेषता है । जिन शासन देवता जया द्वारा अपहृत किये जाने पर वे उद्यान भूमि मे श्री धर्मसूरि को देखते ही प्रणाम करते है और उनके उपदेशो को ध्यानपूर्वक सुनते है ।[७]

---

१ जयन्तविजय ६/६० ।
२ वही, ११/८ ।
३ वही, ११/६ ।
४ वही, १४/४४-४५ ।
५ वही, १४/१०७ ।
६ वही, १३/३६ ।
७ वही, १२/४७ ।

चक्रवर्ती हो जाने पर भी उनके मन मे रचमात्र भी गर्व नही है। विमान से उतरते ही वे अपने पिता को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं—

जिनेन्द्रमिव देवेन्द्र समुत्तीर्ण विमानत ।
नमश्चक्रे नमस्यार्हं श्रीजयन्तो गुरु तत ॥[1]

वे प्रजावत्सल एव कुशल शासक हैं। प्रजा उनके शासन मे सुख का अनुभव करती है क्योंकि वे कुछ ही दिनो मे अपने गुणो के कारण लोकप्रिय हो जाते हैं और प्रजा वैरिसिंह को भूल जाती है—

अत्यन्त विस्मारित वैरिसिंह क्षमाधिराज स्वगुणै प्रजानाम् ।[2]

उनके राज्य की तुलना हम रामराज्य से कर सकते हैं क्योकि वे एक आदर्श राजा हैं। अत उनके राज्य मे मेघ समय पर वर्षा करते हैं और जनता ईति-भीति के डर से मुक्त दिखलाई पडती है -

तस्मिन्मही पालयति क्रमाप्तां नयाश्रिते पचम लोकपाले ।
ववर्ष काले जलद समस्तप्रशस्य सस्योद्गममूल बीजम् ॥[3]

जयन्त प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए जहाँ एक ओर बाह्य शत्रुओ का नाश करते हैं वही वह अपने षट् शत्रुओ के प्रति भी सावधान रहते हैं—

अङ्गैस्तत सप्तभिरप्यवन्ध्य प्रवृद्ध शक्तित्रयकीर्तिरेव ।
राज्य शशासापर वैरि नाशाऽप्यङन्तरङ्गान विजित्य शत्रून् ॥[4]

उनके हृदय मे धर्मपिपासा भी है। वे जिन मन्दिरो मे जाकर भक्तिपूर्वक जिन बिम्बो की अर्चना करते है। जिनेश्वर मे उनकी प्रगाढ भक्ति को देखकर स्वयं इन्द्र उनकी प्रशसा करते है—

धन्योऽसि राजन् सफल तवैव राज्य धन जन्म च जीवित च ।
दु खार्दितेऽपीह मनुष्यभावे यस्यातिभक्तिर्जिन पुङ्गवेषु ॥[5]

इस प्रकार जयन्त वीर, पराक्रमी, नीतिवान यशस्वी, रमणियो के लिए आराध्य एव जिनेन्द्र भक्त है। श्रद्धा और भक्ति उनके जीवन के आवश्यक अङ्ग है। नवीन चैत्यालय बनवाना और पुराने चैत्यालयो का पुन निर्माण कराना भी उनके जीवनोद्देश्य मे गर्भित है। अत नायक के समस्त गुण जयन्त मे पाये जाते है।

प्रतिनायक नायक के साथ ही महाकाव्य मे प्रतिनायक का भी समावेश रहता है। यह प्रतिनायक महाकाव्यो में बिल्कुल विपरीत प्रदर्शित किया जाता है।

---

१ जयन्तविजय १५/७३ ।
२ वही, १६/१ ।
३ वही, १६/७१ ।
४ वही, १६/४८ ।
५ वही, १६/७७ ।

अर्थात् नायक जहाँ सर्वगुणसम्पन्न होता है वही प्रतिनायक को क्रूर तथा सभी दुर्गुणो का आगार प्रदर्शित किया जाता है। वस्तुत इसके मूल मे वही भावना विद्यमान रहती है जो कि नायक को सर्वगुण सम्पन्न प्रदर्शित करने के मूल मे है। नायक समाज के समक्ष सद्गुणो का प्रतिनिधित्व करता है किन्तु प्रतिनायक दुर्गुणो का। नायक की प्रतिनायक पर विजय दिखाने का प्रमुख लक्ष्य दुर्गुणो पर सद्गुणो की विजय है तथा समाज को अच्छे आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित करना है। आलकारिको ने यद्यपि महाकाव्य मे प्रतिनायक का स्पष्ट रूप से उल्लेख तो नहीं किया है किन्तु उसके गुणी तथा अभिजात होने पर बल दिया है।[1] दशरूपककार के अनुसार प्रतिनायक लोभी, धीरोदात्त, घमडी, पापी तथा व्यसनी होता है। प्रतिनायक का लक्षण देते हुए उन्होने कहा है - नायक की फलप्राप्ति मे विघ्न करने वाला, नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है।[2]

जयन्तविजय महाकाव्य मे हरिराज तथा महेन्द्र का वर्णन प्रतिनायक के रूप मे आया है। हरिराज सिंहल देश का भूपति है। जयन्त का सर्वप्रथम युद्ध इसी के साथ होता है। अत यही महाकाव्य का वास्तविक प्रतिनायक है। एक दिन हरिराज का हाथी मगध की जयन्ती नगरी मे चला आता है। विक्रमसिंह यह भविष्यवाणी सुनकर कि इस हाथी के प्रभाव से युवराज जयन्त खचरेश्वर होगे, उस हाथी को पकडने का आदेश देते हैं और हाथी पकड लिया जाता है। सिंहल भूपति हाथी को वापस प्राप्त करने के लिए विक्रमसिंह को सभा मे दूत भेजता है, पर विक्रमसिंह उस दैवप्रदत्त गज को वापस करने से इन्कार कर देते है। सिंहलनरेश शूरवीर और अभिमानी है। वह इस समाचार को सुनते ही विक्रमसिंह पर आक्रमण कर देता है। विक्रमसिंह की सभा मे उसका दूत उसके वीरत्वपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन इन शब्दो मे करता है

> परत्र वीरे नरवीर का कथा न शङ्कते जातु पुरन्दरादपि।
> प्रचण्डदोर्दण्डबलावलेपतस्तृणाय न त्वामपि मन्यते प्रभो ॥[3]

अर्थात् हे नरवीर अन्य वीरो की बात ही क्या ? वह कभी पुरन्दर से भी शंकित नहीं होते और अपने प्रचण्ड भुजदण्ड के अवलेप से आपको तृण के समान भी नही मानते।

---

१ स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतम प्रतिपक्ष वर्णयेद् गुणिनम् ॥—रुद्रट काव्यालकार १६/१०

२ अथ प्रतिनायकं —
लुब्धो धीरोद्धत स्तब्ध पापकृद्व्यसनीरिपु ॥—दशरूपक २/९

३ जयन्तविजय ९/४८।

वह दर्पयुक्त और उद्धत है। इसीलिए मन्त्रियो की मन्त्रणा की अवहेलना कर वह युद्ध के लिए प्रस्थान करता है क्योंकि भवितव्यता को मेटा नहीं जा सकता—

तथाप्यवज्ञाय तदीय मन्त्रित प्रयाणमाधत्त मदोद्धतस्तत ।
अरिष्टमसूचितमृत्युरप्यसौ विलघ्यते कैर्भवितव्यताथवा ॥[1]

युद्ध मे वह अपने सेनापति सुषेण के मारे जाने पर भी विकल नही होता। ऐसे अवसर पर जयन्त के प्रति कहे गये उसके ये शब्द उसके चरित्र की निर्भयता, शूरता और स्वाभिमान को व्यक्त करने मे सफल हुए हैं —

अथ क्लेशावेश प्रसर विरस सिंहलपति-
र्जगादैव वध्यस्त्वमसि मम नासे शिशुरिति ।
सता निस्त्रिंशोऽपि प्रभवति न हि भ्रूणहतये
प्रपद्याज्ञा तन्मे व्रज निजगृह रन्तुमधुना ॥[2]

अर्थात् इसके बाद सिंहलपति ने कहा कि तुम मेरी तलवार से वध्य नही हो क्योकि तुम बच्चे हो। सज्जनो की तलवार बाल-हत्या के लिए नही होती अत मेरी आज्ञा को पाकर इस समय आराम करने के लिए अपने घर जाओ।

इस प्रकार वह उद्धत नायक के रूप मे हमारे सामने आता है। धनञ्जय ने धीरोद्धत नायक के गुण जो बतलाये हैं[3] वह हमे सभी उसमे प्राप्त होते हैं। वह अन्त मे जयन्त की तलवार के घाट उतरता है किन्तु उसके चरित्र-चित्रण मे प्रतिनायक के चरित्र के गौरव की रक्षा हुई है।

प्रतिनायक महेन्द्र भी वीर और अहकारी है। पवन गति से वह कनकवती की याचना करता है किन्तु जब पवनगति उसकी उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर देता है तो उसका क्रोध उद्दीप्त हो जाता है और वह पवनगति पर ससैन्य आक्रमण कर देता है। कवि ने उसके रौद्र रूप का विश्लेषण करते हुए लिखा है —

अथेति दूतादवगम्य सम्यग्विद्याधराणामधिप प्रवृत्तिम् ।
कराल कोपस्फुरदोष्ठपृष्ट क्षणादभूदभ्रकुटि भीषणास्य ॥[4]

अत स्पष्ट है कि वीरता के कारण अधीनस्थ राजा के आदेश न मानने पर महेन्द्र का क्रोध प्रज्ज्वलित हुआ है। उसके होठ फडकने लगते हैं और भ्रुकुटि तन जाती है।

---

१ जयन्तविजय, ६/५२।
२ वही, १०/७२।
३ दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्म परायण ।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थन ॥ —दशरूपक २/५, ६।
४ जयन्तविजय, १४/१।

वह बडा वीर, साहसी और स्वाभिमानी है। युद्ध मे उसके द्वारा छोड़े गये चक्र के भी निष्फल हो जाने पर वह हताश नही होता और उसी उत्साह से युद्ध करता है तथा जयन्त को तृणवत् समझता है –

श्रुत्वेति कोपान्वितधीर्नरेन्द्र सोऽप्याह योग्योऽस्मि न तेऽधुनाऽपि ।
गम्योऽस्ति गोमायुशिशो कदाचिद् गृध्रोऽपि किं रे हरिणाधिराज ॥[1]

इस प्रकार प्रतिनायक महेन्द्र भी वीर, साहसी पराक्रमी और प्रतिभाशाली नृपति है।

रस

महाकाव्य मे सभी रसो की योजना भी आवश्यक मानी गयी है क्योकि इसमे जीवन के विविध पक्षो का चित्रण होता है। इसीलिए सभी आलकारिको ने महाकाव्य मे रस की सत्ता को स्वीकार किया है। भामह के अनुसार—महाकाव्य मे सभी रसो का निर्देश पृथक्-पृथक् होना चाहिए।[2] दण्डी ने भी भामह के मत को स्वीकार किया है।[3] किन्तु महाकाव्य मे सभी रसो के होने पर भी प्रधान अथवा अङ्गी रस एक ही होता है और इसी रस का परिपाक महाकाव्य मे प्रमुख रूप से किया जाता है। विश्वनाथ ने शृङ्गार, वीर अथवा शान्त रस मे से ही किसी एक को अङ्गी रस के रूप मे मान्यता दी है तथा शेष रसो का वर्णन अङ्ग रूप मे स्वीकार किया है।[4]

'जयन्तविजय' महाकाव्य का अङ्गी रस वीर है क्योकि जयन्त की विजयो का ही वर्णन इस काव्य मे हुआ है। इस रस के अतिरिक्त विभिन्न प्रसङ्गो मे अन्य रसो की भी अवतारणा हुई है यथा नवम् सर्ग मे विक्रम सिंह के हाथी न लौटाने के प्रसङ्ग मे सिंहलि भूपति के दूत के क्रोधित होने पर रौद्र रस की योजना, श्मशान के वर्णन मे वीभत्स और भयानक रस की योजना, वनक्रीडा एव जलकेलि प्रसङ्गो मे सयोग शृङ्गार की योजना, छठे सर्ग मे अपने पुत्र शिशु जयन्त को देखकर विक्रमसिंह के हृदय मे उमड़ते हुए पुत्र प्रेम मे वात्सल्य रस की योजना तथा ससार की अनित्यता देखकर विक्रमसिंह के हृदय मे उत्पन्न विरक्ति मे शान्त रस की योजना आदि। इस प्रकार जयन्तविजय महाकाव्य मे सभी रसो का यथावसर परिपाक प्रस्तुत किया गया है।

छन्द

इस काव्य मे रसो के साथ ही छन्दो की अनिवार्यता पर भी बल दिया गया

---

१ जयन्तविजय, १४/१५।

२ युक्त लोकस्वभावैश्चरसैश्च सकलै पृथक्। —काव्यालकार १/२१।

३ अलकृतमसक्षिप्त रसभाव निरन्तरम्। —काव्यादर्श १/१८।

४ शृङ्गारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटक सन्धय ॥ —साहित्यदर्पण ६,३१६।

है जिसका विशद अध्ययन आगे किया जावेगा। काव्यशास्त्रियों ने कथा-प्रवाह को अवि-च्छिन्न बनाये रखने के लिए एक सर्ग मे एक ही छन्द की योजना का विधान किया है और वह विधान भी वर्णनानुकूल होना चाहिए। तभी कवि का काव्य छन्द शास्त्र की कसौटी पर खरा माना जावेगा। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सर्ग के अन्त मे सामान्यत वृत्त परिवर्तन पाया जाता है किन्तु कही-कहीं एक सर्ग मे अनेक छन्दो की योजना भी होती है।[1] जयन्तविजय महाकाव्य मे सामान्यत. एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। यथा—प्रथम सर्ग मे उपजाति, द्वितीय सर्ग मे वशस्थ, तृतीय सर्ग मे अनुष्टुप आदि। किन्तु कवि ने प्रत्येक सर्ग में छन्द-परिवर्तन भी स्वीकार किया है। यथा प्रथम सर्ग के अन्त मे शार्दूल विक्रीडित, द्वितीय सर्ग के अन्त मे शार्दूल विक्रीडित तथा हरिणी तथा तृतीय सर्ग के अन्त मे उपजाति, मन्दाक्रान्ता, प्रमाणिका, उपेन्द्रवज्रा तथा वसन्ततिलका आदि। इस प्रकार कवि अभयदेव ने जयन्तविजय महाकाव्य की रचना मे आचार्यों द्वारा निर्देश किये गये लक्षणो का पालन किया है तथा जिन छन्दो का इस महाकाव्य मे प्रयोग हुआ है वे है—उपजाति, शार्दूल विक्रीडितम्, वशस्थ, हरिणी, अनुष्टुप, मन्दाक्रान्ता, प्रमाणिका, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, पृथ्वी, रथोद्धता, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा, मालिनी, स्वागता तथा इन्द्रवज्रा।

अलङ्कार

रस यदि काव्य की आत्मा है तो अलङ्कार उसके शोभादायक आभूषणो की भाँति है। काव्य शोभा के लिए दोनो का ही महत्त्व है। इसीलिए महाकाव्य मे अलङ्कारो को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भामह के अनुसार महाकाव्य की भाषा अग्राम्य शब्दार्थों वाली तथा अलङ्कारो से युक्त होनी चाहिए।[2] दण्डी ने भी भामह के इसी मत का समर्थन किया है।[3] जयन्तविजय महाकाव्य मे अलकारो का विशद तथा चारु प्रयोग है किन्तु कवि के रचना कौशल से अलङ्कार काव्य मे स्वाभाविक तथा सहज निष्पन्न प्रतीत होते है। अलङ्कारो मे न तो काव्य मे कही दुरूहता आयी है और न ही कथा-प्रवाह मे किसी प्रकार की बाधा पडती है। शब्दालकारो का प्रयोग अत्यधिक मात्रा मे हुआ है। किन्तु चित्रालकार का प्रयोग काव्य मे कही पर भी नही हुआ है। अर्थालङ्कारो मे उपमा कवि को विशेष प्रिय है। इसके अतिरिक्त उपमारूपक, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, असगति, अपह्नुति, काव्यलिङ्ग, अर्थान्तरन्यास, विभावना, श्लेष इत्यादि अलकार काव्य को अपूर्व सौन्दर्य प्रदान करते हैं।

---

१ एकवृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै।
नानावृत्तमय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते। —साहित्यदर्पण ६/३२०-२१।

२ अग्राम्य शब्दमर्थञ्च सालङ्कार सदाश्रयम्। —काव्यालङ्कार १/१९।

३ अलकृतमसक्षिप्त रसभाव निरन्तरम्। —काव्यादर्श १/१८।

रीति

रीति भी रसाभिव्यक्ति का माध्यम है। अत रस से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार रीति गुणो का आश्रय लेकर विभिन्न रसो की अभिव्यक्ति मे सहायक होती है।[1] जयन्तविजय महाकाव्य की रीति वैदर्भी है। प्रसाद गुण सर्वत्र वर्तमान है। ओज तथा माधुर्य भी यथावसर प्राप्त होते हैं। दीर्घ समासो का प्रयोग कम हुआ है जिससे अर्थ की प्रतीति सरलता से हो जाती है।

इस प्रकार जयन्तविजय महाकाव्य मे महाकाव्य के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। कथानक के प्रवाह मे रोचकता है। कवि अभयदेव ने महाकाव्य के उन वर्णनो को कोई स्थान नही दिया है जिनके लिए कथानक मे कोई अवसर नही है। अलङ्कारो के प्रयोग मे स्वाभाविकता है। वर्णनात्मक स्थल भी पाठक की रुचि बनाये रखने मे पूर्ण समर्थ हुए हैं। अत स्पष्ट है, कि जयन्तविजय महाकाव्य संस्कृत महाकाव्य की परम्परा मे प्रमुख स्थान पाने का अधिकारी है।

---

१ गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन व्यनक्ति सा।
रसान ....। —ध्वन्यालोक ३/६।

तृतीय अध्याय

'जयन्तविजय' महाकाव्य की ऐतिहासिकता

'जयन्तविजय' महाकाव्य के कथानक का स्रोत एवं गठन

महाकाव्य के कथानक के सम्बन्ध मे अनेक आचार्यों ने अपने मत भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किये हैं। आचार्य भामह ने कथानक के विषय मे सकेत किया है कि यह महान् व्यक्तियो के विषय मे होता है।[1] दण्डी ने कथानक को इतिहास-प्रसिद्ध होना बताया है तथा उनके अनुसार इसका आश्रय कोई सज्जन व्यक्ति ही हो सकता है।[2] रुद्रट ने कथानक के उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो भेद बताये है।[3] विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य की कथा इतिहासोद्भूत अथवा किसी अन्य सज्जन पुरुष का आश्रय लेकर विरचित होती है।[4] इस प्रकार विश्वनाथ की परिभाषा आचार्य दण्डी के काफी निकट है। सस्कृत साहित्य मे इतिहास से तात्पर्य महाभारत, रामायण व पुराण आदि से लिया गया है। राजशेखर ने इतिहास को दो प्रकार का बतलाया है - (१) परक्रिया, (२) पुराकल्प। इनमे से परक्रिया मे एक ही नायक होता है तथा पुराकल्प मे अनेक नायक होते है। परक्रिया का उदाहरण उन्होने रामायण तथा पुराकल्प का उदाहरण महाभारत को माना है।[5] कौटिल्य ने इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का अन्तर्भाव माना है।[6]

सस्कृत के जैन कवियो का आदर्श भी यही महाकाव्यविषयक विचारधारा रही है। अत उनके महाकाव्यो पर इस विचारधारा का प्रभाव होना स्वाभाविक है किन्तु फिर भी अनेक स्थलो पर हमे विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती है इसका प्रमुख कारण जैनधर्म का प्रचार एव प्रसार है, क्योकि जैन सस्कृत काव्यो का कथा-स्रोत वैदिक पुराणो के स्थान पर लोकप्रचलित कथाओ एवं श्रमणिक परम्परा के

---

१ सर्गबन्धो महाकाव्य महताञ्च यत् महच्चयत्। —काव्यालङ्कार १ १९।
२ इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्। —काव्यादर्श १ १५।
३ सन्ति द्विधा प्रबन्धा काव्यकथाख्यायिकादय काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥
—रुद्रट काव्यालकार १६ २।
४ इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वासज्जनाश्रयम्। —साहित्य दर्पण ६ .१७।
५ परिक्रियापुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा।
स्यादेकनायकापूर्णा द्वितीया बहुनायका ॥
तत्र रामायण महाभारत चोदाहरणे। —काव्यमीमासा पृ० ८।
६ इतिहास श्रवणे पुराणमिति वृत्तमाख्यायिकोदाहरण।
धर्मशास्त्रमर्थशास्त्र चेतीतिहास ॥
—कौटिल्य, अर्थशास्त्र/प्रथम अधिकरण २-४, पृ० १३।

पुराणो से सग्रहीत है। महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य की कथावस्तु का आधार लोकप्रचलित कथाएँ रही हैं किन्तु फिर भी पात्रो की ऐतिहासिकता के आधार पर इसे एक मात्र लोकप्रचलित कथाओ पर ही आधारित महाकाव्य नही कहा जा सकता है, क्योकि इसमे मगध के जिन राजा विक्रमसिंह और उनके पुत्र जयन्त की विजयो का वर्णन किया गया है, वे मगध के पृथित सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय हैं।

जयन्तविजय महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग मे अघोरघण्ट योगी से दीक्षा लेकर एक नृपति का राज्य-प्राप्ति के लिए मान्त्रिक अनुष्ठान करना और उसमे नारी का बलिदान करने की तैयारी करना[1] ईसवी सन् की ११-१२वी शती की तान्त्रिक परम्परा का प्रतिफल है। इसी समय कापालिक और वाममार्गी श्री पर्वत से जालधर तक विचरण किया करते थे। इन्हे तन्त्र, मन्त्र, यक्षिणी, योगिनी, राक्षसी और पिशाची आदि देवियाँ सिद्ध थी। ई० सन् १०८२ मे गुणचन्द्र गणि विरचित 'महावीरचरिय' के चतुर्थ उल्लास मे आया है कि घोर शिव तपस्वी वशीकरण आदि विद्याओ मे निष्णात था। राजा नरसिंह ने उसे अपने मन्त्र बल से कोई कौतुक दिखाने की प्रार्थना की। घोर शिव ने कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के समय श्मशान मे जाकर अग्नितर्पण करने के लिए राजा से कहा। श्मशान मे पहुँचकर घोर शिव ने वेदिका रची, मण्डल बनाया। यह राजा का वध करना चाहता था, पर राजा ने किसी तरह इसके जाल से मुक्ति प्राप्त की।[2]

इसी प्रकार जयन्तविजय के चतुर्थ सर्ग मे जब राजा विक्रमसिंह वेश परिवर्तित कर नगर मे परिभ्रमण करते है तब एक श्मशानवासी सुर उनका मार्ग रोकता है। राजा विक्रमसिंह उस सुर को नमस्कार-मन्त्र के प्रभाव से परास्त करते हैं तथा सुर द्वारा दीन भाव से प्राणो की भिक्षा माँगने पर वे उसे छोड देते है। इस पर प्रसन्न होकर सुर विक्रमसिंह को एक ऐसा मुक्ताहार प्रदान करता है जिसके धारण करने से बन्ध्या स्त्री के भी पुत्र उत्पन्न होता है। कवि के शब्दो मे श्मशानवासी सुर कहता है—

इयमुदात्तसुताय मृगीदृशा भवति कण्ठतले विनिवेशिता।
इति निशम्य स ता द्रुतमाददे प्रणयिना हि समाधि विधिस्तथा ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, ४/३७ ४७।

२ घोर सिवेणावि आलिहिय मडल, निसन्नो तहि, निबद्ध तहि पडमासण, कय सकलीकरण, निवेशिआ नासावसग्गे दिट्ठो, कओ पाणायामो, नायविन्दुलवोववेय आढत्त मतसुभरण, समारुढो झाणपगरिसम्मि। इओ य चिंतिय राइणा ज थोभकरणविहिण मरण मह वछइ काउ ....। महावीरचरिय के चतुर्थ प्रस्ताव के रूप मे पृथक् मुद्रित नरविक्रमचरित्रम् नेमि विज्ञान ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि० स० २००८, पृ० १६-२०।

३ जयन्तविजय, ४।३४।

अर्थात् यह हार मृगनयनियो के कण्ठतल मे पहनाये जाने पर सुन्दर सन्तान के लिए होता है। यह सुनकर उन्होने उस हार को शीघ्र ले लिया, क्योकि प्रेमियो मे ऐसी ही समाधि विधि होती है अर्थात् ऐसा ही व्यवहार होता है।

कवि अभयदेव द्वारा प्रस्तुत यह वर्णन पौराणिक मान्यता पर आधारित है। प० भगवानदास द्वारा सम्पादित 'समराइच्चकहा' में भी इसी प्रकार की मान्यताएँ प्राप्त होती हैं। इसमे यह बताया गया है कि मनोहरदत्त सनत्कुमार को एक 'नयन मोहन'[1] नाम का चमत्कारपूर्ण वस्त्र देता है। उस वस्त्र की यह विशेषता है कि उससे आच्छादित व्यक्ति को कोई आँखो से देख नही सकता है। वस्त्र का प्रयोग करते ही व्यक्ति अदृश्य हो जाता है। इस प्रकार औषधि एव मन्त्रो के चमत्कार भी इस ग्रन्थ मे अकित है। 'जयन्तविजय' मे सुर द्वारा प्रदत्त हार भी उक्त वस्तुओ का सस्करण मात्र ही है। आधुनिक मन्त्र या तावीज उक्त हार का ही सक्षिप्त रूप है।

जयन्तविजय के चतुर्थ सर्ग मे राजा विक्रमसिंह बलि दी जाने वाली कन्या की रक्षा करते हैं। पञ्चम सर्ग मे एक सुर आकर बताता है कि वह उनकी पत्नी प्रीतिमती की ही बहन है—

देवोऽवदत्तदनु देव निवेद्यमान
जिज्ञासितु निजमिद शृणु रत्नपुर्याम्।
जज्ञे जितारिनृपतेर्दुहितेन्दुमत्या
श्री श्रीमतीयमनुजा तव पट्टराज्ञा ॥[2]

आगे चलकर राजा विक्रमसिंह का विवाह भी इसी कन्या से हो जाता है। इस प्रकार प्रीतिमती का नायिका की बहन होना तथा आगे चलकर नायक के साथ उसके विवाह हो जाने की घटना रत्नावली नाटिका[3] तथा कर्पूरमञ्जरी सट्टक[4] की घटना से मिलती जुलती है।

'रत्नावली' नाटिका मे उदयन का मत्री यौगन्धरायण अपने स्वामी का विवाह सिंहल की राजकुमारी रत्नावली से कराना चाहता है क्योकि रत्नावली को देखकर एक सिद्ध ने यह घोषणा की थी कि जो इस कन्या से विवाह करेगा वह चक्रवर्ती

---

१ भणिय च तेण, कुमार, सकोऽयति करिऊण गेण्हाहि एय नयणमोहणाभिहाण पऽरयणति। मए भणिय—'की इम कोउग ति। तेन भणिय। इमेण पच्छाइयसरीरो न दीसइ नयणेहिं पुरिसोत्ति।
—प० भगवानदास द्वारा सम्पादित समराइच्चकहा, अहमदाबाद, पृ० ४००।

२ जयन्तविजय, ५/१०।

३ श्री हर्ष, रत्नावली, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-२, १९६९।

४ राजशेखर कर्पूरमञ्जरी।

सम्राट् होगा किन्तु उदयन की प्रथम स्त्री वासवदत्ता के होते हुए रत्नावली के पिता ने जब इस विवाह के लिए स्वीकृति नहीं दी तो यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के जल मरने का समाचार सिहल पहुँचवाकर इस अभिनव विवाह के लिए सिहल-राज को प्रस्तुत कर लिया। उसने रत्नावली को अपने कञ्चुकी और प्रधानमन्त्री के साथ कौशाम्बी के लिए प्रस्थान करा दिया। मार्ग मे समुद्र मे जलयान के भग्न होने पर रत्नावली और उसके सरक्षक बच तो गये किन्तु रत्नावली से उनका साथ छूट गया। रत्नावली उदयन की राजधानी कौशाम्बी मे आयी और यौगन्ध-रायण के माध्यम से सागरिका नाम से परिचारिका के रूप मे राजा के अन्त पुर मे वासवदत्ता के साथ रहने लगी। वसन्तोत्सव के समय राजा उदयन तथा सागरिका की दृष्टि एक दूसरे पर पड़ती है। दोनो काम-भावना से विह्वल हो जाते हैं किन्तु वासवदत्ता के भय से परस्पर मिल नही पाते। वासवदत्ता को भी इस बात की जानकारी हो जाती है अत सागरिका को एकान्त स्थान मे रख देती है। एक दिन एक ऐन्द्रजालिक आकर अपना जाल बिखेरता है। इस पर रानी भयभीत होकर उदयन से सागरिका की रक्षा के लिए कहती है। राजा उदयन सागरिका की रक्षा करते है। उधर सिंहलराज का मन्त्री वसुभूति भी वहाँ आ जाता है और रत्नावली पहचान ली जाती है। इसी बीच यौगन्धरायण आकर अपनी योजना के लिए क्षमा माँगता है। रानी वासवदत्ता अपनी बहन रत्नावली को गले लगा लेती है और अपने आभूषणो से सुसज्जित करके उसका हाथ राजा को पकडाते हुए कहती है कि वह रत्नावली के साथ ऐसा स्नेहिल व्यवहार करें जिससे वह दूरस्थ बन्धुओ को भूली रहे।

इसी प्रकार 'कर्पूरमञ्जरी' सट्टक मे कर्पूरमञ्जरी राजा चन्द्रपाल की रानी विभ्रमलेखा की बहन है। एक दिन राजसभा मे भैरवानन्द नामक एक अद्भुत योगी आता है। राजा चन्द्रपाल योगी से कोई आश्चर्य दिखाने का अनुरोध करते हैं। विदूषक की सलाह से विदर्भ नगर की राजकुमारी को भैरवानन्द अपनी योग शक्ति से सबके सामने ला दिखाता है। राजा चन्द्रपाल उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं और उससे प्रेम करने लगते है। यह राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसी शशिप्रभा और मौसा वल्लभराज की पुत्री है। विदूषक के पूछने पर वह अपना परिचय देती है।

नायिका—अत्थि एत्थ बिदब्भ णाम णअर कुतलेपु, तहि सअलजण बल्लहो बल्लहराओ णाम राजा।

(कुन्तल देश मे विदर्भ नाम का नगर है। वहाँ सर्वजनप्रिय बल्लभ नाम का राजा है)

देवी—(स्वगतम्) जो मह माउस्सिआए पई होई। (जो मेरी मौसी के पति हैं)

नायिका—तस्स घरिणी ससिप्पहा णाम। (उनकी रानी का नाम शशि-प्रभा है।)

देवी—(स्वगतम्) सावि मे माउस्सिआ। (वह भी मेरी मौसी हैं।)

नायिका – तेहिं अहं उप्पण्णेत्ति। (उनसे मैं उप्पन्न हुई हूँ।)

देवी—(स्वगतम्) ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्तियन्तरेण ईदिसी रुअरेहा होदि। ण क्खु वेडुरिअ भूमिगब्भ भुप्पत्तिमंतरेण वेदुरिअमणिसलाआ णिप्पजई (प्रकाशम्) ण तुम कप्पूर मञ्जरी? देवी (मन मे) इस तरह की सुन्दर रूपरेखा शशिप्रभा के गर्भ के अतिरिक्त और कही से उत्पन्न नही हो सकती। विदूर्यमणि, वैदूर्यमणि की खान से ही निकल सकती है (प्रकाश मे) तो तुम क्या कर्पूरमञ्जरी .हो?

नायिका सलज्जमधो मुर्खी तिष्ठति (नायिका लज्जा के साथ मुख नीचा किये रहती है।)

देवी—एहि वहिणिए! आलिंगेसु म (इति परिष्वजते)।

(देवी, आओ बहिन! मुझसे मिलो तो) (आलिगन करती है।)

रानी विभ्रमलेखा बहन को पाकर अत्यधिक प्रसन्न होती है। और भैरवानन्द से कहकर कर्पूरमञ्जरी को कुछ दिन के लिए रोक लेती है। कुछ समय पश्चात् कर्पूरमञ्जरी भी राजा से प्रेम करने लगती है। रानी को जब यह पता चलता है तो वह उसे कठोर नियन्त्रण मे रखती है किन्तु वह भैरवानन्द से दीक्षा ले लेती है और योगीश्वर भैरवानन्द से गुरुदक्षिणा के लिए आग्रह करती है। भैरवानन्द लाट देश के राजा चण्डसेन की पुत्री घनसार मञ्जरी का राजा से विवाह कराने को कहता है, क्योकि ज्योतिषियो ने उसे चक्रवर्ती राजा की रानी होना बताया है। वह कहता है कि इस प्रकार महाराज भी चक्रवर्ती हो जावेंगे और मुझे भी दक्षिणा मिल जावेगी। रानी घनसार मञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी से भिन्न कोई स्त्री समझती है। राजा का विवाह घनसार मञ्जरी से हो जाता है किन्तु वह घनसार मञ्जरी कर्पूरमञ्जरी ही होती है। अन्त मे यह भेद खुल जाता है।

इसी प्रकार सिंहलभूपति के हाथी को विक्रमसिंह के द्वारा रोका जाना तथा हाथी मे दैवी चमत्कारो का समारोप करना भास के नाटको[1] एव प्राचीन प्रचलित अन्धविश्वासपूर्ण चमत्कारो का ही प्रभाव प्रतीत होता है। जयन्त-विजय महाकाव्य के नवम सर्ग मे वर्णन इस प्रकार आता है कि एक दिन सिंहलभूपति हरिराज का हाथी भाग जाता है और वह मगध की नगरी जयन्ती मे आ जाता है। राजा विक्रमसिंह को यह भविष्यवाणी सुनायी पड़ती है कि इस हाथी के प्रभाव से युवराज जयन्त खचरेश्वर होगे। कवि अभयदेव के शब्दो मे—

१ Sanskrit Drama, A. B. Keith, Oxford 1924, p 102

तदन्तरे श्रौतसुखैक पारणामिवादधद्भूमिपतेर्जनस्य च ।
वचो वरादित्युदियाय दैवत तवैष भावी खचरेश्वर सुत ॥
शुभोदयादस्य वशवदात्मना मयार्पितोऽत्रैष चकास्तु कुञ्जर ।
उदन्वता श्रीकुचकुम्भलालिते हरेर्यथा वक्षसि कौस्तुभो मणि ॥
अय गज सिंहलदेशभूपतेरभगुरैस्तै सुकृतै समाहृत ।
गृहाङ्गण प्राप मम प्रभावतो गृहाण त भो निगृहाण विद्विष ॥[1]

अर्थात् इसके बाद भूमिपति विक्रमसिंह तथा अन्य लोगो के कानो को सुख देने वाली देववाणी इस तरह से सुनायी पडी कि तुम्हारा यह पुत्र भावी स्वर्ग का स्वामी होगा । इसके सौभाग्योदय के कारण वशीभूत आत्मा वाले मुझसे समर्पित, लक्ष्मी के कुचकुम्भ से सुशोभित हरि के वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि के समान, यह कुञ्जर यहाँ पर सुशोभित है । यह हाथी सिंहलदेश के राजा का है जो उसके पुण्यो के क्षीण होने पर मेरे प्रभाव से आपके गृहाङ्गण मे प्राप्त हुआ है अत इसको पकडकर शत्रुता ग्रहण कीजिए ।

राजा विक्रमसिंह इस प्रकार भविष्यवाणी सुनते ही उस हाथी को पकड कर उसकी पूजा करते हैं –

शशाम यावत्तद मानव वचो महीपतिस्तावदिभेन्द्रमात्मना ।
सुगन्ध धूपप्रसवैरपूजयज्जयास्पद चक्रमिवाशु चक्रभृत् ॥[2]

अर्थात् जब तक वह देववाणी समाप्त हुई तब तक राजा ने अपने आप विजयसूचक चक्ररूप उस गजराज की सुगन्धित धूप से विष्णु की भाँति पूजा की ।

सिंहलभूपति हरिराज के इस गजराज की भाँति ही नाटककार भास के 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण'[3] नामक नाटक मे हाथी मे चमत्कारो का वर्णन प्राप्त होता है । नाटक के प्रथम अङ्क मे उदयन बिना किसी को सूचित किये हुए प्रात काल नागवन को जाकर वहाँ एक नीला हाथी देखते हैं और उसे चक्रवर्ती हाथी समझकर पकडने का प्रयास करते है । किन्तु वह एक कृत्रिम हाथी है क्योकि हाथी के पास मे जाने पर उसमे से अस्त्रधारी योद्धा निकल पडते है । उदयन इसे प्रद्योत का कपट समझते हैं और अपने सीमित सैनिको के साथ वहाँ युद्ध करते है किन्तु शत्रु की प्रबल सेना के द्वारा वे बन्दी बना लिए जाते है । इधर यौगन्धरायण को जब यह पता चलता है तो वह प्रतिज्ञा करता है कि—

---

१ जयन्तविजय, ६/६-११ ।
२ वही, ६/१२ ।
३ भास नाटक चक्र, भाग २ ।

सुभद्रामिव गाण्डीवी नाग पद्मलतामिव ।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायण ॥[1]

अर्थात् जिस प्रकार कमलवल्ली को हाथी सहज ही तोड डालता है और सुभद्रा को अर्जुन लेकर भागे थे उसी प्रकार यदि राजा उस (प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता) को न हर लें तो मैं यौगन्धरायण नही ।

अपि च—

यदि ता चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम् ।
नाहरामि नृप चैव नास्मि यौगन्धरायण ॥[2]

अर्थात् यदि मैं उस (घोषवती वीणा) को, नलागिरि हाथी को, उस विशाल नयन वाली (वासवदत्ता का) तथा राजा (वत्सराज) को हर कर (कौशाम्बी) न ले जाऊँ तो मेरा यौगन्धरायण नाम नहीं ।

नाटक के चतुर्थ अङ्क मे यौगन्धरायण अपनी युक्तियो द्वारा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेता है तथा नलागिरि हाथी के प्रभाव से उदयन चक्रवर्ती सम्राट बनता है । इम प्रकार जयन्त विजयकार कवि अभयदेव ने अपने महाकाव्य मे भास के 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' नाटक से हाथी मे चमत्कारो की भावना को ग्रहण किया है । 'जयन्तविजय' मे भी हाथी वापस न करने पर हरिराज तथा जयन्त के मध्य युद्ध होता है किन्तु हाथी के प्रभाव से जय लक्ष्मी जयन्त को प्राप्त होती है तथा आगे चलकर वे चक्रवर्ती सम्राट बनते है ।[3]

जयन्त का सेना मे अदृश्य होना और पवनगति की पुत्री कनकवती से उनका विवाह होना वर्धमान कवि द्वारा विरचित वरागचरित[4] से लिया गया है । वराग-चरित मे राजा धर्मसेन अपने पुत्र वराग के श्रेष्ठ गुणो की प्रशसा सुनकर अपने अन्य पुत्रो के रहते हुये भी उन्हे युवराज बना देते है । किन्तु वराग के इस अभ्युदय से उनकी सौतेली माता मृगसेना तथा सौतेले भाई सुषेण को ईर्ष्या होती है और वे सुबुद्धि मन्त्री से मिलकर षड्यन्त्र करते है । मन्त्री के द्वारा शिक्षित घोडा वराग को दिया जाता है । वराग उस घोडे पर जैसे ही बैठते है कि वह घोडा हवा से बाते करने लगता है । वह नदी, सरोवर, वन, अटवी को पार करता हुआ आगे बढता है तथा एक कुएँ मे वराग को गिरा देता है । वराग कुएँ से किसी प्रकार बाहर

१ भास नाटक चक्र, भाग २, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, ३/८ ।
२ वही, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, ३/९ ।
३ जयन्तविजय, सर्ग १०-११ ।
४ यह महाकाव्य मराठी अनुवाद सहित प० जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले द्वारा सम्पादित होकर राव जी सखाराम दोशी, सोलापुर द्वारा सन् १९२७ मे प्रकाशित है ।

निकलते हैं तथा अनेक विघ्न-बाधाओ से अपने प्राणो की रक्षा करते हुए सागरवृद्धि के वजीर से मिल जाते हैं तथा वही डाकुओ एव सार्थवाहो के युद्ध मे सागरवृद्धि की सहायता कर ललितपुर मे ही रहने लगते है। इधर राजा धर्मसेन वराग के गायब हो जाने से अत्यन्त दु खी होते है। एक दिन मथुराधिपति इन्द्रसेन का पुत्र उपेन्द्रसेन ललितपुर के नृपति से अप्रतिमल्ल नामक हाथी माँगता है किन्तु उनके न देने पर वह क्रुद्ध होकर ललितपुर पर आक्रमण कर देता है। दोनो मे घमासान युद्ध होने पर वराग की सहायता से ललितपुर का राजा विजयी होता है। ललितपुर का नृपति कुमार वराग के बल-पराक्रम से प्रसन्न होकर उन्हे अपनी कन्या सुनन्दा और आधा राज्य प्रदान करता है। इधर वराग के लुप्त हो जाने पर उनका सौतेला भाई सुषेण उत्तमपुर का राज्य सँभालता है किन्तु अपनी अयोग्यता के कारण शासन मे असफल रहता है। उसकी इस दुर्बलता तथा धर्मसेन के बुढापे का अनुचित लाभ उठा कर वकुलाधिपति उत्तमपुर पर आक्रमण कर देता है। धर्मसेन ललित-पुराधिपति से सहायता माँगता है। वराग इस अवसर पर जाकर वकुलाधिपति के दाँत खट्टे करते है। उत्तमपुर की जनता वराग का स्वागत करती है तथा पिता-पुत्र का मिलन होता है।

कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय'[1] महाकाव्य मे भी इसी प्रकार का प्रसग आता है कि दिग्विजय के उपरान्त सेना के मध्य से जयन्त अदृश्य हो जाते हैं जिससे महाराज विक्रमसिह बहुत विकल होते है। विद्याधर नरेश महेन्द्र अपने पुत्र के लिए गगन विलासपुर के राजा पवनगति से उसकी पुत्री कनकवती की याचना करता है। पर पवनगति उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर देता है। कनकवती अनुरूप वर की प्राप्ति के लिए शासन देवता की आराधना करती है। प्रसन्न होकर शासन देवता उसके लिए जयन्त का अपहरण करके जिन मन्दिर पर ले जाती है। यहाँ जयन्त जिनबिम्बि के दर्शन कर धर्मसूरि की देशना सुनते है और श्रावक धर्म स्वीकार करते है। एक दिन उपवन मे जयन्त और कनकवती एक दूसरे को देखते हैं तथा परस्पर मुग्ध हो जाते है। पवनगति भी कनकवती का विवाह जयन्त के साथ कर देता है, किन्तु जब महेन्द्र चक्रवर्ती को यह ज्ञात होता है कि पवनगति ने उसके पुत्र की उपेक्षा कर अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह पवनगति पर आक्रमण कर देता है। युद्ध मे जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होती है। जयन्त महेन्द्र पुत्र को करद बनाकर पवनगति के साथ अपने नगर को लौट आते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने यह कथानक वरांगचरित से लिया है क्योंकि 'वरागचरित' मे मन्त्री सुबुद्धि कुमार वराग का अपहरण एक घोडे

१ जयन्तविजय, सर्ग १२-१४।

को सिखाकर करवाता है तथा 'जयन्तविजय' मे जयन्त का अपहरण शासन देवता के द्वारा होता है। 'वरागचरित' मे वराग का विवाह अपहरण काल मे होता है क्योकि ललितपुराधीश अपनी कन्या का विवाह कुमार वरांग के बल-पराक्रम से सन्तुष्ट होकर करता है तथा जयन्तविजय मे भी जयन्त का विवाह अपहरण काल मे होता है। जयन्त भी अपने श्वसुर पवनगति को महेन्द्र चक्रवर्ती का बध करके सन्तुष्ट करते है।

जयन्त का दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना एव रति सुन्दरी के स्वयवर मे जाना जिनसेन के महापुराण[1] और कालिदास के रघुवश[2] से ग्रहीत है। महापुराण मे कथानक इस प्रकार आता है कि भरत दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते है[3] और सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर जाते हैं।[4] मार्ग मे अनेक मण्डलेश्वर उन्हे प्रणाम करते हैं।[5] भरत अपने पास आये हुए राजाओ की भेट स्वीकार कर आगे बढ जाते हैं।[6] भील जगली हाथियो के दाँत और मोती भेटकर उनके दर्शन करते हैं।[7] म्लेच्छ राजा उन्हे चमरी गाय के बाल तथा कस्तूरी मृग की नाभि देते हैं।[8] आगे चलकर वे अन्तपालो के लाखो किले अपने वश मे करते हैं।[9] इसके बाद वे गङ्गा नदी के तट पर होते हुए समुद्र पर पहुंचते है।[10] मागधदेव चक्रवर्ती भी अपना गर्व छोडकर हार एव कुण्डल भेट करता है[11] तथा उनकी रत्नो से पूजा करता है।[12] पूर्व दिशा को जीतने के बाद भरत जिनेन्द्र देव की पूजा कर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते है।[13] मार्ग मे अनेक शत्रु राजा गण अपना सर्वस्व देकर उन्हे प्रणाम करते है तथा अपनी अधीनता स्वीकार करते है।[14] इसके बाद उत्तम-उत्तम मणियो को भेट कर नमस्कार करते हुए अग देश के राजाओ पर, ऊँचे हाथियो को भेट कर नमस्कार करते हुए वग देश के राजाओ पर और मणि तथा हाथी दोनो भेट करते हुए कलिग देश के राजाओ पर भरत बहुत प्रसन्न होते है।[15] तदनन्तर वे कुरु, अवन्ती, पाचाल, काशी, कोशल और विदर्भ देश के राजाओ को जीतते है[16] तथा मद्र, कच्छ, चेदि, वत्स, सुह्म, पुण्ड, औण्ड और गौड देशो मे उनकी विजय-घोषणा

---

१ महापुराण, ज्ञानपीठ० १६५१, पर्व २८-३७।
२ रघुवश, रघु दिग्विजय चतुर्थ सर्ग एव इन्दुमती स्वयवर षष्ठ सर्ग।
३ महापुराण २८/१।
४ वही, २८/५।
५ वही, २८/२४।
६ वही, २८/२६।
७ वही, ८/३७।
८ वही, २८/४२।
६ वही, २८/४३।
१० वही २८/४५।
११ वही, २८/१६५।
१२ वही, २८/१६६।
१३ वही, २६/१।
१४ वही, २६/१२-३७।
१५ वही, २६/३८।
१६ वही, २६/४०।

सुनायी जाती है।[1] इसके बाद वे दक्षिण मे त्रिकलिंग, औद्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेट और पन्नग देशो को जीतते हैं[2] तथा कूट, ओलिक, महिष, पाण्डय और अन्तर पाण्ड्य देश के राजाओ को दण्ड रत्न के द्वारा अपने वशीभूत करते हैं।[3] फिर महेन्द्र पर्वत का उल्लघन कर विन्ध्याचल के समीपवर्ती प्रदेशो को जीतते हुए नाग पर्वत पर चढकर मलय पर्वत पर पहुँचते है।[4] दक्षिण दिशा के राजाओ को जीतने के बाद वे पश्चिम दिशा की ओर मुड जाते है[5] तथा मार्ग मे किन्नरियो के द्वारा गाया जाता हुआ अपना यशगान सुनते है।[6] विन्ध्याचल के वनो मे निवास करने वाले राजा गण उन्हे बडी-बडी औषधियाँ भेटकर दर्शन करते हैं।[7] काम्बोज, बाह्लीक तथा सैन्धव आदि देशो के राजा भी उन्हे घोडे देते है।[8] वे मार्ग मे पहाडी राजाओ को जीतते है।[9] इसके पश्चात् उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं[10] तथा विजयार्ध पर्वत पर पहुँचते है।[11] विजयार्ध देव भी चक्रवर्ती को नमस्कार कर उनकी अधीनता स्वीकार करता है तथा रत्न भेट करता है।[12] आगे चलकर उनका सेनापति म्लेच्छ राजाओ को वश मे करता हैं।[13] मार्ग मे देवगण उनके पराक्रम से सन्तुष्ट होकर पुष्पो की वर्षा करते है।[14] आगे वे हेमकूट पर्वत पर जाकर किन्नरो के द्वारा गाये जाते हुए अपने यश को सुनते है।[15] इस प्रकार अपने पुण्यो से भरत हिमालय से लेकर पूर्व दिशा के समुद्र तक तथा दक्षिण समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश मे करते है[16] और दिग्विजयोपरान्त अपनी नगरी अयोध्या को वापस लौटते है।[17]

इसी प्रकार कालिदास विरचित 'रघुवश' महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग मे रघु की दिग्विजय का वर्णन किया गया है। रघु भी सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं तथा मार्ग मे राजाओ को पराजित करते हैं।[18] इसके बाद वे समुद्र तट पर पहुँचते हैं।[19] यहाँ पर सुम्ह देश के राजा अपना अभिमान त्याग कर रघु की अधीनता स्वीकार करते हैं।[20] बग राजाओ को पराजित करने के पश्चात् वे अपनी

---

१ महापुराण, २६/४१।
२ वही, २६/७६।
३ वही, २६/८०।
४ वही, २६/८८।
५ वही, ३०/१।
६ वही ३०/२६।
७ वही, ३०/६२।
८ वही, ३०/१०७-१०८।
६ वही, ३०/११०।
१० वही, ३१/१।
११ वही, ३२/३२।
१२ वही, ३२/४०-४२, ४८।
१३ वही, ३२/१३४।
१४ वही, ३२/८८।
१५ वही, ३२/१३८।
१६ वही, ३२/१६६।
१७ वही, ३३/१।
१८ रघुवश, ४/३३।
१६ वही, ४/३४।
२० वही, ४।३५।

विजय का झण्डा गाड़ देते हैं ।[1] मार्ग में वे उन राजाओं को पुनः प्रतिष्ठित कर देते हैं जो उनकी शरण में आकर धन भेंट करते हैं ।[2] आगे चलकर वे हाथियों का पुल बनाकर कपिशा नदी को पार करते हैं ।[3] यहाँ पर उड़ीसा के राजा आकर उनकी अधीनता स्वीकार कर कलिङ्ग देश का मार्ग बताते हैं । रघु कलिङ्ग देश को जीतने के लिए आगे बढ़ जाते हैं ।[4] महेन्द्र पर्वत पर पहुँच कर वे अपना पड़ाव डालते हैं ।[5] तदनन्तर कलिङ्गराज से युद्ध कर विजय लक्ष्मी प्राप्त करते हैं ।[6] महेन्द्र राज के अधीनता स्वीकार करने पर वह उन्हें छोड़ देते हैं ।[7] पूर्व दिशा को जीतने के बाद रघु दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं ।[8] मलयगिरि पर पहुँच कर वह दक्षिण के पाण्ड्य नरेशों को जीतकर उनकी भेंट स्वीकार करते हैं ।[9] इसके पश्चात् पश्चिम के राजाओं से कर ग्रहण करते हैं किन्तु पश्चिम के घुड़सवार राजाओं से उनका युद्ध भी होता है । युद्ध में विजय रघु की होती है तथा पराजित राजा रघु की शरण में आ जाते हैं ।[10] पश्चिम दिशा के बाद रघु उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं और हूण तथा कम्बोज नरेशों को परास्त करते हैं ।[11] कम्बोज नरेश रघु को बहुत से घोड़े तथा धन भेंट स्वरूप देते हैं ।[12] इसके पश्चात् रघु हिमालय पर्वत पर जाते हैं तथा पहाड़ियो को परास्त करते हैं ।[13] किन्नरगण रघु की वीरता का गान करते हैं ।[14] पहाड़ी राजा रघु को रत्न भेंट करते हैं ।[15] तदनन्तर रघु वहाँ से असम की ओर प्रस्थान करते हैं । असम के राजा हाथी भेंट कर रत्नो से उनकी पूजा करते हैं ।[16] इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने के बाद रघु अयोध्या नगरी की ओर लौटते हैं ।[17]

इस प्रकार जिनसेन द्वारा 'महापुराण' मे वर्णित भरत तथा कालिदास द्वारा 'रघुवश' मे वर्णित रघु के दिग्विजय के आधार पर ही कवि अभयदेव ने भी अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे जयन्त की दिग्विजय का वर्णन किया है । भरत तथा रघु की भाँति जयन्त भी सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं ।[18] मार्ग मे अनेक राजा अपना सर्वस्व दान कर तथा अभिमान छोड़कर उनकी शरण लेते हैं ।[19]

---

१ जयन्तविजय, ४/३६ ।
२ वही, ४/३७ ।
३ वही, ४/३८ ।
४ वही, ४/३८ ।
५ वही, ४/३६ ।
६ वही, ४/४०-४१ ।
७ वही, ४/४३ ।
८ वही, ४/४४ ।
६ वही, ४/४६-५० ।
१० वही, ४/५८-६४ ।
११ वही, ४/६६ ।
१२ वही, ४/६८-६६ ।
१३ वही, ४/७० ।
१४ वही, ४/७८ ।
१५ वही, ४/७६ ।
१६ वही, ४/८३-८४ ।
१७ वही, ४/८५ ।
१८ वही, ११/२ ।
१६ वही, ११/७ ।

वे सर्वप्रथम पूर्वीय पर्वतो की तटी मे निवास करने वाले भिल्लों को जीतते हैं।[१] इसके पश्चात् सुह्मानो के तेज को नष्ट करते है।[२] उनके पराक्रम से भयभीत होकर गौड उन्हे हाथी भेंटकर अपनी अधीनता स्वीकार करते है।[३] इस प्रकार वे अपने शत्रुओ को शान्त करते हुए समुद्र तट पर पहुँचते हैं।[४] यही पर वे बग देश के भूपालो को पराजित कर अपने जयस्तम्भो की स्थापना करते हैं।[५] इसके पश्चात् वे अपने प्रताप से कपिशा नदी को सुखाते हुए कलिङ्ग राज की ओर प्रस्थान करते हैं तथा महेन्द्र पर्वत पर जाकर उन्हे परास्त करते है।[६] रानियो द्वारा भिक्षा माँगने पर वे उनके पुत्रो को राज्य पर अभिषिक्त कर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ जाते है।[७] आगे चलने पर वे रेवा नदी पर पहुँचते है तथा वहाँ पर किन्नरियो के द्वारा गाये जाते हुए अपने यश को सुनते है।[८] रेवा नदी मे उनके हाथी स्नान करते है।[९] इसके पश्चात् वे केरल की ओर प्रस्थान करते है तथा केरल निवासी अपनी पराजय स्वीकार कर उन्हे प्रणाम करते है।[१०] आगे वे मलयानिल पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं और पराक्रम से पर्वतीयो को जीत कर उपायन स्वीकार करते हैं।[११] इसके बाद वे पाण्डु देश की ओर मुडते है और पाण्डु नरेश को पराजित कर युद्ध की चरितार्थता को सिद्ध करते है।[१२] वे ताम्रपर्णी नदी पर पहुँचते है।[१३] काञ्ची नरेश अपने को असहाय पाकर उन्हे अपना सर्वस्व भेट कर उनके शासन को स्वीकार करता है।[१४] तदनन्तर वे कर्णाटक[१५] तथा लङ्का[१६] पर विजय प्राप्त करते है और पश्चिम दिशा की ओर मुड जाते हैं।[१७] यहाँ पर उनका युद्ध पश्चिम देश के वासियो से होता है।[१८] किन्तु अन्त मे विजय-लक्ष्मी जयन्त को प्राप्त होती है।[१९] इसी समय उनके पराक्रम से सन्तुष्ट होकर देवता लोग आकाश से पुष्प वृष्टि करते है।[२०] इस प्रकार पश्चिम दिशा को जीत कर[२१] वे उत्तर दिशा[२२] की ओर प्रस्थान करते है तथा हूणो को पराजित करते है।[२३] इसके बाद वे हिमालय पर्वत पर पहुँचते है।[२४] यहाँ पर व वनेचरो को जीतते है तथा वे वनेचर हाथ जोडते हुए उन्हे मणि, सुवर्ण,

---

१ जयन्तविजय, ११/८।
२ वही, ११/९।
३ वही, ११/१०।
४ वही ११/११।
५ वही, ११/१५।
६ वही, ११/१७, १८, २०-२२।
७ वही, ११/२३।
८ वही, ११/२९।
९ वही, ११/३१।
१० वही, ११/३२, ३६।
११ वही ११/३७, ४२।
१२ वही, ११/४४, ४६, ४७।
१३ वही, ११/४९।
१४ वही, ११/५४।
१५ वही, ११/५८।
१६ वही, ११/५९।
१७ वही, ११/६२।
१८ वही, १८/६८-७४।
१९ वही, ११/७५।
२० वही, ११/७६।
२१ वही, ११/७७।
२२ वही, ११/७८।
२३ वही, ११/८३।
२४ वही, ११/८४।

तथा रत्न भेंट करते हैं ।[1] तदनन्तर वे कामराज से सम्मानित होते हुए जयन्ती नगरी की ओर लौटते हैं ।[2]

अस स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य में जो जयन्त की दिग्विजय का वर्णन किया है उसका आधार जिनसेन के 'महापुराण' मे वर्णित भरत की दिग्विजय तथा कालिदास के 'रघुवश' मे वर्णित रघु की दिग्विजय रही है । भरत तथा रघु जिस प्रकार दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा के राजाओ को जीतकर अपनी नगरी अयोध्या को वापस आते है । ठीक उसी प्रकार जयन्त भी दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशा के उन्ही राजाओ को जीतकर अपनी नगरी जयन्ती को वापस आते हैं ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य के षोडश सर्ग मे वर्णित रतिसुन्दरी के स्वयंवर का आधार भी 'रघुवंश' महाकाव्य के षष्ठ सर्ग मे वर्णित इन्दुमती का स्वयवर रहा है । 'रघुवश' महाकाव्य मे विदर्भ देश का राजा भोज अपनी बहन इन्दुमती के स्वयवर मे अज को बुलाने के लिए अपना दूत रघु के पास भेजते हैं ।[3] रघु अपने पुत्र अज को विदर्भ देश के लिए विदा करते है ।[4] मार्ग मे विदर्भराज अज का स्वागत करते है[5] तथा सम्मान सहित अपनी नगरी मे ले आते है ।[6] दूसरे दिन प्रात काल सूतो के पुत्र अज को स्तुति करके जगाते है ।[7] अज प्रात काल की क्रियाएँ कर तैयार होकर स्वयवर देखने जाते है ।[8] अज को स्वयवर में आया हुआ देखकर अन्य राजागण इन्दुमती को पाने की आशा छोड देते हैं ।[9] अज राजा भोज द्वारा निर्दिष्ट स्वर्ण-निर्मित उच्च सिंहासन पर बैठते है ।[10] इसी बीच इन्दुमती पालकी पर चढकर स्वयवर भूमि मे आती हैं ।[11] इन्दुमती को देखकर राजागण अपनी शृङ्गारिक चेष्टाएं व्यक्त करते हैं ।[12] इसी बीच प्रतिहारी सुनन्दा इन्दुमती को उन राजाओ का क्रमश परिचय देती है ।[13] सुनन्दा राजकुमारी इन्दुमती को एक राजा से दूसरे राजा के पास लेकर उसी प्रकार बढ जाती है जिस प्रकार वायु से उठी हुई लहर के सहारे मानसरोवर की हंसिनी एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँच जाती है ।[14] सुनन्दा अन्य राजाओ का भी परिचय देती है किन्तु इन्दुमती आगे ही

---

१ जयन्तविजय, ११/८८-८९ ।
२ वही, ११/९२ ।
३ रघुवश, ५/३९ ।
४ वही, ५/४० ।
५ वही, ५/६१ ।
६ वही, ५/६२ ।
७ वही, ५/६५-७५ ।
८ वही, ५/७६ ।
९ वही, ६/२ ।
१० वही, ६/३-४ ।
११ वही, ६/१० ।
१२ वही, ६/११-१९ ।
१३ वही, ६/२२-२५ ।
१४ वही, ६/२६ ।

बढ़ती रहती है ।[१] जिस प्रकार राजमार्ग पर चलने वाला दीपक पीछे के महलों पर अँधेरा छोड़ जाता है ठीक उसी प्रकार जिन-जिन राजाओ को छोड़ कर इन्दुमती आगे बढ़ जाती है । उनका मुख उदास हो जाता है ।[२] इन्दुमती अज को देखकर रुक जाती है ।[३] सुनन्दा इन्दुमती के मन की बात को जान कर अज के कुल, रूप, यौवन की भूरि-भूरि प्रशसा करती है ।[४] वह अज से विवाह भी करने को कहती है ।[५] इन्दुमती अज के गले मे जयमाल डाल देती है ।[६] नगरवासी इन्दुमती की प्रशसा करते हैं किन्तु अन्य राजा उनकी बातो को सुनकर मन ही मन कुढते है ।[७] इन्दु-मती का विवाह अज के साथ हो जाता है ।[८] अज अपनी पत्नी के साथ अयोध्या लौटते है ।

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य के षोडश सर्ग मे एक दिन हस्तिनापुर के राजा वैरिसिंह का दूत आकर सूचना देता है कि रतिसुन्दरी का स्वयवर होने वाला है ।[९] स्वयवर मे यद्यपि अनेक राजाओ को आमन्त्रित किया गया है[१०] किन्तु रतिसुन्दरी जयन्त को चाहती है ।[११] विक्रम सिंह जयन्त को भेजते है ।[१२] जयन्त अपनी सेनाओ के भार से पृथ्वी को नत करते हुए वैरिसिंह की राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं ।[१३] जयन्त को आया हुआ जान कर मार्ग मे वैरिसिंह उनकी अग वानी के लिए जाते हैं और सम्मान सहित अपनी पुरी मे ले आते है ।[१४] दूसरे दिन प्रात काल बन्दियो की ध्वनि से जग कर जयन्त स्वयवर देखने के लिए तैयार होते हैं[१५] तथा स्वयवर मण्डप मे जाते है ।[१६] वहाँ पर वैरिसिंह द्वारा निर्दिष्ट स्वर्ण निर्मित उच्च सिंहासन पर बैठते हैं ।[१७] इसी बीच मागधो के मागलिक गीतो एव वाद्यो के साथ रतिसुन्दरी स्वयवर मे प्रवेश करती है ।[१८] युवराज जयन्त को स्वयवर मण्डप मे आया हुआ देखकर राजा लोग उसकी प्राप्ति की अभिलाषा अपने मन मे निकाल देते हैं ।[१९] किन्तु फिर भी कुछ राजागण उसे देखकर अपनी शृङ्गारिक चेष्टाएँ व्यक्त करते हैं ।[२०] इसी समय बन्दियो की आवाज को रोककर वेत्रधारी क्रमश उन राजाओ का परिचय देती है ।[२१] किन्तु पसन्द न आने के कारण वेत्रधारी रति-

१ जयन्तविजय, ६/२७-६६ ।
२ वही, ६/६७ ।
३ वही, ६/६९ ।
४ वही, ६/७०-७८ ।
५ वही, ६/७९ ।
६ वही, ६/८३ ।
७ वही, ६/८५ ।
८ वही, ७/१ ।
९ वही, १६/१-७ ।
१० वही, १६/८ ।
११ वही, १६/९ ।
१२ वही, १६/११ ।
१३ वही, १६/१२ ।
१४ वही, १६/१५-१७ ।
१५ वही, १६/२० ।
१६ वही, १६-२२ ।
१७ वही, १६/२३ ।
१८ वही, १६/२७, २८, ३५ ।
१९ वही, १६/३६ ।
२० वही, १६/३८-४६ ।
२१ वही, १६/४७-५७ ।

सुन्दरी को शीघ्र ही एक राजा से दूसरे राजा के सामने उसी प्रकार ले जाती है जिस प्रकार तरङ्ग पद्धति से हंसिनी एक कमल को छोड़कर दूसरे कमल पर चली जाती है।[1] वेत्रधारी अन्य राजाओं का भी परिचय देती है किन्तु वह आगे बढ़ती जाती है।[2] रतिसुन्दरी गुरुतर काम से विह्वल जिन राजाओ को छोड़कर आगे बढ़ती है वे राजा उसके अञ्जन से युक्त नेत्रो से देखे गये श्यामता को प्राप्त होते हैं।[3] जयन्त को देखकर रति सुन्दरी रुक जाती है।[4] वेत्रधारी भी रति सुन्दरी के मन की बात को जानकर जयन्त के रूप-सौन्दर्य एव पराक्रम की भूरि-भूरि प्रशसा करती है[5] तथा जयन्त का वरण करने को कहती है।[6] रतिसुन्दरी जयन्त के गले मे जय-माल डाल देती है।[7] स्वयवर मे आये हुए अन्य राजा लोग जयन्त से ईर्ष्या करते हैं।[8] किन्तु पुरवासी लोग अपनी मागलिक कामनाये व्यक्त करते हुए रतिसुन्दरी की प्रशसा करते है।[9] जयन्त तथा रतिसुन्दरी का विवाह हो जाता है।[10] कुछ दिनो के बाद जयन्त रतिसुन्दरी के साथ अपनी नगरी जयन्ती को चले आते हैं।

अत स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने कालिदास के इन्दुमती के स्वयवर के भावो को लेकर अपने शब्दो मे रतिसुन्दरी के स्वयवर के माध्यम से व्यक्त किये हैं। किन्तु कवि द्वारा प्रस्तुत इन भावो मे यत्र-तत्र परिवर्तन कवि की प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये हुये है।

इस प्रकार 'जयन्तविजय महाकाव्य की कथावस्तु का स्रोत अपने समय की प्रचलित लोककथाओ से पूर्णरूपेण प्रभावित है और कवि ने उसे महाकाव्य का रूप देने का प्रयास किया है। महाकाव्य के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है, कि कवि अभयदेव ने अपने पूर्ववर्ती कवियो की कृतियो का भली-भाँति अध्ययन किया था। अत उनका प्रभाव इस महाकाव्य मे आ जाना स्वाभाविक ही है।

मुख्य पात्रो की ऐतिहासिकता एवं चरित्र चित्रण

कवि अभयदेव ने अपने महाकाव्य मे ऐसे पात्रो को स्थान दिया है, जिनके नाम से ही उनके गुणो का पता चल जाता है। सर्वप्रथम वे अपने प्रभाव से विख्यात त्रिभुवन के हृदयग्राही, धर्म, अर्थ, काम की असीम विशेषता वाले, वीरव्रतधारियो के लिए अलकरणभूत श्रीयुत जयन्तराज के चरित्र के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं—

---

१ जयन्तविजय, १६/५८।
२ वही, १६/५६-७१।
३ वही, १६/७२।
४. वही, १६/७३।
५ वही, १६/७३-८५।
६ वही, १६/८६।
७ वही, १६/८७।
८ वही, १६/८६।
६. वही, १६/६२।
१० वही, १६/६४।

एतत्प्रभावप्रथित त्रिलोकीहृद्य त्रिवर्गानुपम प्रकर्षम् ।
वीरव्रतालकरण चरित्र श्रीमज्जयन्तस्य नृपस्य वक्ष्ये ॥[१]

इसीलिए वे सज्जनो द्वारा विलसित लक्ष्मी वाले, देदीप्यमान सुमेरु पर्वत के समान, प्रदीप्त दीपशिखा के समान तथा सारे द्वीपो के समुद्र मे सुधा के समान जम्बूद्वीप को मध्य मे स्थित बताते है—

मध्येऽखिलद्वीप समुद्रसौध चञ्चत्सुवर्णाद्रिशिखावतस ।
दीपप्रदीपप्रतिमोऽस्ति जम्बूद्वीप सदालोक विलास लक्ष्मी ॥[२]

इसी जम्बूद्वीप के क्रोड मे भारतवर्ष नामक क्षेत्र मे मगध नामक देश है। जहाँ पर सुन्दर अङ्गहारो द्वारा कल्याण परम्पराओ से रात-दिन लक्ष्मी नृत्य किया करती है—

तस्यावतसे भरताभिधाने क्षेत्रेऽस्ति देशो मगधाभिधान ।
कल्याणवृन्दै रुचिराङ्गहारैरिवानिश नृत्यति यत्र लक्ष्मी ॥[३]

इसी मगध मे अपने नाम के अनुरूप जयन्ती नाम की नगरी है जिस नगरी की चारुता को देखकर शेषनाग ने भोगावती के तथा इन्द्र ने अमरावती के प्रति अधिक प्रेम को छोड दिया है

भोगावती भोगपति सुरेन्द्रोऽमरावती प्रत्यधिकानुरागम् ।
मुमोच चारुत्वमवेक्ष्य यस्या सा तत्र नाम्नास्ति पुरी जयन्ती ॥[४]

इस प्रकार कवि के कथन से ही यह स्वय स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने मगध की नगरी का नाम जो जयन्ती किया है उसका आधार जयन्त है । इसी प्रकार इस महाकाव्य मे कवि अभयदेव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जयन्त के चरित्र का चित्रण करते है, जिनमे जयन्त की विजय की घटनायें प्रमुख है । अत जयन्त की विजयो के आधार पर ही वे इस महाकाव्य का नाम भी 'जयन्तविजय' रखते हैं । इस प्रकार इस महाकाव्य मे गुणो के आधार पर ही नामकरण की योजना करना कवि अभयदेव की अपनी मौलिक विशेषता है ।

१—ऐतिहासिक पात्र—

विक्रम सिह—विक्रम सिह मगध देश की जयन्ती नगरी के राजा और काव्य के चरितनायक जयन्त के पिता है । वे सिह के समान पराक्रमी एव वीर हैं जैसा कि उनके नाम से स्वय स्पष्ट है । कवि अभयदेव उनके राजत्व की प्रशसा करते हुए लिखते हैं—

---

१ जयन्तविजय, १/२४ ।
२ वही, १/२५ ।
३ वही, १/२६ ।
४ वही, १/४१ ।

तस्या बभूवाद्भुत विक्रमश्री क्षोणीपतिर्विक्रम सिंह सञ्ज्ञ ।
विश्वभराभारभर बभार यो विश्रुता शेष गुणोऽपि चिरम् ॥[१]

अर्थात् जयन्ती नगरी मे अद्भुत पराक्रम एव श्रीयुक्त विक्रम सिंह नाम के राजा हुए, जिन्होने सम्पूर्ण गुणो से युक्त पृथ्वी के भार का वहन किया।

यहाँ पर कवि अभयदेव द्वारा विक्रमसिंह को दी गयी 'अद्भुतविक्रमश्री' की उपाधि हमारा ध्यान पृथित सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की ओर ले जाती है क्योकि उदयगिरि अभिलेख मे उन्हे भी अद्भुत (चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम्)[२] कहा गया है। इसके साथ ही चन्द्रगुप्त द्वितीय को भी 'सिंह विक्रम' (विक्रम सिंह) की उपाधि प्राप्त हुई है क्योकि उनके द्वारा चलाये गये सिक्को पर 'सिंह विक्रम'[३] लिखा हुआ मिलता है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव विक्रम सिंह के शासन की प्रशसा करते हुए पुन लिखते है

राजन्वती येन जगत्यजस्र निजा प्रजा पालयता नयेन ।[४]

उदयगिरि अभिलेख मे चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन का वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है—

यस्य शासन सरक्ता धर्मज्ञस्य वसुन्धरा ।[५]

इसी प्रकार कवि अभयदेव द्वारा वर्णित विक्रमसिंह का सौधर्म्य साम्राज्य (सौधर्म साम्राज्यमलकरिष्णु)[६] उनके शौर्य पर प्रतिष्ठित शौर्य साम्राज्य ही था—

साश्चर्य शौर्य साम्राज्य राजेवोच्चैर्बिभर्ति य ।[७]

उदयगिरि अभिलेख मे चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए भी इसी प्रकार बताया गया है कि उन्होने अपने विक्रम (शौर्य) से खरीदकर राजाओ को अपना दास बनाया था—

विक्रमावक्रय क्रीतादास्य-न्यग्भूत-पार्थिव ।[८]

---

१ जयन्तविजय, १/५८ ।

२ Dr Raj Bali Pandey. Historical and Literary Inscriptions, Line-1

३ B. N Luniya, Political and Cultural History of Gupta Empire P 216

४. जयन्तविजय, १/५६ ।

५ Dr Raj Bali Pandey Historical and Literary Inscriptions Line-2

६ जयन्तविजय, १/७१ । ७ वही, ३/१२ ।

८ Historical and Literary Inscription Line-2

विक्रम सिंह के मगध देश के राजा होने के कारण हमारी धारणा और भी पुष्ट हो जाती है कि जिस प्रकार से 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे मगध देश के वैभव का वर्णन किया गया है[१] वह गुप्तकालीन मगध देश का ही वैभव है। इसी समय श्रेष्ठी भी एक स्थान से दूसरे स्थान को (स्वदेश और परदेश मे) आते-जाते रहते थे।[२] कवि अभयदेव के शब्दो मे भी इन्ही श्रेष्ठियो के आवागमन का वर्णन हुआ है—

तत्रैवासीद्धन श्रेष्ठी श्रीदश्रीपरमार्हत ।
श्रीमती श्रीमती कान्ता सुतस्तस्यधनावह ॥
महासार्थेन सोऽन्येद्यु प्राचलत्कुण्डिनपुरम् ।
मासेन प्राप काराया प्रदोषमिव चन्द्रमा ॥[३]

'जयन्तविजय' महाकाव्य का प्रमुख लक्ष्य जयन्त कथा के सहारे पञ्च-परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का माहत्म्य बतलाना रहा है—

नमस्कार पर तत्र श्रीपञ्च परमेष्ठिनाम् ।
प्रयात्यनन्य सामान्य यान पात्र सगोत्रताम् ॥
किं चाय विधिवद्ध्यात सर्वकर्मसु कर्मठ ।
कल्याण कदली कन्दस्यन्दमान सुधारस ॥[४]

इस नमस्कार मन्त्र का साक्ष्य भी हमे स्कन्धगुप्त के होम लेख मे वर्णित पञ्चेन्द्र माहात्म्य के माध्यम से मिल जाता है—

पुण्य-स्कन्ध च चक्रे जगदिदमखिल ससरद्विक्ष्यभीतो ।
श्रोयोर्त्थं भूत-भूत्यै पथि-नियमवतामर्हतामादिकर्त्तॄन ॥
पञ्चेन्द्रा स्थापयित्वा धरणिधरभयान्सन्निर बातस्ततो (ऽ) यम् ।
शैलस्तम्भ सुचारुगिवर-शिखराग्रोपम कीर्तिकर्ता ॥[५]

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव द्वारा वर्णित विक्रम सिंह नामक राजा यही पृथित सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय हैं। विक्रम सिंह का चरित्र भी सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की भाँति ही सभी दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। वे अत्यन्त रूपवान, प्रजापालक और पराक्रमी राजा हैं। काव्य मे उनके इन गुणो की प्रशसा इन शब्दो मे की गयी है—

---

१ जयन्तविजय, १/२५-५७।
२ Political and Cultural History of Gupta Empire p. 277
३ जयन्तविजय, ३/८-९।   ४. वही, ३/२-३।
५. Historical and Literary Inscriptions. Line 9-12

स' कामिनीनां प्रतिभाति काम पितेव च प्रीतिपदं प्रजानाम् ।
काल. करालो रिपुभूपतीनां कल्पद्रुमश्च प्रणयिव्रजानाम् ॥[1]

अर्थात् जो राजा कामिनियों के लिए कामदेव, प्रजा के लिए पिता, बैरी राजाओं के लिए कराल काल तथा समीप मे आने वालों के लिए कल्पवृक्ष के समान है ।

विक्रम सिंह को अपनी पत्नी से भी अगाध प्रेम है । वे जब उसे उदास देखते हैं तो उसकी उदासी का कारण जानने के लिए अत्यन्त बेचैन हो जाते हैं—

स भूभुजङ्ग समपृच्छतादृत कृशोदरीय कृशता कुतस्तव ।
विशेष शोषा सरसीव मीनक करोति या मां खलुखेदभाजम् ॥[2]

अर्थात् उस राजा विक्रम सिंह ने आदरपूर्वक अपनी पत्नी से पूछा कि हे कृशोदरि ! शोषित तालाब द्वारा मीन की भाँति तुम्हारी यह दुर्बलता किस लिए मुझे खेद का भाजन बना रही है ।

विक्रम सिंह को जब यह पता चलता है कि उनकी पत्नी के दु ख का कारण अपत्यहीनता है तो वे अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी उसकी इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं—

निवेश्य सन्देह पदेऽपि जीवित प्रिये प्रिय ते त्वरित करोत्यद ।
न चेज्जनोऽय ज्वलने प्रवेशत पतङ्गता याति तदा विनिश्चितम् ॥[3]

राजा विक्रम सिंह द्वारा की गयी यह प्रतिज्ञा उन्हे प्रेमी और वीर सिद्ध करती है ।

विक्रम सिंह को अपने मत्री सुबुद्धि पर अत्यन्त विश्वास है । वे अपनी प्रतिज्ञा का पूरा विवरण उसे सुना देते हैं । सुबुद्धि द्वारा प्रतिज्ञा-पूर्ति का एक मात्र साधन श्री पचपरमेष्ठि नमस्कार को जानकर वे इस व्रत को स्वीकार कर लेते हैं—

श्रुत्वेति तत्र वर्द्धिष्णुश्रद्धासबन्धबन्धुर ।
तृषार्त इव पीयूषं विधिना स तमाददे ॥[4]

विक्रम सिंह धर्मात्मा और श्रद्धालु राजा है । अत वे राजसुख और ऐश्वर्य का उपभोग करने मे ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नही समझते हैं । वे प्रजा की दशा जानने के लिए रात्रि मे वेष बदलकर नगर मे भ्रमण करते हैं । वे निडर और

---

१. जयन्तविजय १/६० । २ वही, २/६ ।
३. वही, २/३१ । ४ वही, ३/२८ ।

साहसी हैं। रात्रि मे नारी के करुण चीत्कार को सुनकर वे भयकर श्मशान में पहुँचते हैं और उसकी रक्षा के लिए योगी से युद्ध करते हैं। वे सच्चे वीर हैं जो मूर्च्छित शत्रु पर प्रहार नही करते। वे पहले सेचनादि क्रिया द्वारा उसकी मूर्च्छा दूर करते हैं और तब उसे युद्ध के लिए ललकारते है—

सिचयपल्लववीजन वायुना विगतमूर्छमुवाच नृपोऽथ तम्।
कुरु करेऽसिलतां मम पूरय क्षम रणे रणकेलिकुतूहलम्॥[1]

विक्रम सिंह के चरित्र का एक प्रमुख गुण उनकी दयालुता भी है। नारी का चीत्कार सुनकर जाते हुए उन्हे मार्ग मे एक श्मशानवासी सुर रोकता है। सुर उन्हे 'मम पुरो मनुजा किल कीटका' कहकर उत्तेजित भी करता है। किन्तु नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से वे उसे परास्त करते है और सुर-द्वारा दीनभाव से प्राणो की भिक्षा माँगने पर उसे छोड देते है। विक्रम सिंह की इस दयालुता का फल भी उन्हे प्राप्त होता है। सुर उन्हे वन्ध्या स्त्री को वीरप्रसू बनाने वाला मुक्ताहार प्रदान करता है, जिसके द्वारा वे अपनी पत्नी के दुःख को दूर करने मे कृतकार्य होते हैं और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं।

विक्रम सिंह के हृदय मे पुत्र स्नेह की उत्कट अभिलाषा है। पुत्र के दिग्विजय करके लौटते समय अदृश्य हो जाने का समाचार सुन कर वे व्याकुल हो उठते हैं—

समजनि पितुराकुल त्वमन्तस्तद शुभ सभवशङ्कया सुतस्य।
प्रथयति हि तनुत्वमम्बुराशेरविरवियोगदिशापि शीतरश्मे॥[2]

अर्थात् पुत्र के अशुभ की उत्पत्ति की शका से पिता के अन्तःकरण मे व्याकुलता उत्पन्न हुई, क्योकि चन्द्रमा का अप्रकटित वियोग भी समुद्र की तनुता को बढाता है।

इस प्रकार विक्रम सिंह की इस व्याकुलता मे उनके स्नेहशील हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति है। उद्यान मे सुस्थिताचार्य के आगमन को सुनकर वे सपरिवार वन्दना के लिए जाते है और उनकी देशना से प्रभावित होकर जैन धर्म को स्वीकार कर लेते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नायक जयन्त के पिता विक्रम सिंह वीर, पराक्रमी, नीतिवान तथा यशस्वी राजा है।

जयन्त—जयन्त प्रस्तुत महाकाव्य के नायक तथा विक्रम सिंह के पराक्रमी पुत्र हैं। महाकवि अभय देव द्वारा वर्णित उनकी दिग्विजयो के आधार पर हमारा ध्यान 'सिंह विक्रम' (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के पुत्र कुमार गुप्त की ओर चला जाता है

---

१ जयन्तविजय, ४/६२। २ वही, १२/४।

क्योंकि पुराणो के साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कुमार गुप्त (महेन्द्र) ने कलिङ्ग और महिषक को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया था।[1]

इसी प्रकार कवि अभयदेव ने भी जयन्त की दिग्विजय के सन्दर्भ में उल्लेख किया है कि जयन्त ने कलिङ्गराज को जीता था। कवि के शब्दो मे—

सैन्य कोलाहलैर्दूर पूरयन्रोदसीमथ।
चचाल नरशार्दूल कलिङ्गाधिपतिं प्रति॥
अखण्डै खण्डितारातिं भुजदर्प प्रयाणकै।
महेन्द्र विक्रम प्राप महेन्द्राद्रेरुपत्यकाम्॥[2]

अर्थात् वे नरशार्दूल (जयन्त) सेना के कोलाहलो द्वारा आकाश को दूर से पूरित करते हुए कलिङ्गराज के प्रति चल पडे तथा अखण्ड प्रयाण से शत्रुओ के भुजदण्ड को खण्डित करत हुए उन महेन्द्र विक्रम ने महेन्द्र पर्वत की उपत्यका (तरी) को प्राप्त किया।

यहाँ पर कवि अभयदेव ने जयन्त को 'महेन्द्र विक्रम' कहा है। अत कवि के कथन से यह स्वय स्पष्ट है कि जयन्त चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र महेन्द्र अथवा कुमार गुप्त है।

यह कुमार गुप्त भी जैनधर्म के सरक्षक थे। अत हमारी धारणा की और भी पुष्टि हो जाती है। मध्य प्रदेश मे विदिशा के समीप उदयगिरि की गुफा न० १० (जैन गुफा) मे प्राप्त कुमार गुप्त के अभिलेख[3] मे यह स्पष्ट उल्लेख है कि सिंघल के पद्मावती स जन्मे पुत्र शकर ने गुप्त सवत् १०६ के कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की पचमी को जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिभा को गुफा-द्वार पर प्रतिष्ठित किया था।

इसी प्रकार मथुरा स्थित ककाली टीला से कुछ मूर्तियो के साथ एक जैन प्रतिमा भी मिली है। इस प्रतिमा पर एक अभिलेख उत्कीर्ण है।[4]

---

१ 'कलिंगा महिषाश्चैव महेन्द्र निलयाश्चये
एतान जनपदान् सर्वान् पालयिश्यति वैगुह।' —वायु पुराण
'कौशल ओड्र ताम्रलिप्तान समुद्रतट पुरी च देवरक्षितो रक्ष्यति।
कलिङ्ग माहिषकम् महेन्द्र भूमौगुहम् भोक्ष्यन्ति। —विष्णु पुराण

२ जयन्तविजय, ११/१८-१९।

३ Archaeological Survey of India-Report-1880, Vol. 10, P. 53
Indian Antiguary vol 11 P 309

४ Poitical and Cultural History of Gupta Empire, P. 318.

इस अभिलेख मे यह उल्लेख है कि गुप्त सवत् ११३ (ईसवी सन् ४३३) में कुमार गुप्त प्रथम) के राज्य काल मे कट्टियगण और विद्याधरी शाखा के दत्तिलाचार्य के कहने से भट्टियव की पुत्री और गृहमित्र पति की पत्नी सामाध्या ने उस मूर्ति को (जिस पर कि लेख उत्कीर्ण है) प्रतिष्ठित किया।

अत कुमार गुप्त के शासन काल मे प्राप्त होने वाले अभिलेखो से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुमार गुप्त जैनधर्म के सरक्षक थे। इसीलिए उनके शासन काल मे जैनमूर्तियो की स्थापना हुई। इस प्रकार कुमार गुप्त के जैनधर्म के सरक्षक होने से भी यह सिद्ध होता है कि यह कुमार गुप्त अथवा महेन्द्र ही 'जयन्तविजय' महाकाव्य के नायक जयन्त हैं जिनका कवि अभयदेव ने विक्रम सिंह के पुत्र के रूप मे वर्णन किया है।

कुमार गुप्त अथवा महेन्द्र की विजयो का वर्णन करना ही कवि अभयदेव को अभीष्ट है। अत उन्होने अपने महाकाव्य मे सर्वत्र ही महेन्द्र (जयन्त) के पराक्रम का उल्लेख कर विपक्षी राजाओ पर विजय दिखलायी है तथा कुमार गुप्त के नाम का सीधे उल्लेख न करके उनकी विजयों के आधार पर ही उनका नाम जयन्त किया है।

जयन्त ही प्रस्तुत महाकाव्य के धीरोदात्त नायक है जिनका वर्णन द्वितीय अध्याय मे नायक के रूप मे किया जा चुका है। अत यहाँ पर केवल उनका ऐतिहासिक परिचय ही प्रस्तुत किया गया है।

अन्य पात्र—'जयन्तविजय' महाकाव्य ऐतिहासिक पात्रो के साथ ही अन्य पात्रो की भी योजना हुई है जिनका सम्बन्ध कथानक की मुख्य घटना से है।

हरिराज—हरिराज सिंहल देश का भूपति तथा प्रस्तुत महाकाव्य का प्रतिनायक है। वह बडा शूरवीर एव पराक्रमी है। एक दिन उसका हाथी भाग कर मगध की जयन्ती नगरी मे चला जाता है। अत वह हाथी वापस करने के लिए विक्रम सिंह की सभा मे दूत भेजता है। दूत आकर अपने स्वामी के सन्देश को राजा विक्रम सिंह से बडी विनम्रतापूर्वक कहता है। कवि अभयदेव के शब्दो मे—

नृप प्रणम्यैष कृतासनोऽवदत्पयोदगम्भीरगिरा वचोहर।
त्वदन्तिक प्राप मम प्रभो करी सरोवराद्धस इवापर सर ॥[1]

अर्थात् राजा को प्रणाम कर आसन पर बैठे हुए इस दूत ने कहा कि मेरे राजा का हाथी एक सरोवर से दूसरे सरोवर में हस की भाँति तुम्हारे पास आया है।

अपि च—

गजेन्द्र रत्ने गृहमागते स्वय महीभुज कस्य मनो न लुभ्यति।
तथापि हेय सबलीय सस्त्वया न सुन्दर. क्वाप्यसमान विग्रह ॥[2]

१. जयन्तविजय, ६/१४।   २ वही, ६/१७।

अर्थात् स्वयं घर मे आये हुए गजेन्द्र रत्न पर किस राजा का मन लोभित नहीं होता है फिर भी आपके द्वारा वह बलवान (हाथी) त्याज्य है क्योंकि असमान विग्रह कभी भी सुन्दर नही होता।

यहाँ पर दूत के कथन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है, कि हरिराज अत्यन्त पराक्रमी राजा है क्योकि यदि विक्रम सिंह उसके राजा के हाथी को वापस नहीं करेंगे तो उन्हे हरिराज से लोहा लेना पडेगा किन्तु जब विक्रम सिंह उसके समझाने पर भी हाथी को वापस करने से इन्कार कर देते हैं तो वह उन्हे पुन एक बार विचार करने का अवसर देता हुआ अपने स्वामी के पराक्रम का वर्णन करता है—

नरेन्द्र बुध्यस्व धियात्मनोऽथवा महेन्द्र मन्त्रि प्रतिमस्य मन्त्रिण ।
मम प्रभो प्रेषय कुञ्जराधिप व्रजास्य कोपार्चिषिमा पतङ्गताम् ॥[१]

अर्थात् हे राजन ! बृहस्पति के समान मन्त्रियो से अथवा अपने आप बुद्धि से स्वयं सोचिये और कुञ्जराधिप को मेरे स्वामी के पास भेजिये। आप मेरे प्रभु के कोप की ज्वाला मे पतग मत बनिये।

इस प्रकार पहले तो वह दूत विक्रम सिह को बहुत समझता है किन्तु जब जयन्त उसके स्वामी के लिए अपमानसूचक शब्द कहते हैं तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर पुन कहता है—

निशम्य निन्दामथ भर्तुरात्मन परिस्फुरत्कोप भरारुणेक्षण ।
जगाद दूत क्षितिनाथनन्दन प्रकम्पसपक्वलितोत्तराधर ॥
निपीड्य दोर्दण्डबलेन तत्प्रभुर्द्विपाधिराज सह राज्य सपदा ।
न यावदादास्यति तावदस्य ते प्रभो प्रतीतिर्न भविष्यति ध्रुवम् ॥[२]

अर्थात् अपने स्वामी की निन्दा को सुनकर क्रोध से लाल नेत्रो वाले दूत ने अपने फडकते हुए अधरोष्ठो द्वारा राजा के पुत्र (जयन्त) से कहा कि जब तक मेरे स्वामी अपनी भुजाओ द्वारा आपके राज्य तथा गज को जीत न लेंगे तब तक उन प्रभु की वीरता पर आपको निश्चयपूर्वक विश्वास नही होगा।

इस प्रकार विक्रम सिह की सभा मे दूत द्वारा कहा जाना हरिराज की शूर-वीरता का द्योतक है। किन्तु हरिराज का सबसे बड़ा दुर्गुण है उसमे अहकार की भावना का विद्यमान होना। उसकी यह अहकार की भावना ही उसके विनाश का कारण बनती है क्योकि वह दूत के मुख से समाचार सुनकर तुरन्त ही मन्त्रियो की मन्त्रणा की भी अवहेलना करके विक्रम सिह पर आक्रमण कर देता है—

---

१ जयन्तविजय, ६/२६।   २ वही, ६/३८-३६।

तथाप्यवज्ञाय तदीयमन्त्रित प्रयाणमाधत्त मदोद्धतस्तत ।
अरिष्ट संसूचितमृत्युरप्यसौ विलङ्घयते कैर्भवितव्यताथवा ।।[1]

अर्थात् इसके पश्चात् मदोद्धत राजा ने मन्त्रियो की मन्त्रणा की अवहेलना कर प्रस्थान किया यद्यपि उसे अरिष्टो की सूचना से मृत्यु की सभावना हो रही थी। अथवा भवितव्यता को किसके द्वारा मेटा जा सकता है।

हरिराज के प्रतिरोध के लिए विक्रमसिंह के पुत्र जयन्त सेना के साथ आते हैं। जयन्त तथा हरिराज का घमासान युद्ध होता है। युद्ध मे हरिराज का सेनापति सुषेण मारा जाता है किन्तु फिर भी उसके मन मे घबडाहट नही है। वह जयन्त से कहता है—

अथ क्लेशावेशप्रसरविरस सिहलपति-
र्जगादैव वध्यस्त्वमसि मम नासे शिशुरिति ।
सता निस्त्रिशोऽपि प्रभवति न हि भ्रूणहतये
प्रपद्याज्ञा तन्मे व्रज निजग्रह रन्तुमधुना ।।[2]

अर्थात् इसके बाद सिहलपति ने कहा कि तुम मेरी तलवार से बध्य नही हो क्योकि तुम अभी बच्चे हो। सज्जनो की तलवार बालहत्या के लिए नही होती। इसलिए मेरी आज्ञा को पाकर इस समय आराम करने के लिए जाओ।

यहाँ पर हरिराज द्वारा जयन्त के प्रति कहे गये ये शब्द उसके चरित्र की निर्भयता, शूरता और स्वाभिमानता को व्यक्त करते है। वह जयन्त के साथ भयकर युद्ध करता हुआ यद्यपि वीरगति को प्राप्त होता है, किन्तु फिर भी उसके चरित्र मे किसी प्रकार की कायरता नही आने पायी है तथा 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे उसके चरित्र की रक्षा प्रतिनायक के रूप मे हुई है।

महेन्द्र—विद्याधर नरेश महेन्द्र चक्रवर्ती भी हरिराज की भाँति ही बडा शूरवीर, साहसी तथा स्वाभिमानी राजा है। वह अपने पुत्र के लिए गगन विलास पुर के राजा पवनगति से उसकी पुत्री कनकवती की याचना करता है पर पवनगति उसकी याचना को, यह कह कर कि उसकी कन्या अभी किसी वर को नही चाहती है, अस्वीकार कर देता है। किन्तु महेन्द्र को जब यह ज्ञात होता है कि पवनगति ने उसके पुत्र की उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह अपने दूत को पवनगति के पास भेज कर यह सदेश कहलवाता है कि तुमने मेरे द्वारा याचना करने पर भी अपनी पुत्री को दूसरे को दे दिया है अत निश्चय ही मुझसे शत्रुता बढाई है—

---

१ जयन्तविजय, ६/५२। २ वही, १०/७२।

उवाच दूतोऽथ नरेन्द्र पूर्वं यत्प्रार्थितोऽपि प्रभुणा तथेयम्।
ददे परस्मै तनया त्वया तन्नून कृतान्त प्रगुणीकृतोऽयम् ॥[१]

यहाँ पर महेन्द्र द्वारा पवनगति को कहलाये गये ये शब्द उसकी अपनी आत्म-प्रशंसा के द्योतक है, क्योंकि वह अपने को अत्यन्त पराक्रमी राजा समझ रहा है।

इसी प्रकार उसका दूत भी आकर पवनगति से उसके पराक्रम का बखान करता हुआ कहता है—

महापराधेन तव श्रुतेन क्रुद्धे विभौ क शरण जगत्सु।
उत्कोपिते यष्टि मुखेन सिंहे क्षेमोहि कौतस्कुतमङ्गभाज ॥[२]

अर्थात् इस महापराध को सुनने से स्वामी के क्रोधित होने पर ससार मे तुम्हे कौन शरण दे सकेगा क्योंकि लाठी की नोक से शेर के क्रोधित होने पर शरीर-धारी का कल्याण कैसे हो सकता है ?

यहाँ पर दूत के इस कथन से भी स्पष्ट है कि महेन्द्र वस्तुत सिंह के समान अत्यन्त पराक्रमी राजा है। उसके क्रोधित हो जाने पर पवनगति को कही भी शरण नही मिल सकेगी। किन्तु जब जयन्त अपमान करके उस दूत को सभा से निकाल देते हैं और दूत जाकर अपने स्वामी मे बताता है तो वह क्रोध से काँपने लगता है—

अथेति दूतादवगम्य सम्यग्विद्याधराणामधिप प्रवृत्तिम्।
कराल कोपस्फुर दोष्ठपृष्ट क्षणादभूद्भ्रूकुटि भीषणास्य ॥[३]

महेन्द्र का पवनगति पर यह क्रोध होना स्वाभाविक है क्योंकि पवनगति तो सदैव ही उसके अधीन रहा है। इसीलिए वह अपना और भी अधिक अपमान समझकर तुरन्त पवनगति पर आक्रमण कर देता है। पवनगति के दूत जाकर उसके आगमन की सूचना देते हैं—

असौ समागच्छति खेचरेन्द्र सान्द्राभिषङ्ग किल सयुगाय।
प्रचण्डदोर्दण्ड बलावलेपादपि त्रिलोकी कलयस्तृणाय ॥[४]

अर्थात् वह खचरेन्द्र चतुरङ्गिणी सेना के साथ युद्ध के लिए आ रहा है जो अपने प्रचण्ड भुजदण्डो के बल के दर्प से ससार को तृण के समान समझता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महेन्द्र के पराक्रम की प्रशसा महेन्द्र का दूत ही नही करता वरन् पवनगति के दूत भी करते हैं।

महेन्द्र के आगमन को सुनकर पवनगति की ओर से जयन्त युद्ध के लिए

---

१ जयन्तविजय, १३/१०८। २ वही, १३/१०९।
३ वही, १४/१। ४ वही, १४/२२।

जाते हैं। महेन्द्र जयन्त के साथ भयकर युद्ध करता है तथा अपने द्वारा छोडे गये चक्र के निष्फल हो जाने पर भी वह हताश नही होता है। वह उसी उत्साह के साथ युद्ध करता हुआ जयन्त को तृणवत समझता है—

.... सोऽप्याह योग्योऽस्मि न तेऽधुनाऽपि।
गम्योऽस्ति भोमायु शिशो कदाचिद् मृद्धोऽपि कि रे हरिणाधिराज ॥[1]

अर्थात् महेन्द्र ने जयन्त से कहा कि मैं इस समय तुम्हारे योग्य नही हूँ क्योकि हे नृसिंह क्या शीघ्र भी कभी शृगाल शिशु पर आक्रमण करता है (अर्थात् नही)।

किन्तु अन्त मे वह जयन्त के त्रिपुरान्तकास्त्र द्वारा मारा जाता है। अत स्पष्ट है, कि महेन्द्र चक्रवर्ती भी बडा शूरवीर, पराक्रमी तथा स्वाभिमानी राजा है।

सुबुद्धि—सुबुद्धि विक्रम सिंह का विश्वासपात्र मन्त्री है। इसीलिए राजा विक्रम सिंह उससे अपनी घरेलू समस्याओ पर भी विचार-विमर्श करते है। वे रानी प्रीतिमती की अपत्य चिन्ता और अपनी प्रतिज्ञा का विवरण उससे स्पष्ट शब्दो मे कह देते हैं। वह भी नृप का शुभचिन्तक है। अत राजा से कहता है—

तत स राजशार्दूल मूलमन्त्री व्यजिज्ञपत्।
त्वत्प्रतिज्ञाम्बुधिर्देव दुस्तरेभ्योऽपि दुस्तर ॥
नमस्कार पर तत्र श्रीपञ्चपरमेष्ठिनाम्।
प्रयात्य नन्यसामान्य यान पात्र सगोत्रताम् ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् उस प्रधान मन्त्री ने राजा से कहा कि हे देव! आपकी प्रतिज्ञा का सागर दुस्तरो से भी दुस्तर है किन्तु श्री पचपरमेष्ठी का नमस्कार विशिष्ट और अनन्य सामाप्य पात्र की गोत्रता को प्राप्त कराता है।

उसे पूर्ण विश्वास है कि यदि पचपरमेष्ठी का ध्यान विधिपूर्वक किया गया तो मनोवाछित फल की प्राप्ति होगी।

किं चाय विधिवद्ध्यात सर्वकर्मसु कर्मठ।
कल्याण कदली कन्दस्यन्दमान सुधारस ॥[3]

अर्थात् यह विधिपूर्वक ध्यान किया हुआ (पञ्चपरमेष्ठी मन्त्र) सब कर्मों मे कर्मठ, कल्याण कदली के अकुर से टपकाने वाला सुधा रस है।

इसीलिए वह राजा की इच्छा-पूर्ति का साधन इसी मन्त्र को बताता है तथा

---

१ जयन्तविजय, १४/१०५।　　२ वही, ३/१-२।
३ वही, ३/३।

उनसे इस मन्त्र की आराधना करने के लिए कहता है। वह इस मन्त्र की महत्ता प्रकट करने के लिए धनावह श्रेष्ठी का एक उपाख्यान भी कहता है। राजा विक्रम सिंह उसकी बात मान लेते हैं। वह बृहस्पति की तरह राजनीति-कुशल तथा विद्वान है। उसका परिचय देते समय कवि ने उसके गुणो की अभिव्यक्ति इन शब्दो मे की है—

मन्त्री हरेर्जीव इवास्य जज्ञे सौधर्म साम्राज्यमलङ्करिष्णु ।
सुबुद्धिनामा विबुधप्रमोदक्षीरार्णवार्णं क्षणदाभुजङ्ग ॥[1]

वैरिसिंह—वैरिसिंह हस्तिनापुर के राजा हैं। वे अपनी पुत्री रतिसुन्दरी के स्वयवर मे अनेक द्वीपो के राजाओ को आमन्त्रित करते हैं तथा राजाओ का आगमन सुनकर मार्ग मे ही उनकी अगवानी के लिए जाते है और आदर के साथ उन्हे अपने पुर मे प्रवेश करवाते है। किन्तु उनकी पुत्री रतिसुन्दरी प्राग्जन्म के सम्बन्ध के कारण जयन्त पर अनुरागिणी दीख पडती है। इसी कारण स्वयवर मे वह अन्य राजाओ को छोडकर जयन्त को वरण कर लेती है। वैरिसिंह भी बडे हर्ष के साथ रतिसुन्दरी का विवाह जयन्त से कर देते हैं तथा वृद्धावस्था मे वे अपना राज्य-भार अपने जामाता जयन्त को ही सौंपकर दीक्षा ग्रहण कर लेते है।

सुस्थिताचार्य—श्री सुस्थित जैन आचार्य हैं। उनकी देशना से प्रभावित होकर विक्रम सिंह श्राद्धधर्म स्वीकार कर लेते है। वे बडे तार्किक है। अत तर्कों के आधार पर ही विरोधी ब्राह्मण को पराजित करते है।

प्रीतिमती—प्रीतिमती राजा विक्रमसिंह की पत्नी है। वह अत्यन्त सुन्दरी है। अत विक्रम सिंह उससे अपार स्नेह करते है। कवि अभयदेव के शब्दो मे—

शचीव शक्रस्य महेश्वरस्य गौरीव लक्ष्मीरिव माधवस्य ।
श्रीनन्दनस्येव रतिश्च रत्यै तस्य प्रिया प्रीतिमती बभूव ॥[2]

अर्थात् जिस प्रकार इन्द्र को शची प्रिय है, शकर को गौरी प्रिय है, माधव को लक्ष्मी प्रिय है तथा कामदेव को उनकी पत्नी रति प्रिय है उसी प्रकार उनकी पत्नी प्रीतिमती रति के लिए प्रीतिमती हुई।

कवि अभयदेव प्रीतिमती के सौन्दर्य का भी वर्णन करते है—

सञ्जीवनी चौषधिरङ्गजस्य विश्राम धामेव हृद स्वभर्तु ।
या राज्यऋद्धेरधिदेवतेव लावण्यवल्लेर्नव कन्दलीव ॥[3]

अर्थात् जो (प्रीतिमती) कामदेव की सजीवनो औषधि, अपने पति के हृदय

---

१ जयन्तविजय, १/७१।
२ वही, १/६६।
३ जयन्तविजय, १/६६।

की विश्राम धाम, राजलक्ष्मी की अधिदेवता तथा सुन्दरता की लता का नया अंकुर है।

इसीलिए तो उसके द्वारा रूप, शील, बुद्धि, लज्जा, दाक्षिण्य, गुण दाक्ष्य, नीति, प्रीति तथा कोमल वाणी से पति के अनुराग सिन्धु मे ज्योत्सना की भाँति रहा जाता है—

रूपेण शीलेन धिया ह्रिया च दाक्ष्येण दाक्षिण्य गुणेन नीत्या।
प्रीत्या गिरा कोमलया यया च ज्योत्स्नायित पत्यनुराग सिन्धौ ॥[1]

किन्तु सन्तान के बिना प्रीतिमती को उसे अपने यह समस्त गुण व्यर्थ प्रतीत होते हैं। एक दिन क्रीडाह्रद मे करिणी को अपने अपत्य गज से स्नेह करते देखकर उसकी मातृत्व की भूख बढ जाती है। वह पुत्र प्राप्ति के लिए बेचैन हो उठती है, क्योंकि उसकी दृष्टि मे —

नभस्थलीव द्युतिमद्विना कृता निशेव शीतद्युतिमण्डलोज्झिता।
महौषधीवोन्मदवीर्य वर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशास्यते ॥[2]

अर्थात् सूर्य के बिना आकाश, चन्द्रमा के बिना रात्रि, विशिष्ट शक्ति के बिना औषधि के समान सन्तानहीन स्त्री की प्रशसा नही होती।

अपि च—

परा जनन्या जनयत्यनारत महाकुलीनस्तनयो नयाञ्चित।
महार्घतामेधयते गुणश्रियो न कि यशोराशिरदम्भ सौरभ ॥[3]

अर्थात् नीतिमान, महाकुलीन अदम्भी यशस्वी पुत्र गुणयुक्त माता की महार्घता को क्या नही बढाता ? अर्थात् अवश्य बढाता है।

वह सोचने लगती है, कि स्त्रियाँ चरित्रवान पुत्र के द्वारा ही पति के अति गौरव को प्राप्त करती है, क्योंकि रत्नो की खान प्रकाण्ड मणियो मे ही बहुमूल्यता को प्राप्त होती है—

किमन्यदाप्नोत्यति गौरव वधू प्रियस्य पुत्रै खलु वृत्तशालिभि।
महार्घ्यता रत्नखनी न किं भजेन्मणिप्रकाण्डैरिति सा व्यचिन्तयत् ॥[4]

अत वह भी सन्तान-प्राप्ति के लिए प्रयास करती है और अपने अन्तस् के दुःख को पति के समक्ष उडेल देती है। आगे चलकर उसकी यह इच्छा पूर्ण होती है और उसे जयन्त जैसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है।

प्रीतिमती पुत्र से भी अधिक महत्त्व पति को देती है, क्योंकि विक्रमसिंह

---

१ जयन्तविजय, १/७०।
२ वही, २/२।
३ वही २/४।
४ वही, २/७।

जब अग्नि प्रवेश की प्रतिज्ञा करते हैं तो उसका हृदय दहल जाता है--

> इति प्रतिज्ञावचनादमुष्य सा मुमूर्च्छ वज्राभिहतेव तत्क्षणम् ।
> पपात वच्छिन्नलतेव भूतले किमद्भुत प्रेमवतामिद हि वा ।।[1]

अर्थात् इस तरह से वह राजा के प्रतिज्ञा वचन से वज्राघात के समान उसी समय मूर्छित होकर भूतल पर छिन्नलता की भाँति गिर पडी । अथवा प्रेमीजनो के लिए इसमे आश्चर्य ही क्या है ।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वर्णित प्रीतिमती का चरित्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वह पतिव्रता पत्नी होने के साथ ही साथ एक श्रेष्ठ माता भी है ।

कनकवती—कनकवती विलासपुर के राजा पवनगति की पुत्री है। वह अत्यन्त रूपवती है । इसीलिए सैकडो राजा उसके पिता पवनगति से उसके लिए याचना करते है । किन्तु वह उन सबको छोड देती है और अनुरूप वर की प्राप्ति के लिए अपने पिता की आज्ञा से जिन शासन देवता जया देवी की आराधना करती है और सात दिन की अनवरत भक्ति से उन्हे प्रसन्न कर लेती है। प्रसन्न होकर जया देवी उसके लिए दिग्विजय से लौटते हुए जयन्त का अपहरण करती हैं । जयन्त उसे उपवन मे देखते है और प्रथम दर्शन मे पहचान नही पाते हैं, क्योंकि वे सोचने लगते हैं कि क्या यहाँ इस पर्वत पर पर्वत पुत्री पर्वत की सुन्दरता को देखने के लिए आयी है, अथवा रति है अथवा रमा है । किन्तु बाद मे वे पलक लगने के कारण जान जाते है, कि यह कोई मृत्यु लोक ही ललना है—

> पर्वते किमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
> किं रति किमु रमा खलु नैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ।।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कनकवती के अप्रतिम सौन्दर्य के कारण उसे पहचानने मे ही भ्रम हो जाता है और इसी सौन्दर्य के कारण जयन्त उस पर मुग्ध हो जाते है । अन्त मे जयन्त और कनकवती का विवाह हो जाता है ।

रतिसुन्दरी रतिसुन्दरी हस्तिनापुर के राजा वैरिसिंह की पुत्री है। वह भी कनकवती की भाँति अतीव सुन्दरी है । कवि अभयदेव के शब्दो मे—

> भाग्यसपदिव पुष्पधन्वन सृष्टिसारमिव पद्मजन्मन ।
> तस्य देव कमलेव वारिधेरद्भुतास्ति रतिसुन्दरी सुता ।।[3]

अर्थात् हे देव ! कामदेव की भाग्य सम्पति की भाँति, ब्रह्मा जी की सृष्टि

---

१ जयन्तविजय, २/३२ ।
२ वही, १३/१२ ।
३ वही, १६/७ ।

के सार की भाँति, समुद्र की कमला की भाँति उस (वैरिसिंह) की रतिसुन्दरी नाम की कन्या है।

रतिसुन्दरी अपने स्वयवर मे आये हुए समस्त राजाओ को छोडकर जयन्त का वरण करती है। राजा विक्रमसिंह भी रतिसुन्दरी का विवाह जयन्त से कर देते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि जयन्तविजय महाकाव्य का कथानक अत्यन्त सरल है और उसमे जटिलता का सर्वथा अभाव है। कवि ने अपनी काव्य-शक्ति के अभिनय मे कल्पना का सहारा लिया है और लेना भी चाहिये क्योंकि कवि कर्म तो वस्तुत यही है—

अपारे काव्य ससारे कविरेक प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥[1]

---

१. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, —श्लोक १०, पृ० ३८ ।

चतुर्थ अध्याय

'जयन्तविजय' महाकाव्य में रीति, गुण, अलंकार तथा छंद

'जयन्तविजय' महाकाव्य में रीति विवेचन

'रीति' शब्द गत्यर्थक 'रीङ्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। अत रीति का वास्तविक अर्थ है मार्ग। काव्य मे अपने अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति हेतु कवि अपने ढग से नाना पदो का प्रयोग किया करता है। पदो के इसी प्रयोग करने की विधि को ही उसकी रीति कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे 'रीति' किसी लेखक के विशिष्ट लेखन प्रकार को सूचित करती है।

रीतियो का काव्य मे विशिष्ट स्थान है। आचार्य वामन ने तो 'रीति' को ही काव्य की आत्मा माना है।[1] उनके अनुसार काव्य इसलिए विशिष्ट शब्दार्थ साहित्य है क्योकि इसकी जैसी पदानुपूर्वी (रीति) जो कान मे अमृत वृष्टि करती है तथा हृदय मे आनन्द का सञ्चार करती है अन्यत्र कही नही पायी जाती।[2]

रीति तत्त्व के विषय मे राजशेखर ने स्वय कहा है—

सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ॥[3]

अर्थात् रीति ही वह काव्य तत्त्व है जिसमे रस प्रवाह का सामर्थ्य रहा करता है।

आचार्य वामन ही इस रीति तत्त्व अथवा काव्य मार्ग के प्रथम लक्षण निर्माता माने जाते है। उनके अनुसार 'विशिष्टा पद रचना रीति। विशेषो गुणात्मा[4]।' अर्थात् माधुर्य ओज एव प्रासाद आदि गुणो से मण्डित रचना 'रीति' है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने इसी बात को दूसरे शब्दो द्वारा व्यक्त किया है। उनके अनुसार—

गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन व्यनक्ति सा।
रसास्तन्नियमे हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो ॥[5]

---

१. रीतिरात्मा काव्यस्य - काव्यालङ्कार १/२/६।
२ किन्त्वस्ति काचिदपरैव पदानुपूर्वी यस्या न
किंचिदपि किंचिदिवावभाति।
आनन्द यत्यथ च कर्णपथ प्रयाताचेत
सतामनृत वृष्टिरिव प्रविष्टा ॥ —काव्यालकार सूत्र १/२/२१।
३ काव्यमीमासा, पृ० ५२ (चौ० प्र०)।
४ काव्यालङ्कार सूत्र, १/२/७-८।
५ ध्वन्यालोक, ३/६।

अर्थात् माधुर्यादिक गुणो का आश्रयण करके रहती हुई यह पद सघटना रसो को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार आनन्दवर्धन का 'सघटना' शब्द नितान्त सारगर्भित है जो वामन की 'विशिष्टा पद रचना' का ही दूसरा रूप है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी आनन्दवर्धन के कथन का समर्थन किया है—

पद सघटना रीतिरग सस्था विशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीना ॥[१]

रीति भेद—आचार्य वामन के अनुसार रीतियो की सख्या तीन है—वैदर्भी, पाञ्चाली तथा गौडी।[२] ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन भी वामन के इसी मत का समर्थन करते है। उन्होने इन रीतियो के लिए क्रमश समास रहित, मध्यम समासयुक्त तथा दीर्घ समासयुक्त सघटना शब्दो का प्रयोग किया है।[३] राजशेखर को भी वस्तुत तीन ही रीतियाँ मान्य है[४] यद्यपि उन्होने कर्पूरमञ्जरी की नान्दी मे 'मागधी' का भी उल्लेख किया है।[५] भोजराजकृत सरस्वती कण्ठाभरण[६] मे 'आवन्तिका' एव 'मागधी' नामक दो अतिरिक्त रीतियो का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार रीतियो की सख्या पाँच स्वीकार की गयी है। परन्तु कविराज विश्वनाथ[७] ने चार प्रकार की ही रीतियो का वर्णन किया है। ये हैं—वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली एव लाटी। इनमे से लाटी के सम्बन्ध मे उनका मत है कि वास्तव मे यह कोई भिन्न रीति नही है वरन् वैदर्भी तथा पाञ्चाली दोनो के कुछ गुणो से युक्त है।[८]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि वस्तुत रीतियाँ तीन ही है—वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली।

---

१ साहित्यदर्पण, ९/१।
२ सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति। —काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १/२/९।
३ असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घ समासेति त्रिधा सघटनोति ॥
—ध्वन्यालोक ३/५।
४ काव्य मीमासा पृ० ३१ (चौ० प्र०)।
५ भद्द भोदु सरस्सई अ कइणो णदतु वासाइणो।
अण्णाण बि पर पअट्टदु बरा बाणी छइल्लपिआ।
बच्छोमी तह माअही फुरदु णो सा किं च पचालिआ।
रीदीओ बिलिहतु कब्बकुसला जोण्हा चओरा बिअ ॥
—कर्पूरमञ्जरी १/१।
६ सरस्वती कण्ठाभरण, २/३२, ३३।
७ साहित्यदर्पण, ९/२।
८ लाटी तु रीति वैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता। —साहित्यदर्पण ९/५।

वैदर्भी रीति मे माधुर्य गुण, सुकुमार वर्ण, असमास या मध्यम समास तथा कोमल रचना का एकत्र समावेश होता है ।[1] कविराज विश्वनाथ के शब्दो मे—

माधुर्यव्यअकैर्वर्णे रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीति रिष्यते ॥[2]

अर्थात् माधुर्यगुण के व्यञ्जक वर्णों से युक्त समास रहित अथवा अल्प समास युक्त मनोहारी रचना वैदर्भी रीति कहलाती है ।

रुद्रट के अनुसार ऐसी ललित पद रचना, जिसमे असमस्त अथवा स्वल्प समस्त पदावली का प्रयोग हुआ है, श्लेषादि प्राचीनाचार्य सम्मत दसो शब्द गुण विद्यमान हो तथा द्वितीय वर्ग के वर्णों का बाहुल्य और स्वल्प प्राणाक्षरो का सन्निवेश हो, तो वैदर्भी रीति कहलाती है—

असमस्तैक समस्ता युक्ता दशाभि गुणैश्च वैदर्भी ।
वर्ग द्वितीय वहुला स्वल्पप्राणाक्षरा च सुविधेया ॥[3]

मम्मट ने भी काव्य-प्रकाश मे इसी मत का समर्थन किया है ।[4]

गौडी रीति वैदर्भी रीति के बिल्कुल विपरीत होती है। इसमे ओजगुण, कठोर वर्ण, दीर्घ समास तथा विकट रचना—इन समग्र काव्य साधनो का एकत्र समावेश होता है—

समस्तात्युद्भट पदामोज कान्ति गुणान्विताम् ।
गौडीयामिति गायन्ति रीति रीतिविवक्षणा ॥[5]

कविराज विश्वनाथ के शब्दो मे—

ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्वन्ध आडम्बर पुन ।
समास बहुला गौडी . . ॥[6]

अर्थात् ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण समास प्रचुर उद्भट रचना को गौडी रीति कहते हैं ।

पाञ्चाली रीति वैदर्भी तथा गौडी रीति की अन्तरालवर्तिनी है। इसमे न तो बहुत अधिक समस्त पद होते है और न ही असमस्त अपितु पाँच या छ पदो के

---

१ अस्पृष्टा दोष मात्राभि समग्र गुणगुम्फिता ।
विपञ्ची स्वर सौभाग्या वैदर्भी रीति रिष्यते ॥ —काव्यालङ्कार सूत्र पृ० १७ ।
२ साहित्यदर्पण, ९/२-३ । ३ काव्यालकार, २/४/३ ।
४ काव्य प्रकाश, ८/७४ । ५ काव्यालङ्कार सूत्र, १/२/१२, पृ० २० ।
६ साहित्य दर्पण, ९/३ ।

समास इसमे प्राप्त होते है। वामन के अनुसार इसमे माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणो का निवास होता है—

माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पाञ्चाली।
आश्लिष्ट श्लथभावा ता पूरणच्छाययाश्रिताम्।
मधुरा सुकुमारा च पाञ्चाली कवयो विदु ॥[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतियाँ तीन ही है—वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली।

'जयन्तविजय' में वैदर्भी रीति—

'जयन्तविजय' महाकाव्य की प्रमुख रीति वैदर्भी है, क्योकि वैदर्भी रीति की श्रेष्ठता को सभी साहित्याचार्यों तथा कवियो ने एक मत से स्वीकार किया है। वामन के अनुसार सकल गुणो से विशिष्ट होने के कारण वैदर्भी रीति ग्राह्य है और अल्प (केवल दो) गुणो से विशिष्ट होने के कारण गौडीया और पाञ्चाली रीतियाँ अग्राह्य है।[2]

राजशेखर के अनुसार साहित्य विद्या वधू काव्य पुरुष को गौडीय रीति के मूल स्थान प्राची प्रदेश मे आकृष्ट नही कर सकी, पाञ्चाली रीति के मूल स्थान पाञ्चाल प्रदेश मे वह उसके प्रति थोडा आकृष्ट होने लगा और वैदर्भी रीति के मूल स्थान दक्षिण प्रदेश मे वह उस पर पूर्णरूप से मुग्ध हो गया तथा वही वत्सगुल्म नामक नगर मे उन दोनो का विवाह भी सम्पन्न हुआ।[3] इस प्रकार इस कथा द्वारा राजशेखर ने वैदर्भी रीति को प्रकान्तर से सर्वोत्तम रीति घोषित किया है।

वैदर्भी की सर्वश्रेष्ठता के सम्बन्ध मे कवि गण भी आलकारिको से पीछे नही रहे है। श्रीहर्ष के शब्दो मे—

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इत स्तुति का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरली करोति ॥[4]

अर्थात् वैदर्भी रीति (दमयन्ती) तुम वास्तव मे धन्य हो जिसने अपने उदार गुणो से नैषध (काव्य या नल) को आकृष्ट कर लिया है। चन्द्रिका की इससे अधिक स्तुति क्या हो सकती है कि वह समुद्र को भी चञ्चल बना देती है।

महाकवि कलिदास ने इसी मनोहारिणी रीति का आश्रय लेकर विमल यश प्राप्त किया। कवि विल्हण ने तो इसकी प्रशसा मुक्त-कण्ठ से की है—

---

१ काव्यालङ्कार सूत्र, १/२/१३।
२ तासा पूर्वा ग्राह्या गुणसाकल्यात्। वही, १/२/१४।
न पुनरितरे स्तोकगुणत्वात्॥ वही, १/२/१५।
३ काव्य मीमासा, पृ० १६-२२। ४ नैषधीय चरित, ३/११६।

अनभ्रवृष्टि श्रवणामृतस्य सरस्वती विभ्रमजन्मभूमि ।
वैदर्भरीति कृतिनामुदेति सौभाग्य लाभ प्रतिभूपदानाम् ॥[1]

अर्थात् इससे अधिक वैदर्भी रीति की और क्या प्रशसा की जा सकती है कि वह रुचिर वैदर्भी काव्य मे जब अपना विलास दिखाने लगती है तो स्वर्ग भी नीरस एव मोक्ष भी निरानन्द प्रतीत होने लगता है । अत ऐसी मनोहारी वैदर्भी रीति को ही सस्कृत भाषा के कवियो ने काव्य मे यदि सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया तो इसमे आश्चर्य क्या ?

महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी इसी वैदर्भी रीति की प्रधानता है क्योकि गुण निरूपण के अवसर पर यह भली भाँति स्पष्ट हो चुका है कि 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सभी माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण विद्यमान हैं । रचना प्रायश समास रहित अथवा अल्प समासो से युक्त है तथा पदो की सघटना श्रवण सुखद है । यथा—

सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति, सरोवराणिस्मितपद्मखण्डै ।
तै पद्मखण्डानि च राजहसै स्वै राजहसा सुगतिप्रचारै ॥[2]

अर्थात् जहाँ पर पृथ्वी सरोवरो से, सरोवर विकसित पद्मखण्डो से, वे पद्मखण्ड राजहसो से और वे राजहस अपनी सुगति के प्रचार से सुशोभित होते हैं । यहाँ माधुर्य वर्णन के अनुरूप ही मधुर पदो का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार—

भोगावती भोगिपति सुरेन्द्रोऽमरावती प्रत्यधिकानुरागम् ।
मुमोच चारुत्वमवेक्ष्य यस्या सा तत्र नाम्नास्ति पुरी जयन्ती ॥[3]

अर्थात् जिस नगरी की चारुता को देखकर शेषनाग ने भोगावती तथा इन्द्र अमरावती के प्रति अधिक प्रेम को छोड दिया । ऐसी नाम के अनुरूप जयन्ती .गरी है ।

यहाँ पर नगरी के वर्णन मे माधुर्य व्यजक वर्णो का प्रयोग हुआ है । श्लोक के आरम्भ मे ही 'भोगावती भोगिपति ' मे अनुप्रास की मनोहर छटा पाठक को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है तथा द्वितीय पक्ति मे मकार का प्रयोग रचना मे लालित्य का सञ्चार कर रहा है । अत यह स्वय सिद्ध हो जाता है, कि कवि ने वर्णन के अनुरूप ही पदावली का प्रयोग किया है तथा ऐसे अवसरो पर सर्वत्र प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति हुई है । माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति शृगार के अवसर पर दर्शनीय है—

---

१ विक्रमाङ्क देव चरित, १/६ ।
२ जयन्तविजय, १/३० ।
३. वही, १/४१ ।

कुवलयदलनेत्रा पक्वनारगनव्य-
त्वगुदित रसधाराक्षेपतो व्याकुलाक्षीम् ।
विदधदथ जयन्तोऽन्या चुचुम्बे तदग्रे
गुरुरिह चतुरत्वे कामदेवोऽस्यनूनम् ॥[१]

अर्थात् पकी हुई नारगी के नवीन वल्कल से निकले हुए रस की धारा के गिराने से एक नायिका को व्याकुल नेत्र वाली कहते हुए जयन्त ने कमल दल के समान नेत्रो वाली दूसरी नायिका का चुम्बन किया । इस प्रकार उसकी इस क्रीडा की चातुरी मे कामदेव निश्चय ही गुरु ठहरा ।

यहाँ पर सयोग श्रृगार का वर्णन हुआ है और उसी के अनुरूप ही मधुर पदो जैसे 'पक्वनारगनव्य' 'चुचुम्बे', 'चतुरत्वे' आदि पदो मे वर्ण रचना दर्शनीय है । इस प्रकार अपनी मधुरता के प्रयोग से यह रचना श्रृगार को और भी अधिक आस्वाद्य बना रही है ।

आनन्दवर्धन ने सघटना के नियामक तीन तत्त्व माने है[२]—१ वक्ता का औचित्य, २ बोद्धा का औचित्य, ३ वाच्य का औचित्य ।

जयन्तविजय महाकाव्य एक वर्णनात्मक काव्य है तथा इसके रचयिता महाकवि अभयदेव सूरि जैन धर्मावलम्बी है । उन्होने यद्यपि इस काव्य मे जैनधर्म के सिद्धान्तो का प्रतिपादन नही किया है किन्तु फिर भी काव्य की शैली उपदेशात्मक हो गयी है । तृतीय सर्ग मे राजा विक्रमसिंह अपनी प्रतिज्ञा की चर्चा मन्त्री सुबुद्धि से करते है । मन्त्री सुबुद्धि राजा की इच्छा पूर्ति का साधन पचनमस्कार मन्त्र की आराधना को बतलाता है—

नमस्कार पर तत्र श्रीपचपरमेष्ठिनाम् ।
प्रयात्यनन्य सामान्ययान पात्रसगोत्रताम् ॥
किं चाय विधिवद्ध्यात सर्वकर्मसु कर्मठ ।
कल्याणकदलीकन्दस्यन्दमान सुधारस ॥[३]

यहाँ पर वक्ता मन्त्री सुबुद्धि तथा बोद्धा राजा विक्रमसिह है । इसी प्रकार पचदश सर्ग मे सर्वज्ञता क सम्बन्ध मे ब्राह्मण और जैन सिद्धान्तो का विवरण शास्त्रार्थ के रूप मे देकर ब्राह्मण विचारधारा पर जैन विचारधारा की विजय दिखलायी गयी है । इस सर्ग मे वर्णन इस प्रकार है कि एक दिन सुस्थिताचार्य जयन्ती नगरी के उद्यान मे

---

१ जयन्तविजय, ८/२१ ।
२. गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा ।
रसान् तन्नियमे हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो ॥ —ध्वन्यालोक ३,६ ।
३ जयन्तविजय, ३/२-३ ।

पधारते हैं। राजा विक्रमसिंह उनका स्वागत करते हैं। आचार्य राजा को उपदेश सुनाते हैं जिसके सुनने से राजा का मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है और उन्हे सम्यकत्व की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ पर वक्ता सुस्थिताचार्य तथा बोद्धा राजा विक्रमसिंह हैं। इस प्रकार कवि ने सभी स्थलो पर वक्ता तथा बोद्धा के औचित्यानुमार ही सघटना का प्रयोग किया है। वक्ता तथा बोद्धा सभी शिष्टजन हैं। अत भाषा मे कही भी अग्राम्यत्व नही है। वाच्य के औचित्य का उन्होंने सर्वत्र पालन किया है। वीर एव रौद्र रस के अवसर पर ओजपूर्ण तथा शृङ्गार एव करुण के अवसर पर माधुर्यपूर्ण सघटना है। वैदर्भी तो समग्र गुणमम्पन्न रीति है। अतएव उसमे सभी प्रकार के भावो को व्यक्त करने की क्षमता है। महाकाव्य मे वीर रस के अवसर पर दीर्घ समासो का प्रयोग भी प्राप्त होता है परन्तु रसानुकूल होने के कारण वह सघटना का गुण ही है, दोष नही। दीर्घ समासो के प्रयोग के अवमर पर भी कवि ने सर्वत्र प्रसाद गुण का ध्यान रखा है। यही कारण है कि यदि प्रकृति वर्णन इत्यादि स्थलो पर भी कही दीर्घ ममासो का प्रयोग हुआ है तो वह सहृदय की सौन्दर्यानुभूति मे बाधक नही हुआ है। यथा—

काञ्ची कञ्चन किंकिणीरणरणत्कारापनिद्रस्मर।
दोलान्दोलन कौतुक मृगदृशामालोक्य लोकोत्तरम्॥
तत्रासक्त मना प्रयाति नलिनीकान्त प्रशान्तैर्हयै-
र्मन्दमन्दमतीव वृद्धिमधिका पुष्णन्त्यमी वासरा॥[1]

अर्थात् काञ्ची प्रदेश की स्त्रियो की करधनी की किंकिणियो की आवाज से समाप्त निद्रा वाला, मृगनयनियो के लोकोत्तर दोलान्दोलन कौतुक को देखकर वहाँ पर आसक्त मन वाला, नलिनीकान्त (सूर्य) थके हुए घोडो से अत्यन्त मन्द-मन्द जाता है। इसीलिए दिन अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो रहे है।

यहाँ पर कवि अभयदेव की कल्पना चरम सीमा पर पहुँच गयी है क्योकि दिन वृद्धि का कारण दोलान्दोलन है। इसके साथ ही कवि ने उसी क्रीडा के अनुरूप ही मधुर पदो जैमे कवर्ग का बाहुल्य तथा 'काञ्ची', 'काञ्चन', मन्द', 'मन्द' इत्यादि पदो मे अपने-अपने वर्ग के पञ्चम वर्णों से युक्त स्पर्श वर्णों का प्रयोग किया है जो अपनी मधुरता से प्राकृतिक चित्रण को और भी आस्वाद्य बना रहा है।

इसी प्रकार वीर रस मे ओज गुण के अनुकूल दीर्घ समासयुक्त मघटना का उदाहरण प्रस्तुत है—

आसन्नसग्रामसमुत्सहिष्णोर्वीर व्रजस्यान शिरे मनांसि।
हर्षप्रकर्षे समुदञ्चदुच्चरोमाञ्च चक्रैश्च चिर वपूंसि॥[2]

---

१ जयन्तविजय ७/७४। २ वही, १०/२७।

यहाँ पर सकार के प्रयोग से युक्त रचना वीर रस की व्यञ्जना मे सहायक सिद्ध हो रही है---

अपि च—

खड्गाखड्गि शराशर प्रभृति भिर्युद्ध प्रकारैर्युध
कारकारमपार कौतुकरस विस्तारयन्तौ दृशाम् ।
प्रत्येक विजयश्रिया रणगुणोत्कर्षापकर्षक्षणे
क यामीति विमुग्धया प्रतिकल तौ खिन्नया ।।[१]

अर्थात् तलवार का तलवार से, बाण का बाण से जवाब देने वाले युद्ध को करते हुए एव अपार कुतूहल रस को दृष्टि के सामने फैलाते हुए उन दोनो के युद्ध के गुण के उत्कर्ष और अपकर्ष के क्षण मे विमुग्ध विजयश्री से किसके पास जाऊँ ? इस तरह से परेशान होकर विचारा गया ।

प्रस्तुत उदाहरण मे भी वीर रस की अभिव्यञ्जना हुई है तथा 'खड्गा-खड्गि' पदो मे अपने-अपने वर्ग के पञ्चम वर्णों से युक्त वर्णों का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार सकार तथा रेफ का प्रयोग भी ओज गुण को उत्कर्ष प्रदान कर रहा है ।

कवि ने सदैव वाच्य के अनुकूल ही पदावली का प्रयोग किया है । महाकाव्य मे आये हुए उपदेशात्मक स्थलो की भाषा गम्भीर एव प्रभावपूर्ण है । पन्द्रहवें सर्ग मे सुस्थिताचार्य जी जैनधर्म की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध करते हुए कहते है—

सुगति प्रेयसी पुसा बोभवीति वशवदा ।
जृम्भमाणे जिनेन्द्रोक्तधर्मकार्मण कर्मणि ।।[२]

अर्थात् जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए धर्म कर्म का पालन करने पर पुरुषो के लिए सुगति प्रियतम और स्वाधीन होती है ।

यहाँ पर कवि ने सरल तथा समास रहित अथवा अल्प समासयुक्त शैली का आश्रय लिया है । शैली की सरलता तथा प्रसाद गुण के कारण ये उपदेश पाठक के हृदय मे अपना गहरा प्रभाव छोडते है ।

इसी प्रकार सप्तम तथा अष्टम सर्ग मे बसन्त ऋतु के आगमन पर दोलान्दोलन, पुष्पावचय तथा जलकेलि के अवसर पर अलङ्कारयुक्त मधुर भावो को व्यक्त करने मे समर्थ कोमल रीति का प्रयोग है । कवि ने यहाँ पर भी वक्ता, बोद्धा तथा वाच्य के औचित्य का पूरा ध्यान रखा है । कवि अभयदेव स्वभावत कोमल हैं अत उनकी भाषा मे कोमल पदो का प्रयोग उचित है । इसके साथ ही वे एक उत्कृष्ट

---

१ जयन्तविजय, १०/७१ । २ वही, १५/१२ ।

कोटि के कवि है । अत. उनकी भाषा मे आलकारिता भी स्वाभाविक है । इसीलिए 'जयन्तविजय' मे प्रयुक्त शैली की प्रशसा करते हुए डॉ० राम जी उपाध्याय[1] कहते हैं—'अभयदेव की शैली अनेक स्थलो पर सगीतमयी है । ऐसा लगता है कि उनकी कविता के नृत्य मे पद-विन्यास थिरकते से हैं । यथा—

कुरङ्गैस्तुङ्गै रणदनणु घण्टै करटिभि
सुवर्णै सद्वर्णैवसन निकरे सुन्दरतरै ।
त्वयि स्वैर वर्षत्यधिप न शिर केन दुधुवे
विमुच्यैक क्षोणीभर परवश पन्नगपतिम् ।। ६-६६

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है । कवि परिमल ने तो इस वैदर्भी मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के सदृश बताया है—

निस्त्रिंशधारासदृशेन ये षा वैदर्भमार्गेण गिर प्रवृत्ता ।

किन्तु कवि अभयदेव ने इस निस्त्रिंशधारा पर सफलतापूर्वक चलकर यह सिद्ध कर दिया है कि वे वस्तुत एक महान कवि है ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य में गुण निरूपण

काव्य मे गुणो की स्थिति वाञ्छनीय ही नही अपितु आवश्यक है । भरत-मुनि ने दोषो के विपर्यास को ही गुण माना है ।[2] उनके अनुसार गुणो की सख्या दश है—श्लेष प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सुकुमारता, अर्थ व्यक्ति, उदारता तथा कान्ति ।[3] आचार्य दण्डी ने भी भरत मुनि के इन्ही दश गुणो का अनुमोदन किया है ।[4] आचार्य वामन की दृष्टि मे भी गुणो का सर्वाधिक महत्त्व है । उन्होने रीति निरूपण के प्रसङ्ग मे गुणो का सर्वप्रथम उल्लेख किया है । रीति को उन्होने विशिष्ट पद-रचना माना है और विशिष्ट पद की व्याख्या करते हुए उन्होने विशेषता का आधार गुणो के द्वारा माना है ।[5] उनके अनुसार काव्य शोभा के

---

१ सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ।

२ एते दोषास्तु विज्ञेया सूरिभिर्नाटिका श्रया ।
एतएव विपर्यस्ता गुणा काव्येषु कीर्तिता ।। —नाट्य शास्त्र, १७/९५ ।

३ श्लेष प्रसाद समता समाधि माधुर्ययोज पद सौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्यगुणाद शैते ।। वही, १७/६० ।

४ श्लेष प्रसाद समता माधुर्य सुकुमारता ।
अर्थ व्यक्ति रुदारत्वमोज कान्ति समाधय ।। —काव्यादर्श, १-४१ ।

५ विशिष्ट पद रचना रीति । विशेषो गुणात्मा । —का० सू० वृ०, १/२/७, ८ ।

उत्पादक धर्म गुण कहलाते हैं[1] और उन्होंने गुणों को काव्य का नित्य धर्म माना है।[2] इनके अनुसार भी गुणों की संख्या १० है। आचार्य वामन गुणों की स्थिति शब्द और अर्थ दोनों में समान रूप से स्वीकार करते हैं अर्थात् उनके अनुसार दश शब्द गुण तथा दश अर्थ गुण हैं।

आचार्य वामन के अनुसार रीति काव्य की आत्मा है और गुण रीति के धर्म हैं। ध्वनिवादी आचार्य रस ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हैं और उनके अनुसार उसी रस का आश्रय लेने वाले धर्म गुण कहलाते हैं—

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः।[3]

मम्मट के अनुसार आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के जो नित्य एवं उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं वे गुण कहलाते हैं।[4] उनके अनुसार गुणों की संख्या तीन है दश नहीं।[5] उन्होंने इन्हीं तीन गुणों में ही दश गुणों को निहित माना है। उनके अनुसार दश गुणों में से कुछ तो इन्हीं तीनों गुणों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं, कुछ केवल दोषाभावरूप होते हैं तथा कतिपय कहीं पर गुण न रहकर दोष हो जाते हैं। अतः गुणों की संख्या केवल तीन ही है।[6]

कवि अभयदेव ने भी इन्हीं गुणों का समावेश अपने जयन्तविजय महाकाव्य में किया है। उन्होंने भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट लक्षण का पूर्ण समर्थन किया है। उनके अनुसार--

महाकवीनामपि नव्यकाव्ये दोषः कदाचित्किल सभुविष्णुः।
प्रमादनिद्रोदय मुद्रया हि क्रोडीक्रियन्ते सुधियां धियोऽपि॥[7]

अर्थात् महाकवियों के भी नवीन काव्य में कदाचित् दोष होना निश्चय ही सम्भव है, क्योंकि बुद्धिमानों की बुद्धि भी प्रमाद निद्रा के उदय के कारण कुण्ठित हो जाती है।

किन्तु अच्छा कवि यशोविलास की प्राप्ति के लिए इच्छुक होकर काव्य के

---

१ काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः। —का० सू० वृ०, ३/१/१।
२ पूर्वे नित्याः। वही, ३/१/३।
३ ध्वन्यालोक २/६।
४ ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ —काव्य प्रकाश, ८/६६।
५ माधुर्यौज प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। वही, ८/६८।
६ केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परेश्रिताः।
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततोदश॥ वही ८/७२।
७ जयन्तविजय, १/६।

दोषो का निराकरण कर देता, क्योकि सफल वैद्य शरीर के सुख के लिए काँटे (वेदना) को निकाल ही देता है—

अभ्यर्थित सोऽपि यशोविलास लास्याय काव्यस्य धुनोति दोषम् ।
समुद्धरत्येव हि वैद्यराज शल्य तनो सौख्यकृते कृतार्थ. ॥[१]

कवि अभयदेव उन कवियो की घोर निन्दा करते हैं, जो दुर्जन कवि अपने बिगडे हुए शब्दो से काव्य गृह मे प्रवेश करके काव्य को विकृत कर देते हैं। उनकी दृष्टि मे उसे तो एक मात्र दोषद्रष्टा उलूक पक्षी की भाँति बुद्धिमानो को दूर ही रखना चाहिए—

उद्वासयत्यात्मविरूपशब्दैर्यो दुर्जन काव्यगृह निविश्य ।
उलूक पक्षीव स दूर एव दोषैक दृष्टिर्विबुधैर्विधेय ॥[२]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने काव्य मे दोष राहित्य पर विशेष बल दिया है। अत यह स्वय सिद्ध हो जाता है कि कवि ने दोष राहित्य पर आग्रह किया है उसने निश्चय ही अपने काव्य मे अपनी मान्यताओ के परिपालन का पूर्ण प्रयास किया होगा। परिणामस्वरूप 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सभी गुणो का सद्भाव प्राप्त होता है। प्रसाद गुण तो महाकाव्य मे सर्वत्र व्याप्त है ही, साथ ही वीर तथा शृगार रसो के अवसर पर क्रमश ओज एव माधुर्य गुणो की छटा भी दर्शनीय है। कवि अभयदेव के काव्य मे वैसे तो पूर्वाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट दश गुणो मे से अधिकाश के उदाहरण मिल जाते है किन्तु ध्वनिवादियो द्वारा निर्दिष्ट ओज, प्रसाद तथा माधुर्य गुणो मे ही उनका अन्तर्भाव हो जाने के कारण यहाँ उन्ही का विवेचन किया जा रहा है।

प्रसाद गुण— काव्य मे प्रसाद गुण का प्रमुख स्थान है, क्योकि माधुर्य तथा ओज गुणो का उत्कर्ष जहाँ काव्य मे केवल कुछ विशेष रसो मे ही प्राप्त होता है वही प्रसाद गुण का उत्कर्ष सभी रसो मे समान रूप मे देखा जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य का सभी रसो के प्रति जो सम्पर्क है वह सभी रसो मे समान स्थितिवाला प्रसाद गुण कहलाता है।[३] मम्मट के अनुसार सूखे ईंधन मे अग्नि के समान तथा वस्त्र मे स्वच्छ जल के समान जो गुण हृदय मे अनायास व्याप्त हो जाता है वह सर्वत्र (सभी रसो मे) रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है।[४] उनके अनुसार—

---

१ जयन्तविजय, १/१२। २ वही, १/१३।

३ समर्पकत्व काव्यस्य यत्तु सर्वान् रसान् प्रति ।
स प्रसादो गुणो जेय सर्वसाधारण क्रिय ॥ —ध्वन्यालोक, २/१ ।

४ शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव य ।
व्याप्नोत्यन्यत प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थिति ॥ —काव्य प्रकाश, ८/७० ।

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारण समग्राणा सप्रसादो गुणोमत ॥[१]

अर्थात् जिस शब्द अथवा रचना के द्वारा श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाय वह सभी मे रहने वाला गुण प्रसाद गुण कहलाता है।

ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन ने शब्द और अर्थ की स्वच्छन्दता को प्रसाद गुण का लक्षण माना है। उनके अनुसार सभी रचनाओ मे रहने पर भी प्रसाद गुण व्यंग्यार्थ (रस) की अपेक्षा से ही मुख्य रूप से व्यवस्थित होता है।[२]

इस प्रकार काव्यार्थ की झटिति प्रतीति का कारण प्रसाद गुण है। अर्थ की शीघ्र प्रतीति न होने के कारण रसास्वाद मे बाधा पडती है, किन्तु प्रसाद गुण के कारण यह बाधा दूर हो जाती है। अत रसाभिव्यक्ति के कारण भी प्रसाद गुण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जयन्तविजय महाकाव्य मे प्रसाद गुण का बाहुल्य है, क्योकि श्लोको के पठन मात्र से ही अर्थ की शीघ्र प्रतीति हो जाती है। अत रसास्वाद मे किसी प्रकार की बाधा नही आने पाती। दीर्घ समासो का प्रयोग प्राय काव्य मे बहुत ही कम हुआ है। रचना समास-रहित अथवा अल्प समासयुक्त है। यही कारण है कि उनकी कविता के नृत्य मे पद-विन्यास थिरकते से है। यथा—

कुरङ्गैरुत्तुङ्गै रणदनणुघण्टै करटिभि
सुवर्णै सद्वर्णैर्वसननिकरै सुन्दरतरै ।
त्वयि स्वैर वर्षत्यधिप न शिर केन दुधुवे
विमुच्यैक क्षोणीभरपरवश पन्नगपतिम् ॥[३]

अर्थात् हे राजन् तुम्हारे स्वतन्त्रतापूर्वक उत्तङ्ग कुरङ्गो, बडे-बडे घण्टो से युक्त हाथियो, अच्छे सुवर्णों तथा सुन्दर वसनो द्वारा दान देने से एक क्षोणी के भार से दबे हुए शेषनाग को छोडकर किसका सिर न चकराया अर्थात् सबका चकरा गया।

यहाँ पर स्वल्प समासयुक्त रचना के कारण वाक्यार्थ की प्रतीति सरलता से हो जाती है और उसके साथ ही व्यग्यार्थ रूप विक्रमसिंह की दानवीरता की प्रतीति उसी क्षण हो जाती है। अत यहाँ पर प्रसाद गुणयुक्त रचना वीर रस की चर्वणा मे सहायक हो रही है।

---

१ काव्य प्रकाश, ८/७६।

२ प्रसादस्तु स्वच्छता शब्दार्थयो । स च सर्वसाधारणोगुण सर्वरचना साधारणश्च व्यग्यार्थापेक्षयैव मुख्यतया व्यवस्थितो मन्तव्य ।
—ध्वन्यालोक, २/१० कारिका की वृत्ति।

३ जयन्तविजय, ६/६६।

अपि च—

गजेन्द्रात्क्षेपितैर्वीरै स्वैरमाधोरणा बभु ।
प्रीतये प्रेतनाथस्य प्रस्तुनोपायना इव ॥[1]

अर्थात् हाथियों से स्वतन्त्रतापूर्वक फेंके गये वीरों से महावत मानो यमराज को प्रसन्न करने के लिए भेंट चढ़ा रहे हैं।

यहाँ पर भी स्वल्प समासयुक्त रचना के कारण वाक्यार्थ की प्रतीति मे कठिनाई का अनुभव नही होता है तथा इसके साथ ही व्यग्यार्थ रूप जयन्त के सैनिको की वीरता एव युद्ध की भीषणता तथा इसके द्वारा वीर रस की प्रतीति उसी क्षण हो जाती है। अत यहाँ पर भी प्रसाद गुण वीर रस की चर्वणा मे सहायक हो रहा है।

इसी प्रकार महाकाव्य मे सर्वत्र अर्थ की निर्बाध प्रतीति प्रसाद गुण के माध्यम से हो रही है।

माधुर्य गुण— शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति का माध्यम माधुर्य गुण माना गया है, क्योकि रसो मे सर्वाधिक मधुर एव आह्लादकारी रस शृगार रस ही है। इस गुण का विप्रलम्भ शृगार तथा करुण रस मे अत्यधिक प्रकर्ष देखा जाता है, क्योकि इन रसो मे चित्त की आर्द्रता तथा विह्वलता अधिक होती है। ध्वनिकार के शब्दो मे—

शृङ्गार एवमधुर पर प्रह्लादनो रस ।
तन्मय काव्यमाश्रित्य माधुर्यप्रतितिष्ठति ॥
शृङ्गारे विप्रलम्भाख्ये करुणे च प्रकर्षवत् ।
माधुर्यमार्द्रता याति यतस्तत्राधिक मन ॥[2]

आचार्य मम्मट ने भी माधुर्य का लक्षण करते हुए लिखा है कि मूर्ध्नि स्थित अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्णों से युक्त, 'ट' वर्ग को छोडकर शेष स्पर्श वर्ण ह्रस्व रकार तथा णकार और समास-रहित अथवा स्वल्प समास वाली रचना माधुर्य गुण मे व्यजक होती है।[3] उन्होने भी माधुर्य को शृगार रस मे चित्त के द्रवीभूत का का कारण और आह्लाद-स्वरूप माना है तथा करुण, विप्रलम्भ एव शान्त रस मे उत्तरोत्तर चमत्कारजनक कहा है—

आह्लादकत्व माधुर्यं शृगारे द्रुति कारणम् ।
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ॥[4]

---

१ जयन्तविजय, ११/६६। २. ध्वन्यालोक, २/७,८।
३ मूर्ध्नि वर्गान्त्यगा स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ॥ —काव्य प्रकाश, ८/७४।
४ काव्य प्रकाश, ८/६८,६६।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे माधुर्य गुण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा—

> चरणकमलमेक पादमूले सहेल
> मृदु भुजयुगल च स्कन्धदेशे निवेश्य ।
> सरससुरत केलिप्रोक्तमार्गेण काचि
> त्प्रियमिव तरुमुच्चैरारुरोहायताक्षी ॥[१]

अर्थात् कोई स्त्री एक पैर लीलापूर्वक वृक्ष के पादमूल मे रखकर तथा दोनो कोमल भुजाओ को स्कन्ध प्रदेश मे डालकर सरस सुरति केलि के बताये मार्ग से प्रियतम के ऊपर की भाँति ऊँचे वृक्ष पर चढ गयी।

यहाँ पर मकार, लकार एव मकार का अधिक प्रयोग एव स्वल्प समासो की सघटना माधुर्य एव लालित्य का विस्तार करते हुए शृगार रस के उत्कर्ष मे सहायक हो रही है।

अपि च—

> रम्यावधित्वेन यदोय साल विद्याधरीषु स्थितिमीयुषीभि ।
> विद्याधरीभिर्निशि धर्तुमीहा चक्रे करे कन्दुकलीलयेन्द्र ॥[२]

अर्थात् जहाँ पर अधिक समय तक निवास करने की इच्छा वाली विद्याधर की स्त्रियो के समान स्त्रियो द्वारा रात्रि मे कन्दुक लीला मे इन्दु को पकडने की इच्छा की जाती है।

यहाँ पर स्वल्प समास से युक्त रचना माधुर्य का सञ्चार करते हुए हमारे नेत्रो के सामने जयन्तीपुरी का भव्य चित्र उपस्थित कर देती है।

इसी प्रकार—

> कुच कलश निपात प्रोच्छलत्तारहार-
> प्रचुर रुचि वितानैर्व्योम्नि दोलाधिरूढा ।
> प्रबलपवनतरङ्गद्व्योम गङ्गातरङ्ग-
> श्रियमिव विदधाना भाति काचित्सुनेत्र ॥[३]

अर्थात् दोलारूढ कोई सुनेत्री कुच कलश के ऊपर गिरने के कारण उछलने वाले सुन्दर हार से मानो प्रबल पवन की तरङ्ग मे चञ्चल आकाशगङ्गा की तरङ्ग की शोभा को धारण करती हुई सी सुशोभित हुई।

यहाँ पर 'क', 'र', 'व', 'प' तथा ङकार युक्त गकार का प्रयोग अपने माधुर्य से नायिका की मञ्जुल मूर्ति को हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है।

---

१ जयन्तविजय, ८/१६। २ वही, १/४५।
३ वही, ८/३।

ओज गुण—आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य मे स्थित रौद्र (वीर, बीभत्स) आदि रस दीप्ति के कारण ही लक्षित होते हैं। ओज गुण का आश्रय इसी दीप्ति को अभिव्यक्त करने वाले शब्द और अर्थ मे होता है। अत ओज गुण का प्रकाशन दीर्घ समासो की रचना से अलकृत वाक्य के द्वारा होता है—

रौद्रादयो रसादीप्त्या लक्षयन्ते काव्यवर्तिन ।
तद्व्यक्ति हेतु शब्दार्थावाश्रित्यौजो व्यवस्थितम् ॥
तत्प्रकाशन पर शब्दो दीर्घसमास रचनालकृत वाक्यम् ॥[१]

ध्वनिकार के इस मत का आचार्य मम्मट ने भी समर्थन किया है। उनके अनुसार वर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ उसके बाद के अर्थात द्वितीय एव चतुर्थ वर्ण का ऊपर नीचे अथवा दोनो ओर विद्यमान रेफ के साथ किसी वर्ण का, दो तुल्यवर्णों का एक साथ योग, णकार को छोडकर शेष टवर्ग का प्रयोग शकार तथा षकार का प्रयोग दीर्घ समास तथा विकट रचना ओज के व्यञ्जक होते है।[२]

कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' मे ओज गुण के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते है—

योधे प्रसिद्धैर्युयुधेरिसौ (रो) धै सहाश्ववारै सममश्ववारै ।
रथिप्रवीरै रथिकैश्च सार्धं समान कक्षं जयबद्ध लक्षं ॥[४]

अर्थात् युद्धस्थल मे प्रसिद्ध शत्रुओ के साथ शत्रु, असवारो के साथ असवार और रथी के साथ रथी जय के लक्ष्य को बाँधते हुए डट गये।

यहाँ पर जयन्त तथा हरिराज की सेनाओ का समराङ्गण मे वर्णन हुआ है तथा रकार और सकार का सफल प्रयोग ओज गुण को दीप्त करता हुआ वीर रस को पुष्ट कर रहा है। प्रस्तुत उदाहरण मे ओज गुण के साथ ही प्रसाद गुण का समावेश होने के कारण रस चर्वणा मे भी किसी प्रकार की बाधा नही आने पायी है—

इसीलिए आचार्य वामन ने ओज के साथ प्रसाद का मिश्रण आवश्यक माना है—

---

१ ध्वन्यालोक -/६ की कारिका तथा वृत्ति।
२ दीप्त्यात्म विस्तृतेर्हेतुरोजो वीर रसस्थिति।
बीभत्स रौद्ररसयोस्तस्याधिक्य क्रमेण च ॥ —काव्य प्रकाश, ८/६६-७०।
३ योग आद्यस्तृतीयाभ्यामन्तयो रेणु तुल्ययो।
रादि शर्वो वृत्तिदर्ध्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥ —वही, ८/७५।
४ जयन्तविजय, १०/४०।

श्लथत्वमोज सा मिश्र प्रसाद च प्रचक्षते ।
अनेन न विना सत्यं स्वदते काव्यपद्धति ॥[1]

वीर रस के अतिरिक्त रौद्र रस के प्रसङ्ग मे भी ओज गुण का चमत्कार प्रस्तुत काव्य मे दृष्टिगोचर होता है—

रराज गुञ्जारुणनेत्रकान्ति करम्बिता तस्य कृपाणलेखा ।
समस्त वैरक्षितिपालशौर्यं सूर्यास्त सध्येव परिस्फुरन्ती ॥[2]

यहाँ पर युद्धस्थल का वर्णन है तथा रकार और सकार का प्रयोग क्रोध को उद्दीप्त करता हुआ रौद्र रस की अभिव्यक्ति करा रहा है ।

इसी प्रकार वीभत्स रस मे भी ओज गुण द्रष्टव्य है—

मृतककोटि कराल कलेवर प्रचुरदु सहगन्धभरावहे ।
अभिमुखागत गन्धवहैर्मुहुर्यदति दूर विवर्त्यपि सूच्यते ॥
मिलिद सख्य शिवाकृत फेत्कृतैर्यद सुकम्पकृदूद्वितमूर्द्धजम् ।
अधिक घूक धनार्तिदघूत्कृतै स्खलित कातरजन्तु गतागति ॥[3]

यहाँ पर श्मशान के वर्णन म वीभत्स रस की अभिव्यक्ति हुई है । अर्थात् मरे हुए करोडो भयकर कलेवरो से अत्यन्त दु खदायी गन्ध के भार से परिपूर्ण स्थल अत्यन्त दूर होता हुआ भी सामने आते हुए वायु से बार-बार सूचित किया गया । वहाँ पर असख्य शृगालियाँ हुकार कर रही थी तथा रात्रि म उल्लू बोल रहे थे जिससे साधारण आदमियो को भय उत्पन्न हो रहा था ।

प्रस्तुत उदाहरणो मे भी कवर्ग तथा रेफयुक्त वर्णो का प्रयोग इस जुगुप्सा को और उद्दीप्त करता हुआ वीभत्स रस की अभिव्यक्ति करा रहा है । यहाँ पर दीर्घ समासयुक्त रचना ओज गुण की प्रतीति हो रही है ।

इस प्रकार कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुण के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है । प्रसाद गुण तो महाकाव्य मे सर्वत्र ही व्याप्त है ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अलङ्कार योजना

साहित्य मे अलङ्कार योजना

काव्य मे अलङ्कारो के स्थान के सम्बन्ध मे काव्यशास्त्रियो के दृष्टिकोण समय-समय पर परिवर्तित होते रहे है । अलङ्कारो के महत्त्व के प्रबल समर्थक आलङ्कारिक भामह हैं । दण्डी, उद्भट, रुद्रट एव प्रतिहारेन्दुराज भी इसी मत के

१ काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति, ३/१, पृष्ठ ८१ । २ जयन्तविजय, १४/५ ।
३ जयन्तविजय, ४/९-१० ।

अनुयायी हैं। दण्डी के मत मे काव्य को सुन्दर बनाने वाले धर्म अलङ्कार हैं। रुद्रट तथा प्रतिहारेन्दुराज ने भी अलङ्कारो को ही प्रधानता दी है। इस सम्प्रदाय के अनुसार अलङ्कार ही काव्य का जीवातु है। अग्नि की उष्णता के सदृश अलङ्कार काव्य का प्राणधायक तत्त्व है। जयदेव ने इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे कहा है कि जो विद्वान् अलङ्कार से हीन शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को भी अनुष्ण क्यो नही मानता ? अलङ्कारहीन काव्य और अनुष्ण अग्नि एक ही कोटि की वस्तुएँ हैं जिसे केवल प्रमादी ही सच्चा मान सकता है—

अङ्गीकरोति य काव्य शब्दार्थवनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥[१]

आचार्य भामह के अनुसार अलङ्कार एव उसका प्राणभूत वक्रोक्ति ही काव्य सौन्दर्य का सर्वस्व है। काव्य कितना ही उत्कृष्ट क्यो न हो, स्त्री मुख की भाँति भूषण सज्जा के अभाव मे उसमे कमनीयता का आधार नही हो सकता है।[२]

भामह की भाँति दण्डी ने भी काव्य मे अलङ्कारो का प्राधान्य स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि मे अलङ्कार काव्य का शोभाधायक धर्म है।[३] भामह की अपेक्षा दण्डी का दृष्टिकोण कुछ व्यापक प्रतीत होता है क्योकि उन्होने अलकारो के प्राधान्य के साथ ही गुण एव रस को भी महत्त्व दिया है। उनकी दृष्टि मे वाक्य तथा वस्तु (शब्द और अर्थ) मे रस की स्थिति होती है[४] तथा माधुर्य गुण रसयुक्त काव्य को कहते है। किन्तु युग की सीमाओ मे दृढबद्ध दण्डी ने भी रसभावादि का अन्तर्भाव रसवत् प्रेय आदि अलङ्कारो मे ही किया है।[५] भामह वक्रोक्ति के अभाव मे हेतु, सूक्ष्म एव लेश जैसे अलङ्कारो को अलङ्कार सज्ञा से अभिहित करने के पक्ष मे नही है।[६] किन्तु दण्डी ने उन्हे 'वाच्ममुत्तमभूषणम्' कहकर उनकी अलङ्कारिता स्वीकार की है।[७] उन्होने वक्रोक्ति को काव्य का आत्मभूत न मानकर वाङ्मय का

---

१ चन्द्रालोक, १/८।
२ न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनितामुखम्। —भामह, काव्यालकार, १/१३।
३ काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते। —काव्यादर्श, ०/१।
४ मधुर रसवत् वाचि वस्तुन्यपि रस स्थिति। वही, १/५१।
५ प्रेय प्रियतराख्यान रसवत्रसपेशलम्।
ऊर्जास्विरूढालङ्कार युक्तोत्कर्ष च यत्र यम्॥ —वही, २/२७५।
६ सैषा सर्वं वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलङ्कारोऽनया विना॥
हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मत।
समुदायाऽभिधानस्य वक्रोक्त्यन भिधानत॥
—भामह, काव्यालकार, २/८५-८६।
७ दण्डी, काव्यादर्श, २/२३५।

एक प्रकार स्वीकार कर 'स्वभावोक्ति' अथवा जाति' को काव्य की 'आद्यालङ्कृति' के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।[१] वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, गुण एव रस के सम्बन्ध मे भामह और दण्डी का पूर्वोक्त विचार वैभिन्न काव्यालोचना के विकास का सूचक है। किन्तु यह विकास काव्यालोचना को बहिर्मुखी चेतना की परिधि मे है क्योकि भामह की ही भाँति दण्डी ने भी शब्दार्थ को ही अलङ्कार्य एव काव्यालङ्कारो को काव्य सौन्दर्य का कारण स्वीकार किया है। निष्कर्ष रूप मे दण्डी के मत मे भी काव्य की अमरता या कल्पान्तर स्थायिता सदलङ्कारता मे ही पर्यवसित होती है—

'काव्य कल्पान्तरस्थायिजायते सदलकृति।'[२]

अलङ्कार के सम्बन्ध मे वामन के विचार, दण्डी की अपेक्षा अधिक विकसित है। उन्होने सर्वप्रथम काव्य की आत्मा की चर्चा करते हुए काव्य मे अलङ्कारो एव गुणो के परस्पर आपेक्षिक महत्त्व पर विचार किया है। अलङ्कार शब्द वामन की परिभाषा मे—'सौन्दर्यमलङ्कार' अर्थात् अलङ्कार सौन्दर्य का पर्याय है।[३] स्वभावत उसमे गुण और अलङ्कार दोनो का समावेश हो जाता है। वामन के मत मे यद्यपि गुण तथा अलङ्कार दोनो ही सौन्दर्य-सृष्टि के माध्यम है तथापि गुण यौवन की भाँति अन्तरग नित्य[४] तथा शोभा धर्म है अर्थात् उनकी स्थिति से सौन्दर्योत्पादन सम्भव है।[५] अलङ्कार अनित्य, वाह्य तथा अतिशायी धर्म है उनकी स्थिति से सौन्दर्योत्पादन सम्भव नही है।[६] वामन के उत्तरवर्ती उद्भट, रुद्रट, कुन्तक आदि आलङ्कारियो ने रसादि को भामह की भाँति रसवदादि की शृङ्खला मे उपनिबद्ध कर अलङ्कार सम्प्रदाय की मान्यता को पुन स्थापित किया है। आचार्य रुय्यक के शब्दो मे निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि -

तदेवमलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्याना मतम्।[७]

अर्थात् प्राचीन अलङ्कारिको की दृष्टि म काव्य म अलङ्कार तत्त्व ही प्रधान है।

किन्तु आगे चलकर यह धारणा शनै-शनै विगलित होने लगी। साहित्य क्षेत्र मे रसवाद व ध्वनिवाद का नवोन्मेष होते ही आलङ्कारिको का अलकार के प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो गया, साथ ही काव्य मे उनका एक निश्चित स्थान भी नियत हो गया। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलकार को काव्य का अस्थिर एव

---

१ स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालकृतिर्यथा। —दण्डी, काव्यादर्श, २/८।
२ काव्यादर्श १/१६।
३ काव्यालकार सूत्र वृत्ति, १/१/२।
४ वही, ३/१/३।
५ वही, ३/१/१।
६ वही, ३/१/२।
७ अलङ्कार सर्वस्व, पृ० ६।

गुणो को उस काव्य का स्थिर धर्म माना है। काव्य मे गुणो की स्थिति अपरिहार्य है परन्तु अलकार अपरिहार्य धर्म नही हैं। वे केवल अलकार्य (रस) के उत्कर्षाधायक तत्त्व है, जीवन धायक तत्त्व नही। प्रमुख रस ध्वनिवादी आचार्य मम्मट ने 'अनलकृती पुन क्वापि' लिखकर अलकार रहित को भी काव्य स्वीकार किया है। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलकारो का लक्षण पूर्वोक्त दृष्टिकोण से किया है।[1]

अलङ्कार बाहुल्य से कही काव्य का आत्मतत्त्व रस उपेक्षित न हो जाय, इस सम्बन्ध मे भी ध्वनिवादी आचार्य सचेष्ट है। काव्य मे किस प्रकार की अलङ्कार योजना रसोत्कर्ष मे सहायक हो सकती है इस सम्बन्ध मे आनन्दवर्धन ने मौलिक विचार प्रस्तुत किये है। उनके मतानुसार रसानुभावक वस्तु को भाषा मे प्रकट करते समय बहुधा परिश्रमसाध्य शब्दालङ्कारो का प्रयोग व्यग्यार्थ को ध्वनित करने मे सहायक नही होता है। विशेषत शृङ्गार रस के अङ्गी होने पर एकरूपानुबन्ध वाला अनुप्रास तथा विप्रलम्भ मे यमकादि का निबन्धन रस का प्रकाशक नही होता है।[2] क्योकि ये अलङ्कार यत्नसाध्य हैं। अतएव सहृदय और कवि दोनो का अव-धान खण्डित हो जाता है।

आनन्दवर्धन केवल उन्ही अलङ्कारो को ग्राह्य स्वीकार करते है जिनका प्रयोग रसाक्षिप्ततया बिना किसी पृथक् प्रयत्न के किया जाये।[3] इस प्रकार के अलङ्कार रूपकादि अर्थालकार है।[4] विभाव इत्यादि की सघटना के अवसर पर ये अलङ्कार बिना पृथक् प्रयत्न के कवि के अन्त करण मे स्फुटित हो जाते है। इस प्रकार वे रसाभिव्यञ्जना के लिए अनिवार्य सिद्ध हो जाते है क्योकि रसानुभावक वस्तु मे प्रधानतम तत्त्व केवल ध्वनि ही है तथा ध्वन्यर्थ विशेष प्रकार के उन

---

१ (क) तमर्थ मवलम्बतेयेऽङ्गिन ते गुणा स्मृता ।
अङ्ग श्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या कटकादिवत् ॥—ध्वन्यालोक, २/२१६ ।
(ख) उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेणजातुचित् ।
हारादिवलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय ॥ —काव्य प्रकाश, ८/६७ ।
(ग) शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥ — साहित्यदर्पण, १०/१ ।

२ शृङ्गारस्यङ्गिनो यत्नादेकस्मानु बन्धवान् ।
सर्वष्वेव प्रभेदेषु नानुप्रास प्रकाशक ॥
ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे यमकादि निबन्धनम् ।
शक्तावपि प्रमादिवत्त्व विप्रलम्भे विशेषत ॥ —ध्वन्यालोक, २/१४-१५ ।

३ रसाक्षिप्ततयायस्य वन्ध शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य सोऽलङ्कारो ध्वनौ मत ॥ —वही, २/१६ ।

४ ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे समीक्ष्य विनिवेशित ।
रूपकादिलङ्कारवर्ग एति यथार्थताम् ॥ —वही, २/१७ ।

वाच्यार्थों से ध्वनित होता है जिनको तदर्थ शब्दो से प्रकट किया जाता है। इस प्रकार के वाच्यार्थ ही अर्थालङ्कार है। अतएव इन अर्थालङ्कारो का प्रयोग आवश्यक है किन्तु इन अर्थालङ्कारो का प्रयोग भी काव्य के अग रूप मे अपेक्षित है अङ्गी रूप मे नहीं। अर्थात् रूपकादि की विवक्षा रस परत्वेन हो, समय पर उनका ग्रहण, अनवसर पर त्याग तथा कही भी उनका निर्वाह दूर तक नही किया जाना चाहिए।[1] इस प्रकार स्पष्ट है, आनन्दवर्धन की अलङ्कार-योजना मे केवल वही अलङ्कार ग्राह्य है जो रसाभिव्यञ्जक हो। अतएव उनका कहना है कि कवियो का कर्तव्य है कि वे शक्ति होने पर भी रसानुगुणता के अनुरूप ही अलङ्कारो की योजना करें।[2]

जयन्तविजय मे अलङ्कार योजना

जयन्तविजय महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने काव्य मे चारुत्व के आधान के लिए विभिन्न शब्दालकारो और अर्थालङ्कारो का प्रयोग किया है। उन्होने यद्यपि अलङ्कार विषयक किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नही की, किन्तु फिर भी वे अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के आधार पर सैद्धान्तिक रूप मे ध्वनिवादी विचारधारा के समर्थक प्रतीत होते है। उन्होने अलङ्कार, गुण, रीति एव रस का वही महत्त्व स्वीकार किया है जो ध्वनिवादी आचार्यों को अभीष्ट है अर्थात् उन्होने रस को काव्य की आत्मा एव अलङ्कार का उसके अलङ्करण के रूप मे स्वीकार किया है। किन्तु व्यावहारिक पक्ष मे उनका काव्य विदग्ध मण्डना नारी की भाँति अलङ्कारो से विभूषित है। उन्होने यद्यपि अपने काव्य मे शब्दालङ्कारो का प्रयोग बहुत कम किया है किन्तु फिर भी अनुप्रास की छटा पाठक को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इसके साथ ही उन्होने अर्थालङ्कारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान तथा काव्यालिङ्ग का प्रयोग अत्यधिक मात्रा मे किया है तथा व्यतिरेक समासोक्ति, अपह्नुति, परिसख्या, अर्थान्तरन्यास, अन्योन्य, अनुज्ञा आदि अलङ्कारो को भी काव्य मे यथावसर स्थान प्रदान किया गया है।

(क) रसानुकूल अलङ्कारो का प्रयोग

महाकवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे रसानुकूल अलङ्कारो का प्रयोग किया है, क्योकि वे ध्वनिवादी विचारधारा के पूर्ण समर्थक है और ध्वनि-

---

१ विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन
कालेग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता।
निर्व्यूढावपि चाङ्गत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणात्
रूपकादिलकार वर्गस्याङ्गत्वसाधनम्॥ —ध्वन्यालोक, २/१९।

२ अलकृतीना शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम्।
प्रबन्धस्य रमादीना व्यञ्जकत्वे निबन्धनम्॥ — वही, ३/१४।

वादी आचार्य आनन्दवर्धन ने महाकाव्य मे अलङ्कारो के प्रयोग के रस के अनुकूल होने पर बल दिया है। उनके अनुसार अलङ्कार योजना की शक्ति होने पर भी कवि को उनका प्रयोग रस के अनुकूल ही करना चाहिए।[1] अत स्पष्ट है कि कवि के अपने काव्य मे प्रयुक्त अलङ्कार चारुत्वोत्कर्ष मे सहायक अवश्य सिद्ध हुए हैं किन्तु सर्वत्र प्रधानता रस की ही विवक्षित है।

यथा—

यामिनीचरमयाममचिरागे चक्रवाक इव सभृतराग ।
स प्रिया नृपतिवशपताका ता तदेक्षितुमभूदनिमेष ॥[2]

अर्थात् रात्रि के अन्तिम प्रहर के सुन्दर समय म चक्रवाक के समान बढ़े हुए अनुराग वाले वे (राजा जयन्त) उस नृपति वश की ध्वजा रूप उस प्रिया (कनकवती) को देखने के लिए निर्निमेष हुए।

यहाँ पर जयन्त की शृङ्गारिक चेष्टा का वर्णन है। अत शृङ्गार रस ही प्रधान है किन्तु उसके साथ ही चक्रवाक को उपमान बनाकर कवि ने उपमा अलकार की भी अभिव्यक्ति की है जो चारुत्वोत्कर्ष मे सहायक सिद्ध हुई है क्योकि जिस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर म चक्रवाक यह सोचकर कि अब रात्रि का अवसान हो रहा है अत प्रियतमा से समागम हागा, अनुरागयुक्त हो जाता है ठीक उसी प्रकार से अनुरागयुक्त वह राजा भी नायिका को देखने की इच्छा से निर्निमेष हुए। अत यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त उपमा अलकार शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति मे सहायक सिद्ध हुआ है।

इसी प्रकार—

पर्वते किमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
कि रति किमु रमा खलु नैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ॥[3]

अर्थात् (राजा जयन्त सोचने लगे कि) क्या इस पर्वत पर पर्वतपुत्री पर्वत की सुन्दरता को देखने के लिए आयी है? या रति है अथवा रमा है? नही, निमेष लगने के कारण यह मृत्युलोक की ललना है।

यहाँ पर भी शृङ्गार रस की योजना हुई है। किन्तु नायिका के प्रति नायक क पार्वती, रति तथा रमा के रूप मे वर्णन शृङ्गार रस के साथ ही सन्देह को भी प्रकट कर रहा है। अत स्पष्ट है, कि सन्देह अलकार यहाँ पर स्वत प्रस्फुटित हो

---

१. अलङ्कृतीनां शक्तावप्यानुरुपेण योजनम् ।
प्रबन्धस्य रसादीना व्यञ्जकत्वे निबन्धनम् ॥ —ध्वन्यालोक, ३/१४।

२ जयन्तविजय, १३/६। ३ वही, १३/१२।

गया है। उसके लिए कवि को अलग से प्रयत्न नही करना पडा है। क्योंकि नायिका को देखकर वे (स्थायी भाव रति के जागरूक होने पर) उसकी कल्पना पार्वती, रति तथा रमा के रूप मे करते है। इस प्रकार यह अलङ्कार की रसानुकूलता का उदाहरण है।

अपि च—

> रामणीयकमनङ्कुशमस्या जङ्घयोरनघयोरवलोक्य ।
> नूनमुद्गतपराभवदुःखा सस्त्रेरेणललना वनवासम् ॥[१]

अर्थात् इसकी सुन्दर रोम रहित निरकुश जघाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना ने पराभव के दुःख के कारण ही वनवास का आश्रय लिया।

यहाँ पर भी कवि के वर्णन मे शृङ्गार रस ही प्रधान है क्योकि नायक (जयन्त) नायिका (कनकवती) की रोम रहित जङ्घाओ के लिए ऐण ललना को उपमान के रूप मे प्रस्तुत करता है जिसका प्रधान कारण उसके हृदय मे उद्दीप्त स्थायी भाव रति है। किन्तु नायिका की रोम रहित जङ्घाओ के समक्ष ऐण ललना का तिरस्कृत हो जाना व्यतिरेक अलङ्कार की भी अभिव्यक्ति करा रहा है। अत कवि की दृष्टि मे यहाँ पर भी शृङ्गार रस ही विवक्षित है किन्तु व्यतिरेक अलकार स्वत प्रस्फुटित हो गया है उसके लिए उसे अलग से प्रयत्न नही करना पडा है।

इसी प्रकार—

> सविक्रमक्षोणिधवान्वयाम्बर प्रभाकर प्रीणितबन्धुपङ्कज ।
> असीमतेज शमितारिकौशिकस्तत प्रतस्थे चतुरङ्गसेनया ॥[२]

अर्थात् विक्रम से पृथ्वीपाल के वशाकाश मे प्रभाकर के समान बान्धव कमलो को विकसित करते हुए असीम तेज से अरिकौशिक को शान्त करते हुए उन्होने चतुरङ्गिणी सेना के साथ प्रस्थान किया।

यहाँ पर प्रकृत रस वीर है क्योकि पिता विक्रम सिंह की आज्ञा से युद्ध के लिए जाते हुए युवराज जयन्त का वर्णन किया गया है किन्तु रूपक तथा उपमा अलकार की छटा उसे और भी अधिक पुष्ट कर रही है। युवराज जयन्त की उत्पत्ति राजा विक्रम सिंह के वशरूपी आकाश मे प्रभाकर (सूर्य) के समान है जो बन्धुरूपी कमलो को विकसित करने के लिए हुई है। इसीलिए युवराज जयन्त अरि रूपी कौशिको को शान्त करते हुए चतुरगिणी सेना के साथ प्रस्थान करते हैं। अत यहाँ पर अलकार का प्रयोग रसोपकारक है।

---

१ जयन्तविजय, १३/१६। २ वही, ६/६८।

अपि च—

आसन्न सग्राम समुत्सहिष्णोर्वीरव्रजस्यानशिरे मनांसि ।
हर्षप्रकर्षे समुदञ्चदुच्चरोमाञ्चचक्रैश्च चिर वपूंसि ॥
रणोत्सवोत्साह समुद्भविष्णुरोमाञ्चचञ्चत्कवचान्तरस्य ।
एकस्य कस्यापि महाभटस्य भातिस्मकृच्छ्रेणतनौ तनुत्रम् ॥[1]

अर्थात् समीप मे सग्राम के उत्साही वीर समूहो के मन मे दर्प व्याप्त हो गया और हर्ष की प्रकृष्टता वाले रोमाञ्च चक्र शरीर मे उदित हो गये। फलत रणोत्सव उत्साह से उत्पन्न होने वाले रोमाञ्च से चमकते हुए कवचो के अन्दर एक किसी महाभट के शरीर मे तनुत्राण कष्ट मे सुशोभित हुआ।

यहाँ पर भी युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय सैनिको के इस वर्णन मे वीर रस का सुन्दर निर्वाह हुआ है किन्तु अनुप्रास अलकार की छटा भी दर्शनीय है। जो प्रकृत वीर रस को और भी अधिक उद्दीप्त कर रही है।

इसी प्रकार—

योधे प्रसिद्धैर्युयुधेरिसोधै महाश्ववारै सममश्ववारै ।
रथिप्रवीरै रथिकैश्च सार्धं समानकक्षैर्जयबद्ध लक्षै ॥[2]

अर्थात् युद्धस्थल मे प्रसिद्ध शत्रुओ के साथ शत्रु, असवारो के साथ असवार और रथी के साथ रथी जय का लक्ष्य बाँधते हुए डट गये।

यहाँ पर भी युद्ध वर्णन मे प्रकृत रस वीर है। शत्रुओ के साथ शत्रु, घुडसवारो के साथ घुडसवारो तथा रथियो के साथ रथियो का युद्ध जयन्त की सेना की कुशलता का परिचायक है। इसके साथ ही सहोक्ति अलकार द्वारा यहाँ पर वर्णन मे विशेष चारुता आ गयी है जिसके लिए कवि को अलग से प्रयास नही करना पडा है। कवि की दृष्टि मे रस ही विवक्षित है अलकार नही।

अपि च—

एतावुभावप्यनिवार्य वीर्यौकृतश्रमौ द्वावपि चास्त्रशस्त्रौ ।
युद्धे सदृक्षावथवीक्ष्य वीर जेतानयो क समशेरतेत्यम् ॥[3]

अर्थात् ये दोनो अत्यन्त बलशाली, परिश्रमी और दोनो ही अस्त्र-शस्त्र चलाने मे समान है। इनकी इस वीरता को देखकर कि 'इन दोनो मे से कौन विजयी होगा' इस तरह से विधाता को सन्देह हुआ।

यहाँ पर भी वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है क्योकि दोनो ही अत्यन्त बल-

---

१ जयन्तविजय, १०/२७-२८। २ वही, १०/४०।
३ वही, १०/५८।

शाली, परिश्रमी तथा अस्त्र-शस्त्र चलाने मे निपुण हैं। किन्तु वीर रस के साथ ही सन्देह अलकार की योजना उसे और भी अधिक प्रकष्ट बना रही है। अत यहाँ पर सन्देह अलकार वीर रस के परिपोष मे सहायक सिद्ध हुआ है।

इसी प्रकार—

रराज तत्र क्षत कुम्भिकुम्भस्थलीगलन्मौक्तिक चक्रवालम्।
कुमार शौर्याद्भुतरञ्जिताया रणक्षमाया इव हास्यलास्यम्॥[1]

अर्थात् उस युद्धस्थल मे कटे हुए हाथियो के कुम्भस्थली से गिरे हुए मोती के दाने कुमार शौर्य की अद्भुत क्रिया से रण पृथ्वी (रणस्थली) के हास्य की लास्य की तरह सुशोभित हुए।

यहाँ पर कुमार जयन्त के युद्धस्थल मे शौर्य का वर्णन किया गया है। अत वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु वीर रस के साथ ही उत्प्रेक्षा अलकार की योजना उसे और भी अधिक पुष्ट कर रही है। अत यहाँ पर अलकार प्रधान न होकर रस का अग बन गया है जो कि तदनुकूल है।

इसी प्रकार रस का एक अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है—

गजेन्द्रात्क्षेपितैर्वीरै स्वैरमाधोरणा बभु।
प्रीतये प्रेतनाथस्य प्रस्तुतोपायना इव॥
परस्परास्त्रसघट्टाद्रेक्षुरग्निस्फुलिंगका।
वीरैर्विलोकनायेव कृता दीपा जयश्रिय॥[2]

अर्थात् हाथियो से स्वतन्त्रतापूर्वक फेके गये वीरो मे महावत मानो यमराज को प्रसन्न करने के लिए भेंट चढा रहे है तथा आपस मे शस्त्रो के सघर्षण से उत्पन्न होने वाली स्फुलिंग को विजय लक्ष्मी ने मानो वीरो को देखने के लिए दीपक की भाँति जलाया है।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलकार का सकर वीर रस की अभिव्यक्ति मे सहायक सिद्ध हो रहा है क्योकि प्रस्तुत प्रसग मे कवि ने युद्ध की भीषणता का वर्णन किया है। युद्धस्थल मे युद्ध करते हुए वीर हाथियो से गिरकर वीर-गति को प्राप्त हो रहे है किन्तु कवि अभयदेव कल्पना करते है कि मानो महावत यमराज को प्रसन्न करने के लिए उन वीरो की बलि दे रहे है। इसी प्रकार युद्धस्थल मे परस्पर शस्त्रो के टकराने से चिनगारी उत्पन्न हो जाती है किन्तु कवि की कल्पना मे विजय लक्ष्मी ने मानो वीरो को देखने के लिए उन चिनगारियो को दीपक की भाँति

---

१ जयन्तविजय, १०/६४।   २ वही, ११/६६-७०।

जलाया है। अत यहाँ पर भी प्रयुक्त अलंकार रम के अंगभूत हैं और रस के परिपोष मे सहायक है।

इसी प्रकार रूपक अलकार द्वारा रस के परिपोष का उदाहरण प्रस्तुत है—

तेन कीर्तिलतिका तथाधिक भूरिदानसलिलैरसिच्यते।
तारकाकुसुमशालिनी यथा विश्वमण्डपतलेऽपि नो ममौ ॥[1]

अर्थात् उन (राजा विक्रम सिंह) के द्वारा भूरिदान से कीर्तिरूपी लता को इतना अधिक सींचा गया कि जिससे वह विश्वरूपी मण्डप के नीचे तारारूपी कुसुम के समान पृथ्वी मे न समा सकी।

यहाँ पर राजा विक्रम सिंह की दानवीरता का वर्णन किया गया है। अत यह वीर रस का उदाहरण है जिसकी अभिव्यक्ति रूपक तथा अतिशयोक्ति अलकार के माध्यम से की गयी है। यहाँ पर कीर्ति पर लता का आरोप होने से ताराओं पर पुष्प का आरोप किया गया है अत रूपक अलकार है जो वीर रस के परिपोष मे सहायक है। इसके साथ ही राजा विक्रम सिंह की कीर्ति का भूमण्डल मे न समाकर आकाश मण्डल तक फैल जाना अतिशयोक्ति अलकार की भी अभिव्यक्ति करा रहा है। अत यहाँ पर भी प्रयुक्त रूपक तथा अतिशयोक्ति अलकार वीर रस के परिपोष मे सहायक है।

अपि च—

रराजगुञ्जारुणनेत्रकान्तिकरम्बिता तस्य कृपाणलेखा।
समस्त वैरक्षिति पालशौर्य सूर्याम्तसध्येव परिस्फुरन्ती ॥[2]

अर्थात् उम (महेन्द्र) के तलवार की लेखा समस्त वैरी क्षत्रियो के शौर्य-सूर्य के अस्तकालीन सन्ध्या से समान तथा चमकती हुई गुञ्जा के समान लाल आँखो की कान्ति से व्याप्त होकर सुशोभित हुई।

यहाँ पर पवनगति द्वारा शर्त न स्वीकार करने पर भूपति महेन्द्र के क्रोध का वर्णन होने से रौद्र रस की अभिव्यक्ति हो रही है, जो कि कवि को अभीष्ट है। किन्तु महेन्द्र की तलवार का वर्णन उपमा अलकार के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, क्योकि महेन्द्र के तलवार की लेखा समस्त शत्रुओ के शौर्यरूपी सूर्य के अस्तकालीन सन्ध्या की भाँति एव चमकती हुई गुञ्जा के सदृश है। उपमा अलङ्कार के साथ ही शत्रुओ के शौर्य पर सूर्य का आरोप होने मे रूपक अलङ्कार का पुट भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है। किन्तु उपमा तथा रूपक अलङ्कार का यह प्रयोग रौद्र रस के परिपोष मे ही सहायक सिद्ध हुआ है।

---

१ जयन्तविजय, ७/१६।   २. वही, १४/५।

इसी प्रकार एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

लोचनैरिव विकस्वर पुष्पै पल्लवै करतलैरिव शोणै ।
उत्कुचैरिव फलैर्वनलक्ष्म्यास्तत्र विस्मयमतीव सा भजे ॥[1]

अर्थात् उस वन मे वन लक्ष्मी के नेत्र के समान खिले हुए पुष्पो से करतल के समान रक्तिम पल्लवो से और उन्नत कुचो के समान फलो से (युवराज जयन्त को) विस्मय उत्पन्न हुआ ।

यहाँ पर वन की शोभा को देखकर युवराज जयन्त को विस्मय होता है । अत 'विस्मय' स्थायी भाव परिपुष्ट होकर अद्भुत रस की अभिव्यक्ति करा रहा है । किन्तु उपमा अलङ्कार का प्रयोग रस के परिपोष मे और भी अधिक सहायक है, क्योकि वहाँ पर खिले हुए पुष्प वन लक्ष्मी के नेत्र के सदृश रक्तिम पल्लव हथेली के सदृश तथा फल उन्नत कुचो के सदृश प्रतीत हुए । अत यहाँ पर भी प्रयुक्त उपमा अलङ्कार रस की अभिव्यक्ति मे सहायक होकर अग रूप मे वर्णित है ।

अपि च—

ससभ्रमाथ प्रतिपत्तिपूर्वमुर्वीपतेरासनमाश्रितस्य ।
तताऽनुजन्मानमिव स्मरस्य सादर्शयन्नन्दनमिन्दुकान्तम् ॥[2]

अर्थात् सम्भ्रम से उस रानी ने आसन पर बैठे हुए राजा को कामदेव के अनुज के समान इन्दुकान्त नन्दन को दिखाया ।

यहाँ पर राजा का पुत्र के प्रति वात्सल्य ही मुख्यतया विवक्षित है । किन्तु पुत्र को कामदेव के अनुज के समान बताना उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के साथ ही उपमा अलङ्कार की अभिव्यक्ति करा रहा है परन्तु यह उपमा अलङ्कार स्वत प्रस्फुटित हो गया है । उसके लिए कवि को अलग से प्रयत्न नही करना पडा है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जयन्तविजय महाकाव्य मे अलङ्कारो का प्रयोग रसानुकूल हुआ है । अलङ्कारो की रसानुकूलता के अनेक उदाहरण रस विवेचन के अवसर पर भी प्रस्तुत किये गये है ।

(ख) वर्णनानुरूप अलङ्कारो का प्रयोग

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने वर्णन के अनुरूप अलङ्कारो का प्रयोग किया है, क्योकि योग्य कवि अलङ्कारो का प्रयोग इस प्रकार करता है कि वे केवल उक्ति चमत्कार मात्र न रहकर वर्णनीय विषय मे प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करें । तथा—

---

१ जयन्तविजय, १३/५ । २ वही, ६/६६ ।

सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डै ।
तै पद्मखण्डानि च राजहसै स्वै राजहसा सुगतिप्रचारै ॥[1]

अर्थात् जहाँ की भूमि सरोवरो से, सरोवर विकसित पद्मखण्डो से, पद्मखण्ड राजहसो मे और वे राजहंस अपनी सुगति के प्रचार से सुशोभित होते हैं।

यहाँ पर एकावली अलकार की योजना हुई है क्योकि मगध देश मे अनेक सरोवर है और उन सरोवरो मे कमल खिले हुए है, कमलो पर हसराज बैठे हुए हैं तथा वे राजहस अपनी सुन्दर चाल से सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार एकावली अलकार के माध्यम से यहाँ पर वर्ण्य विषय मे विशेष चारुत्व आ गया है।

इसी प्रकार कवि जयन्ती नगरी के शाल-परकोटा का वर्णन करते हुए लिखते है—

पौरा महेशा प्रचुरा कुमारा गौर्य स्त्रियोऽप्यत्र विनायकाश्च।
इतीव कैलाशनगोऽनुरागादावृत्य या शालमिषेण तस्थौ ॥[2]

अर्थात् जहाँ पर कैलाश पर्वत अनुरागवश आकर परकोटे के रूप मे स्थित है। अत यहाँ के पुरवासी शिव है, नारियाँ पार्वती हैं और बच्चे कुमार कार्तिकेय है।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलकार है क्योकि परकोटा के रूप मे कैलाश पर्वत की सम्भावना की गयी है जो सर्वथा सार्थक है क्योकि वहाँ के पुरवासी शिव हैं अर्थात् शिव के समान पराक्रमी एव दानी है। नारियाँ पार्वती हैं अर्थात् पार्वती के समान सुन्दर एव पवित्र है तथा बच्चे कुमार कार्तिकेय है अर्थात् स्वामी कार्तिकेय सदृश वीर हैं। यहाँ पर परकोटे की कैलाश पर्वत के रूप मे सम्भावना होने के कारण पुरवासियो की शिव, नारियो की पार्वती तथा बच्चो की कुमार कार्तिकेय के रूप मे सम्भावना की गयी है।

इसी प्रकार जयन्ती नगरी के चारो परिखा सुशोभित है। परिखा मे अमृत तुल्य निर्मल जल भरा हुआ है। कवि अभयदेव उत्प्रेक्षा करते है कि यह परिखा नही है अपितु क्षीरसागर है, क्योकि इस नगरी मे लक्ष्मीपुत्र निवास करते है। वे लक्ष्मीपुत्र इस क्षीरसागर के दौहित्र है। अत स्नेहवश उन दौहित्रो का अवलोकन करने के लिए ही क्षीरसागर उपस्थित हुआ है—

लक्ष्म्या स्वपुत्र्या सतत वसन्त्या क्षीरार्णवो यत्र दिदृक्षयेव।
स्नेहातिरेकात्समुपेत्य तस्थौ सुधानिभाम्भ परिखामिषेण ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, १/३०।
२ वही, १/४३।
३ वही, १/४७।

यहाँ पर भी उत्प्रेक्षा अलङ्कार वर्णन को ग्राह्य बनाने मे सहायक सिद्ध हुआ है ।

अपि च—

> उद्यानवापीषु जलाशयत्व द्विजाश्रयेषु प्रियविप्रयोग ।
> विलोक्यते राजकरोपमर्द पद्माकरेष्वेव न यत्र लोके ॥[1]

अर्थात् जहाँ पर उद्यानवापी मे जडाशयता, पक्षियो के घोसलो मे प्रिय का वियोग, पद्माकरो मे ही सूर्य की किरणो का उपमर्दन दिखलायी पडता था, लोक मे नही था । भाव यह है, कि जिस नगरी की उद्यानवापियो मे ही जडाशयता थी, वहाँ के मनुष्यो की बुद्धि मे जडता नही थी । पक्षियो के घोसलो मे ही प्रिय का वियोग होता था, ससार के प्राणियो मे वियोग के कारण किसी को कोई कष्ट न था तथा सूर्य की किरणो का उपमर्दन कमलो मे ही था, प्रजा को किसी प्रकार का राजकर चुकाना नही पडता था ।

यहाँ पर कवि ने परिसख्या अलङ्कार के द्वारा वर्ण्य वस्तु को साकार कर दिया है और उससे यह ज्ञात होता है कि विक्रमसिंह के राज्य मे प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट नही था । अत अलङ्कार का प्रयोग यहाँ पर वर्णन के अनुरूप हुआ है ।

इसी प्रकार कवि राजा विक्रमसिंह का वर्णन करते हुए लिखते है—

> य कामिनीना प्रतिभाति काम पितेव च प्रीतिपद प्रजानाम् ।
> काल करालो रिपुभूपतीना कल्पद्रुमश्च प्रणयिव्रजानाम् ॥[2]

अर्थात् जो राजा कामिनियो के लिए काम, प्रजाओ के लिए पिता, वैरी राजाओ के लिए कराल काल तथा प्रेमपूर्वक समीप मे आने वालो के लिए कल्पद्रुम के समान सुशोभित हुआ ।

यहाँ पर राजा विक्रमसिंह का वर्णन निमित्त भेद मे अनेक प्रकार का करके कवि ने उल्लेख अलङ्कार का नियोजन किया है । राजा विक्रमसिंह कामिनियो के लिए कामदेव के सदृश है । अपनी प्रजा के लिए पिता के समान है अर्थात् जिस प्रकार पिता पुत्र का पालन-पोषण करता है ठीक उसी प्रकार राजा विक्रमसिंह प्रजा का पालन-पोषण करते हैं । किन्तु वैरी राजाओ के लिए वे साक्षात् यमराज के सदृश हैं तथा प्रेमपूर्वक समीप मे आने वाले के लिए कल्पद्रुम के समान है । अर्थात जिस प्रकार कल्पवृक्ष पास मे आने वाले की मनोकामना पूर्ण कर देता है । ठीक उसी

---

१ जयन्तविजय, १/५० ।   २ वही, १/६० ।

प्रकार राजा विक्रमसिंह भी पास मे आने वाले व्यक्तियो की कामना पूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त उल्लेख अलङ्कार वर्णन को और भी प्रभावशाली बना रहा है।

इसी प्रकार युद्धस्थल मे राजा विक्रमसिंह के हाथ मे स्थित कृपाल के वर्णन मे उपमा अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग भी दर्शनीय है—

यस्याहवे वैरिकरीन्द्र कुम्भस्थलीगलत्तार करम्बिताङ्ग ।
रेजे कृपाणोऽरिकुल जिगीषोर्यमस्य जिह्वेवसदन्तपक्ति ॥[1]

अर्थात् जिसके युद्ध मे अरिकुल को जीतने के लिए वैरियो के गजो के मस्तक पर गिरने से रक्तरञ्जित हाथ वाला कृपाण यम की दन्तपक्ति से युक्त जिह्वा की भाँति सुशोभित हुआ।

यहाँ पर कृपाण की यम की दन्तपक्ति से युक्त जिह्वा के साथ उपमा सर्वथा सार्थक है तथा वर्णन के सौन्दर्य मे वृद्धि कर रही है। युद्धस्थल मे राजा विक्रमसिंह की तलवार जब वैरी राजाओ के हाथियो के मस्तक पर पड़ती है तो हाथियो के मस्तक मे विद्यमान गजमुक्ता उस तलवार मे छिद जाता है और तलवार का वर्ण लाल हो जाता है। अत कवि ने उस तलवार को यमराज की जिह्वा और उसमे छिदे हुए गजमुक्ताओ को यमराज की दन्तपक्ति के सदृश बताया है। इसके साथ ही इस वर्णन के द्वारा राजा विक्रम सिंह का अतुलित पराक्रम भी व्यक्त होता है।

इसी प्रकार प्रीतिमती के वर्णन मे मालोपमा अलकार का प्रयोग भी दर्शनीय है—

शचीव शक्रस्य महेश्वरस्य गौरीव लक्ष्मीरिव माधवस्य ।
श्रीनन्दनस्येव रतिश्च रत्यै तस्य प्रिया प्रीतिमती बभूव ॥[2]

अर्थात् शक्र को शची की भाँति, महेश्वर को गौरी की भाँति, माधव को लक्ष्मी की भाँति उन (विक्रमसिंह) की प्रिया रति के लिए प्रीतिमती हुई।

यहाँ पर प्रीतिमती की शची, गौरी तथा लक्ष्मी के साथ उपमा सर्वथा सार्थक है क्योकि राजा विक्रमसिंह की उपमा शक्र, महेश्वर तथा माधव से दी गयी है। राजा विक्रमसिंह को प्रीतिमती रति के लिए उसी प्रकार प्रिय हैं जिस प्रकार शक्र को शची प्रिय हैं, महेश्वर को गौरी प्रिय हैं तथा माधव को लक्ष्मी प्रिय है। इस प्रकार मालोपमा अलकार यहाँ वर्णन को ग्राह्य बना रहा है।

---

१ जयन्तविजय, १/ १।　　　　२ वही, १/६६।

अपि च—

> सजीविनी चौषधिरगजस्य विश्रामधामेव हृद स्वभर्तु ।
> या राज्यऋद्धेरधिदेवतेव लावण्यवल्लेर्नवकन्दलीव ॥[1]

अर्थात् जो कामदेव की सजीवनी औषधि, अपने पति के हृदय की विश्राम-धाम, राजलक्ष्मी की अधिदेवता तथा सुन्दरता की लता का नया अकुर है ।

यहाँ पर प्रीतिमती का वर्णन निमित्त भेद से अनेक रूपो मे हुआ है क्योकि वह कामदेव की सजीवनी औषधि है, अपने पति के हृदय की विश्राम-स्थली है, राज्यलक्ष्मी की अधिदेवता है और सुन्दरता का नया अकुर है, अत उल्लेख अलकार है और इस उल्लेख अलकार द्वारा वर्ण्य वस्तु मे विशेष चमत्कार आ गया है ।

इसी प्रकार गर्भावस्था मे स्थित प्रीतिमती के वर्णन मे उपमा अलकार का प्रयोग दर्शनीय है—

> गर्भानुभावप्रभवद्विशिष्ट सौभाग्यमभारतरङ्गिताङ्गी ।
> उदेष्यदुष्णद्युतिमण्डलाया प्राच्यास्तुला सा बिभराबभूव ॥[2]

अर्थात गर्भ के प्रभाव को धारण करने के विशिष्ट सौभाग्य मे तरगित अग वाली उस रानी ने निकलते हुए सूर्य की द्युति मण्डल मे प्राची दिशा के समान अपने गर्भ को पुष्ट किया ।

यहाँ पर प्रीतिमती की प्राची दिशा के साथ उपमा सर्वथा सार्थक है तथा वर्णन के सौन्दर्य मे वृद्धि कर रही है । प्राची दिशा जिस प्रकार गर्भ मे स्थित उदीयमान सूर्य से सुशोभित होती है उसी प्रकार प्रीतिमती गभ मे स्थित जयन्त से सुशोभित हो रही है । इस प्रकार उपमा अलकार यहाँ वर्णन को ग्राह्य बनाने मे सहायक है ।

अपि च—

> नह्यावयोरुद्धतिमेषजात सहिष्यते हन्त विनीतवृत्ति ।
> इतिस्फुरत्खेद भरादिवोच्चैस्तस्या स्तनौ श्याममुखावभूताम् ॥[3]

अर्थात् खेद है, कि विनीत वृत्ति वाला यह बालक हम लोगो की उद्दण्डता को नही सह सकेगा इसीलिए मानो अत्यधिक दु ख के भार से उसके स्तन काले मुख वाले हुए ।

---

१ जयन्तविजय, १/६६ ।
२ वही, ६/६५ ।
३ वही, ६/६७ ।

यहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षा अलकार की योजना की है, क्योंकि जिस प्रकार से किसी व्यक्ति के कार्य को करने मे असमर्थ व्यक्ति के मुख की कान्ति मलिन हो जाती है उसी प्रकार यह होने वाला पुत्र ,जयन्त हम लोगो की उद्दण्डता को सहन नही कर सकेगा । इसकी सूचना मानो प्रीतिमती के स्तनो की कालिमा से मिल रही है । अत यहाँ पर प्रयुक्त यह उत्प्रेक्षा अलकार वर्णन मे विशिष्ट चारुत्व उत्पन्न कर रहा है ।

इसी प्रकार—

तव स्फूर्जच्छौर्यप्रभवयशसा चन्द्रमहसा
भृश शुभ्रीभूत खकचनिचय वीक्षितवती ।
पलिक्नीत्वभ्रान्त्या कुलितहृदयात्रौषधविधे
शची पृच्छाक्लेशे निपतति मुहु स्वर्गिभिषजो ।।[1]

अर्थात् तुम्हारे बढे हुए शौर्य के प्रभाव के यश वाले चन्द्र से अत्यन्त शुभ्र होते हुए अपने कच निचय को देखती हुई, बाल के पकने की भ्रान्ति से व्याकुल हृदय वाली शची स्वर्गीय वैद्य अश्वनीकुमारो से बार-बार पूछने के क्लेश मे पड गयी ।

यहाँ पर जयन्त के शौर्य की छिटकी हुई चन्द्रिका से शची के बालो के श्वेत होने के वणन मे अतिशयोक्ति अलकार है । इसी अलकार के प्रयोग से जयन्त के शौर्य की पराकाष्ठा प्रदर्शित की गयी है जो कि उनके व्यक्तित्व के विकास मे सहायक सिद्ध हुई है । अत यहाँ अतिशयोक्ति अलकार का वर्णन वर्ण्य विषय के चित्रण मे सहायक है ।

इसी प्रकार जयन्त के सौन्दर्य वर्णन के अवसर पर भी अलकार प्रस्तुत की व्यञ्जना मे सहायक हुए हैं—

चन्द्रमा शशमलीनसच्छविस्ताप कृत्तरणिरुग्रतेजसा ।
तन्न किंचिदसृजद्विधिश्चिरादस्य येन मुखमेति तुल्यताम् ।।[2]

अर्थात् चन्द्रमा कलक की मलिनता से सुन्दर छवि वाला नही है और सूर्य उग्र तेज से तापकारी है । इस प्रकार विधाता ने कुछ भी बहुत दिनो से ऐसा नही बनाया जिससे इनके मुख की तुलना की जा सके ।

यहाँ पर जयन्त के मुख की तुलना चन्द्रमा तथा सूर्य दोनो मे से किसी से नही की जा सकती । अत अतिशयोक्ति अलकार है । किन्तु जयन्त के चन्द्रमा तथा सूर्य दोनो से भी अधिक सुन्दर होने के कारण व्यतिरेक अलकार की भी अभिव्यक्ति

---

१ जयन्तविजय, ६/७२ । २ वही, १६/८४ ।

हुई है, क्योंकि चन्द्रमा मे कलक है तथा जयन्त का मुख नि कलक है । सूर्य उग्र तेज से तापकारी है तथा जयन्त का मुख ताप से रहित है। किन्तु यदि चन्द्रबिम्ब निष्कलक हो जाय और सूर्य ताप से रहित हो जाय तो शायद जयन्त के मुख की समता पा सके । अत यहाँ पर अतिशयोक्ति और व्यतिरेक अलकार का प्रयोग वर्णन के अनुरूप हुआ है ।

अपि च—

आत्मैव यस्योपमिति समृद्ध्या जगत्यसाधारणता गतस्य ।
तस्य स्वसौधस्य समीपमाप श्रीविक्रमक्षोणिपतेस्तनूज ॥[1]

अर्थात् श्री विक्रम भूपति के पुत्र जिनकी उपमा ससार मे असाधारण होती हुई समृद्धि से अपने ही तुल्य है, अपने भवन के समीप पहुँचे ।

यहाँ पर उपमान के अभाव मे जयन्त की उपमा जयन्त से ही दी गयी है अत अनन्वय अलकार है । इस अलकार के प्रयोग के द्वारा जयन्त की प्रत्येक क्षेत्र मे अपराजेयता व्यक्त होती हे, जो कि कवि को अभीष्ट है । अत अलकार का प्रयोग वर्णन के अनुरूप है ।

इसी प्रकार कवि अभयदेव उपमा अलकार द्वारा युद्धस्थल का सजीव चित्र प्रस्तुत करते है

भटस्य कस्यापि बभौ शितासिभिन्नेभकुम्भोच्छलिता पतन्ती ।
मुक्तावली मूर्द्धनि पुष्पवृष्टिर्मुक्तेव देवैरवदानतोषात् ॥[2]

अर्थात् किसी वीर के शिर पर, तीक्ष्ण तलवार मे काटे गये गज-मस्तक से उछलकर गिरी हुई मुक्तावली दान से सन्तुष्ट देवताओ के द्वारा छोडी गयी पुष्प वृष्टि के समान सुशोभित हुई ।

यहाँ पर किसी वीर के मस्तक पर गिरी हुई गजमुक्तावली देवताओ द्वारा छोडी गयी पुष्प वृष्टि के समान सुशोभित हो रही है । अत उपमा अलकार है और इस अलकार के द्वारा घमासान युद्ध की सूचना भी प्राप्त हो रही है । जिस प्रकार दान से सतुष्ट होकर देवगण आकाश से पुष्प-वृष्टि करते है उसी प्रकार तलवार से काटे गये हाथियो के मस्तक से गजमुक्ता उछलकर वीरो के मस्तक पर गिर रही है । अत यहाँ पर उपमा अलकार युद्धस्थल का सजीव चित्र उपस्थित करने मे सहायक सिद्ध हुआ है ।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अलकारो का प्रयोग वर्णन मे चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया है ।

---

१ जयन्तविजय, १६/३० ।   २ वही, १०/४२ ।

(ग) कलापक्ष प्रधान अलङ्कार

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कतिपय स्थल ऐसे भी प्राप्त होते हैं जहाँ पर अलकारो का प्रयोजन भावपक्ष की अपेक्षा वाच्यार्थ के सौन्दर्य मे वृद्धि करना रहा है। अत ऐसे अलकारो को हम कलापक्ष प्रधान अलकारो की कोटि मे रख सकते है। यथा—

यस्मिन्ननुग्रामपुर वधूना विशुद्धशीलाभरणाग्रिमाणाम् ।
सर्वाङ्गलावण्यमलकरोति सुवर्णरत्नोत्तमभूषणानि ॥[1]

अर्थात् जिस (मगध के) प्रत्येक ग्राम और नगर मे विशुद्ध शील और आभूषणो मे आगे स्त्रियो का सर्वाङ्ग लावण्य सब प्रकार से सोने और रत्नो के आभूषणो को अलकृत करता है।

यहाँ पर मगध देश के ग्रामो एव नगरो मे निवास करने वाली स्त्रियो के सौदर्य के वर्णन का प्रसग वाच्यार्थ है। किन्तु यह वाच्यार्थ व्यतिरेक अलकार के प्रयोग से अत्यन्त चमत्कारी हो गया है। अत यहाँ पर अलकार प्रधान हो गया है और स्त्रियो के सौदर्य का हेतु सोने और रत्नो के आभूषण उसकी तुलना मे अप्रधान हो गये है। इसी प्रकार—

जिनेन्द्रहर्म्योपरिशातकुम्भकुम्भावलीषु प्रतिबिम्बितात्मा ।
अनेकमूर्ति प्रतिभाति भानुर्यस्या श्रिय द्रष्टुमिवावतीर्ण ॥[2]

अर्थात् जिनेन्द्र के हर्म्य के ऊपर सात सोने के बने हुए कलशो मे प्रतिविम्बत सूर्य की अनेक मूर्तियाँ मानो जिसकी सुन्दरता को देखने क लिए अवतीर्ण हुई सी प्रतीत होती है।

यहाँ पर जिनेन्द्र के हर्म्य के ऊपर स्थित स्वर्णिम कुम्भो के सौन्दर्य वर्णन का प्रसग है। दिन मे सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक रूपो मे उन्ही बने हुए सोने के कलशो पर पडता है, यह वाच्यार्थ है। जो कि उत्प्रेक्षा अलकार के प्रयोग से अधिक चमत्कारी हो गया है।

अपि च—

सुरेशवेषाभरणाङ्गरागवरेण लावण्यतरङ्गिताङ्ग ।
निमेषमात्रेण पर सुरभ्यो विभिद्यते यत्र जन समस्त ॥[3]

अर्थात् देवताओ के वेष को धारण किये हुए अङ्गराग आदि लगाने से अत्यन्त

---

१ जयन्तविजय, १/३५।
२ वही, १/५१।
३ वही, १/५४।

सुन्दर शरीर वाले जहाँ के लोग देवताओ से पलक बन्द करने के व्याज से ही भिन्न माने जाते हैं।

यहाँ पर मगध के निवासियो का वर्णन वाच्य है किन्तु यह वाच्यार्थ विशेषक अलङ्कार के प्रयोग से चमत्कृत हो गया है क्योकि प्रस्तुत और अप्रस्तुत मे गुण-सामान्य होने पर भी किसी प्रकार भेद लक्षित करा देना विशेषक अलङ्कार होता है। यहाँ बताया गया है कि मगध के निवासी तथा देवता एक ही आकार के है। इनमे अन्तर यो जाना जाता है कि वहाँ के निवासी सनिमेष है और देवता अनिमेष है।

इसी प्रकार—

वराश्वह्लेषा गजराजगर्जित सतूर्यनाद शुभशखनिस्वनम्।
अदक्षिणाक्षिस्फुरण प्रियोदित तदाशृणोच्छाकुनिकाग्रणीरमौ ॥[1]

अर्थात् उसी समय शकुन को जानने मे प्रधान राजा ने अच्छे घोडो की हिनहिनाहट, हाथियो की गर्जन, शुभ शख के साथ अन्य बाजो की आवाज तथा वाम नेत्र का स्फुरण सुना।

यहाँ पर शुभ शकुनो का वर्णन वाच्य है। किन्तु इस वाच्य मे चमत्कार अर्थावृत्ति (आवृत्तिदीपक) अलङ्कार के माध्यम से हुआ है, क्योकि एक ही अर्थ मे ह्लेषा, गर्जित, नाद एव निस्वन शब्दो का प्रयोग कर अर्थावृत्ति की योजना की गयी है।

अपि च—

तिमिर रिपुजयाय प्रस्थितस्याथ राज्ञो
रुचिरकिरणवीरैः प्रोल्लसद्भि समन्तात्।
जगदखिलमकारि क्षिप्रमेवाविपक्ष
किमिव वसुमता न क्ष्मातले साध्यमस्ति ॥[2]

अर्थात् तिमिर शत्रु को जीतने के लिए प्रस्थान किये हुए राजा के चारो ओर सुशोभित सुन्दर किरण रूपी भटो से सारा ससार शीघ्र ही बिना शत्रु के कर दिया गया, क्योकि पृथ्वी पर धनवानो के लिए क्या साध्य नही है।

यहाँ पर चन्द्रोदय का वर्णन करना कवि का लक्ष्य है किन्तु चन्द्र पर नृपति का आरोप करना अधिक चमत्कारी है। अत यहाँ रूपक अलङ्कार के प्रयोग से कलापक्ष प्रधान है।

---

१ जयन्तविजय, २/४१।   २ वही, ८/५८।

इसी प्रकार—

रमाकुचस्पर्शसुखेन शायिन मुकुन्दमप्यम्बुनिधौ विविप्रयन् ।
निदेशतो विक्रमसिंह भूपते प्रयाणभेरीध्वनितं ततोऽभवत् ॥[१]

अर्थात् इसके पश्चात् विक्रमसिंह के आदेश से रमा के कुच के स्पर्श से सुख-पूर्वक शयन करने वाले समुद्र मे मुकुन्द को भी विकृत करते हुए प्रयाण की भेरी ध्वनित हुई ।

यहाँ पर विक्रमसिंह के आदेश से ध्वनित प्रयाणकालीन भेरी वाच्यार्थ है और इस वाच्यार्थ मे अतिशयोक्ति अलङ्कार के प्रयोग से विशिष्ट चमत्कार आ गया है क्योकि प्रयाणकालीन भेरी की आवाज समुद्र मे सुखपूर्वक शयन करने वाले भगवान् विष्णु को भी कष्ट पहुँचा रही है ।

इसी प्रकार—

विस्फुरत्तरलमीननेत्रया चक्रयुग्मकुचकुम्भशोभया ।
राजहमगतयाब्जहस्तया सख्यमस्तु तव देवि सिप्रया ॥[२]

अर्थात् चञ्चल मीन रूपी नेत्रो वाली, चकोर युग्मरूपी कुचो वाली, राजहस रूपी गति वाली तथा कमलरूपी हाथो वाली शिप्रा नदी के साथ हे देवि तुम्हारी मित्रता हो ।

यहाँ पर शिप्रा नदी का वर्णन करना कवि का ध्येय है किन्तु इस व्यग्य की तुलना मे शिप्रा नदी को नारी के रूप मे चित्रित करना वाच्यार्थ अधिक चमत्कारी है । अत यहाँ पर रूपक अलङ्कार के प्रयोग मे कलापक्ष प्रधान है क्योकि शिप्रा नदी को नारी का रूपक देकर बहुत ही सुन्दर दृश्य उपस्थित किया गया है । नदी मे रहने वाली मछलियाँ उसके नेत्र है, चक्रवाक युग्म स्तन हैं, राजहस उसकी गति हैं और कमल उसके हाथ है ।

(घ) स्वतः प्रस्फुटित अलङ्कार

काव्य मे सौन्दर्य प्रदर्शित करने के लिए सभी कवि अलङ्कारो की योजना करते हैं । परन्तु अलङ्कार सौन्दर्य वृद्धि मे तभी सहायक होते है जब उनकी योजना सहजता के साथ की गयी हो अर्थात् उनका निष्पादन काव्य मे स्वत हो गया हो, उसके लिए कवि को अपनी ओर से विशेष प्रयत्न न करना पडा हो, क्योंकि प्रयत्न-पूर्वक निष्पन्न होने पर उनका स्वाभाविक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और वे उक्ति

---

१ जयन्तविजय, ६/५६ ।   २ वही, १६/६१ ।

वैचित्र्य मात्र रह जाते है। आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार प्रतिभावान कवि के काव्य मे अलङ्कार सहज ही निष्पन्न हो जाते है।[1]

जयन्तविजय' महाकाव्य कवि अभयदेव की प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। अत इस महाकाव्य मे अनेक स्थलो पर अलङ्कारो की योजना स्वत हो गयी है उसके लिए कवि को अलग से प्रयत्न नही करना पडा है। यथा--

सरक्षणाय रिपुतोऽहमभूवमस्या
    सग्राम केलिभिरिय स्मरतापतो मे।
स्वैर्दर्शनामृतरसैस्तु समोपकार-
    कन्येति तामथ मुहुर्नृपतिर्ददर्श ॥[2]

अर्थात् मैं सग्राम केलि के द्वारा शत्रुओ से इसे बचाने के लिए समर्थ हुआ और इसने अपने दर्शनामृत द्वारा स्मर ताप से मेरी रक्षा की। इस प्रकार कहते हुए राजा ने उस कन्या (कनकवती) को बारम्बार देखा।

यहाँ पर स्वाभाविक चित्रण है, कि यदि कोई व्यक्ति किसी का उपकार करता है तो वह उपकृत व्यक्ति भी अवसर मिलने पर उस उपकार का बदला चुका देता है। ठीक उसी प्रकार विक्रमसिंह यहाँ कनकवती की रक्षा नारी का बलिदान करने वाले योगी से करता है और कनकवती राजा की रक्षा स्मर ताप मे करती है। किन्तु यहाँ दोनो के परस्पर एक दूसरे के उपकारी होने से अन्योन्य अलङ्कार की योजना हुई है और इस योजना के लिए कवि को अलग से प्रयास नही करना पडा है।

इसी प्रकार—

किं वागुरेयमपरा युवहृन्मृगाणा
    नि स्पन्दता दधति येन विलोकितापि।
एक स्मरस्य च जगत्त्रयजैत्रमस्त्र
    स्त्रैणोचिताद्भुत गुणोल्बणभूषण श्री ॥[3]

अर्थात् राजा विक्रमसिंह उस (कनकवती) कन्या को देखकर सोचता है कि— क्या युवको के हृदयरूपी मृग की यह दूसरी जाल है जिसे देखते ही युवक निश्चलता को प्राप्त हो जाता है अथवा सारे ससार को जीतने वाले कामदेव का यह अद्वितीय अस्त्र है अथवा स्त्रियो के उचित अद्भुत गुण के वृद्धि की आभूषण लक्ष्मी है।

यहाँ पर राजा विक्रमसिंह कन्या को देखकर अपने मन मे उसके प्रति अनेक प्रकार का सन्देह व्यक्त करता है और यह सन्देह होना स्वाभाविक भी है क्योकि

१ ध्वन्यालोक, पृ० २३३।
२ जयन्तविजय, ५/१।
३ वही, ५/३।

उसने उस कन्या को एकाएक श्मशान भूमि मे देखा है। अत. यहाँ पर स्वत प्रस्फुटित सन्देह अलङ्कार वर्णन को ग्राह्य बना रहा है।

अपि च—

यत्र यत्र सुकुमार पुगव सचचार सुभगाग्रणी पथि।
तत्र तत्र तमनङ्गविभ्रमात्पूजयन्ति नयनोत्पलै स्त्रिय ॥[1]

अर्थात् शुभगो मे अग्रगण्य (वह) सुकुमार पुगव जहाँ-जहाँ जाता था। वहाँ-वहाँ पर काम के भ्रम से स्त्रियाँ नयन कमलो मे उसकी पूजा करती थीं।

यहाँ पर जयन्त के रूप सौन्दर्य को देखकर स्त्रियो को उनमे कामदेव का भ्रम हो जाता है और इसीलिए वे अपने नेत्र रूपी कमलो से उनकी पूजा करती हैं अर्थात् उन्हे बारम्बार देखती हैं। अत यहाँ पर भ्रान्तिमान अलङ्कार सहज ही निष्पन्न हो गया है।

इसी प्रकार—

गभीरभेरीरणितैरमर्त्यमर्त्येषु दूर बधिरीकृतेषु।
तदात्मन सर्पकुल श्रुतीनामभावमुच्चैर्बहु मन्यते स्म ॥[2]

अर्थात् गम्भीर भेरी की आवाज से देवताओ और मानवो के बधिर हो जाने पर सर्पकुलो ने अपने कानो के अभाव को ही बहुत श्रेष्ठ समझा।

यहाँ सैन्य-प्रयाण की भेरी बजने से दूर-दूर तक के प्राणी बधिर हो गये है। अत सर्प अपनी कर्णहीनता पर बडे आनन्दित हो रहे है। यह स्वाभाविक चित्रण है, कि विकारयुक्त व्यक्ति दूसरे को भी विकारयुक्त देखकर अपने विकार को श्रेष्ठ समझता है। किन्तु इस उदाहरण मे दोष मे ही गुण देखकर उस दोष के ही सराहने के कारण अनुज्ञा अलकार की स्वत अभिव्यक्ति हुई है।

इसी प्रकार—

नृपात्मजालोकन कौतुकाय समुत्सुका काचन कैरवाक्षी।
नितम्बबिम्ब स्तनमण्डल च निनिन्द मन्दा गतिमादधानम् ॥[3]

अर्थात् राजकुमारी को देखने के लिए कुतूहल से उत्कण्ठित होती हुई किसी कमलनयनी ने अपने नितम्ब बिम्ब और स्तन मण्डल को मन्दगति धारण करने के लिए अत्यन्त निन्दित किया।

यहाँ पर कोई स्त्री राजकुमारी के सौन्दर्य को देखने के लिए दौडी, पर अपने स्थूल स्तन और स्थूल नितम्बो के भार के कारण वह तेजी से दौड न सकी। अतएव

१ जयन्तविजय, ७/२१।
२ वही, १४/३५।
३ वही, १६/२४।

उस स्त्री द्वारा अपने स्तन और नितम्ब की निन्दा की गयी, यह सहज चित्रण है। किन्तु स्तन और नितम्ब की निन्दा होने से यहाँ तिरस्कार अलङ्कार स्वत प्रस्फुटित हो गया है। इसी प्रकार स्वत प्रस्फुटित अलकारो के अनेक उदाहरण रसानुकूल अलकारो के वर्णन के अवसर पर प्रस्तुत किये जा चुके है।

(ख) रूढ़िगत उपमानों का प्रयोग

उपमा प्राचीनतम एव अन्य सादृश्यमूलक अलकारो का उपजीव्य अलकार है। इसमे कुछ प्रसिद्ध उपमान रहते है जैसे चन्द्र, कमल इत्यादि। इन प्रसिद्ध उपमानो मे कुछ उपमान ऐसे है जो कि कुछ विशिष्ट उपमेयो के साथ इतनी अधिकता से प्रयुक्त किये जाते है कि उनका उन विशिष्ट उपमेयो के साथ प्रयोग रूढ हो गया है। यथा—मुख के लिए चन्द्र का प्रयोग। इसी प्रकार कमल का प्रयोग जहाँ मुख के लिए होता है वही वह हस्त, पाद, नेत्र के सौन्दर्य-वर्णन के प्रयोग मे भी रूढ़ हो चुका है। प्राय सभी कवियो के काव्यो मे इस प्रकार के रूढिगत उपमानो का प्रयोग प्राप्त होता है।

कवि अभयदेव उपमा अलकार के उद्‌भट विद्वान् है। अत उन्होने अपने काव्य मे इन उपमानो का प्रयोग अनेक रूपो मे प्रस्तुत किया है। यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ उपमानो को मूलस्रोतो की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) **अग्नि**—तेज चमत्कार, प्रभाव एव सर्वस्व विध्वस करने की शक्ति का निरूपण करने के लिए अग्नि, दीप या प्रकाश उपमान को प्रस्तुत किया गया है। इस श्रेणी के उपमान जयन्तविजय मे निम्नलिखित है—

१ दाव इव २/२०—दावाग्नि के समान राजा को कष्टदायक।

२ वह्नेर्घृताहुतिक्षेप इव ६/२—सुन्दर रूप, दिव्य वस्त्राभूषण और धन प्राप्ति के साथ असाधु सगति को कवि ने अग्नि मे घृताहुति देने के समान अहकार की वृद्धि करने वाला उपादान कहा है।

३ वह्निरिव क्रुधा ६/४५—क्रोध की भयकरता प्रदर्शित करने के लिए अग्नि उपमान का प्रयोग किया है।

(२) **आभूषण और शृंगार प्रसाधन सामग्री**—'जयन्तविजय' महाकाव्य मे उपमानो का चयन आभूषण और शृङ्गार प्रसाधन सम्बन्धी सामग्री से भी किया गया है। इस क्षेत्र से ग्रहीत उपमान सौन्दर्य की अभिव्यजना को चमत्कारपूर्ण बनाने मे पूर्ण समर्थ है।

४ अम्भोरुहमालिकेव १४/४—कमल की माला के समान।

५ गुञ्जारुणनेत्रकान्ति १४/५—घुँघची के समान नेत्रो की कान्ति।

६ मौलिरत्नमिव ७/२—मुकुट-जटित रत्न के समान उन्नत और प्रकाशमान प्राणेश्वर को प्राप्त किया ।

७ विमलमौक्तिकहारलताइव ४/२६—निर्मल मौक्तिक हार लता के समान कण्ठ मे पडने वाली वह थी ।

८ हारमिंवनायकोमणि ७/२८—हार मे लगी मध्यवर्ती मणि के समान वह श्रेष्ठ है ।

(३) अंगोपाग—सुन्दरता, सुकुमारता एव उग्रता की व्यञ्जना करने और विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए शरीरावयवो को उपमान के रूप मे ग्रहण किया गया है ।

९ उत्कुचैरिव १३/५—वन की रम्यता का चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवि ने फल-पुष्प आदि की उपमा नारी के अगो के उपमानो द्वारा प्रस्तुत की है । फलो के वृहदाकार की अभिव्यक्ति के लिए उन्हे उन्नत कुचो के समान कहा गया है ।

१० कण्ठेश्वासइव ३/४५—पचपरमेष्ठी मन्त्र के अहर्निश जाप को कण्ठ मे सर्वदा रहने वाले श्वास के समान कहा है ।

११ करतलैरिव १३/४—पल्लवो को हथेली के समान लाल कहा है ।

१२ लोचनैरिव १३/४ –नेत्रो के समान विकसित पुष्प ।

१३ विलूनवेणीव १४/१६—छिन्न वेणी के समान विमानपक्ति लक्षित होती है ।

१४ हस्तैरिवोच्चैस्तरव १/३१—हाथ के समान उन्नत वृक्ष पथिको की स्त्रियो को स्वबन्धु बुद्धि से बुलाते थे ।

(४) कीट-पतग-पशु-पक्षी आदि—भ्रमर, शलभ आदि कीट-पतग एव पशु-पक्षी मानव के प्राचीन काल से सहचर रहे है । अत कवि ने उन्हे भी उपमान के रूप मे प्रयुक्त किया है—

१५ अलिकुन्तैरिवकुन्तलै १३/३५—उसके केश भ्रमरो के समान काले थे ।

१६ उलूकपक्षीव १/१३—उलूक पक्षी के समान दोषदर्शी दुर्जन होते हैं ।

१७ कामधेनुरिव १३/५२—कामधेनु के समान अभिलाषाओ की पूर्ति करने वाला दान ।

१८ केसरीव १२/३९—मिथ्यात्वरूपी हाथी के लिए सिंह के समान ।

१९ पशुरिव ४/२३—पशु के समान मदान्ध होकर दुराचार किया ।

२० भ्रमरीव १/१—आदिदेव के चरणो मे सलग्न त्रिलोकीजन भ्रमर की तरह प्रतीत होते हैं ।

२१. भृङ्गइवम्बुजे ३/७८—जिस प्रकार भ्रमर कमल मे आसक्त रहता है उसी प्रकार वह नमस्कार मन्त्र मे आसक्त था।

२२ मधुकरैरिवलोचनै ७/६३—भ्रमरो के समान नेत्रो से अनुरागपूर्वक देखा।

२३ महाविभूतिरिव कामधेनु १/२१—महाविभूति के लिए कामधेनु के समान।

२४ पथविच्युतमृगीव १३/८—समूह से पृथक् हुई हरिणी के समान।

२५ सिंहीद्विपस्येव १०/१७—सिंह जिस प्रकार हाथियो के वन मे प्रवेश करता है उसी प्रकार जयन्त ने शत्रु शिविर मे प्रवेश किया।

(५) **गृहोपकरण**—गृहादि—गृहोपकरण से ग्रहीत उपमान वर्णन चमत्कार के साथ चचलता, दृढता, पृथुलता एव सौन्दर्य की अभिव्यजना करते हैं।

२६ कम्भमिव १३/१—भक्तिरम के कुम्भ के समान पुष्पाजलि को मुनि के चरणो मे अर्पित किया।

२७ केतुमिवोल्लसन्तम् ५/१६—ध्वजा के समान उल्लसित रहने वाला गगाधर हुआ।

२८ विश्रामधामेव १/६६—विश्रामगृह के समान पति के लिए सुखदायक थी।

(६) **ग्रह-नक्षत्र**—प्राकृतिक वस्तुओ मे मानवीय व्यापारो को अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है। सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, नक्षत्र आदि उपमान सौन्दर्य, शील, शीतलता, माधुर्य, तेज, ओज, ज्ञानगुरुता प्रभृति भावो के अभिव्यजक है।

२९ अर्कइव ६/४५—सूर्य के समान तेजस्वी।

३० इन्दुरिव ३/६८—चन्द्रमा के समान आह्लादजनक वह दिखलायी पडा।

३१ कुमुद्वनीना पतिरिव १२/३६—चन्द्रमा के समान सुन्दर एव प्रसन्नता प्रदान करने वाला।

३२ गुरुरिव २/५१—गुरु बृहस्पति के समान राजा विक्रमसिह का मन्त्री था।

३३ चन्द्रैरिव १/४६—चन्द्रमा के समान शीतलता प्रदान करने वाले स्तन थे।

३४ चन्द्रिकयेव २/२६—जिस प्रकार चन्द्रमा की चाँदनी के द्वारा कुमुदिनी को आश्वासन ।

३५ चन्द्र इव १०/६८—नक्षत्रो के बीच शोभित होने वाले चन्द्रमा के समान सेना के मध्य सिंहलभूप सुशोभित हुआ।

३६ जीव इव १/७१—बृहस्पति के समान विद्वान् और विचारशील सुबुद्धि नामक मन्त्री था।

३७ तरणेरिव चन्द्रमा ४/६३—जिस प्रकार दिन मे सूर्य की किरणो से चन्द्रमा

अस्त हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारी शक्ति से वह दुर्दशा को प्राप्त हुआ है ।

३८ नव्यशशीव ५/७२—जिस प्रकार मेघो के बीच द्वितीया का चन्द्र सुशोभित होता है, उसी प्रकार वह अपने कुल में सुशोभित हुआ ।

३९ नीरधिरिवेन्दुना ७/१३—चन्द्रमा से जिस प्रकार समुद्र मे हर्ष-ज्वारभाटा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार राजपुत्र से कुल मे प्रसन्नता हुई ।

४० प्रदोषमिव चन्द्रमा ३/६ जिस प्रकार चन्द्रमा प्रदोषकाल को प्राप्त होता है, उसी प्रकार धनदेव कारागृह को प्राप्त हुआ ।

४१ भृगुमिव ४/६—शुक्र के समान जिस प्रकार राशि का अतिक्रमण करता है उसी प्रकार उसने परकोटे का उल्लघन किया ।

४२ रवेरिव प्रभा २/३५—देवता आपके अमगल को उसी प्रकार दूर करे, जिम प्रकार सूर्य की कान्ति अन्धकार को दूर करती है ।

४३ रोहिणीव १६/८६— जिम प्रकार रोहिणी चन्द्रमा को प्यार करती है, उसी प्रकार रविसुन्दरी ने जयन्त को प्यार किया ।

४४ सिहिकासुत इव १६/८० —राहु के समान सिंहलनृपति का मुख भीषण था । राहु जिस प्रकार चन्द्र का ग्रास ग्रहण करने के लिए अपना मुँह फैलाये रहता है, उसी प्रकार सिहलभूपति शत्रुओ का महार करने के लिए भय-कर मुख किये था ।

४५ सूर्यप्रभा चुम्बितचन्द्रिकेव १/४२—जयन्ती नगरी के भवनो के समक्ष स्वर्ग-विमानो की शोभा सूर्यकान्ति से चुम्बित चन्द्रिका के समान प्रतीत होती थी ।

(७) **दिव्य पुरुष और दिव्य पदार्थ**—स्वर्गीय देवी-देवता एव दिव्य पदार्थ अमृत आदि उपमान कोमल भावनाओ की अभिव्यञ्जना मे अत्यन्त सहायक है । कवि अभयदेव ने इस श्रेणी के उपमानो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया है ।

४६ इन्द्र इव २/४३—इन्द्र जिस प्रकार देवो द्वारा सेवित रहता है, उसी प्रकार राजा विक्रमसिंह सामन्तो द्वारा सेवित था ।

४७ कल्पशारवीव ८/१७—कल्पवृक्ष के समान वनभूमि सुशोभित है ।

४८ कल्पतरोरिव ८/१७ – कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट फल देने वाली सेवा ।

४९ कल्पान्तवातैरिव शस्त्रै १०/६२—प्रलयकालीन वायु के समान भयकर शस्त्र ।

५० पुण्यतरो फलैरिव ६/२—पुण्यवृक्ष के फलो के समान विभूतियो से युक्त ।

५१ **बीजवर्जिता विद्यामिव** २/३०—बीज रहित अमृत विद्या के समान राजा ने उसकी अर्चना को कहा।

५२. **भावोचितानामिव कर्मणा श्री** १/२२—उचित भावो की कर्म श्री के समान वह धर्म है।

५३ **भाग्यसपदिव** १६/७ –कामदेव की भाग्य सम्पत्ति के समान रतिसुन्दरी थी।

५४ **मूर्तं पुण्यमिव** ३/२२— मूर्तिमान पुण्य के समान मुनि का दर्शन किया।

५५ **यमस्य जिह्वेव** १/६१—यम की जिह्वा के समान हाथियो की दन्तपक्ति थी।

५६ **रम्भेव** १/४८ –लक्ष्मी के समान सुन्दर मूर्ति ।

५७ **वैद्युतपुञ्जमिव** ४/२६—विद्युतपुज के समान मणि-सुवर्ण के आभूषणो से युक्त किया।

५८ **व्योमवीथीव** ८/१६ —वृक्ष पर पुष्यावचय के लिए आसीन नारी के मरकत-मणि के आभूषणो मे पुष्पो के प्रतिबिम्ब रात्रि मे आकाशगङ्गा मे पड़ने वाले ताराओ के प्रतिबिम्ब के समान थे।

५९ **व्योमलक्ष्मीरिव** ८/२ - आकाश लक्ष्मी के समान कोई नायिका, जिसके कानो के दोनो कुण्डल चन्द्र और सूर्य के समान थे।

६० **शचीव** १/६१ —इन्द्राणी के समान प्रीतिमती सुशोभित थी।

६१ **श्रीनन्दनस्येव रतिश्च** १/६६ कामदेव के लिए रति के समान प्रीतिमती।

६२ **श्रीपताविव** ५/११—जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णु मे अनुरक्त है उसी प्रकार पृथ्वी तुममे अनुरक्त है।

६३ **सजीवनी औषधिरङ्गजस्य** १/६९—कामदेव की सजीवनी औषधि के समान।

६४ **लावण्यपूरैरमृतैरिवोच्चै** १/४९—अमृत के समान लावण्य से युक्त।

६५ **वज्राभिहतेव** २/३२—वज्राहत के समान वचनो से घायल।

६६ **विद्याधरा इव** ५/४९—विद्याधरो के समान शक्तिशाली है।

६७ **सुधामिव** २/१— अमृत के समान पुत्र का स्पर्श होता है।

६८ **सुधारसामिव दुग्धसिन्धु** १/२२—अमृत के क्षीर समुद्र के समान।

६९ **स्मरमिव** ८/७—कामदेव के समान जयन्त को देखा।

७० **स्वर्भूरिव** १/५९ –स्वर्गभूमि के समान मगध देश की भूमि थी।

७१ **स्वर्गपुरीव** ६/३८ —स्वर्गपुरी के समान नगरी।

(८) **पर्वत-पृथ्वी आदि** –'जयन्तविजय' महाकाव्य मे पृथ्वी, पर्वत आदि उपमानो का प्रयोग भी मिलता है।

७२ धरैव ६/७४—पृथ्वी के ऊपर धान्य के अंकुर के समान संस्कार शोभित थे।
७३. शैलेरिव १/२८—उत्तुङ्ग पर्वत के समान धान्यढेर प्रतीत होते थे।
७४ शैलेरिव १०/३—पर्वत के समान सेना के गज प्रतीत होते थे।
७५ सुमेरोरिवतटी २/५—सुमेरु की तटी के समान थी।

(६) **पौराणिक व्यक्ति एव पदार्थ**—पवित्रता, त्याग संयम और शील की अभिव्यंजना के लिए कवि पौराणिक व्यक्ति एव पदार्थों को उपमान के रूप मे प्रयोग करता है।

७६ कौशिकैरिव १६/५५—विश्वामित्र के समान तेजस्वी है।
७७ चन्द्रमौलिरिवेशक्तिपाणिना ७/१३—जिस प्रकार कार्तिकेय पुत्र को प्राप्त कर शकर सुशोभित हुए, उसी प्रकार जयन्त को प्राप्त कर विक्रमसिंह सुशोभित हुआ।
७८ धनावह इव ३/५– धनावह सेठ के समान नमस्कार मन्त्र की आराधना की।
७९ पक्ष्मजन्मन सृष्टिसारमिव १६/७ ब्रह्मा की सृष्टि के सार के समान।
८० महेश्वरस्य गौरीव १/६६ जिस प्रकार शिव को पार्वती प्रिय हैं, उसी प्रकार विक्रमसिंह को प्रीतिमती प्रिय थी।
८१ लकेव ११/५३—लका नगरी के समान सुन्दर नगरी थी।
८२ लक्ष्मीरिवमाधवस्य १/६६—विष्णु के लिए लक्ष्मी के समान विक्रमसिंह के लिए प्रीतिमती थी।

(१०) **वृक्षलता-पुष्पलता-पल्लव आदि**—वृक्षो की दानशीलता, लताओ की सुकुमारता, पुष्पो की सौरभ एव पल्लवो की कोमलता कवियो को ही नही अपितु प्राणी मात्र को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। अत कवि द्वारा इस क्षेत्र से उपमानो का चयन करना स्वाभाविक है।

८३ कल्पद्रुमाणामिवनन्दनोर्वी १ २१—कल्पवृक्ष युक्त नन्दनभूमि के समान जैनधर्म।
८४ कमल इवातिशय सौरभाभिरामै १२/१३—कमल के सौरभ के समान प्रसरणशील है।
८५ कल्पतरोर्लतेव ३/६७ कल्पतरु की लता के समान राजलक्ष्मी।
८६ कीर्तिलताइव १/३—कीर्तिलता के समान स्तुति।
८७ कुवलयदलनेत्राम् ८/४५—कमलदल के समान नेत्रवाली को।
८८ केसरैरिव १३/३५—पराग के समान स्वच्छ दन्तपक्ति।
८९ छिन्नलतेव २/३२—कटी हुई लता के समान गिर गयी।
९० दलोपमानि १०/५१—किसलय के समान अगोपाग-सुन्दर और कोमल।

९१ पुष्पोद्‌गम इव ३/१०—पुष्पोद्‌गम के समान ।

९२ प्रशाखा इव १०/५१—प्रशाखा के समान भुजदण्डो को ।

९३ लावण्यवल्लेर्नवकन्दलीव १/६९—लावण्यलता की नवकन्दली के समान ।

९४ वनस्पतीनामिव वारिदाम्भ १/२१—वनस्पति के लिए वर्षा के जल के समान ।

९५ वल्लीव भक्ति ३/४४—लता के समान भक्ति ।

९६ विटपीव २/२२ वृक्ष के समान वश ।

९७ विवेक कल्पद्रुममञ्जरीव ६/१८—विवेक रूपी कल्पवृक्ष की मञ्जरी के समान ।

९८ सरोजपत्री व्यनक्तीव १/५—जिनके चरणो की नखावली देवागनाओ के नेत्रो के प्रतिबिम्ब पडने से कमलपत्र की कान्ति के समान प्रतीत होती थी ।

९९ सरोजैरिव १/४९—कमल के समान नेत्र सुशोभित थे ।

(११) **मानसिक विकार-भावादि—**

१०० कटाक्ष इव ११/७६ जयश्री के कटाक्ष के समान बाण थे ।

१०१ कीर्तिरिव १८/४९—कीर्ति के समान ध्वजा—अमूर्त उपमान द्वारा मूर्त की व्यंजना ।

१०२ कृतास्पदानीव १/५६—शेषनाग द्वारा स्यात् बनाये हुए के समान भित्तियो मे अकित ध्वजाओ के प्रतिबिम्ब थे ।

१०३ दिदृक्षयेव १/४७—परिखा के बहाने क्षीर सागर ही स्वपुत्री लक्ष्मी के पुत्रो श्रीमन्तो को देखने के समान ही उपस्थित हुआ है ।

१०४ दृष्टिमिव १/५१—देखने के समान ही—जिनचैत्यो पर जटिल स्वर्ण कलशो पर सूर्य के प्रतिबिम्ब पड रहे थे । जिससे ऐसा प्रतीत होता था, मानो सूर्य अपना प्रतिबिम्ब देखने के लिए ही आया है ।

१०५ नयनमिव धर्म ३/८९—नीति के समान धर्म को समझा ।

१०६ प्रतापैरिव १/६३—मूर्तिमान् प्रताप के समान ।

१०७ शक्तित्रयमिव ३/९८—शक्तित्रय के समान रत्नत्रय को ।

१०८ सन्तोषलीलेव १/२२—मानसिक सुख के लिए सन्तोषलीला के समान ।

१०९ सुखनिर्मिता इव २/३—मुख के द्वारा निर्मित हुए के समान ही उत्सव था ।

(१२) **समय ऋतु आदि—**

११० उत्पातकाल इव ५/५२—उत्पात समय के समान दु खदायक है ।

१११ शरदीव ६/८०—शरद ऋतु मे होने वाली दिशाओ के समान स्वच्छ ।

११२ सूर्यास्तसध्येय १४/५—सूर्यास्त सन्ध्या के समान कृपाणलेखा शोभित थी ।

(१३) सम्बन्धी पैसा आदि—

११३ कौतुकीव ८/४८—कौनकी के समान सूर्य।
११४ जननीव ५/४५—माता के समान राजलक्ष्मी।
११५ दूतीव १/२७—दूती के समान।
११६ पितेव १/६०—पिता के समान प्रजा का पालन करने वाला राजा।
११७ प्रियामिव १/७२—प्रिया के समान।
११८ वन्दिवृन्दैरिव ८/२७—वन्दीजनो के गान के समान नाना पक्षियों के गीत थे।
११९ भिषग्वरस्येव २/१५—वैद्य के समक्ष रोगी जिस प्रकार अपनी बातें कह देता है, उसी प्रकार रानी ने राजा के समक्ष सभी बातें कह दी।

(१४) सागर-जलचर आदि—

१२ अम्भ कणैरिव ५/५—जलकणो के समान वचनो से।
१२१ अम्भोद इव ३/११—बादलो के ममान चञ्चल गति।
१२२ कूलङ्कषेव ५/५४—किनारे को तोडनेवाली नदी के समान वेग से शत्रुओ का सहार करने वाला।
१२३ क्षीरार्णवस्येव पय १/६ क्षीरसागर के जल के समान भक्तिजल।
१२४ क्षीरसागरमिव ७/४६—क्षीरसागर के समान ऋतुराज वसन्त का सौंदर्य।
१२५ गङ्गेव ६/७०—गङ्गा की पवित्रता और लावण्य के समान देवी के शरीर की त्रिवली।
१२६ घनसमय इव १२/३९—बादलो की वर्षा के समान उपदेश।
१२७ तृषार्त इव ३/२८—पिपासाकुलित व्यक्ति जिस प्रकार अमृत का पान करता है, उसी प्रकार धनदेव ने नमस्कार मन्त्र का आराधन किया।
१२८ लावण्यनद्या इव यौवनाद्रि १/२१—सौंदर्यरूपी नदी को यौवनरूपी पर्वत के समान।
१२९ वर्षाम्बुवाहैरिव १२/३९—वर्षाकाल मे होने वाली मेघो की जलवर्षा के समान शस्त्रो की वर्षा।
१३० वारीव शीतलम् १५/७०—जल के समान शीतल।
१३१ वेलाम्बुधेरिव सुधारसकालकूटे ५/१६—पिता ने गगाधर और पृथ्वीधर नामक पुत्र इस प्रकार उत्पन्न किये, जिस प्रकार समुद्र अमृत और विष को उत्पन्न करता है।
१३२ सरसीव मीनक २/९—सूखे तालाब की मछली के समान रानी बेचैन थी।

(६) पूर्व कवियों के अलङ्कार प्रयोग का अनुकरण—

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार बुद्धिमानो के वचनो मे मेल बहुलता से

प्राप्त होता है क्योंकि बुद्धिमानो की बुद्धियाँ सवादिनी अर्थात् परस्पर मेल खाने वाली होती हैं। परन्तु यदि एक कवि का भाव दूसरे कवि के भाव से साम्य रखने वाला दिखायी दे तो यह नही समझना चाहिए कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि के भाव का अपहरण ही किया है क्योकि कवियो का यह परस्पर सवाद तीन प्रकार का होता हैं। प्रथम प्रतिबिम्बवत्, द्वितीय आलेख्यवत् तथा तृतीय तुल्यदेहिवत्।[१]

प्रतिबिम्बवत् अर्थात् कवि के भाव को ज्यो का त्यो उतार दिया जाय केवल शब्दो और वाक्यरचना मे भेद हो।[२] आलेख्यवत् सवाद वहाँ होता है जहाँ काव्य-वस्तु तो प्राचीन ही ली जाय परन्तु उसका कुछ सस्कार कर दिया जाय जिससे वस्तु भिन्न जैसी प्रतीत होने लगी।[३] तुल्यदेहिवत् सादृश्य वहाँ होता है जहाँ पर विषय का भेद होते हुए भी अत्यन्त सादृश्य के कारण अभेद प्रतीत होने लगे।[४] इनमे से प्रथम दो अर्थात् प्रतिबिम्बवत् और आलेख्यवत् सादृश्य तुच्छ माने गये है परन्तु तुल्यदेहिवत् सादृश्य श्रेष्ठ होने के कारण कवियो द्वारा ग्रहणीय है।[५]

कवि अभयदेव ने अपने पूर्ववर्ती कवियो के काव्यो का अध्ययन किया था अत उनके काव्य मे अनेक स्थलो पर पूर्ववर्ती कवियो के अलङ्कारो का प्रभाव आ जाना स्वाभाविक ही है, क्योकि यह मानव स्वभाव है कि उसे जो वस्तु अत्यन्त रुचिकर लगती है, उसे वह प्राप्त करना चाहता है। इसके साथ ही यह भी हो सकता है कि एक ही प्रकार का भाव दो विभिन्न कवियो को प्रेरित करे और ऐसी दशा मे दोनो कवियो के काव्य मे सादृश्य आ जाय। जैसा कि ध्वनिकार ने ऊपर उल्लेख किया है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कतिपय स्थलो पर अलङ्कारो का प्रयोग कालि-

---

१ सवादस्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्।
नैकरूपतया सर्वेते मन्तव्या विपश्चिता॥
सवादो ह्यन्यसादृश्य तत्पुन प्रतिबिम्बवत्।
आलेख्याकारवत्तुल्यदेहिवच्च शरीरिणाम्॥ —ध्वन्यालोक, ४/११-१२।

२ अर्थ स एव सर्वो वाक्यान्तरविरचनापर यत्र।
तदपरमार्थविभेद काव्य प्रतिबिम्बकल्प स्यात्॥
—काव्य मीमासा, अध्याय १२, पृ० १६१।

३ कियताऽपि यत्र सस्कारकर्मणा वस्तुभिन्नवद्भाति।
तत्कथितमर्थं चतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम्॥
—काव्य मीमासा, पृ० १६२।

४ विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितान्तसादृश्यात्।
तत्तुल्यदेहितुल्य काव्य बध्नाति सुधियोऽपि॥ —वही, पृ० १६२।

५ तत्रपूर्वमन्यात्म तुच्छात्म तदनन्तरम्।
तृतीयं तु प्रसिद्धात्म नान्य साम्य त्यजेत्कवि॥ —ध्वन्यालोक, ४/१३।

दास, भारवि अथवा माघ इत्यादि पूर्ववर्ती कवियो के काव्य का स्मरण करा देता है। उदाहरणार्थ—कवि शिशु जयन्त की वृद्धि का वर्णन करता है—

शुक्लपक्ष इव चन्द्रमा क्रमाद्वृद्धिमाप सुदृशो सुधाञ्जनम् ॥[1]

अर्थात् स्त्रियो के सुनेत्रो के लिए अमृताञ्जन के समान वह बालक शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त वर्णन वस्तुत 'रघुवश' मे किये गये रघु के निम्नलिखित वर्णन का अनुकरण प्रतीत होता है—

पितु प्रयत्नात्स समग्रसम्पद शुभै शरीरावयवैर्दिनेदिने।
पुपोष वृद्धिर्हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा ॥[2]

अर्थात् जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा सूर्य की किरणें पाकर दिन-दिन बढ़ने लगता है वैसे ही बालक रघु के अङ्ग भी सम्पत्तिशाली पिता की देखरेख मे बढ़ने लगे।

यहाँ पर कवि ने रघुवश के चित्र को ज्यो का त्यो उतार लिया है। रचना मे किञ्चित् परिवर्तन कर दिया है। दोनो ही स्थलो पर उपमा अलङ्कार का प्रयोग है और दोनो कवियो ने बालक के अङ्गो के लिए शुक्ल पक्ष के चन्द्र को उपमान के रूप मे प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार—

तेन नीरधिरिवेन्दुना ततश्चन्द्रमौलिरिव शक्तिपाणिना।
स्वर्गिणामिव पतिर्जयेन स श्रीजयन्ततनुजन्मना बभौ ॥[3]

अर्थात् इसके पश्चात् जैसे चन्द्रमा से समुद्र सुशोभित होता है, कार्तिकेय से शङ्कर सुशोभित होते हैं, जयन्त से इन्द्र सुशोभित होते हैं उसी प्रकार श्री जयन्त नामक पुत्र से वे (राजा विक्रमसिंह) सुशोभित हुए।

यहाँ पर भी कवि अभयदेव ने उपमा अलङ्कार का प्रयोग किया है किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त यह उपमा अलङ्कार 'रघुवश' के निम्नलिखित श्लोक का स्मरण करा रहा है—

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृप सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥[4]

अर्थात् जैसे कार्तिकेय के समान पुत्र को पाकर शकर और पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और जयन्त जैसे प्रतापी पुत्र को पाकर इन्द्र और शची प्रसन्न हुए

१ जयन्तविजय, ७/८।
२ रघुवंश, ३/२२।
३ जयन्तविजय, ७/१३।
४ रघुवंश, ३/२३।

थे वैसे ही राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनो के ही समान तेजस्वी पुत्र को पाकर प्रसन्न हुए ।

यहाँ पर दोनो ही कवियो ने एक ही समान वर्णन किया है ।

अपि च—

> तत्रचित्ररचनामनोहर काञ्चनोपचितमञ्चमुच्चकै ।
> आरुरोह स नरेन्द्रदर्शित तुङ्गभूधरमिवासु केसरी ॥[1]

यहाँ पर रतिसुन्दरी के स्वयवर वर्णन का प्रसङ्ग है। अर्थात् वहाँ पर विचित्र रचना से मनोहर, स्वर्ण से निर्मित कान्तिमान उच्च मञ्च पर, ऊँचे पर्वत पर सिह की भाँति नरेन्द्र (रति सुन्दरी के पिता) द्वारा दिखाये जाने पर वह (जयन्त) बैठ गया ।

यहाँ पर कवि अभयदेव ने जयन्त के लिए सिह उपमान का प्रयोग 'रघुवश' मे अज के लिए इन्दुमती स्वयवर मे वर्णित सिह उपमान के अनुकरण पर किया है । यथा—

> वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमार क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम् ।
> शिलाविभगैर्मृगराजाशावस्तुङ्ग नगोत्सगमिवारुरोह ॥[2]

अर्थात् जैसे सिह का बच्चा एक-एक शिला पर पैर रखता हुआ पहाड पर चढ जाता है वैसे ही राजकुमार अज भी सुन्दर सीढी पर चढकर भोज के बताये हुए मञ्च पर जाकर बैठ गये ।

इसी प्रकार—

> ता सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तर राजसुता निनाय ।
> समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तर मानसराजहसीम् ॥[3]

अर्थात् जैसे वायु से उठी हुई लहर के सहारे मानसरोवर की राजहसिनी एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँच जाती है उसी प्रकार सुनन्दा भी राजकुमारी इन्दुमती को दूसरे राजा के आगे पहुँचाकर खडी हो गयी ।

यहाँ पर कालिदास ने इन्दुमती के लिए 'राजहसी' तथा सुनन्दा के लिए 'लहर' को उपमान के रूप मे प्रस्तुत कर उपमा अलकार का नियोजन किया है । 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी इन्ही उपमानो का प्रयोग रति-सुन्दरी के स्वयवर के प्रसङ्ग मे किया है—

> समुख सपदि वेत्रधारिणा तामथान्यनृपतेर्निनाय सा ।
> हसिकामिव तरङ्गपद्धति पङ्कजादपरपङ्कज क्षणात् ॥[4]

---

१ जयन्तविजय, १६/२३ ।
२ रघुवश, ६/३ ।
३ वही, ६/२६ ।
४ जयन्तविजय, १६/५८ ।

अर्थात् वेत्रधारी से उस स्त्री को शीघ्र अन्य राजा के सामने ले जाया गया जिस प्रकार तरङ्ग पद्धति से हंसी को एक पकज से दूसरे पङ्कज पर ले जाया जाता है।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने उपमा अलङ्कार के प्रयोग की शिक्षा कालिदास से ग्रहण की थी, क्योकि कालिदास उपमा अलङ्कार के सम्राट् हैं और 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे उपमा अलङ्कार का प्रयोग बहुलता से प्राप्त होता है।

इसी प्रकार—

हस्तैरिवोच्चैस्तरव पलाशैश्छाया दधाना फलसपदा च।
पथ्याङ्गिना पथ्यदनाय यत्र स्वबन्धुबुद्ध्येव भवन्ति भूय ॥[1]

अर्थात् जहाँ पर अनेक तरुवर बड़े-बड़े पल्लव रूपी हाथो से शरीरधारियो को खाने लिए फल की सम्पत्ति को दान करते हुए प्रत्येक मार्ग मे अपने कुटुम्बी के रूप मे स्थित है।

यहाँ पर कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है किन्तु कवि का यह वर्णन श्रीहर्ष के प्रकृति के मानवीकरण का स्मरण करा रहा है—

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितै समाधाय महर्षिवार्द्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभि ॥[2]

अर्थात् पक्षियो के अत्यन्त उडने के कारण वायु से हिलते हुए पल्लव रूपी हाथ मे फल फूलो को लेकर स्थित, वन के वृक्षो ने मानो बूढे महर्षियो के समूह से उस (राजा नल) के अतिथि-सत्कार को करने के लिए सीखा है।

यहाँ पर अलकार सादृश्य के साथ ही वर्णन सादृश्य भी है।

इसी प्रकार—

प्रयातुमस्माकमिय कियत्पद धरातदम्भोधिरपि स्थलायताम्।
इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितै पयोधिरोधक्षममुत्थित रज ॥[3]

अर्थात् 'हम लोगो के चलने के लिए यह पृथ्वी कितने पैर (कदम) होगी ? अर्थात् अत्यन्त थोडी होगी, इससे यह समुद्र भी स्थल बन जाय' मानो ऐसा विचार कर अपने वेग के अभिमानी घोडो ने समुद्र को पूरा करने (सुखाने) मे समर्थ धूलि को उडाया।

यहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षा अलकार का प्रयोग किया है। राजा नल की सेना मे चलने वाले घोडो के पैरो से धूल उड रही है किन्तु कवि उत्प्रेक्षा करता है कि

---

१ जयन्तविजय, १/३१।
२ नैषध महाकाव्य, १/७७।
३ वही, १/६९।

मानो घोड़े अपने चलने के लिए समुद्र को स्थल बना रहे हैं। 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी इसी वर्णन के आधार पर उत्प्रेक्षा अलकार का प्रयोग किया है—

तुरङ्गमास्तस्य चतु समुद्री रज समाजै स्थलता नयन्ति।
खुरोद्धतैर्दातुमिवावकाशमपार नासीर परपराणाम् ॥[1]

अर्थात् मानो उस (जयन्त) के घोड़े खुरो से उड़ाई गयी धूल से सेनाओ की परम्परा को अवकाश देने के लिए चारो समुद्रो को स्थल बना रहे हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अलकारो का प्रयोग पूर्ववर्ती कवियो के अलकार प्रयोग के आधार पर किया है।

(ज शब्दालङ्कारों का प्रयोग

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शब्दालङ्कारो की भी योजना हुई है। अनुप्रास कवि अभयदेव का प्रिय अलङ्कार है। इस अलङ्कार के साथ ही यमक तथा श्लेष अलङ्कारो का प्रयोग भी एक-दो स्थलो पर प्राप्त होता है।

अनुप्रास अलङ्कार—अनुप्रास सर्वरचना सुलभ अलङ्कार है। आचार्य मम्मट के अनुसार—

वर्णसाम्यमनुप्रास छेकवृत्तिगतोद्विधा।
सोऽनेकस्य सकृत्पूर्व एकस्याप्यसकृत्पर ॥ (काव्यप्रकाश ९ ७९)

अर्थात् वर्णों की पुन -पुन आवृत्ति मे अनुप्रास अलङ्कार होता है। इसके दो भेद होते है—छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास। अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति मे छेकानुप्रास तथा एक अथवा अनेक वर्णों की बार-बार आवृत्ति मे वृत्यनुप्रास होता है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वृत्यनुप्रास का ही प्रयोग अनेक स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है। यथा—

तस्या बभूवाद्भुतविक्रमश्री क्षोणी पतिर्विक्रमसिंहसञ्ज्ञ।
विश्वभराभारभर बभार यो विश्रुता शेष गुणोऽपिचित्रम् ॥[2]

यहाँ पर वकार तथा भकार की अनेक बार आवृत्ति हुई है। अत यह वृत्यनुप्रास का उदाहरण है। इसी प्रकार—

उल्लासिलावण्यसुधातरङ्गै रङ्गैरनङ्ग सरसैर्यदीयै।
चित्रीयते स्त्रैण गुणैस्त्रिलोकीलोकश्च लोकोत्तर कीर्तिकारै ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, १०/७। २ वही, १/५८।
३. वही, १/६८।

यहाँ पर लकार, सकार तथा कवर्ग एव वर्ग के पञ्चम वर्ण से युक्त गकार की पुन -पुन आवृत्ति मे वृत्यनुप्रास है जो कि रचना मे माधुर्य का सञ्चार कर रहा है। इसी प्रकार—

वसुधरोद्धारधुरंधरेण मां विधेह्युपायेन सुतेन भूषिताम्।
स्वदोहदेनेव लतां फलाञ्चितामिद हि सार किल सर्वसम्पदाम् ॥[1]

यहाँ पर भी धकार एव रकार की पुन -पुन आवृत्ति हुई है। अत वृत्यनुप्रास का उदाहरण है।

अपि च—

तत्रैवासीद्धनश्रेष्ठी श्रीदश्रीपरमार्हत।
श्रीमती श्रीमती कान्ता सुतस्तस्य धनावह ॥[2]

यहाँ पर शकार युक्त रकार की योजना दर्शनीय है। साथ ही मकार एव तकार की योजना भी रचना मे सौन्दर्य का आधान कर रही है।

इसी प्रकार—

श्रुतस्य श्रोत्रिणी श्रोत्रे नेत्रे जैनास्यनर्तिनी।
कृतार्थे सार्थसामर्थ्ये कृतैरिष्टै स धर्मिणाम् ॥[3]

यहाँ पर भी शकार युक्त रकार की योजना एव रेफ का चमत्कार दृष्टव्य है।

अपि च—

बहुविहगनिनादैर्बन्दि वृन्दैरिवोक्ते
विकट विटपवीथीच्छायया शीतमार्गे।
पृथु सरसि स हसीमण्डलेनेव हस
समचरदथतस्मिन्सार्द्धमन्त पुरेण ॥[4]

यहाँ पर श्रुति मधुर अनुप्रास के प्रयोग से भाषा अधिक प्रवाहयुक्त, गतिशील और चञ्चल हो गयी है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है जहाँ अनुप्रास के मञ्जुल प्रवाह ने भाषा को स्वाभाविक एवं ललित बना दिया है—

दधति दश दिशोऽथ स्निग्धसन्ध्याभ्रशोणा
विविध विहगराजीकूजितो जागरूका।
मसृणघुसृणभासां भूयते सुन्दरीणां
प्रतिकृतिमिह सिञ्जनमञ्जुमञ्जीरकाणाम् ॥[5]

---

१. जयन्तविजय, २/१६।
२ वही, ३/८।
३. वही, ३/६२।
४. वही, ८/२७।
५. वही, ८/४७।

यहाँ दकार, शकार, वकार, मकार एव दन्त सकार के साथ ही वर्ग के तृतीय अक्षर के संयुक्त वर्ग के पञ्चम अक्षर की योजना पाठक को बलात अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

इसी प्रकार—

> कुरङ्गैरुत्तुङ्गै रणदनणुघण्टै करटिभि
> सुवर्णै सद्वर्णैवसननिकरै सुन्दरतरै ।
> त्वयि स्वैरं वर्षत्यधिप न शिर केनदुधुवे
> विमुच्यैक क्षोणीभरपरवश पन्नगपतिम् ॥[1]

यहाँ पर वर्ग के तृतीय अक्षर के साथ वर्ग के पञ्चम अक्षर की योजना के साथ ही रेफयुक्त वर्णों की योजना रचना को सशक्त बना रही है जिसके परिणाम-स्वरूप काव्य मे प्रयुक्त पद-विन्यास थिरकते हुए से जान पडते है।

इसी प्रकार पुष्पावचय प्रसङ्ग मे वनक्रीडा करती हुई ललना का एक सजीव चित्र भी दर्शनीय है—

> चरणकमलमेक पादमूले सहेल
> मृदुभुजयुगल च स्कन्धदेशे निवेश्य ।
> सरससुरत केलिप्रोक्तमार्गेण काचि-
> त्प्रियमिव तरुमुच्चैरारुरोहायताक्षी ॥[2]

यहाँ पर श्रृङ्गार रस का प्रसङ्ग है किन्तु कवि द्वारा प्रयुक्त श्रुति सुखद अनुप्रास की योजना रस की व्यञ्जना मे सहायक सिद्ध हो रही है।

अपि च—

> तत कृतान्तभ्रकुटीकरालकोदण्डचण्डध्वनिपूरिताशम् ।
> सम समानै परिपन्थिसार्थै प्रारब्धमायोधनमग्रसैन्यै ॥
> प्राणास्तृणीकृत्य विपक्षकुम्भिकुम्भस्थलीपानलम्पटोऽन्य ।
> तदीय मुक्ताफलबीजवापमसूत्रयत् कीर्तिलतोद्गमाय ॥[3]

यहाँ पर कर्णकटु, सयुक्त और समासान्त पदावली के द्वारा युद्ध का सजीव चित्र खीचा गया है किन्तु अनुप्रास अलकार की योजना यहाँ पर भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य की भाषा अलकृत है। भाषा को

---

१ जयन्तविजय, ६/६६।
२ वही, ८/१६।
३ वही, १४/४६,५६।

प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने सूक्तियो का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा मे किया है किन्तु सूक्तियो मे भी अनुप्रास अलङ्कार की सुखद योजना दर्शनीय है। यथा—

काक कदापि च न मुञ्चति कालिमानम्।[1]
सर्वं विधौ हि विमुखे विमुख जनस्य।[2]
प्रमादनिद्रोदयमुद्रया हि क्रोडी क्रियन्ते सुधियां धियोऽपि।[3]
सुगन्धि लक्षैरपि किं सुगन्धी कर्तुं हि शक्य लशुनं कदापि।[4]
श्रीखण्ड वासेन कृताधिवासा श्रीखण्डता यान्त्यपरेऽपि वृक्षा ॥[5]

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' मे अन्य अनेक उदाहरण वर्तमान हैं जहाँ अनुप्रास अलङ्कार के द्वारा भाषा अधिक प्रभावशाली हो गयी है।

यमक अलङ्कार—आचार्य वामन ने यमक अलङ्कार की परिभाषा देते हुए कहा है—

अर्थे सत्यर्थ भिन्नाना वर्णाना सा पुन श्रुति।
यमकम्...... . . . .॥[6]

अर्थात् अर्थ होने पर नियमेन भिन्नार्थक वर्णों की क्रम से पुन आवृत्ति यमक कहलाती है। अर्थ होने पर का तात्पर्य यह है कि कही-कही पर यमक के निरर्थक पदो का भी प्रयोग होता है। अर्थात् एक पद सार्थक और एक पद निरर्थक होता है परन्तु जहाँ पर दोनो पद सार्थक हो वहाँ उनके अर्थ मे भेद आवश्यक है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे यमक अलङ्कार का प्रयोग अत्यन्त अल्प मात्रा मे हुआ है जिसका प्रमुख कारण यह है कि महाकाव्य मे रस प्रधान तत्त्व होता है और शब्दालङ्कार रस प्रतीति मे बाधक होते है। यहाँ 'जयन्तविजय' मे प्रयुक्त यमक अलङ्कार के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है—

उत्कर्णमाकर्ण्य वितीर्णतोष स विक्रम विक्रमसिंहवृत्तम्।
चिर चमत्कारमयीव सर्वा सभा समं भूपतिना बभूव॥[7]

अर्थात् विक्रमसिंह के विक्रमयुक्त वृत्त को जिसमे अत्यन्त सन्तोष एव उत्कृष्ट गुण विद्यमान है, सुनकर वह सारी सभा राजा के साथ आश्चर्यान्वित हुई।

यहाँ पर 'विक्रम', 'विक्रम' की आवृत्ति मे प्रथम 'विक्रम' का अर्थ पराक्रम तथा द्वितीय 'विक्रम' का अर्थ नामवाचक सज्ञा अर्थात् राजा विक्रमसिंह होने से यमक अलङ्कार है। इसी प्रकार—

---

१ जयन्तविजय, ५/२३।
२ वही, ५/५६।
३ वही, १/६।
४ वही, १/१४।
५ वही, १/१७।
६ काव्यप्रकाश, ६/८३।
७ जयन्तविजय, ६/५४।

निवेश्य भूभृतो भूभृत्कटके कटकं ततः ।
अध्यास्ताध्यासितान्भोगी भोगिभिश्चन्दनद्रुमान् ॥[1]

अर्थात् इसके पश्चात् राजा ने पर्वत के कटक (मध्यभाग) पर अपनी कटक (सेना) को प्रवेश कराकर भोगियो (सर्पों) से घिरे हुए चन्दन द्रुमों का सेवन किया।

यहाँ पर भी 'कटक' शब्द की दो बार आवृत्ति हुई जिसमे प्रथम 'कटक' का अर्थ मध्यभाग एवं द्वितीय 'कटक' का अर्थ सेना होने से यमक अलङ्कार है।

इस प्रकार इसमे सन्देह नही कि इस अलङ्कार की योजना से विषय वर्णन मे चारुता उत्पन्न हुई है।

श्लेष अलङ्कार—'जयन्त विजय' महाकाव्य मे श्लेष अलङ्कार के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा—

सपदि दधति जातैकातपत्र प्रभुत्व
जगति तिमिरराजे लुप्तभूभृत्समाजे ।
तरणितरुण वीरैस्तैरवस्कन्दहेतो-
रिव बहुविशिखा ढ्यैर्भूरिदीपैरदीपि ॥[2]

अर्थात् भूभृत समाज के लुप्त हो जाने पर शीघ्र ही ससार मे एकछत्र राज्य करने वाले अन्धकार को जीतने के लिए सूर्य के उन तरुण वीरो के समान बढी हुई विशिष्ट शिखा वाले दीपको ने अपना प्रभुत्व जमाया।

यहाँ पर 'भूभृत' श्लिष्ट पद है तथा इस श्लिष्ट पद का अर्थ 'पर्वत' एव 'राजा' दोनो के ही पक्ष मे घटित हो जाता है। अत श्लेष अलङ्कार है।

इस प्रकार कवि अभयदेव की अलङ्कार योजना मे उपमा, अनन्वय, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, सन्देह, विरोध, सहोक्ति, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, यथासख्य, अपह्नुति, अर्थापत्ति आदि अर्थालङ्कारो के साथ ही अनुप्रास, यमक तथा श्लेष आदि शब्दालङ्कारो की योजना भी विद्यमान है। कवि की यह योजना रसानुकूल होने के कारण प्रस्तुत के अभीष्ट चित्रण मे सहायक हुई है। अत कवि की कविता अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयो को आह्लादित करने वाली है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे छन्दोयोजना

कवि अन्तस्तल के कोमल भावो की अभिव्यक्ति के लिए सदैव से छन्दो का कमनीय कलेवर अपनाते रहे हैं। किन्तु छन्दो की कृतकार्यता भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ रस परिपोष मे भी सहायक है। जिस प्रकार शृङ्गारादि रसों के व्यञ्जक

---

१ जयन्तविजय, ११/३८।
२ वही, ८/५३।

वर्णों के द्वारा शृङ्गारादि रस प्रस्फुटित होते हैं, उसी प्रकार छन्द-विशेष भी किसी रस विशेष अथवा वर्ण्य-विशेष के लिए ही उपयुक्त सिद्ध होते हैं । उदाहरणार्थ— विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिए 'मन्दाक्रान्ता' छन्द सबसे अधिक उपयुक्त हैं । विरहजनित भावो के उतार-चढ़ाव का प्रकटन जैसा 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में सम्भव है वैसा अन्य किसी छन्द में नही । इसका प्रमुख कारण है कि विरहजनित भावो मे कभी शिथिलता होती है कभी तीव्रता । छन्द के रसानुकूल प्रयोग होने के कारण ही महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' सहृदयो का कण्ठाभरण बनकर अमर हो गया । 'मेघदूत' का वर्ण्य विषय दो प्रणयीजनो की विरह-वेदना का अभिव्यक्तीकरण है, जिसके लिए कवि ने 'मन्दाक्रान्ता' छन्द का चयन किया है । वहाँ पर 'ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमान[१]' की मन्दमन्थर लय मे 'कम्बोजतुरगाङ्गना' के पद विन्यास का ललित लास्य दृष्टिगोचर होता है जिसकी प्रशसा आचार्य क्षेमेन्द्र मुक्तकण्ठ से करते हैं ।[२] इसके विपरीत यदि विप्रलम्भ जैसे कोमल विषय की अभिव्यक्ति के लिए 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द का चयन किया जाय तो ऐसी स्थिति मे स्वाभाविक सौन्दर्य प्रस्फुटित नही हो सकता, जो 'मन्दाक्रान्ता' मे सहज प्राप्य है, क्योकि अनुचित छन्द के प्रयोग से रसभङ्ग होने की मम्भावना अधिक है । 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द, जैसा कि उसके नाम से स्वत' स्पष्ट है, वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए सहायक है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रस के अनुरूप छन्द के प्रयोग से काव्य का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है । अत यह स्वय सिद्ध हो जाता है, कि केवल शब्द-योजना ही काव्य मे रस-सिद्ध के लिए सहायक नही है, अपितु छन्दोयोजना की भी विशेष उपादेयता है । गुण, अलङ्कार, रीति आदि की भाँति वह भी रस के परिपोष मे सहायक है । इसीलिए छन्द की इस महत्ता और शक्ति को समझकर सफल व निपुण कवि सदैव रस के अनुरूप ही छन्द का विन्यास करते हैं । अर्थात् उन्हे जिस भाव और रस का जिस छन्द की पद योजना, गति, लय आदि से साम्य दिखलायी पडता है, वे उस छन्द का उस रस के प्रसङ्ग मे वर्णन प्रस्तुत करते हैं ।

सस्कृत साहित्य के काव्य शास्त्रियों ने छन्द और रस की उपर्युक्त वर्णित इसी मैत्री को स्वीकार किया है, क्योकि रस सम्प्रदायवादियो का 'हतवृत्तता' नामक दोष विवेचन भी इसी तथ्य की ओर सकेत करता है । रस के स्वभाव के विपरीत वृत्त का प्रयोग ही 'हतवृत्तता' नामक दोष कहलाता है, जो उन्हें मान्य नही है । आचार्य क्षेमेन्द्र ने उनके मत का पूर्णत समर्थन किया है । उनके अनुसार 'काव्य

१ कवि कालिदास, मेघदूत, ५२ (पूर्वमेघ) ।
२ सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगाङ्गना ॥ –क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलकम्, ३/३४ ।

में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार यथासम्भव सभी छन्दो का प्रयोग किया जाना चाहिए।'[1] कारण, कि जिस प्रकार छिद्रादि दोषो से रहित सूत्रगुम्फित एवं वर्तुल मुक्ताहार का निवेश उचित स्थान पर ही सुशोभित होता है उसी प्रकार दोषरहित, गुणयुक्त एव सुन्दर छन्दो का प्रयोग भी विषयानुरूप ही सुशोभित होता है।[2] छन्द और रस की मैत्री की अवहेलना करने वाले कवियो को आचार्य क्षेमेन्द्र ने उपदेश भी दिया है। उनके मतानुसार 'यदि कोई (कवि) मोहवश वृत्तरूपी रत्नावली को अनुचित स्थान पर निवेशित करेगा, ऐसी स्थिति मे मेखला को कण्ठ मे धारण करने वाले व्यक्ति की भाँति कवि की अज्ञता ही प्रकट होगी। जिस प्रकार नवयुवती के योग्य वृद्ध पुरुष नही हो सकता, उसी प्रकार सरल भावों के लिए परुष छन्द तथा परुष भावो के लिए सरल छन्द भी नही हो सकता।[3] आचार्य के अनुसार अवस्थोचित एव विषयानुकूल छन्द के प्रयोग से महाकाव्य का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है। अर्थात् जिस प्रकार स्थिति के अनुरूप उचित आचरण से सज्जन धन्यवाद के पात्र बनकर सुशोभित होते हैं उसी प्रकार प्रबन्ध भी अवस्थोचित छन्दो के प्रयोग से प्रशंसित होकर सुशोभित होते हैं।[4]

कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य की छन्दोयोजना मे उपर्युक्त नियमो का पालन किया गया है। कवि ने अपने महाकाव्य मे विभिन्न रसो, भावो और वर्णनो के अनुरूप छन्द के कमनीय कलेवर को अपनाया है। महाकाव्य की छन्दोयोजना देखने से स्पष्ट हो जाता है, कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है तथा छन्द शास्त्र विषयक उच्चकोटि का ज्ञान है। इस महाकाव्य मे कवि ने अनेक छन्दो का प्रयोग करके अपने कौशल का परिचय दिया है।

कवि अभयदेव द्वारा प्रयुक्त छन्द

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य की रचना प्रमुख लौकिक छन्दो द्वारा प्रस्तुत की है। उनके 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा,

---

१ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित ॥ —क्षेमेन्द्र सुवृत्ततिलकम्, ३/७।

२ प्रबन्ध सुतरा भाति यथास्थान विवेवक।
निर्दोषैर्गुण सयुक्तं सुवृत्तैर्मौक्तिकैरिव ॥ —वही, ३/ ।

३ वृत्तरत्नावली कामादस्थाने विनिवेशिता।
कथयत्यज्ञतामेव मेखलेव गले कृता ॥
नहि नाय नवोन्मेषिकुचायाश्चारुचक्षुष।
विरत्यक्तस्मराचारे जराजीर्णकचेरुचि. ॥ —वही, ३/१३-१४।

४ तथाप्यवस्थासदृशै साधु शब्दपदस्थित।
सवृत्तैरेव शोभन्ते प्रबन्धा. सज्जना इव ॥ —वही, ३/१२।

उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, रथोद्धता, स्वागता, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा तथा प्रमाणिका आदि छन्दो की योजना बडी कुशलता से की गयी है । पूर्ववर्ती कवियो की भाँति कवि अभयदेव ने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की रचना एक छन्द मे करके सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन भी स्वीकार किया है । 'जयन्तविजय' मे प्रयुक्त अनेक छन्दो की योजना कवि के छन्द सम्बन्धी ज्ञान को द्योतित करती है । कवि अभयदेव दोषरहित काव्य रचना के लिए सतत प्रयत्नशील हैं । उनका स्पष्ट कथन है कि कवि यशोविलास के लिए प्रार्थित होकर काव्य के दोषो का निराकरण करता है क्योकि सफल वैद्य शरीर के सुख के लिए काँटे को (वेदना को) निकाल देता ही है—

> अभ्यर्थित सोऽपि यशोविलासलास्याय काव्यस्य धुनोतिदोषम् ।
> समुद्धरत्येव हि वैद्यराज शल्य तनो सौख्यकृते कृतार्थ ॥[1]

इसके अतिरिक्त सत्कवियो के लिए उनका स्पष्ट उपदेश भी है कि जो दुर्जन (कवि) अपने बिगडे हुए शब्दो से काव्यगृह मे प्रवेश करके काव्य को विकृत कर देता है । उसे एकमात्र दोषदृष्टा उलूक पक्षी की भाँति बुद्धिमानो को दूर ही रखना चाहिए—

> उद्वासयत्यात्मविरूपशब्दैर्यो दुर्जन काव्यगृह निविश्य ।
> उलूकपक्षीव सदूर एव दोषैकदृष्टिर्विबुधैर्विधेय ॥[2]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कवि का काव्य गुणो के प्रति विशेष लगाव है । अत विभिन्न विषयो के अनुरूप ही विभिन्न वृत्तो का विनिवेश किया गया है ।

अनुष्टुप्—कवियो ने उपदेशात्मक तथा वर्णनात्मक कथानक के लिए सर्वाधिक अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है । समस्त इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थो मे इसकी प्रधानता परिलक्षित होती है । कविकुलगुरु कालिदास ने भी अपने काव्यग्रन्थो मे उपदेशात्मक स्थल अथवा वृत्तान्त वर्णन मे अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है । क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' मे कहा है—

> शास्त्र कुर्यात्प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टभा ।
> येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्ट सेतुताम् ॥
> पुराण प्रतिविम्बेषु प्रसन्नोपायवर्त्मसु ।
> उपदेश प्रधानेषु कुर्यात्सर्वेष्वनुष्टुभम् ॥

---

१ जयन्तविजय, १/१२ ।
२ वही, १/१३ ।

आरम्भे सर्गबन्धस्य कथा विस्तार संग्रहे ।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्त. शंसत्यनुष्टुभम् ।।[१]

आचार्य ने उपर्युक्त विचार ऐतिहासिक, पौराणिक, धर्मशास्त्र तथा नीति-शास्त्र आदि में अनुष्टुप् छन्द की सफलता अनुभव करके ही निर्धारित किये होंगे। वस्तुत· इन विषयो में जैसी सफलता इस प्राचीन छन्द को मिली है वैसी अन्य किसी को नहीं मिल सकती थी, क्योकि प्रत्येक छन्द की अपनी विशेषता होती है। कुछ गद्यात्मक अधिक होते हैं और कुछ पद्यात्मक। इतिवृत्तात्मक वृतान्तो मे गद्यात्मक छन्द अच्छे लगते हैं, एव सरस, मधुर, काव्यात्मक एव कलात्मक अभिव्यक्ति के हेतु संगीत प्रधान छन्द अधिक उपयुक्त होते है। सगीत की मात्रा कम होने से घटना प्रधान अथवा अन्य विवरण प्रधान स्थलो मे अनुष्टप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक सफल सिद्ध होता है। सभवत इसीलिए उपदेश प्रधान 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सर्वाधिक अनुष्टुप् छन्द की योजना हुई है।

'जयन्तविजय' के तृतीय सर्ग मे अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से कवि अभयदेव ने पञ्चपरमेष्ठी[२] के नमस्कार के माहात्म्य का वर्णन किया है। विपत्तिग्रस्त धनावह श्रेष्ठी के पूछे जाने पर मुनि उसे बतलाते है कि मेरे द्वारा कल्याण के लिए पञ्चपरमेष्ठी का नमस्कार ध्यान मे लाया जाता है। विधिपूर्वक ध्यान किया हुआ यह मन्त्र सब प्रकार से मनोकामनाओ को पूर्ण करने वाला होता है—

परमेष्ठिनमस्कार शिवाय ध्यायते मया ।
मन्त्रोऽय विधिना ध्यात सर्वदा सर्वकामद ।।[३]

इसी मन्त्र के नमस्कार के प्रभाव से जन्तुओ पर क्रूर गजेन्द्र सिंह, राक्षस दावानल आदि आक्रमण करने मे समर्थ नही हो सकते—

नमस्कारप्रभावेण प्रभवन्ति न जन्तुषु ।
क्रूरागजेन्द्रसिंहादिरक्षोदावानलादय ।।[४]

इस वर्णन के साथ ही इस सर्ग मे जैनेन्द्र मुनि के उपदेशो का वर्णन भी अनुष्टुप् छन्द मे किया गया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार सर्गबन्ध के आदि मे तथा कथा प्रारम्भ करने के प्रसङ्ग मे विद्वान् लोग अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग की अनुमति देते हैं।[५] कवि

---

१ क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलकम्, ३/६,६,१६।
२. अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सर्वसाधु पञ्चपरमेष्ठी कहलाते हैं। —डॉ० प्रेम सागर जैन—जैनभक्ति काव्य की पृष्ठभूमि।
३ जयन्तविजय, ३/२४।
४ वही, ३/२७।
५ सुवृत्ततिलकम्, ३/६।

अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य के तीसरे सर्ग का आरम्भ एव पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार के माहात्म्य का वर्णन इसी अनुष्टुप् छन्द मे किया गया है—

तत स राजशार्दूल मूलमन्त्री व्यजिज्ञपत् ।
त्वत्प्रतिज्ञाम्बुधिर्देव दुस्तरेभ्योऽपिदुस्तर ॥
नमस्कार पर तत्र श्रीपञ्चपरमेष्ठिनाम् ।
प्रयात्यनन्यसामान्य यान पात्रसगोन्नताम् ॥[1]

एकादश तथा पञ्चदश सर्ग का आरम्भ भी कवि अभयदेव अनुष्टुप् छन्द से करते है । यथा--

अथविक्रमभूभर्तु पुत्र प्राज्यपराक्रम ।
प्रताप इव पिण्डस्थ प्रतस्थेदिग्जिगीषया ॥[2]

—अपि च

इतश्च सुस्थित सूरि श्रीजयन्त्या समाययौ ।
निजै रराज य शिष्यै कल्पशाखीव पल्लवै ॥[3]

'जयन्तविजय' के पञ्चदश सर्ग मे सुस्थिताचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी अनुष्टुप छन्द के माध्यम से किया गया है तथा छन्द के प्रयोग के कारण वर्णन मे सजीवता है ।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य के विभिन्न स्थल अनुष्टुप छन्द से आच्छादित है तथा छन्द का प्रयोग सर्वत्र ही विषयानुरूप है ।

इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति—कवि अभयदेव ने जयन्तविजय' महाकाव्य मे इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति छन्द का प्रयोग भी किया है । वैदिक छन्द त्रिष्टुभ से ही लौकिक छन्द इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति की सृष्टि होती है । जिस छन्द मे इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनो के चरण हो उसे उपजाति छन्द कहते है । उपजाति कवि अभयदेव का सर्वप्रिय छन्द है । इस छन्द का प्रयोग 'जयन्तविजय' महाकाव्य के प्रथम, तृतीत, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, त्रयोदश, चतुर्दश, सप्तदश तथा एकोनविंशति सर्ग मे हुआ है । कदाचित् इसकी गेयता और सरलता के कारण ही 'जयन्तविजय' मे इसका अत्यधिक प्रयोग मिलता है । 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस छन्द की आवृत्ति ५०० बार से भी ऊपर है । इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इसकी सख्या सर्वाधिक है । ऐसा प्रतीत होता है, कि कवि ने प्राय रचना के प्रवाह मे इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के चरणो

---

१ जयन्तविजय, ३/१ ।
२ वही, ११/१ ।
३ वही, १५/१ ।

को एक ही छन्द मे सँजोया है और अपने भावो को व्यक्त करने के लिए इस प्रकार के छन्दो की अनेक बार पुनरावृत्ति की है । यद्यपि 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा का पृथक् प्रयोग भी मिलता है किन्तु इनकी संख्या नगण्य है । उदाहरणार्थ कवि ने प्रकृति मे मानवीय भावनाओ का आरोपकर अनेक प्रकार के मानसिक विकार एव भावो का विश्लेषण इन्द्रवज्रा छन्द के माध्यम मे प्रस्तुत किया है । कवि भ्रमर तथा सूर्य मे प्रेम, द्वेष, प्रतिशोध आदि की भावनाओ का आरोप करते हुए कहता है—

मद्वल्लभा कैरविणीमुपेत्य चुम्बन्त्यमी रागवतेति राज्ञा ।
आमोच यत्पङ्कजगुप्तिनद्वान्मित्र प्रभाते वसुभिर्द्विरेफान् ॥[1]

अर्थात् इन भ्रमरो ने मेरी प्रिया कमलिनी का चुम्बन किया है, अत सूर्य अनुरागी राजा चन्द्रमा को वसु देकर इन भ्रमरो को छुटकारा दिला रहा है। स्पष्ट है, कि यहाँ सूर्य और चन्द्रमा मे मानवीय भावनाओ का आरोप किया गया है ।

इसी प्रकार उपेन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के तृतीय सर्ग मे केवल एक ही बार किया है । राजा विक्रमसिंह अपनी रानी प्रीतिमती को अपत्यहीनता के दु ख से दु खी देखकर प्राणो की बाजी लगाकर उसकी इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते है । मन्त्री सुबुद्धि इच्छा पूर्ति का साधन पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार बतलाता है । राजा विक्रमसिंह उस नमस्कार मन्त्र को ग्रहण कर लेते है—

नमस्कृतेरित्थमसौ महीपोऽनुभूतपूर्वी च फल निशम्य ।
स सम्प्रदाय जगृहे नृपस्ता मुधा पिवेद्वा नहि क मतृष्ण ॥[2]

अर्थात् अनुभवपूर्वक उस राजा ने इस प्रकार नमस्कार के फल को सुनकर सम्प्रदाय के साथ उस नमस्कार को ग्रहण किया, क्योकि कौन सा प्यासा प्राणी सुधा का पान नही करता ।

उपजाति छन्द के प्रयोग के विषय मे महाकवि क्षेमेन्द्र का विचार है—

शृङ्गारलम्बनोदार नायिका रूपवर्णनम् ।
वसन्तादि तदङ्गञ्च सच्छायमुपजातिभि ॥[3]

अर्थात् शृङ्गाररस के आलम्बनभूत उदात्त नायिकाओ के रूपो का, वसन्तादि षड्ऋतुओ का और उसी के अनुकरण पर उसके (ऋतुओ के) अङ्गो का वर्णन उपजाति छन्द के द्वारा करना चाहिए ।

---

१ जयन्तविजय, ८/७१ ।
२ वही, ३/१०१ ।
३ सुवृत्ततिलकम् ३/१७ ।

यद्यपि 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे उपजाति छन्द का प्रयोग उपर्युक्त नियमो के अनुसार नही हुआ है फिर भी नायिकाओ के रूप सौन्दर्य वर्णन मे इस छन्द का आश्रय लिया गया है। मगध की कामिनियो का सौन्दर्य उपजाति छन्द के द्वारा ही प्रस्फुटित हुआ है—

> यस्मिन्ननुग्रामपुर वधूना विशुद्ध शीलाभरणाग्रिमाणाम् ।
> सर्वाङ्गलावण्यमल करोति सुवर्णरत्नोत्तम भूषणानि ।।
> नेत्रै सरोजैरिव राजमाना लावण्यपूरैरमृतैरिवोच्चै ।
> कुचैश्च चक्रैरिव सद्विलासैर्यत्रत्यरामा स्मरकेलिवाप्य ।।[1]

अर्थात् जिस मगध मे प्रत्येक गाँव और पुर मे विशुद्ध शील और आभूषणो मे आगे स्त्रियो का सर्वाङ्गलावण्य सब प्रकार से सोने और रत्नो के आभूषणो को अलकृत करता है तथा जहाँ की स्त्रियाँ कमलरूपी नेत्रो से, लावण्यपूर्ण अमृतो से, चक्ररूपी कुचो से सुविलास द्वारा कामदेव के केलि की वापियाँ हैं।

इस प्रकार मानव-सौन्दर्य के विविध पक्षो का अकन कर कवि अभयदेव ने अपनी कलात्मक अभिरुचि का परिचय दिया है।

'जयन्तविजय' मे प्रीतिमती के सौन्दर्य का वर्णन भी उपजाति छन्द मे हुआ है—

> पीयूषभानोर्दल सचयेन चञ्चु यदीयाङ्गमसर्जि धात्रा ।
> आनन्दक लोचनकैरवाणा प्रकामसन्तापहर च येन ।।
> उल्लासि लावण्य सुधातरङ्गै रङ्गैरनङ्ग सरसैर्यदीयै ।
> चित्रीयते स्त्रैण गुणैस्त्रिलोकी लोकश्च लोकोत्तर कीर्तिकारै ।।
> सजीवनी चौषधिरङ्गजस्य विश्रामधामेव हृद स्वभर्तु ।
> या राज्यऋद्धेरधिदेवतेव लावण्यवल्लेर्नवकन्दलीव ।।[2]

यहाँ पर कवि अभयदेव ने प्रीतिमती के अङ्ग-प्रत्यङ्गो का वर्णन न करके दर्शक के मन पर पडे हुए उस सौन्दर्य के समग्र प्रभाव की अभिव्यक्ति की है। यह शारीरिक अवयवो और उनकी साजसज्जा का चित्र नही, बल्कि कान्ति और सुन्दरता का मूर्तिमान चित्र है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे उपजाति छन्द का प्रयोग सरोवर वर्णन के प्रसङ्ग में भी किया गया है क्योंकि कवि मौलिक प्रतिभा एव पैनी सूझ के आधार पर अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा अत्यन्त नगण्य वस्तु को भी भावो की रगीनी से ऐसा चमत्कृत कर देता है, कि वह आकर्षक एव हृदय रम्य प्रतीत होने लगती है। फलत कमलयुक्त सरोवरो से मगध प्रदेश की समृद्धि मे वृद्धि हुई है—

---

१ जयन्तविजय, १/३५, ४६।   २ वही, १/६७, ६६।

सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डै ।
तै पद्मखण्डानि च राजहंसै स्वैराजहंस सुगति प्रचारै ।।[१]

सरोवर की यही सुभग-सुषमा सज्जनो की दृष्टि को अपनी ओर बलात् आकृष्ट कर लेती है जिसके परिणामस्वरूप उन्हे परम प्रीति की प्राप्ति होती है। समुद्र भी इस सरोवर की तुलना करने मे सर्वथा असमर्थ हो जाता है—

प्रीतिं परा यत्र नयन्ति लोक सरासि चेतासि च सज्जनानाम् ।
अदृष्टपर्यन्ततयाश्रितानि गम्भीरतान्यक्कृत वारिधीनि ।।[२]

यही कारण है कि जयन्ती नगरी की चारुता को देखकर शेषनाग ने भोगावती के तथा इन्द्र ने अमरावती के प्रति प्रगाढ स्नेह को छोड दिया है—

भोगावती भोगपति सुरेन्द्रोऽमरावती प्रत्यधिकानुरागम् ।
मुमोच चारुत्वमवेक्ष्य यस्या सा तत्र नाम्नास्ति पुरीजयन्ती ।।[३]

इन वर्णनो के अतिरिक्त कवि अभयदेव ने युद्ध वर्णन मे भी उपजाति छन्द का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। दशम् सर्ग मे विक्रमसिंह के व्यवहार मे असन्तुष्ट हो सिंहल भूपति हरिराज जयन्ती नगरी पर आक्रमण कर देता है जिसके प्रतिरोध के लिए युवराज जयन्त ससैन्य जाता है। सिहल भूपति हरिराज युद्ध मे मारा जाता है और विजयलक्ष्मी जयन्त का वरण करती है। कवि अभयदेव द्वारा यह सम्पूर्ण वर्णन उपजाति छन्द द्वारा निबद्ध किया गया है। सनाओ की प्रयाण रेणु के द्वारा सूर्य के ढक दिये जाने पर हाथियो के शुण्डो से प्रक्षिप्त जलबिन्दुओ के समूह से आकाश मे नछत्र समूह दिखलायी पड रहा है —

हस्तीन्द्र हस्तोत्करसीकराणा गणैरदर्श्यत (?) नमस्तलेऽस्य ।
प्रयाणरेणु स्थगिते खराशौ समुद्गतानीव शुभान्यदु (मू) नि ।।[४]

इसी धूलि का उपजाति छन्द के माध्यम मे वर्णन करते हुए कवि अभयदेव का कथन है कि मुझसे बढकर इसके शिविर है इस लज्जा से मानो लज्जित आकाश शीघ्र उसके घोडो के खुरो से उडाई गयी धल क पट के कुटी के कोटर के क्रोड मे लीन हो गया

मत्तोऽधिक तच्छिबिर ह्रियेति विस्तार्यपि व्योम तदा विलम्बम् ।
लीन तदीयाश्व खुरोत्थधूली पटी कुटी काटर कोण कोटौ ।।[५]

कवि अभयदेव युद्ध प्रसङ्ग मे भी मर्यादा का अतिक्रमण नही करते। युवराज

१ जयन्तविजय, १/३० ।
२ वही, १/३७ ।
३ वही, १/४१ ।
४ वही, १०/४ ।
५ वही, १०/१० ।

जयन्त सिंहल भूप हरिराज के नगर मे प्रविष्ट होकर भी उसपर एकाएक आक्रमण नही करता अपितु उसके राज्य की रक्षा ही करता है। कवि के शब्दो मे—

ररक्षदेश स्वमिवाप्यशत्रो क्षय स तस्यैव यतश्चि कीर्षु ।
स्वभाववैरान्नकुलो हि सर्पं निहन्ति नो तत्सदन प्रविष्ट ॥[1]

अर्थात् क्षय की इच्छा रखने वाले भी उसने अपने मित्र के समान उसके देश की रक्षा की, क्योकि स्वभाव से वैरी नकुल उसके घर मे प्रविष्ट होकर सर्प को नही मारता है।

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग मे भी युद्ध वर्णन मे कवि ने उपजाति छन्द का आश्रय लिया है। जब महेन्द्र चक्रवर्ती को यह ज्ञात होता है, कि पवनगति ने उसके पुत्र की उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह पवनगति पर आक्रमण कर देता है। जयन्त और महेन्द्र के मध्य घमासान युद्ध होता है—

तत कृतान्त भ्रकुटी कराल कोदण्डचण्डध्वनिपूरिताशम् ।
सम समानै परिपन्थिसार्थै प्रारब्धमायोधनमग्रसैन्यै ॥[2]

अर्थात् इसक पश्चात् यमराज की भयकर भृकुटी के समान कोदण्ड की प्रचण्ड ध्वनि से दिशाओ को भरते हुए शत्रुओ के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ।

उस युद्धस्थल मे कोई वीर कटी हुई अपनी जङ्घाओ के कारण सूर्य के सारथित्व को प्राप्त कर रहा है—

प्रमादिन वीक्ष्य विपक्षवीरमरातिसूत प्रयत प्रहर्तुम् ।
तदीयनिस्त्रिशहतोरुयुग्म सद्य प्रपेदेऽरुण सारथित्वम् ॥[3]

अर्थात् जागरूक शत्रु के सारथी ने विपक्षी वीर के मारने वाले प्रमादी को देखकर उसके शस्त्र से करी हुई दोनो जाँघ के कारण शीघ्र ही अरुण के सारथित्व को प्राप्त किया।

इतना ही नही, महावतो से प्रेरित अत्यन्त क्रोधी हाथी अपने शुण्डदण्डो से वीरो को पकडकर पैर से शरीर को दबाकर उनके शिरकमलो से मानो यमराज को बलि चढा रहे है—

अधोरणैस्तीव्ररुष प्रयुक्ता करै प्रवीरान्करिणोऽभिगृह्य ।
चक्रु समाक्रम्य वपु पदाभ्या शिर सरोजैर्बलिमन्तकाय ॥[4]

इस युद्ध मे जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होती है। इस प्रकार परम्परागत नियमो का पालन न करते हुए भी कवि अभयदेव ने युद्धवर्णन मे

१ जयन्तविजय, १०/१८।		२ वही, १४/४६।
३ वही, १४/५४।		४ वही, १४/६६।

उपजाति छन्द का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। अत स्पष्ट है, कि उपजाति छन्द द्वारा विभिन्न रसो की अभिव्यक्ति मे वे सर्वथा सफल सिद्ध हुए हैं जो कि निश्चय ही उनकी काव्य प्रतिभा तथा भाषा पर पूर्ण अधिकार का द्योतक है।

रथोद्धता—कवि अभयदेव ने रथोद्धता छन्द का विन्यास 'जयन्तविजय' महाकाव्य के सप्तम तथा षोड्श सर्ग मे किया है। इस छन्द की उत्पत्ति भी वैदिक छन्द त्रिष्टुप् से होती है। छन्द के प्रत्येक चरण मे ११ वर्ण होते हैं। रथोद्धता[1] मे नवम वर्ग दीर्घ तथा दशम ह्रस्व होता है। इसके वर्ण्य विषय के सम्बन्ध मे आचार्य क्षेमेन्द्र का मत है कि चन्द्रोदयादि विभाव के वर्णन मे रथोद्धता भव्य बन पडती है[2]। वे इसकी पद योजना के सम्बन्ध मे भी कहते है कि 'पद के अन्त मे वर्णों मे विसर्ग युक्त होने से रथोद्धता उसी प्रकार स्पृहणीय बन जाती है जिस प्रकार ललित कलाओ से अवगत लटभा (बाला) प्रगल्भता को प्राप्त कर लेती है।[3] इसके विपरीत पद के अन्त मे विसर्ग रहित रथोद्धता उसी प्रकार कान्तिहीन हो जाती है जिस प्रकार मानिनी नायिका प्रियतम की प्रार्थना के विना ही वासना के वशीभूत होती हुई प्रार्थना के लिए बाध्य होकर अपना स्वाभिमान खो देती है[4]।

'जयन्तविजय' मे कवि अभयदेव ने रथोद्धता छन्द का प्रयोग ऋतुराज बसन्त की शोभा तथा रतिसुन्दरी के स्वयवर के प्रसङ्ग मे किया है। हर्ष और उन्माद के प्रतीक ऋतुराज बसन्त के आगमन मात्र से ही प्रकृति मे रमणीयता का विस्तार हो जाता है। समस्त जगत आनन्दविभोर हो उठता है। चम्पा के पुष्प की चाप के लाभ का लोभी कामदेव जीर्ण-शीर्ण निर्गुणी कमलो को छोडकर अधिक बलशाली हो जाता है—

> कौन्दपुष्पमपहाय जर्जर निगुण धनुरजायताधिकम्।
> चम्पक प्रसवचापमण्डलीलाभलोलुभमना मनोभव ॥[5]

कवि अभयदेव की कल्पना उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब रथोद्धता छन्द द्वारा पथिको की कामिनियो को मदन व्यथा से सतप्त देखकर प्रकृति भी आँसू बहाने लगती है—

---

१ आद्यमक्षरमतस्तृतीयक सप्तम च नवम तथान्तिकम्।
दीर्घमिन्दुमुखि यत्र जायेत ता वदन्ति कवयोरथोद्धताम् ॥ —श्रुतबोध, २३।

२ रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु। —सुवृत्ततिलकम् ३/१४।

३ विसर्गयुक्तै पदान्तैर्विराजति रथोद्धता।
कला परिचयैर्याता लटभेव प्रगल्भताम् ॥ —वही, २/१३।

४ अविसर्गैस्तु पदान्तैर्निष्प्रभेव रथोद्धता।
अप्रार्थना प्रणयिनीम्लानमानेव मानिनी ॥ —सुवृत्ततिलकम् २/१४।

५ जयन्तविजय, ७/२६।

अध्वगप्रणयिनीषु दुर्दशा वीक्ष्यते करुणयेह मल्लिका ।
रोदतीव बिपुलाश्रुभिर्भृश स्पन्दमानमकरन्दबिन्दुभि ॥[1]

अर्थात् टपकते हुए मकरन्द बिन्दु वाली विपुल आँसुओ से रोती हुई मल्लिका लता ने पथिकों की कामिनियो को करुणापूर्वक देखा ।

इसी प्रकार कवि अभयदेव ने षोडश सर्ग मे रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया है। कुमार जयन्त हस्तिनापुर के राजा वैरिसिह की पुत्री रतिसुन्दरी के स्वयवर मे जाते है। स्वयवर-मण्डप मे जब रतिसुन्दरी जयन्त को देखती है, उस समय सयोग शृङ्गार की भव्य छटा कवि अभयदेव ने रथोद्धता छन्द द्वारा व्यक्त की है -

व्यालिलेख मुहुरङ्घ्रिणा मही सा चकर्ष भृशमशुकाञ्चलम् ।
श्री जयन्त युवराज दर्शने कारिता किमु न पुष्पधन्वन ॥[2]

अर्थात् उस बालिका ने बार-बार अपने पैर से पृथ्वी पर लिखा और बार-बार अपने वस्त्राञ्चल को सरकाया। श्री युवराज जयन्त के दर्शन मे कामदेव ने उससे क्या नही करवाया ।

वह पतिम्बरा रतिसुन्दरी जिन गुरुतर काम से विह्वल राजाओ को छोड कर गयी वे राजा उसके अञ्जन से युक्त नेत्रो से देखे गये श्यामता को प्राप्त हुए—

यान पास्य नृपतीन्पतिवरा सा जगाय गुरुकामविह्वलान् ।
ते तयाञ्जनघनैर्विलोचनै श्यामता दधुरिवाक्षमेक्षिता ॥[3]

इस प्रकार कवि अभयदेव ने रथोद्धता छन्द मे ऋतुराज बसन्त एव रति-सुन्दरी के स्वयवर का वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होने क्षेमेन्द्र कथित रथोद्धता के वर्ण्य विषय सम्बन्धित नियमो का निर्वाह अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे नही किया है। विसर्गयुक्त रथोद्धता के सम्बन्ध मे भी कवि ने किसी नियम का निर्वाह नही किया है। किन्तु कई स्थलो पर विसर्गयुक्त रथोद्धता का प्रयोग व्याप्त है जिससे निश्चय ही वहाँ पर एक विशेष प्रवाह व गति आ गयी है। इसके अतिरिक्त विसर्गरहित पदान्तो का प्रयोग भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे मिलता है।

अत स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने काव्यशास्त्रियो का अनुकरण रथोद्धता छन्द के विनियोग मे नही किया है, यह उनकी अपनी मौलिक कल्पना है ।

स्वागता—कवि अभयदेव ने स्वागता छन्द का विनियोग 'जयन्तविजय' महाकाव्य के त्रयोदश (१-१०१) सर्ग मे किया है। यद्यपि महाकवि क्षेमेन्द्र स्वागता छन्द के सम्बन्ध मे बिल्कुल मौन हैं फिर भी उसकी सगुणता के सम्बन्ध मे उनका विचार है कि प्रत्येक चरण के प्रारम्भ मे आकार स्वरयुक्त एव अन्त मे विसर्गयुक्त

---

१ जयन्तविजय, ७/४० ।
२ वही, १६/३७ ।
३ वही, १६/७२ ।

वर्णों के प्रयोग से स्वागता (छन्द) काव्यरसास्वादिनी, हृ वभाव प्रदर्शिनी एव स्वय सेवा मे उपस्थित नायिका के समान प्रतीत होती है।[1] कवि कुलगुरु कालिदास ने 'स्वागता' छन्द का प्रयोग सभोग शृङ्गार के प्रसङ्ग मे किया है। महाकवि अभयदेव ने भी अपने 'जयन्त विजय' महाकाव्य मे स्वागता छन्द द्वारा ही सयोग शृङ्गार का वर्णन कर अपनी सारग्राहिणी प्रतिभा का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

> खेचरेन्द्रदुहितापि कुमार रूपसपदपहस्तितमारम्।
> वीक्ष्य तत्क्षणमभूदनुरागक्षीर (सागर तरङ्ग निमग्ना ॥
> प्रेरितै प्रथमत प्रणयेन व्रीडया विचलितैरथकिंचित्।
> तिर्यगञ्चित पुटैर्नयनै सा त ददर्श मुहुरम्बुरुहाक्षी ॥[2]

अर्थात् खचरेन्द्र दुहिता भी रूप की सम्पत्ति से कामदेव को भी हस्तगत करने वाले कुमार (जयन्त) को देखकर सहसा प्रेम के समुद्र की तरङ्ग मे निमग्न हो गयी। पहले प्रेम से भेजे गये लज्जा से कुछ विचलित तिरछे प्रशसनीय नयन-पुटो से उस कमलमुखी ने बार-बार उस (राजकुमार) को देखा।

यहाँ स्थायीभाव रति है जयन्त कनकवती की हृदयस्थ रति का आलम्बन विभाव है। जयन्त का रूप तथा उसके गुण उद्दीपन विभाव है कनकवती द्वारा बारम्बार देखना अनुभाव है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और सचारीभावो से पुष्ट होकर कनकवती की हृदयस्थ रति शृङ्गाररस मे 'स्वागता' छन्द द्वारा अभिव्यक्त हुई है।

इसी प्रकार कनकवती तथा जयन्त की सभोग क्रीडाओ का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव का कथन है

> तौमिथोऽप्रतिमकौतुकरूप श्रीविलोकनविमोहितनेत्रौ।
> तत्क्षणादमृत सिन्धुतरङ्गस्नापिताविव तदा समभूताम ॥
> मुद्रितेक्षणयुग सुखनिद्रामुद्रमानववधू परिरम्भात्।
> उत्तरङ्गरतिसागर मग्नस्तत्क्षण क्षणमिवैष निनाय ॥[3]

अर्थात वे आपस मे अद्वितीय कुतूहल रूप सुन्दरता के विलोकन से विमोहित नेत्र वाले उस समय अमृत सिन्धु की तरङ्ग से नहलाये हुए के समान प्रतीत हुए तथा राजकुमार (जयन्त) ने दोनो नेत्रो को बन्द कर नववधू के परिरम्भ से सुख की निद्रा की मुद्रा से उत्कर्ष तरङ्ग वाले रति के सागर मे निमग्न होते हुए उन क्षणो को एक क्षण के समान बिताया।

---

१ साकाराद्यै विसर्गान्तै सर्वपादै मविभ्रमा।
स्वागता स्वागताभाति कविकर्म विलासिनी ॥ —सुवृत्ततिलकम २/१५।
२ जयन्तविजय, १३/३९-४०। ३ वही, १३/१००-१०१।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने त्रयोदश सर्ग मे कनकवती का सौन्दर्य वर्णन, जयन्त तथा कनकवती का एक दूसरे को देखकर मुग्ध होना, पवनगति द्वारा कनकवती का जयन्त के साथ विवाह तदनन्तर उनकी सम्भोग क्रीड़ाओ का 'स्वागता' छन्द मे वर्णन कर अपनी अपूर्व काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। सयोग शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त स्वागता छन्द कवि के अपरिमित ज्ञान का परिचायक है।

द्रुतविलम्बित—कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग चतुर्थ (१-६६), षोडश (६२,६६) तथा अष्टादश (१-६६) सर्ग मे किया है। द्रुतविलम्बित छन्द के विषय मे कवि क्षेमेन्द्र मौन है किन्तु कालिदास प्रभृति कवियो ने वसन्तादि ऋतु तथा समृद्धि के वर्णन मे इस छन्द का प्रयोग किया है। कवि अभयदेव इस छन्द के विनियोग मे पूर्णत स्वतन्त्र है। वे एक ओर जहाँ श्मशान के वर्णन मे वीभत्स और भयानक रस की एक साथ[1] अभिव्यक्ति द्रुतविलम्बित छन्द द्वारा प्रस्तुत करते है वही दूसरी ओर ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु का रमणीय चित्र भी पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर देते है। द्रुतविलम्बित छन्द की आरम्भ मे द्रुतगति तथा उत्तरार्ध मे विलम्बित गति आह्लादकता का आधान करने वाली होती है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही सूर्य उग्र हो जाता है। सम्पूर्ण जगत आतप के सन्ताप से सन्तप्त हो जाता है। फलत इस ऋतु का सृजन करने वाले विधि की प्रशसा न होकर निन्दा ही होती है। कवि अभयदेव इसी तथ्य का निरूपण करते हुए द्रुतविलम्बित छन्द मे कहते है—

अकृतसृष्टिममुष्य सरस्वती सुचिर शोषकृतोऽपि ऋतोर्विधि ।
भुवि पुराण पुमानिति मन्दधीरति कलङ्कपद स ततोऽजनि ।।[2]

ग्रीष्म ऋतु मे दिन बडे एव रात्रियाँ छोटी होने लगती हैं। कवि अभयदेव लौकिक जगत से ही कारण ढूंढ निकालते है। उनका कहना है कि अत्यन्त तृषाकुल व्यक्ति की भाँति सूर्य सम्पूर्ण पृथ्वी के रस का पान करके दुर्वह हो गया है। जिसके कारण उसके घोडो की गति मन्द हो जाती है। फलत दिन बडे होने लगते है—

बहुनृपेव रसारसपानतस्तरणिरेष महाभरदुर्वह ।
अभवदस्य रथाश्वगति शनैर्ध्रुवमतोदिनवृद्धिरजायत ।।[3]

ग्रीष्म ऋतु के अनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन होता है। वर्षा ऋतु मे घनघोर वृष्टि होती है, बिजली चमकती है किन्तु कवि की कल्पना मे वर्षा ऋतुरूपी नृप के बादलरूपी वीर अपनी शत्रुरूपिणी उग्र (ग्रीष्म) ऋतु को देखने की इच्छा से अत्यन्त क्रोधी मनुष्य की भाँति अपने नेत्ररूपी तडित को फेंक रहे है—

---

१ जयन्तविजय, ४/६,१२,१४।
२ वही, १८/३।
३ वही, १८/६।

जलदकालनृपस्यघनो भट परिलसत्तरवारिसमुद्भट ।
तडितमुग्रऋतो स्म दिदृक्षया क्षिपति दृष्टिमिवातिरुषानृणाम् ॥[१]

ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु के वर्णन के पश्चात् शरद ऋतु का वर्णन भी कवि अभयदेव ने द्रुतविलम्बित छन्द मे प्रस्तुत किया है। शरद ऋतु की रमणीयता जगत-प्रसिद्ध है। इस ऋतु के आगमन के साथ ही सम्पूर्ण जगत में आनन्द का सचार हो जाता है। कारण, कि दिन मे सूर्य परम ताप को प्राप्त करता है और रात्रि मे चन्द्रमा अत्यन्त सघन चन्द्रिका को धारण करता है । इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनो अधिकारी की भाँति शरद ऋतु के आदेश का पालन कर रहे है--

अहनितापमधत्त पर रविर्घनघना च शशी निशि चन्द्रिकाम् ।
शरदइष्टतरावधि कारिणाविव निदेशवशात्कुरुतस्तथा ॥[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने द्रुतविलम्बित छन्द द्वारा जहाँ एक ओर वीभत्स तथा भयानक का दृश्य उपस्थित किया है वही दूसरी ओर ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु का वर्णन कर अपनी सारग्राहिणी बुद्धि का परिचय दिया है । ऋतु वर्णन के प्रसङ्ग मे छन्द का प्रयोग विषयानुरूप ही है जिसके परिणामस्वरूप काव्य मे सर्वत्र चारुता का सचार हुआ है।

वंशस्थ—कवि अभयदेव द्वारा 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वशस्थ छन्द की योजना द्वितीय (१-४६), नवम (१-६६), दशम (७५), एकादश (६०) तथा षोडश (६०) सर्ग मे हुई है। महाकवि क्षेमेन्द्र के अनुसार नीति-विषयक स्थलो पर वशस्थ छन्द का प्रयोग होना चाहिए—

षाड्गुण्य प्रगुणा नीतिवशस्थेन विराजते ।[३]

इसीलिए वशस्थ की रसानुकूल एव विषयानुकूल छन्दयोजना के लिए उन्होने भारवि की प्रशसा मुक्त-कण्ठ से की है—

वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकी कृता ॥[४]

कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' के द्वितीय सर्ग मे वशस्थ वृत्त द्वारा रानी प्रीतिमती के अपत्यहीनता के दुख, राजा विक्रमसिंह द्वारा उसकी इच्छा की पूर्ति की प्रतिज्ञा तथा सन्ध्या का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है । सन्तानहीन स्त्री का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव कहते हैं—

नभस्थलीव द्युतिमद्विनाकृता निशेव शीतद्युतिमण्डलोज्झिता ।
महौषधीवोन्मदवीर्यवर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशास्यते ॥

---

१ जयन्तविजय, १८/२०।
२ वही, १८/३६।
३ सुवृत्ततिलकम्, ६/१८।
४ वही, ३/१६।

परा जनन्या जनयत्यनारत महाकुलीनस्तनयोनयाश्रित ।
महर्घतामेघयते गुणश्रियो न किं यशोराशिरदम्भ सौरभ ॥[१]

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य बिना आकाश, चन्द्रमा के बिना रात्रि तथा विशिष्ट शक्ति के बिना औषधि की प्रशसा नही होती उसी प्रकार सन्तानहीन स्त्री की प्रशंसा नही होती, क्योकि नीतिमान, महाकुलीन, अदम्भी, यशोराशि पुत्र, गुणयुक्त माता की महार्घता को क्या नही बढाता । अर्थात् वह तो माता के मूल्य (महत्त्व) को बढ़ाता ही है ।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने पुत्र विषयक महारानी प्रीतिमती की चिन्ता को वशस्थ छन्द द्वारा व्यक्त किया है । कवि सन्ध्या का मनोहारी वर्णन भी वशस्थ छन्द द्वारा प्रस्तुत करता है—

खराशुतीव्रातपपाततापत सुरस्रवन्त्या जलकेलिकारिभि ।
धुतस्य दिग्दन्तिभिरम्भसो भृश कणा इव व्योमनि भान्तितारका ॥[२]

अर्थात् सूर्य के तीव्र आतप गिरने के ताप से आकाशगङ्गा मे जलकेलि करने वाले दिग्गजो से कँपाये गये जलकण की भाँति आकाश मे तारे चमकने लगे ।

नवम सर्ग मे वशस्थ वृत्त के माध्यम से सिहलभूपति हरिराज के हाथी का मगध की जयन्ती नगरी मे आने, हाथी के प्रभाव से युवराज जयन्त के खचरेश्वर होने की भविष्यवाणी सुनकर विक्रमसिह द्वारा उसे पकडने का आदेश देने तथा सिहलभूपति के दूत के आने पर विक्रमसिह द्वारा दैव प्रदत्त गज को वापस देने से इनकार करने का मोहक वर्णन प्राप्त होता है । प्रस्तुत सर्ग मे नीतिविषयक तथ्यो का प्रतिपादन किया गया है । सिहलभूपति हरिराज के हाथी को भयवश वापस कर देना नीति के विरुद्ध ही नही अपितु कायरता का परिचायक है । कवि के शब्दो मे—

ममाङ्गणालङ्करण करीश्वर सहेलमागत्य बभूव य स्वयम् ।
तथार्पितो देवतया प्रसन्नया स दीयते चेल्लघुता तदा न किम् ॥
महानिधीनामधिपोऽपि चक्रभृन्नयागत वस्तु न जातु मुञ्चति ।
मतङ्गजस्यास्य मिषात्स्वमन्दिरे रमा प्रविष्टा क्रियते कथ बहि ॥[३]

अर्थात् जो हाथी प्राङ्गण का अलङ्करण मुझको अपने आप आकर प्राप्त हुआ है और प्रसन्नता से देवताओ ने अर्पित किया है । उसको यदि दे दिया जाय तो क्या मेरी लघुता नही होगी (अर्थात् अवश्य होगी) । महानिधि के स्वामी सुदर्शन चक्रधारी

१ जयन्तविजय, २/२,४ ।
२ वही, २/४८ ।
३ वही, ६/२१,३१ ।

विष्णु भी नीति से आयी वस्तु को कभी नही छोडते। इस हाथी के बहाने से हमारे घर मे प्रविष्ट लक्ष्मी को कैसे बाहर किया जा सकता है।

इसी प्रकार सिंहलभूपति हरिराज के द्वारा भी उसे युद्ध के भय से छोड देना भी नीति विरुद्ध है। फलत दूत के मुख से उसके वचनो को कवि अभयदेव ने कहलाया है—हे राजन्! खेद है कि वे (हरिराज) किसी प्रकार से तेज के कारण गजेन्द्र को नही छोडना चाहते क्योकि दर्प से उद्दण्ड, जीवित रहते हुए सर्प कभी भी अपनी बढी हुई मणि को नही छोडता—

> नृपाधिराज द्विपराजमञ्जसा न मुञ्चते हन्त कथचनापि स ।
> फणीश्वर स्फारफणामणि क्वचिज्जहाति जीवन्न हि दर्पदुद्धर' ॥[1]

'जयन्तविजय' के दशम सर्ग मे वशस्थ छन्द का प्रयोग केवल एक स्थल (७५) पर हुआ है। यहाँ इसका वर्ण्य विषय विजयलक्ष्मी द्वारा जयन्त का वरण किया जाना है। एकादश सर्ग (६०) मे वशस्थ की योजना दिग्विजय के प्रसङ्ग मे की गयी है तथा षोडश सर्ग (६०) मे वशस्थ का वर्ण्य विषय वैरिसिंह की पुत्री रतिसुन्दरी से विवाह कर युवराज जयन्त का अपनी राजधानी जयन्ती नगरी मे लौट आना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिन स्थलो पर रसानुकूल वृत्त की योजना की गयी है वहाँ पर भावाभिव्यक्ति सशक्त तथा छन्द मे एक विशेष प्रकार की गति प्रतीत होती है जो कवि के छन्द कौशल का परिचायक है।

वसन्ततिलका – वसन्ततिलका छन्द की योजना 'जयन्तविजय' के तृतीय (१ २), पञ्चम (१-७२), एकादश (६१), चतुर्दश (१११) तथा षोडश (८७, ६१) सर्ग मे विद्यमान है। यह कवि अभयदेव का प्रिय छन्द है। वीर और रौद्र रसो के सङ्कर मे वसन्ततिलका छन्द शोभित होता है।[2] वसन्ततिलका की गुणवत्ता के सम्बन्ध मे क्षेमेन्द्र का विचार है कि प्रथम-द्वितीय पाद के अन्तिम वर्णों से पूर्ववर्ण आकार स्वरयुक्त तथा ओजगुण व्यञ्जक वर्णो का विन्यास करने से वसन्ततिलका की शोभा बढ जाती है।[3] महाकवि कालिदास ने वसन्ततिलका का प्रयोग कार्य की सफलता तथा ऋतु वर्णन के प्रसङ्ग मे किया है किन्तु कवि अभयदेव इस छन्द के प्रयोग मे किसी परम्परा का निर्वाह नही करते। वे पूर्णत स्वतन्त्र है। इसीलिए विभिन्न रसो की अभिव्यक्ति इस छन्द के माध्यम से हुई है। 'जयन्तविजय' मे

---

१ जयन्तविजय, ६/४६।

२ वसन्ततिलक भाति सकरे वीर रौद्रयो। —सुवृत्ततिलकम्, ३/१६।

३ वसन्त तिलकस्याग्रे साकारे प्रथमाक्षरे।
ओजस जायते कान्ति सविकास विलासिनी॥ —वही, ३/२०।

वसन्ततिलका का वर्ण्य विषय शृङ्गार एव भक्ति भावना है। यहाँ पर छन्दोयोजना के वर्ण्य विषयानुसार न होने पर भी चारुत्व की प्रतीति होती है। 'जयन्तविजय' के तृतीय सर्ग मे वसन्ततिलका का वर्ण्य विषय पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार के महत्त्व का प्रतिपादन है—

मन्त्रस्य तस्य रुचिरप्रचुर प्रभावै
सर्वत्र विश्ववलयैरपरैरगम्य ।
श्रीमान्समस्तजनतापरिभूतिबद्ध-
कक्षै करैरिव रविस्तिमिरैरथासीत ॥[1]

अर्थात् उस मन्त्र के रुचिर प्रचुर प्रभाव से विश्व भर मे दूसरो से अनाक्रान्त होकर, सूर्य की किरणो से नष्ट किये हुए तिमिर की भाँति वह श्रीमान् (विक्रमसिंह) समस्त जनता का कृपा-पात्र हुआ।

पञ्चम सर्ग मे वसन्ततिलका का वर्ण्य विषय सौन्दर्य निरूपण एव चरित्र चित्रण है। योगी के चगुल से मुक्त कर राजा विक्रमसिंह उस कन्या के सौन्दर्य का विवेचन करते है—स्मित कमल के समान नेत्रद्वय वाली, निर्मल सुवर्ण के समान कान्ति वाली, चन्द्र के समान मुख वाली तथा सुधा के समान वाणी वाली इसकी अनुपम सुन्दरता सौभाग्य की भङ्गिमा है—

अस्या स्मितोत्पलदल नयनद्वयस्य
कान्ते सुवर्णममल वदनस्यचन्द्र ।
वाच सुधा रतिरनुत्तररूपलक्ष्म्या
सौभाग्यभङ्गिमनिश स्पृहया बभूव ॥[2]

राजा विक्रमसिंह के चरित्र का वर्णन भी कवि अभयदेव ने वसन्ततिलका छन्द मे किया है—

तत्र प्रविश्य च कथचन ते निगूढा
पृथ्वीधरे रहसि न प्रहरन्ति यावत ।
तावन्नृपेण रणदक्षतयास्त शस्त्रा
सर्वेऽक्रियन्त महता न मुधा हि तेज ॥[3]

अर्थात् छिपे हुए वे लोग किसी तरह वहाँ पहुँचकर एकान्त मे पृथ्वीधर पर जब तक प्रहार नही करते तब तक राजा के द्वारा रणदक्षता मे अस्त्र-शस्त्र वाले कर दिये गये क्योकि बडे लोगो का तेज झूठा नही होता।

यहाँ पर वीर रस की अभिव्यक्ति का साधन होने के कारण वसन्ततिलका

१ जयन्तविजय, ३/१०२।   २ वही, ५/२।
३ वही, ५/२५।

को विशेष उत्कर्ष प्राप्त हुआ है । एकादश[1] सर्ग मे वसन्ततिलका का प्रयोग दिग्विजयोपरान्त लौटे हुए जयन्त के स्वागत के उपलक्ष्य मे हुआ है । चतुर्दश[2] सर्ग मे सम्भवत वृत्त परिवर्तन करने के लिए ही कवि ने इस छन्द का प्रयोग किया है । षोडश सर्ग में वसन्ततिलका का वर्ण्य विषय स्वयवर मे जयन्त के गले मे रतिसुन्दरी द्वारा वरमाला डालने का है—

आकर्ण्य कर्णमधुरामिति वाचमुच्चै
किंचित्त्रपामरमपास्य नरेन्द्र पुत्री ।
माला स्वयवरमहोत्सवसाक्षिणी ता
श्रीमज्जयन्तनृपते क्षिपति स्म कण्ठे ॥[3]

अर्थात् कर्णमधुर उच्चवाणी को सुनकर कुछ लज्जा के भार को दूर कर स्वयवर महोत्सव की साक्षिणी उस माला को श्री जयन्त के गले मे डाल दिया ।

अपि च—

अद्य श्रिया हरिरभाजि विराजतेऽद्य
पाथोपति सुरतरङ्गवती सनाथम् ।
देवी शिवा प्रणयिन हरमद्यलेभे
पुष्पायुध रतिरवाप किलाधुनैव ॥[4]

अर्थात् आज लक्ष्मी से हरि की सेवा की गयी, आज समुद्र सुरतरङ्गवती (गङ्गा) से सनाथ होकर सुशोभित हुआ, आज भवानी शिवा ने शङ्कर को प्राप्त किया और आज ही निश्चयपूर्वक रति ने कामदेव को प्राप्त किया ।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे विविध प्रकार के विषयो का वर्णन कवि अभयदेव ने वसन्ततिलका वृत्त के माध्यम मे किया है ।

मालिनी— महाकवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे मालिनी छन्द महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इस छन्द की योजना अष्टम (१/६६,७३), नवम (७०), त्रयोदश (१०४, १०५) तथा चतुर्दश (१०७) सर्ग मे हुई है । इस छन्द के सम्बन्ध मे क्षेमेन्द्र का विचार है सर्ग के अन्त मे ताल तथा द्रुतगति सुशोभित होती है—

कुर्यात् सर्गस्य र्पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत् ।[5]

मालिनी छन्द की सगुणता के सम्बन्ध मे उनका विचार है कि विशेषत तृतीय, चतुर्थ चरणो के अन्त मे विसर्गहीन होने से मालिनी (छन्द) पूँछ विहीन चमरी गाय एव पल्लव शून्य लता के समान सुशोभित नही होती । द्वितीयार्ध मे समस्त पदो वाली मालिनी निम्नकोटि की होती है—

१, २ जयन्तविजय ।
३ वही, १६/८७ ।
४ वही, १६/८१ ।
५ सुवृत्ततिलकम्, १/१६ ।

विसर्गहीनपर्यन्ता मालिनी न विराजते ।
चमरी छिन्नपुच्छेववल्लीबाल न पल्लवा ॥
द्वितीयार्द्धे समस्ताभ्या पादाभ्या मालिनीवरा ।
प्रथमार्द्धे समस्ताभ्यां पादाभ्या वरा मता ॥[1]

संस्कृत साहित्य के कवियो ने विभिन्न रसो मे इसका प्रयोग किया है । कवि अभयदेव ने भी अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे श्रृङ्गारिक चेष्टाओ एवं युद्धवर्णन आदि भावो का उपनिबन्धन मालिनी छन्द मे किया है । यथा—

कुसुममधिरसान्द्रैरावृतं तत्र पत्रै
परमपरिमलाढ्य सस्वन सचरद्भि ।
मधुकर निकुरम्बै क पिबेत्यावचिक्ये
भवति हि मलिनाना सगमो भङ्गहेतु ॥[2]

यहाँ पर विसर्गयुक्त मालिनी छन्द के प्रयोग के कारण वर्ण्य वस्तु का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है । किन्तु कही-कही मालिनी छन्द मे एक भी पद विसर्गान्त नही है । यथा

कुवलयदलनेत्रा पक्वनारङ्गनव्य-
त्वगुदितरसधाराक्षेपतो व्याकुलाक्षीम् ।
विदधदथ जयन्तोऽन्या चुचुम्बे तदग्रे
गुरुरिहचतुरत्वे कामदेवोऽस्य नूनम् ॥[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने इस सम्बन्ध मे किसी नियम का पालन नही किया है किन्तु इस छन्द के माध्यम से दोलाविलास, पुष्पावचय, जलकेलि आदि श्रृङ्गारिक चेष्टाओ की सुन्दर अभिव्यक्ति की है ।

नवम सर्ग मे मालिनी छन्द का वर्ण्य विषय युद्ध के लिए प्रयाण है । सिंहल भूपति हरिराज से युद्ध करने के लिए युवराज जयन्त को जाते हुए देखकर देव समुदाय उन पर पुष्प वृष्टि कर रहा है जो उनकी भावी विजय का सूचक है—

सुर निकर कराब्ज प्रेरिता पुष्पवृष्टि
समजनि वसुधाया हर्षहास्यप्रभेव ।
तदनुमनुजवृन्दै श्रूयमाण स्मितास्यै-
र्दिवि निरवधिरुच्चैर्दुन्दुभीनाध्वनिश्च ॥[4]

इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग में जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होने पर आकाश मार्ग से भेरी रव के साथ ही साथ पुष्पवृष्टि हो रही है—

---

१ सुवृत्ततिलकम्, २/२२-२३ ।
२ जयन्तविजय, ८/२०
३ वही, ८/२१ ।
४ वही, ९/७० ।

अथ सुरपथवल्गद्दिव्य भेरी निनाद-
द्विगुणितकलभृङ्गारावगर्भं नभस्त ।
शिरसि सुरकराब्जप्रेरित पुष्पवर्षं
न्यपतदवनिभर्तुर्मङ्गलोद्गार न्यारम् ॥[१]

इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि कवि अभयदेव ने मालिनी छन्द के प्रयोग मे किसी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण नही किया है किन्तु फिर भी मालिनी छन्द का प्रयोग उनके 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अपरिमित काव्य-सौष्ठव का आधान कर रहा है ।

पृथ्वी—पृथ्वी छन्द की योजना 'जयन्तविजय' महाकाव्य के षष्ठ (१०२), अष्टम (७४) तथा षोडश (६५) सर्ग मे हुई है । आचार्य क्षेमेन्द्र का पृथ्वी छन्द के विनियोग के सम्बन्ध मे कहना है—

साक्षेप क्रोध धिक्कारे पर पृथ्वी भरक्षमा ।[२]

अर्थात् निन्दा और क्रोधपूर्वक तिरस्कार के वर्णन मे एकमात्र पृथ्वी छन्द ही तात्पर्यग्राहिणी होता है । उसकी सगुणता के सम्बन्ध मे उनका विचार है कि असमस्त और पृथक्-पृथक् पदो के प्रयोग से पृथ्वी छन्द पृथ्वी के समान विशाल प्रतीत होता है किन्तु समास की ग्रन्थि से ग्रस्त हो जाने से सकुचित होकर अपनी विशालता त्याग देता है । आकार को गम्भीर बना देने वाले ओजो गुणोत्पादक वर्णों के प्रयोग से पृथ्वी छन्द के लिए समास दोषावह नही रह जाता प्रत्युत गुणोत्पादक ही हो जाता है —

असमासै पदैर्भाति पृथ्वी पृथ्वी पृथक स्थिते ।
समास ग्रन्थिभि सैव याति सकोचखर्वताम् ॥
पृथ्वी साकार गम्भीरैरोज सर्जिभिरक्षरै ।
समास ग्रन्थि युक्तानि याति प्रत्युत दीर्घताम् ॥[३]

कवि अभयदेव के पृथ्वी छन्द इस मान्यता के बिल्कुल विपरीत है यद्यपि उन्होने उसकी सगुणता की ओर अपनी दृष्टि डाली है । उनके 'जयन्तविजय' मे पृथ्वी छन्द का वर्ण्य विषय महाकाव्य के नायक का नामकरण सस्कार है—

विशेषविहितश्रिय विविधदानहृष्यज्जन
स्वबन्धुजनतोचितीकृतचमत्कृतिर्भूपति ।
परेऽहनि शुभे सुत स्वकुलनन्दननन्दन
जयन्त इति सज्ञया द्रुतमलचकारादृत ॥[४]

---

१ जयन्तविजय, १४/१०७ ।
२ सुवृत्ततिलकम्, ३/२ ।
३ वही, २/२७-२८ ।
४ जयन्तविजय, ६/१०२ ।

यहाँ पर असमस्त पदावली की योजना होने के कारण पृथ्वी छन्द विशाल प्रतीत होता है।

अष्टम सर्ग मे पृथ्वी छन्द का विन्यास अन्य राजाओ द्वारा जयन्त को प्रणाम करने के प्रसङ्ग मे किया गया है—

अथैत्य विनमच्छिरो मुकुट कोटिरत्नांकुर-
स्फुरत्किरण कोरकोत्कर करम्बिताघ्रिद्वयम्।
क्षमायुवतिवल्लभं सकल राजलोकं सम
स विश्रुत पराक्रम प्रणयत प्रणंमे प्रभु ॥[1]

प्रस्तुत उद्धरण मे प्रथम व द्वितीय चरण के अतिरिक्त असमस्त पदावली की योजना होने के कारण छन्द मे विशेष प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।

मन्दाक्रान्ता—मन्दाक्रान्ता छन्द की योजना 'जयन्तविजय' के तृतीय (९९), षष्ठ (१००), एकादश (९२), द्वादश (९५) तथा षोडश (९४) सर्ग मे हुई है। मन्दाक्रान्ता छन्द के सम्बन्ध मे आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार कहा है—

प्रावृट्प्रवास व्यमने मन्दाक्रान्ता विराजते।[2]

अर्थात् वर्षा ऋतु, प्रवास तथा व्यवसन आदि के वर्णन मे मन्दाक्रान्ता छन्द विशेष शोभा प्राप्त करता है। सस्कृत के अधिकाश कवियो ने मन्दाक्रान्ता छन्द का चयन विप्रलम्भ शृङ्गार के सन्दर्भ मे किया है किन्तु मन्दाक्रान्ता के प्रयोग मे कालिदास ने विशेष प्रगल्भता प्राप्त की है। 'जयन्तविजय' के षष्ठ सर्ग मे मन्दाक्रान्ता छन्द के माध्यम से पुत्र जन्म के अवसर पर चारण द्वारा राजा विक्रमसिंह की प्रशसा की गयी है। *यथा*—

एकच्छत्र विलसति सुखस्याद्य साम्राज्यमुच्चै
सर्वस्यापि प्रभवति शुभोदर्कसूरिष्टसिद्धि।
तैस्तैर्भावैर्भवन सुभग भावुकं केन चित्रं-
श्चित्रीयन्ते मुक्रतसुलभे त्वत्कुमारोदयेऽत्र ॥[3]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आचार्य क्षेमेन्द्र की मान्यता के विपरीत कवि अभयदेव ने मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार—

इत्थ पृथ्वीवलयमखिल पादमूलेसकृत्वा
कीर्तिस्तम्भस्तबकितपयोराशिवेलावनान्त।

---

१ जयन्तविजय, ८/७४।   २ सुवृत्ततिलकम्, ३/-१।
३ जयन्तविजय, ६/१०।

कुर्वन्नुर्वीपरिवृढशिर शेखरम्लानिमुद्य-
तेज पुञ्जै स्वनगरमथ श्री जयन्त प्रतस्थे ॥[1]

यहाँ पर मन्दाक्रान्ता छन्द का वर्ण्य विषय दिग्विजयोपरान्त जयन्त का अपनी नगरी की ओर पुन वापस आना है। दार्शनिक सिद्धान्तो को स्वीकार करने के लिए भी कवि अभयदेव ने मन्दाक्रान्ता छन्द का चयन किया है। द्वादश सर्ग मे जयन्त जिनबिम्ब के दर्शन कर धर्मसूरि की देशना सुनते है और श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं

सजातायां तदनु सुगुरोर्देशनाया जयन्त
शुद्ध श्रद्धाकवचितमना स्वाञ्चित धर्मकर्मा।
प्राप्याक्षीण निधिमिव मुदामेदुर सादरोऽय
जज्ञेऽनन्याभ्युदयसुभग भावुक श्रीविलास ॥[2]

अर्थात् इसके बाद जयन्त गुरु की आज्ञा के होने पर श्रद्धा मे अवनत होते हुए, शुद्ध धर्म-कर्म करते हुए, अक्षीण निधि की भाँति इस धर्म को पाकर प्रसन्नता से भरपूर सादर भावुक श्री के विलासी अनन्य सुगमता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि अभयदेव मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रयोग मे अपनी पूर्ववर्ती परम्परा के अनुयायी न होकर पूर्णत स्वतन्त्र है।

शार्दूलविक्रीडित—कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक बार प्रयुक्त होने के कारण यह कवि का प्रिय छन्द प्रतीत होता है। इस छद का प्रयोग प्राय उन्होने सर्गान्त मे किया है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य स्थलो पर भी प्रयुक्त शार्दूल विक्रीडित छद वर्ण्य विषयानुरूप होने के कारण अपरिमित सौन्दर्य का आधान कर रहा है। महाकवि क्षेमेन्द्र के अनुसार

शौर्यस्तवे नृपादीना शार्दूलविक्रीडित मतम्।[3]

अर्थात् राजाओ के शौर्य के स्तवन मे शार्दूलविक्रीडित छद श्रेष्ठ माना गया है।

कवि अभयदेव ने अनेक स्थलो पर क्षेमेन्द्र द्वारा निर्दिष्ट आदेशो का पालन किया है। इस छद के माध्यम से विक्रमसिंह की वीरता का वर्णन अवलोकनीय है—

यस्य क्षोणिपते प्रतापदहन ज्वालावलीकेलिभि
सप्ताप्यम्बुधयोऽम्बुबिन्दव इवा शोष्यन्ततेऽपिद्रुतम्।
पूर्यन्ते स्म हतारिराजकवधूनेत्राम्बुपूरै पुन
स श्री प्रीतिमती प्रियामिव मि (म) हाभोगामभुक्तक्षमाम् ॥[4]

---

१ जयन्तविजय, ११/६२।
२ वही, १२/५६।
३ सुवृत्ततिलकम्, ३/२२।
४. जयन्तविजय, १/७२।

अर्थात् जिन राजा के प्रतापरूपी अग्नि की ज्वाला के कणो की परम्परा से सप्तसागर भी अम्बुबिन्दु की तरह सूख जाते थे परन्तु वे समुद्र भरे हुए शत्रु राजाओ की मृगनयनियो के अश्रुओ से फिर भर जाते थे। इस प्रकार वे राजा (विक्रमसिंह) प्रीतिमती प्रिया की भाँति महाभोगो से परिपूर्ण पृथ्वी का भोग करते थे।

'जयन्तविजय' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग मे शार्दूल विक्रीडित छन्द का वर्ण्य विषय सध्या का मनोहारी चित्रण है। प्रकृति की सुभग शुषमा किसे अपनी ओर आकृष्ट नही कर लेती। कवि के शब्दो मे—रम्भा के समान हावभावमयी, पुण्यजनक वेश्याओ से प्रारम्भ कुतूहल के अद्भुत रस वाले मङ्गलमय वाद्यो से, कर्णों को अमृत के समान आनन्द देने वाली विनम्री राजा के विजयसूचक शब्दो से सायकालीन सन्ध्या ताराओ को विकसित करने वाली सुशोभित हो रही है—

रम्भाविभ्रमपुण्यपण्यवनितारब्धै स तूर्यत्रिकै-
मङ्गल्यै कृतकौतुकद्भुतरसै श्रोत्रामृतस्यन्दिनी।
रम्या नम्रनरेश्वरोदित जयारावेण सायतनी
सन्ध्या तस्य नरेश्वरस्य शुशुभे प्रोल्लासितारत्रिका ॥[1]

एक दिन रात्रि मे राजा विक्रमसिंह वेश परिवर्तित कर नगर मे परिभ्रमण करते हैं। राजा को एक योगी देवता के समक्ष एक नारी का बलिदान करने के लिए तैयार मिलता है। नारी भय-विह्वल होकर चीत्कार करती है। राजा उस योगी को परास्त करते है। पराजित योगी शार्दूल विक्रीडित छन्द द्वारा ही प्रशसा करता है—

देवस्त्रीवधपाप पङ्कपतन व्यावर्तनेनामुना
त्व मेऽभू परिणाम सुन्दरतया तस्या दयाया गुरु।
यन्माहात्म्य पुरस्कृत खलु जन स्वर्भूभुव सपद
सोत्कण्ठ कुचमण्डलेषु रमयन्त्यासप्त सिद्धि श्रियम् ॥[2]

यहाँ पर कवि अभयदेव द्वारा प्रयुक्त शार्दूल विक्रीडित छन्द की योजना विषयानुरूप होने के कारण दर्शनीय है।

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' के पञ्चम (७३), सप्तम (७४, ७६), अष्टम (६७, ६८, ७०, ७२) तथा दशम (६६) सर्ग मे शार्दूल विक्रीडित छन्द द्वारा विभिन्न वर्ण्य विषयो की योजना हुई है।

त्रयोदश सर्ग मे महेन्द्र चक्रवर्ती अपने पुत्र के लिए पवनगति से उसकी पुत्री कनकवती को माँगता है। दूत वहाँ पहुँचकर अपने स्वामी के सदेश को कहता है

१ जयन्तविजय, २/५०। २ वही, ४/६७।

किन्तु उसे जब यह ज्ञात होता है कि जयन्त के साथ उसका पाणिग्रहण पहले ही हो चुका है। इस पर वह अत्यन्त क्रोधित होता है और अपने स्वामी के शौर्य का बखान करता है। विपक्षी की आत्मश्लाघा सुनकर जयन्त का सचिव उसे उत्तर देता है—

एन प्रत्यवदज्जयन्तसचिवो नीतिप्रियै क्षत्रियै-
र्दूतोऽसीत न वध्यसे स्फुटतर वध्योऽपि दुर्भाषणात्।
यस्त्व किंतु कुधीरवादयदिद त दुर्मदान्मेदुर
युद्धे जीवितसशय मम विभोर्नेष्यत्यपास्य श्रियम्॥[1]

अर्थात् जयन्त सचिव ने इस प्रकार कहा कि तुम नीतिप्रिय क्षत्रिय के दूत हो इसलिए दुर्भाषण के कारण बध्य होते हुए भी तुम्हे मारा नही जा रहा है किन्तु जिसने दुष्ट बुद्धि वाले तुम दुर्मद से इस प्रकार वचनो को कहलाया है वह युद्ध मे जीवन को सशय मे डालने वाले मेरे विभु (स्वामी) के सामने राजलक्ष्मी को छोड़ कर नही आ सकेगा।

मन्त्री के इस प्रकार कथन को सुनकर दूत अपने स्वामी महेन्द्र के शौर्य का बखान करता हुआ कहता है कि अनायाम ही दिग्विजय से यश को प्रशस्त अक्षरो से अर्जित करने वाले जिन्होने सभी समुद्रो के किनारे मनोहर स्तम्भ परम्परा को स्थापित किया है उन राजा का तुम अपमान कर रहे हो। वे तुम्हारे शिर कमल को काटकर सग्राम के प्राङ्गण मे देवताओ के चरण कमलो पर रखने के लिए शीघ्र आ रहे है—

हेलादिग्विजयार्जितोऽर्जित यश शस्त प्रशस्ताक्षरै
रम्या स्तम्भपरम्परा निहित वान्सर्वाब्धितीरेषु य।
हीला कारयितुस्त्वदीयनृपतेश्छित्वा शिर पङ्कज
सग्रामाङ्गण देवताङ्घ्रिकमले प्रक्षेप्तुमभ्येति स॥[2]

इस प्रकार कवि अभयदेव ने वर्ण्य विषय एव रस के अनुरूप ही शार्दूलविक्रीडित छन्द का चयन कर अपनी सारग्राहिणी बुद्धि का परिचय दिया है।

स्रग्धरा कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' के सप्तम (७७), अष्टम् (६६), दशम् (७०-७१) तथा त्रयोदश (१०२-१०३) सर्ग मे स्रग्धरा छन्द की योजना की है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार—

सवेगपवनादीना वर्णने स्रग्धरा मता।[3]

अर्थात् स्रग्धरा छन्द का वर्ण्य विषय पवनादि का वेग है। सस्कृत साहित्य

---

१ जयन्तविजय, १३/१११। २ वही, १३/११२।

३ क्षेमेन्द्र, सुवृततिलकम, ३/२२।

के अधिकाश कवियो ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग ओजस्वी एव उत्साहपूर्ण स्थलो पर किया है। इस छन्द के प्रयोग मे विशाखदत्त को विशेष प्रगल्भता प्राप्त हुई है। उनका 'मुद्राराक्षस' इस सम्बन्ध मे विशेष प्रसिद्ध है। कवि अभयदेव ने अपने जयन्त विजय महाकाव्य मे आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा निर्दिष्ट वर्ण्य विषय के अनुरूप ही इस छन्द का प्रयोग किया है। फलत अष्टम सर्ग मे स्रग्धरा को विशेष उत्कर्ष की प्राप्ति हुई है वहाँ पर इसका वर्ण्य विषय प्रात कालीन पवन के वेग का प्रवाह है। कवि के शब्दो मे—

विस्मेराम्भोजराजी मधुरमधुर मधुरस प्रातराशाभिलाषा-
धावद्भृङ्गानुयाता सुरभिसुमनस पादपान्नर्तयन्त ।
प्रात शास्त्रेषु मान्या मदननरपतेर्वान्ति वातास्त एते
रत्यन्तक्लान्तवातास्तन तटघटित स्वेद मास्वादयन्त ।।[१]

अर्थात खिले हुए कमल के मधुर मधु रस के आशा की अभिलाषा से भ्रमरो के द्वारा अनुगमन की जाती हुई, सुगन्धि से सुगन्धित वृक्षो को नर्तन कराती हुई शास्त्रो मे माननीय, अत्यन्त क्लान्त वातास्तन तट मे उत्पन्न पसीने को सुखाती हुई यह प्रात कालीन वायु मदन राजा की आज्ञा से प्रवाहित होने लगी।

यहाँ वर्ण्यविषयानुसार छन्दोयोजना होने के कारण उसमे सजीवता है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य के युद्ध वर्णन के प्रसग मे भी स्रग्धरा छन्द का विन्यास किया गया है। उदाहरणार्थ निम्न उद्धरण मे जयन्त के अप्रतिभ पराक्रम का वर्णन स्रग्धरा छन्द मे किया गया है—

छत्र चिच्छेद तस्य प्रवररिपुजयश्री विलासाशयासो (?)
कीर्त्या सार्धं चकर्त ध्वजमपिच मता राजवशावतसम् ।
निर्जीव चायमस्त्रैर्हरिवि • तपद कुञ्जरेन्द्रच चक्रे
तत्राश्चर्यं कबर्य किमिव न विदधे वैक्रमिर्विक्रमेण ।।[२]

प्रस्तुत उद्धरण मे छन्द रसानुकूल है। भावाभिव्यक्ति भी अत्यधिक शसक्त है। साथ ही कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दावली भी रस को उद्दीप्त करने मे सहायक सिद्ध हुई है।

इसी प्रकार सिहलभूपति हरिराज तथा जयन्त के घमासान युद्ध का वर्णन भी स्रग्धरा छन्द मे किया गया है। कवि की कल्पना मे दोनो के अप्रतिम शौर्य को देखकर विजयलक्ष्मी को भी सन्देह हो जाता है कि वह किसका वरण करे

खङ्गाखङ्गि शराशर प्रभृतिमि र्युद्धप्रकारैर्युध
कारकारमपार कौतुकरस विस्तारयन्तो दृशाम् ।

---

१ जयन्तविजय, ८/६६ ।   २ वही, १०/७० ।

प्रत्येक विजयश्रिया रणगुणोत्कर्षापकर्षक्षणे
क यामीति विमुग्धया प्रतिकल तौ स्विन्नया ।[१]

तलवार का तलवार से, बाण का बाण से जवाब देने वाले इस प्रकार के युद्ध को करते हुए, अपार कुतूहल रस को दृष्टि के सामने फैलाते हुए उन दोनो के युद्ध के गुणो के उत्कर्ष तथा अपकर्ष के क्षण मे विमुग्ध विजयश्री से किसके पास जाऊँ ? इस तरह परेशान होकर विचारा गया । प्रस्तुत स्थल पर भी वर्ण्यविषयानुसार छन्दोयोजना होने के कारण चारुत्व प्रस्फुटित हो रहा है ।

त्रयोदश सर्ग मे स्रग्धरा छन्द का वर्ण्य विषय प्रात काल युवराज जयन्त के जागरण हेतु भाट की उक्ति है ।[२] तदनन्तर उनकी निद्राभङ्ग का क्रमश उल्लेख किया गया है -

इत्थ वैतालिकाना मुख कमल कलोत्ताल कोलाहलेन
स्फूर्जन्मङ्गल्य तूर्यप्रसमरमधुर ध्वानसवर्गितेन ।
कान्ताविस्तारितुङ्ग स्तनकलशतटाश्लेषसौख्ये निमात
क्षिप्र निद्राममुञ्चत्सकलसमयविद्विश्वविश्वैकवीर ॥[३]

अर्थात् वैतालिको के मुखारविन्दु की कला के उतावले कोलाहल से और बजने वाले मङ्गलमय वाद्यो के फैले हुए मधुर ध्वनि के वेग से, प्रिया के विस्तृत ऊँचे स्तनकलश के आलिङ्गन के सौख्य मे निमग्न, सभी समयो के मूल्य के ज्ञाता उस विश्व के अद्वितीय वीर ने शीघ्र ही निद्रा को छोड दिया ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जयन्तविजय महाकाव्य मे स्रग्धरा छन्द का प्रयोग वर्ण्य विषयानुरूप है ।

पुष्पिताग्रा पुष्पिताग्रा छन्द का विन्यास जयन्तविजय के सप्तम (७८), एकादश (८६), द्वादश (१-५७) तथा चतुर्दश (१०८,१०६) सर्ग मे हुआ है । पुष्पिताग्रा छन्द के सम्बन्ध मे यद्यपि कवि क्षेमेन्द ने 'सुवृत्ततिलकम' मे कोई सकेत नही किया है किन्तु निश्चय ही इस छन्द के द्वारा 'जयन्तविजय' महाकाव्य के सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है । 'जयन्तविजय' के सप्तम सर्ग के अन्त मे कवि द्वारा प्रयुक्त पुष्पिताग्रा छन्द अवलोकनीय है –

इतिबहुविधविस्मयाभिरामा नृपतितनयेन विलोकिता वनश्री ।
इयमतिसुमना प्रियेण सुभ्रूर्निजमिव रूपफल समाससाद ॥[४]

कवि अभयदेव ने कही-कही सर्ग के सार को प्रस्तुत करने के लिए भी इस छन्द का प्रयोग किया है । जयन्तविजय के एकादश सर्ग का वर्ण्य विषय युवराज

---

१ जयन्तविजय, १०/७१ ।
२ वही, १३/१०२ ।
३ वही, १३/१०३ ।
४ वही, ७/७८ ।

जयन्त की दिग्विजय है। चतुरङ्गिणी सेना के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते है तथा सम्पूर्ण भूमण्डल के राजाओ को पराजित करते हैं। कवि के शब्दो मे वनेचर अञ्जलि बाँधकर कुमार जयन्त के सम्मुख स्वय आकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नदान से उन्हे सन्तुष्ट करते है।

प्रणतिलुलित मौलय पुरस्ताद्द्रुततरमेत्य वनेचरा कुमारम्।
विविधमणि सुवर्ण रत्नदानै शिरसिकृताञ्जलयोऽथभेजिरे ते ॥[1]

द्वादश सर्ग मे पुष्पिताग्रा छन्द का वर्ण्य विषय दिग्विजयोपरान्त मनाये जाने वाले महोत्सव हैं। राजा विक्रमसिह अपने पुत्र जयन्त की दिग्विजय को सुनकर अत्यन्त हर्षित होते है तथा अपने पुर को अनेक प्रकार की रस-भगिमाओ से भरपूर कर हर्षमय बना देते है क्योकि शत्रुओ के विजय के बाद राजाओ की पुरियो मे कौन सी महोत्सव श्री नही होती—

बहुविधरसभङ्गिसङ्गि लास्य निजपुरि वर्धनक व्यधापयत्स।
रिपुविजयमनु क्षितीश्वराणा भवति पुरीषु न का महोत्सव श्री ॥[2]

कवि अभयदेव ने पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग सौन्दर्य निरूपण के प्रसग मे भी किया है। उदाहरणार्थ—वह कनकवती के सौन्दर्य का निरूपण करते हुए कहते है--कामदेव के सुधा के रसायन स्वरूप उस कनकवती ने तरुण लोगो के नेत्र चकोर के लिए चन्द्रिका की आभा के समान, उठे हुए अनेक गुणो के विचित्र सौध के समान सकलविलासमय वय को प्राप्त किया—

कुसुमशर सुधारसायन सा युवाजन नेत्रचकोरचन्द्रिकाभ।
प्रसृमर गुण चित्र चित्रसौध सकलविलासमय वय प्रपेदे ॥[3]

इसी प्रकार मण्डपारूढ जयन्त के सन्दर्भ मे भी कवि अभयदेव का कथन है—जनकुमुद समुदाय के लिए कुमुदपति चन्द्रमा के समान, वर्षा ऋतु मे उपशान्ति लता के समान तथा कुत्सित विचार वाली गजेन्द्र घटाओ के मध्य केसरी के समान वे चारो ओर से सुशोभित हो रहे थे—

जनकुमुदतते कुमुद्वतीना पतिरिव य परितश्चकास्ति तत्र।
घन समय इवोपशान्तिवल्ले कुमतकरीन्द्रघटासुकेसरीव ॥[4]

प्रस्तुत सर्ग मे धार्मिक उपदेशो का विनियोग भी पुष्पताग्रा छन्द मे किया गया है। जयन्त जिनबिम्ब के दर्शन कर धर्मसूरि की देशना सुनते हैं धर्मसूरि जी बतलाते हैं कि सारे प्राणियो के लिए विषयो का सुख प्रथम मधुर तथा परिणाम मे भयकर होता हे—

---

१ जयन्तविजय, ११/८६।
२ वही, १२/२।
३ वही, १२/१४।
४ वही, १२/३६।

विषय सुखमशेषदेह भाजा मुखमधुर परिणामदारुण च ।
इति विदुरधियामपीह शक्तिविलसति मोहमहीन्द्र शासनहि ॥[1]

विविध प्रकार के विभवो के भोग से बढ़ी हुई तृष्णा प्राणियो के हृदय मे सदैव अत्यन्त ताप को उत्पन्न करती है । फलत निस्पृहता के सुधा रस से उसको शीघ्र ही शान्त करना चाहिए—

विविधविभवभोगभूरितृष्णा ज्वरलहरीव भवावधि प्ररूढा ।
जनयति हृदितापमित्यमन्द प्रशमय निस्पृहतासुधारसैस्ताम् ॥[2]

चतुर्दश सर्ग में पुष्पिताग्रा छद द्वारा जयन्त के पौरुष का वर्णन किया गया है । वे अपने पुरुषार्थ से खचराधिराज की लक्ष्मी को प्राप्त करते है । तदनन्तर अनेक राजा तथा खचरपति अपने अनुजीवियो के साथ उन्हे प्रणाम कर उनकी आज्ञा को स्वीकार करते है—

पुरमथ रथनूपुराभिधान गगनचरै परिवारित प्रविश्य ।
अभजत निजपौरुषोपनीतामवनिपति खचराधिराजलक्ष्मीम् ॥
तदनु विनयवामना नरेन्द्रा खचरपतेग्नुजीविन प्रणम्य ।
अवनिपरिवृढ किरीटकोटीघटितकरा शिग्सा दधुस्तदाज्ञाम् ॥[3]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि कवि ने विविध प्रकार के विषयो का प्रतिपादन पुष्पिताग्रा छन्द के माध्यम से किया है ।

हरिणी जयन्तविजय के द्वितीय सर्ग (५१) मे हरिणी छन्द का विन्यास किया गया है । आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार—उदारता के औचित्यपूर्ण वर्णन मे हरिणी का प्रयोग प्रभावपूर्ण माना गया है—

औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा ।[4]

कवि अभयदेव ने आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा बताये गये वर्ण्य विषय के अनुसार ही हरिणी छन्द का प्रयोग किया है । उन्होने इस छन्द के माध्यम से उदार राजा द्वारा मन्त्री के सत्कार को व्यक्त किया है । कवि के शब्दो मे अत्यन्त यशस्वी, अपने हित को जानने मे निष्णात राजा ने शीघ्र ही सब लोगो को छोडकर राजाओ की सिद्धि मे सफल बुद्धि वाले निधिस्वरूप अपने मन्त्री सुबुद्धि का पूजन किया क्योकि विवेकवान् मन्त्री राजा से गुरु के समान पूजनीय है—

अथ पृथुयशा सर्वं लोक विसृज्य स सत्वर
महीपतिमहासिद्धे सिद्धावबन्ध्यधिया निधिम् ।

---

१ जयन्तविजय, १२/५१ । २ वही, १२/५५ ।
३ वही, १४/१०८–१०९ । ४ क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलकम्, ३/२० ।

स्वहित विदुर स्वं मन्त्रीश सुबुद्धिमपूपुज-
दगुरुरिव यत पूज्यो मन्त्री नृपस्य विवेकवान् ॥[1]

शिखरिणी—इस छन्द का प्रयोग 'जयन्तविजय' को षष्ठ (६६), नवम् (७२), दशम (७२) तथा पञ्चदश (७६) सर्ग मे हुआ है। आचार्य क्षेमेन्द्र इसका वर्ण्य विषय किसी विषय की सीमा का निर्धारण बतलाते है—

उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता।[2]

जयन्तविजय मे इस छद का प्रयोग युवराज जयन्त के जन्मोत्सव पर राजा विक्रमसिंह द्वारा दिये गये दान के प्रसङ्ग मे किया गया है।* राजा की दानवीरता को देखकर कोई भाट कह रहा है—

कुरङ्गैरुत्तुङ्गै रणदनणुघण्टैं करटिभि
सुवर्णै सद्वर्णैर्वसननिकरै सुन्दरतरै ।
त्वयि स्वैर वर्षत्यधिप न शिर केनदुधुवे
विमुच्यैक क्षोणीभरपरवश पन्नगपतिम् ॥[3]

अर्थात् हे राजन्! उत्तङ्ग कुरङ्गो से, बडे-बडे घण्टो से युक्त हाथियो से, अच्छे सुवर्णों से, सुन्दर वसनो से तुम्हारे द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक बाँटने से एक मात्र पृथ्वी के भार से दबे हुए शेषनाग को छोडकर किसका शिर न चकरा गया।

प्रस्तुत स्थल पर शिखरिणी छन्द का प्रयोग वर्ण्य विषयानुरूप होने के कारण मार्मिक भावाभिव्यक्ति हुई है। साथ ही कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दावली भी रस को उद्दीप्त करने मे सहायक सिद्ध हुई है।

इसी प्रकार नवम् सर्ग मे राजा विक्रमसिंह के यश का वर्णन भी शिखरिणी छन्द द्वारा किया गया है। यहाँ पर कवि की कल्पना चरम सीमा पर पहुँच गयी है—

तव स्फूर्जच्छौर्यप्रभवयशसा चन्द्रमहसा
भृश शुभ्रीभूत खकचनिचय वीक्षितवती।
पलिन्कीत्वभ्रान्त्या कुलितहृदयात्यौषधविधे
शची पृच्छाक्लेशे निपतति मुहु स्वर्गिभिषजो ॥[4]

अर्थात् तुम्हारे बढ़े हुए शौर्य के प्रभाव के यश वाले चन्द्र से अत्यन्त शुभ्र होते हुए अपने कच निचय को देखती हुई, बाल पकने की भ्रान्ति से व्याकुल हृदय

१ जयन्तविजय, २।५१।
२ क्षेमेन्द्र, सुवृत्ततिलकम्, ३/२०।
३ जयन्तविजय, ७/६६।
४ वही, ६/७२।

वाली शची स्वर्गीय वैद्य अश्वनीकुमारो से औषधि के बार-बार पूछने के क्लेश मे पड गयी।

यहाँ पर इन्द्राणी को यह भ्रम हो गया है कि कही हमारे बाल बुढापे के कारण श्वेत तो नही हो गये हैं। इसीलिए उसके हृदय मे चिन्ता बढ गयी तथा स्वर्ग के वैद्य अश्वनीकुमारो से बालो की सफेदी को दूर करने के लिए उपाय पूछ रही है।

जयन्तविजय के दशम् सर्ग मे शिखरिणी छन्द का वर्ण्य विषय जयन्त तथा सिंहल भूपति हरिराज के मध्य युद्ध वर्णन है। सिंहल भूपति जयन्त से कहता है कि तुम मेरी तलवार से बध्य नही हो, अभी तुम बच्चे हो। सज्जनो की तलवार बाल-हत्या के लिए नही होती। इसलिए मेरी आज्ञा को पाकर इस समय आराम करने के लिए जाओ—

अथ क्लेशावेश प्रसरविरस सिंहलपति-
जंगदैव वध्यस्त्वमसि मम नासे शिशुरिति।
सता निस्त्रिशोऽपि प्रभवति न हि भ्रूणहतये
प्रपद्याज्ञा तन्मे व्रज निजगृह रन्तुमधुना ॥[1]

इसी प्रकार पञ्चदश सर्ग मे शिखरिणी छन्द का प्रयोग गुरु सुस्थिताचार्य के पूजन के प्रसङ्ग मे किया गया है -

मुखालोकै प्रौढप्रणयसुभगैस्तस्य सुगुरो
कृतार्थी कुर्वाणो नयननलिने भूपतिरथ।
पदोरर्चा कृत्वा मणि मुकुटि दीप्ताशुकुसुमै-
रलचक्रे शक्रानुज इव विभूत्या स सदनम् ॥[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है, कि कवि ने वर्ण्य विषय के अनुरूप ही शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया है जिसके परिणामस्वरूप भावाभिव्यक्ति अत्यधिक शसक्त है।

इस प्रकार कवि अभयदव ने एक निपुण शिल्पी की भाँति अपने 'जयन्त-विजय' महाकाव्य मे छन्दोयोजना की है। उन्होने सामान्यत छन्दो के विनियोग के सम्बन्ध मे आचार्य क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित नियमो का पालन किया है। इसी-लिए एक दो स्थलो के अतिरिक्त सर्वत्र उनकी छन्दोयोजना रसानुकूल एव विषयानु-रूप है। प्राय प्रत्येक सर्ग मे एक से अधिक छन्दो का कुशलतापूर्वक प्रयोग करके उन्होने अपनी प्रौढ विदग्धता का ही परिचय नही दिया है, अपितु उससे उनकी

---

१ जयन्तविजय, १०/७२।   २ वही, १५/७६।

सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय मिलता है। कवि ने अपने महाकाव्य में भावो और घटनाओ के अनुरूप ही छन्दो मे परिवर्तन किया है। उदाहरणार्थ जयन्तविजय के महाकाव्य के दशम तथा चतुर्दश सर्ग मे युद्ध का निबन्धन किया गया है। युद्ध के प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाली परिस्थितियो के उतार-चढ़ाव का प्रकटन कवि ने चुन-चुनकर उपयुक्त छन्दो मे किया है। युद्ध की प्रचण्डता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर शार्दूलविक्रीडित एव स्रग्धरा छन्द मे प्रकटित हुई है। अर्थात् जिस प्रकार उत्साहित योद्धाओ ने अपने अस्त्रो को परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित करके विमुञ्चित किया है उसी प्रकार कवि ने अपने छन्दो मे परिवर्तन करके उस भाव मे सजीवता लाने का प्रयास किया है। इस प्रकार 'जयन्तविजय' मे सभी छदो का प्रयोग प्रसङ्गानुकूल होने के कारण भावाभिव्यक्ति मे सहायक सिद्ध हुआ है।

पञ्चम अध्याय

'जयन्तविजय' महाकाव्य में वर्णन प्रसंग

'जयन्तविजय' काव्य में वर्णन प्रसङ्ग

कवि किसी वस्तु के वर्णन मे सामान्यत अभिधा और व्यञ्जना इन दो वृत्तियो का आश्रय लेता है । अभिधा वृत्ति के द्वारा वह अपने वाच्य अर्थ की प्रतीति करता है तथा व्यञ्जना वृत्ति के द्वारा काव्य-प्राण ध्वन्यार्थ की सफल अभिव्यञ्जना करता है । कवि का यह प्रमुख लक्ष्य होता है कि अप्रस्तुत की योजना ऐसी हो जो सर्वसाधारण के चित्त मे ऐसे भाव जागृत करे जो भाव उस प्रस्तुत से होने चाहिए, क्योकि कल्पना की ऊँची उडान मे पाठक या श्रोता की बुद्धि को प्रस्तुत से हटाकर शून्य मे छोड देने वाला कवि महाकवि के पद का अधिकारी नही हो सकता । अत दृश्य वर्णन मे अप्रस्तुत की अपेक्षा प्रस्तुत की प्रधानता स्वत सिद्ध है ।

इस प्रकार वस्तु वर्णन कवि की प्रतिभा का रमणीय उपहार कहा जा सकता है तथा महाकाव्य का वास्तविक सौन्दर्य उसी मे निहित रहता है । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रात काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु वन, उपवन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर यज्ञ, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, समादि उपाय तथा पुत्र जन्म आदि वस्तुएँ महाकाव्य का वर्ण्य विषय है ।[1] किन्तु आचार्य दण्डी इसके अतिरिक्त सलिल-क्रीडा, मधुपान, रसोत्सव, कुमारोदय वर्णन तथा मन्त्रदूत प्रयाण आदि को भी महाकाव्य का वर्ण्य विषय मानते है ।[2] इसके अतिरिक्त अन्य उत्तरवर्ती आलकारिको ने भी महाकाव्य मे वस्तु वर्णन की अनिवार्यता स्वीकार किया है ।[3]

राजशेखर ने काव्य मीमासा मे वस्तु वर्णन को कवि की शक्ति का प्रतिफल माना है ।[4] अर्थात् वस्तु वर्णन के मूल मे कवि की शक्ति का विस्तार रहता है । उनके अनुसार प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनो को ही शक्ति के कर्तृत्व के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है—"शक्ति कर्तृके हि प्रतिभाव्युत्पत्ति कर्मणी । शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पद्यते ।"[5] अर्थात् प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनो ही शक्तिजन्य है । फलत दोनो का यथोचित सहयोग वस्तुवर्णन मे विद्यमान रहता है । प्रतिभा

---

१ साहित्यदर्पण, ६/३१५-३२४ ।

२ दण्डी, काव्यादर्श, १/१६-१८ ।

३ (क) भोजदेव, शृङ्गार प्रकाश, खण्ड २, पृ० ४७६ ।
   (ख) विश्वनाथ, साहित्यदर्पण ६/३२२ ।

४ 'यस्तु सरिदद्रिसागरपुरतुरगरथादिवर्णने यत्न कविशक्ति ख्याति फलो ।
—राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय नवम्, पृ० ४५ ।

५ वही, पृ० ११ ।

और व्युत्पत्ति मे से किसी एक के अभाव मे वस्तु वर्णन मे सहृदयो को चमत्कृत एव आकर्षित करने वाली सरसता नही आ सकती । अत प्रतिभा और व्युत्पत्ति इन दोनो के 'मणिकाचन' सयोग द्वारा ही वस्तु वर्णन की काव्यात्मकता का आस्वादन किया जा सकता है । इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है, कि दोनो का एक साथ होना अनिवार्य है ।

यद्यपि वस्तु वर्णन के द्वारा महाकाव्य मे सरलता, रमणीयता एव सौन्दर्य का आधान अवश्य होता है किन्तु इसका अत्यधिक विस्तार रसास्वादन मे अवरोधक हो जाता है । इसका प्रमुख कारण यह है, कि कवि अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा आलाङ्कारिक चमत्कार प्रदर्शित करने मे प्रकृत रस की परवाह न करते हुए विपरीत चला जाता है । अत कविकृत वस्तु वर्णन सरस, सक्षिप्त एव रसानुकूल होना चाहिए । इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए राजशेखर ने 'काव्यमीमासा' मे कहा है—

मज्जन पुष्पावचयनसध्याचन्द्रोदयादिवाक्यमिह ।
सरसमपि नातिवहुलं प्रकृतरसानन्वित रचयेत् ॥[1]

नदी, उपवन, चन्द्र, सूर्य आदि वस्तु वर्णन जड पदार्थ है, किन्तु कवि अपनी कल्पना शक्ति का आश्रय लेकर उसे सजीव बना देता है । अत यह कवि पर निर्भर रहता है, कि वह किसी वस्तु को किस रूप मे ग्रहण करता है । राजशेखर के अनुसार—रस वस्तुनिष्ठ न होकर कवि वचन मे होता है । इसीलिए कुकवि विप्रलम्भ मे से भी रसवत्ता को निकाल देता है—

कुकविर्विप्रलम्भेऽपि रसवत्तो निरस्यति
अस्तु वस्तुषु मा वा भूत्कविवाचिरम स्थिति ।[2]

राजशेखर ने अपने इस कथन को पुष्ट करने के लिए पाल्य कीर्ति एव रतिसुदरी के कथन को भी स्पष्ट किया है ।[3] इसके साथ ही साथ उन्होने, नदी, पर्वत, नगर, अश्व आदि के वर्णन मे रसवत्ता को स्वीकार किया है ।[4] राजशेखर की भाँति ही भोजदेव ने भी 'सरस्वती कण्ठाभरणम्' मे इसी विचारधारा को व्यक्त किया

१ राजशेखर, काव्यमीमासा, अध्याय नवम्, पृ० ४५ । २ वही, पृ० ४६ ।

३ 'यथा तथा वाऽस्तु वस्तुनो रुप, वक्तृ प्रकृति विशेषयत्ता तु रसवत्ता । तथा च यमर्थं रक्त स्तौतित विरक्तो विनिन्दसि । मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते' इति पाल्यकीर्ति ।

'विदग्धभणितिभङ्गिनिवेद्य वस्तुनो रुप, न नियतस्वभावम्' इत्यवन्ति सुन्दरी तदाह—

४ 'वस्तु स्वभावोऽत्र कवेरतन्त्र गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये स्तुवन्निबध्नात्ममृताश मिन्दु निन्दस्तु दोषाकरमाह धूर्त 'उभयमुपपन्नम्' इति यायावरीय ।
—राजशेखर, काव्यमीमासा, पृ० ४६ ।

है ।[1] इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है, कि कवि के वस्तु वर्णन की सार्थकता उसके रसवत होने पर ही निर्भर करती है । अत प्रत्येक कवि को उपर्युक्त विचारधारा को ध्यान मे रखते हुए ही प्रयत्नशील होना चाहिए ।

संस्कृत साहित्य मे महाकवि अभयदेव का काल वैदुष्य प्रदर्शन का काल था, किन्तु उस समय कवि ने अपने वैदुष्य प्रदर्शन की जगह सरस और सुन्दर भावों की सरल अभिव्यञ्जना करने मे ही अपने को कृतकृत्य माना है । महाकाव्य के वस्तु वर्णन मे कवि की वृत्ति स्वयं रमी हुई जान पडती है । अपने पाडित्य को उन्होंने इस प्रकार काव्यकला से युक्त कर दिया है कि वह बाहर से अतीव कोमल और सरस प्रतीत होता है, उसमे कही भी कृत्रिमता और सायाससिद्धता का प्रदर्शन नही है । प्रस्तुत अध्याय मे कवि अभयदेव द्वारा वर्णित विशेष वस्तुओं की वर्णन शैली की विशेषता को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

जयन्तीपुरी का वर्णन

संस्कृत काव्य की प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे जयन्तीपुरी का वर्णन किया है । कवि अभयदेव की यह विशेषता है कि वे नगर वर्णन के पूर्व उसके द्वीप एव देश का वर्णन करते है । अत वे यहाँ पर सर्वप्रथम सज्जनो द्वारा विलसित लक्ष्मी वाले, देदीप्यमान सुमेरु पर्वत के समान, प्रदीप्त दीपशिखा के समान तथा सारे द्वीपो के समुद्र मे सुधा के समान जम्बूद्वीप को मध्य मे स्थित बताते है—

मध्येऽखिलद्वीपसमुद्रसौध चञ्चत्सुवर्णाद्रिशिखावतस ।
दीप्रप्रदीपप्रतिमोऽस्ति जम्बूद्वीप सदालोकविलासलक्ष्मी ॥[2]

उस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष नामक क्षेत्र मे मगध नामक देश है जहाँ पर सुन्दर अङ्गहारो द्वारा कल्याण परम्पराओं से रात-दिन लक्ष्मी नृत्य किया करती है—

तस्यावतसे भरताभिधाने क्षेत्रेऽस्ति देशो मगधाभिधान ।
कल्याणवृन्दै रुचिराङ्गहारैरिवानिश नृत्यति यत्र लक्ष्मी ॥[3]

मगध देश की पृथ्वी शस्य-श्यामला है । वहाँ पर गोपाङ्गनाएँ धान्य से लहलहाते हुए खेतो की रखवाली करती हैं । उनके कोकिल कण्ठ से नि सृत ध्वनि पथिको के मार्ग मे बाधा डाल रही है । इसीलिए वे बडी कठिनाई से अपना रास्ता तय कर पा रहे हैं । यथा—

---

१ भोजदेव, सरस्वती कण्ठाभरणम्, ५/१३०-३३ । २ जयन्तविजय, १/२५ ।
३ वही, १/२६ ।

यत्राभिरामाणि विशालशालिक्षेत्राणि संरक्षितुमीयुषीणाम् ।
गोपाङ्गनाना मधुरोपगीतै कृच्छ्राद्युवान पथियान्ति पान्था ॥[१]

इस प्रकार वह देश अपनी चारुता के द्वारा स्वर्ग की चारुता का अपहरण कर रहा है क्योकि वहाँ की नदियो ने सुरसरि को भी पराजित कर दिया है, वनो ने अपनी सुन्दरता से नन्दनवन को लज्जित कर दिया है तथा पर्वतो ने सुमेरु पर्वत को भी तिरस्कृत कर दिया है। इसी रमणीयता के कारण स्वर्गीय जनो के द्वारा भी सेवनीय है—

विजिष्णुभिर्विष्णुपदी नदीभिर्वनै श्रिया ह्रेपितनन्दननैश्च ।
शैलै सुवर्णाचलदत्तह्रीलैर्य स्वर्गभाजामपि सेवनीय ॥[२]

ऐसे उस देश मे नाम के अनुरूप जयन्ती नगरी है जिसकी चारुता को देखकर शेषनाग ने भोगावती के तथा इन्द्र ने अमरावती के प्रति प्रेम को छोड़ दिया है—

भोगावती भोगपति सुरेन्द्रोऽमरावती प्रत्यधिकानुरागम् ।
मुमोच चारुत्वमवेक्ष्य यस्या सा तत्र नाम्नास्ति पुरी जयन्ती ॥[३]

जयन्ती नगरी के विशाल परकोटा का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग करते हैं। उनका कथन है कि साक्षात् कैलाश पर्वत ही यहाँ परकोटा के बहाने आ गया है। यत यहाँ के पुरवासी भगवान् शङ्कर है नारियाँ पार्वती है और बच्चे कुमार कार्तिकेय है। अतएव अनुरागवश कैलाश पर्वत का आना स्वाभाविक है—

पौरा महेशा प्रचुरा कुमारा गौर्य स्त्रियोऽप्यत्र विनायकाश्च ।
इतीव कैलासनगोऽनुरागादावृत्य या शालमिषेण तस्थौ ॥[४]

उस पुरी मे स्थित भवन भी अत्यन्त ऊँचे है क्योकि महलो मे विद्याधरियो के समान निवास करने वाली स्त्रियो के द्वारा रात्रि मे कन्दुक लीला से हाथ मे इन्दु को पकडने की इच्छा की जाती है। ऐसी वह नगरी परिखा से परिवृत्त है। इस परिखा मे अमृत तुल्य जल भरा है। कवि उस परिखा मे क्षीर सागर की कल्पना करता है। यत लक्ष्मीपुत्र इस नगरी मे निवास करते हैं। वे लक्ष्मीपुत्र इस क्षीर-सागर के दौहित्रो को देखने के लिए ही क्षीर सागर उपस्थित हुआ है—

रम्यावधित्वेन यदीयसालविद्याधरीषु स्थितिमीयुषीभि ।
विद्याधरीभिर्निशि धर्तुमीहा चक्रे करे कन्दुकलीलयेन्दु ॥
लक्ष्म्या स्वपुत्र्या सतत वसन्त्या क्षीरार्णवोयत्र दिदृक्षयेव ।
स्नेहातिरेकात्समुपेत्य तस्थौ सुधानिभाम्भ परिखामिषेण ॥[५]

१ जयन्तविजय, १/३८।
२ वही, १/३९।
३. वही, १/४१।
४ वही, १/४३।
५ वही, १/४५, ४७।

उस नगरी के सुरमन्दिरों मे स्वर्गीय कुतूहल भूली हुई विलास से परिपूर्ण मनोहर मूर्तिवाली वेश्याओं की श्रेणियाँ सुशोभित हैं तथा वहाँ की स्त्रियाँ कमलरूपी नेत्रो से, लावण्यपूर्ण अमृतो से, चक्ररूपी कुचो से सुविलास द्वारा कामदेव के केलि की वापियाँ हैं—

> रम्भेव क्लृप्तामित कान्तमूर्ति पणाङ्गनाली सविलासलास्या ।
> विभाति यस्या सुरमन्दिरेषु विस्मारितस्व पुरकौतुकेषु ॥
> नेत्रै सरोजैरिव राजमाना लावण्यपूरैरमृतैरिवोच्चै ।
> कुचैश्च चक्रैरिव सविलासैर्यत्रत्यरामा स्मरकेलिवाप्य ॥[१]

कवि को ऐसे उस नगर मे केवल उद्यानवापियो मे जडता, पक्षियो के घोसलों मे प्रिय का वियोग तथा पद्माकरो मे ही सूर्य की किरणो का उपमर्दन दिखलाई पडता है लोक मे नही—

> उद्यानवापीषु जलाशयत्व द्विजाश्रयेषु प्रियविप्रयोग ।
> विलोक्यते राजकरोपमर्द पद्माकरेष्वेव न यत्र लोके ॥[२]

वहाँ पर जिनेन्द्र के हर्म्य के ऊपर सात सोने के बने हुए कलशो पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पडता है । कवि अभयदेव की कल्पना, कि मानो उन कलशो के सौन्दर्य को देखने के लिए ही सूर्य की अनेक मूर्तियाँ अवतीर्ण हुई हैं—

> जिनेन्द्रहर्म्योपरि शातकुम्भकुम्भावलीषु प्रतिबिम्बितात्मा ।
> अनेकमूर्ति प्रतिभाति भानुर्यस्या श्रिय द्रष्टुमिवावतीर्ण ॥[३]

उस नगरी के बाजार मोती, मणि, सुवर्ण, कर्पूर, कस्तूरी, दिव्यवस्त्र आदि जीवनोपयोगी सभी वस्तुओ से परिपूर्ण थे जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन वस्तुओ की उत्पत्ति स्थान हो । कवि का कथन है कि अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले देवतुल्य वहाँ के लोग अङ्गराग आदि का सेवन करने से पलक मूँदने के व्याज से ही देवताओ से भिन्न पाये जाते है—

> भूयिष्ठमुक्तामणिहेमतारै कर्पूरपूरैर्मृगनाभिपुञ्जै ।
> दिव्यांशुकाद्यै कलिता पणाली तदाकराकारधरेव यत्र ॥
> सुरेशवेषाभरणाङ्गरागवरेण लावण्यतरङ्गिताङ्ग ।
> निमेषमात्रेण पर सुरेभ्यो विभिद्यते यत्र जन समस्त ॥[४]

इस प्रकार कवि कृत जयन्ती पुरी का वर्णन माघ और श्रीहर्ष से प्रभावित होते हुए भी उनकी भाँति अत्यधिक अतिरजित अथवा विशद नही है और न उन

---

१ जयन्तविजय, १/४८/४६ ।
२ वही, १/५० ।
३ वही, १/५१ ।
४ वही, १/५३-५४ ।

(कवि अभयदेव) की बहुज्ञता पाण्डित्य प्रदर्शन अथवा दार्शनिक क्लिष्टता की ओर उन्मुख हुई है, अपितु कुछ श्लोको में उन्होने उपमा, मालोपमा, श्लेषोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक एव भ्रान्तिमान् अलङ्कारो के आश्रय से जयन्तीपुरी का हृदय-ग्राही चित्र चित्रित किया है ।

दोलान्दोलन, पुष्पावचय तथा जलकेलि वर्णन

महाकवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे दोलान्दोलन, पुष्पा-वचय तथा जलक्रीडा का वर्णन भी परम्परागत प्रस्तुत किया है । वसन्त की कामो-द्दीपकता जगतप्रसिद्ध है । इस ऋतु मे उपवन मे झूला डाला जाता है । झूले पर झूलती हुई कामिनियाँ कवि की कल्पना मे स्वर्गीय स्त्रियो को देखने का अभ्यास कर रही है—

स्वर्णतोरणविलासदोलयान्दोलनै कृतगतागतैर्मुहु ।
वीक्षितु त्रिदिव वामचक्षुषोऽभ्यासभङ्गिमिव कुर्वतोऽङ्गना ॥[1]

यहाँ पर कवि ने अतिशयोक्ति के माध्यम से मार्मिक भावो की अभिव्यक्ति की है । कवि अभयदेव की कल्पना उस समय चरमसीमा पर पहुँच जाती है जब वे कल्पना करने लगते हैं कि नलिनीकान्त सूर्य भी मृगनयनियो के दोलान्दोलन क कौतुक को देखने मे आसक्त हो जाता है । अतएव उसके घोडो की गति मन्द हो जाती है । फलत दिन वृद्धि को प्राप्त होने लगते है—

काञ्चीकाञ्चन किंकिणीरणरणत्कारापनिद्रस्मर
दोलान्दोलन कौतुक मृगदृशामालोक्य लोकोत्तरम् ।
तत्रासक्तमना प्रयाति नलिनीकान्त प्रशान्तैर्हयै-
र्मन्दमन्दमतीव वृद्धिमधिका पुष्णन्त्यमी वासरा ॥[2]

अर्थात् काञ्ची की काञ्चन की किकिणियो की आवाज मे समाप्त निद्रा वाला, मृगनयनियो के लोकोत्तर दोलान्दोलन के कौतुक को देखकर वहाँ पर आसक्त मन वाला नलिनीकान्त थके हुए घोडो से अत्यन्त मन्द-मन्द जाता है । अतएव दिन अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

कवि की कल्पना मे स्वर्ग मे झूले पर लीलापूर्वक झूलती हुई मृगनयनी गुणो से युक्त कामदेव की चापयष्टि है । इसीलिए कामदेव सेना के साथ वाण लेकर ससार को आसानी से जीतने के लिए अच्छी तरह सफल हो जाता है

इयमिह हि सलीलान्दोलिता व्योम्नि दोला
सुभग गुण विलासा चापयष्टि स्मरस्य ।

---

१ जयन्तविजय, ७/४४ ।
२ वही, ७/७४ ।

यदि भवति सबाणा बाणिनीभि सदासौ
त्रिभुवनमपि जेतु हेलयालभविष्णु ॥[1]

दोलान्दोलन के पश्चात कवि ने पुष्पावचय का वर्णन किया है। कवि के शब्दो मे—

त्वरितमथ जयन्तीनाथसूनु प्रसूना-
वचनविरचनाय प्रेयसी चक्रवालै ।
मधुरवचनवीचिप्रेरित सचचार
प्रिययुवतिवशे वा किं न यूना मनासि ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् जयन्तीनाथ के पुत्र जल्दी से फूलो के चयन के लिए प्रेयसियो के मधुर वचनो से प्रेरित होकर चलने लगे क्योकि क्या युवको के मन प्रिय युवतियो के वश मे नही होते है ? अर्थात् अवश्य होते है ।

कवि अभयदेव ने प्रस्तुत प्रसङ्ग मे शृङ्गारिक चेष्टाओ की भी योजना की है, क्योकि कोई स्त्री एक पैर लीलापूर्वक पेड की मूल मे रखकर और कोमल दोनो भुजाओ को स्कन्ध देश मे डालकर सरस सुरति केलि के बताये गये मार्ग से प्रियतम के ऊपर की भाँति ऊँचे वृक्ष पर चढ गयी—

चरणकमलमेक पादमूले सहेल
मृदुभुजयुगल च स्कन्धदेशे निवेश्य ।
सरससुरतकेलि प्रोक्तमार्गेण काचि-
त्प्रियमिव तरुमुच्चैरारुरोहायताक्षी ॥[3]

उपवन मे पुष्पित वृक्षो पर भौरे गुञ्जार कर रहे है। प्रत्येक भौंरा सर्वप्रथम रस का पान करने के लिए पुष्प पर बैठना चाहता है किन्तु आपसी कलह के कारण वह पुष्प टूट कर पृथ्वी पर गिर जाता है। कवि अभयदेव इसका कारण कुसङ्गति का प्रभाव ही बतलाते है—

कुसुममधिरसान्द्रैरावृत तत्रपत्रै
परमपरिमलाढ्य सस्वन सचरद्भि ।
मधुकर निकुरम्बै क पिबेत्यावचिक्ये
भवति हि मलिनाना सगमो भङ्गहेतु ॥[4]

अर्थात् वहाँ पर रस से युक्त पत्तो से ढके हुए अत्यन्त सुगन्ध से युक्त पुष्प शब्द करते हुए भ्रमर समुदाय के द्वारा 'रस का पान कौन करे ?' इस अभिलाषा से तोड डाला गया। सच है, कि मलिनो का साथ विनाश का कारण होता है।

---

१ जयन्तविजय, ८/५ ।
२ वही, ८/६ ।
३ वही, ८/१६ ।
४ वही, ८/२० ।

कवि अभयदेव द्वारा वर्णित प्रस्तुत प्रसङ्ग शृङ्गार रस के परिपोष मे भी सहायक है क्योकि जयन्त की शृङ्गारिक चेष्टाओ का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

कुवलयदलनेत्रा　पक्वनारङ्गनव्य-
　त्वगुदित रसधाराक्षेपतो व्याकुलाक्षीम ।
विदधदथ जयन्तोऽन्या चुचुम्बेतदग्रे
　गुरुरिह चतुरत्वे कामदेवोऽस्य नूनम् ।।[१]

अर्थात् इसके पश्चात् किसी नायिका के सामने पकी हुई नारगी के नवीन वल्कल से निकले हुए रस की धारा के गिराने से उसे व्याकुल नेत्र वाली करते हुए जयन्त ने कमलदल के समान नेत्रो वाली दूसरी का चुम्बन किया । निश्चय ही इस क्रीडा की चातुरी मे कामदेव ही इसका गुरु ठहरा ।

इसी प्रकार—

कुचकलश नितम्बस्तम्बभारेणनम्रा-
　स्खलितगतिपदाब्जा बालवृक्षात्पतन्ती ।
त्वरितमथ भुजाग्रे कापि कान्तेन दध्र
　धुरितु सुभगकान्ता चक्रवालस्य बाला ।।[२]

अर्थात् स्तन रूपी कलश और नितम्ब के समूह के भार से नम्र लडखडाते हुए कमल रूपी पैर वाली बाल वृक्ष से गिरती हुई किसी नायिका को प्रिय ने दौडकर जल्दी हाथो मे ले लिया । यह बाला वास्तव मे सौभाग्यवती स्त्रियो मे अग्रगण्य थी ।

इसके पश्चात् स्त्रियाँ शीघ्र ही सुगन्ध से युक्त फूलो को तोडकर पेडो से नीचे उतर आयी । उनके बजते हुए पायल मानो यह कह रहे थे कि कुस्थित वैभव का नाश क्या नही होता अर्थात् अवश्य होता है—

उदतरदवचीयस्त्रैणमाशु　द्रुमेभ्य
　कुसुमपटलि माढ्य भावुक सौरभेण ।
व्रजति किमु न नाश वैभव कुस्थिताना-
　मिति वददिव नादैर्मञ्जुमञ्जीरकाणाम् ।।[३]

पुष्पावचय के अनन्तर कवि ने जलकेलि का वर्णन भी प्रस्तुत किया है । यह वर्णन अनेक स्थलो पर पूर्वाचार्यों यथा—कालिदास, माघ तथा भारवि के जल-

---

१ जयन्तविजय, ८/२१ ।
२ वही, ८/२३
३ वही, ८/२५ ।

क्रीडा वर्णन के प्रसङ्गो से साम्य रखता है। साथ ही काव्य मे शृङ्गार के सुष्ठु परिपोष मे भी सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ—रमणियो के जल प्रवेश का निम्नलिखित वर्णन प्रस्तुत है—

मधुरसविभवेन स्पर्द्धते नो धराग्रै-
रुणिमसुकुमारत्वेन पाणिप्रवालै ।
कमलवनमितीवासूय योत्पाटयन्ती-
रविशदथ जयन्तस्ता पुरस्कृत्य तत्र ।।[1]

अर्थात् मधुरस के विभव के द्वारा यह कमल हमारे अधरो से स्पर्धा करते है तथा अरुणिमा और सुकुमारता के द्वारा प्राणि प्रवाल से स्पर्धा करते हैं। इसी लिए कमलवन को अत्यन्त ईर्ष्या से उखाडती हुई उन स्त्रियो को आगे करके जयन्त ने प्रवेश किया।

अपि च—

मधुभिरिव विवृद्धै पुण्यलावण्यपूरै-
रलिभिरिव विलोलैर्लोचनैश्चाप्तशोभै ।
पयसि विदधुरास्यै कण्ठदघ्नेतदानी-
मपरकमलखण्डाडम्बर तास्तरुण्य ।।[2]

अर्थात् बढे हुए पुण्य लावण्य से मधु की भाँति और चञ्चल नेत्रो की शोभा से भ्रमरो की भाँति तरुणियो के मुखो ने कण्ठ तक जल भरे होने के कारण दूसरे कमल वन के आडम्बर को धारण किया।

यहाँ पर तरुणियो के मुखो को कमल की भाँति बताया गया है क्योकि यदि कमल पराग युक्त होते हैं, तो उनके मुखो मे अपरिमित लावण्य है। कमलो पर भ्रमर गञ्जार करते है, उनके नेत्रो मे भ्रमरो की कान्ति है। कमल सदैव जल के ऊपर रहता है उसी प्रकार उनका मुख जल के ऊपर है। फलत उनका मुख दूसरे कमल वन के आडम्बर को धारण कर रहा है।

जलक्रीडा का एक अन्य रमणीय चित्र भी उपस्थित है

तरति हृदि वहन्ती विश्वविश्वभराया
भरमपि भुजदण्डैर्बिभ्रत प्राणनाथम् ।
सरसि जलमगाध कापि कान्ता न चित्र
पृथुतरकुचतुण्डीडम्बरालम्बना हि ।।[3]

अर्थात् विश्व का भरण-पोषण करने वाली पृथ्वी के भार को भुजदण्डो मे धारण करने वाले प्राणनाथ को हृदय मे वहन करती हुई कोई स्त्री अगाध जल

---

१ जयन्तविजय, ८/३५ ।
२ वही, ८/३६ ।
३ वही, ८/४० ।

वाले तालाब को तैर जाती है तो इसमे कोई आश्चर्य नही है क्योकि बड़े कुचो की तुण्डी का आडम्बर ही इसका अवलम्बन है ।

यहाँ पर यह बतलाया गया है, कि वह नायिका अपने हृदय मे अपने प्राण-नाथ को धारण करती है तथा उसके प्राणनाथ ने सम्पूर्ण पृथ्वी के भार को धारण किया है । अत उसका शरीर भारी हो जाता है । फलत वह आसानी से तैर नही सकती है किन्तु उसके बडे कुचो की तुण्डी का आडम्बर उसके तैरने मे सहायक बन जाता है और वह आसानी से तैर जाती है ।

इस प्रकार जयन्तविजय मे वर्णित दोलान्दोलन, पुष्पावचय तथा जलकेलि वर्णन रस एव वर्णन निपुणता की दृष्टि से उत्कृष्ट है । कवि अभयदेव ने अपनी प्रतिभा तथा वर्णन कौशल की चातुरी द्वारा मार्मिक भावनाओ का चित्रण उपस्थित किया है ।

प्रयाण वर्णन

महाकवि दण्डी के अनुसार महाकाव्य मे युद्धार्थ प्रस्थान भी वर्णनीय है ।[1] इसलिए कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के नवम, दशम, एकादश तथा चतुर्दश सर्ग मे युद्धार्थ सेनाओ के प्रस्थान का वर्णन किया है । प्रस्तुत वर्णन परम्परागत है । संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियो ने युद्धार्थ राजाओ के प्रस्थान के समय जिस प्रकार कोलाहल, रणभेरी की ध्वनि, अश्वखुरो से उडती हुई धूलि एव सेना की भीषणता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है उसी प्रकार का वर्णन इस महाकाव्य मे दृष्टि गोचर होता है । यह वर्णन 'रघुवश' के चतुर्थ सर्ग मे वर्णित रघु के दिग्विजय के लिए प्रस्थान, 'नैषध' के प्रथम सर्ग मे वर्णित नल के प्रस्थान तथा 'शिशुपालवध' के द्वादश सर्ग मे वर्णित श्री कृष्ण के प्रयाण का स्मरण कराता है तथापि वर्णन-कौशल तथा कल्पना-चातुरी की दृष्टि से वर्णन सर्वथा मौलिक है ।

कवि अभयदेव ने प्रयाण के अवसर पर सर्वप्रथम सेना की भीषणता तथा रणभेरी के शब्द का वर्णन किया है । उदाहरणार्थ एक श्लोक प्रस्तुत है—

विश्वभराभारभराय भूयस्तथा स्वसैन्यैरभवत्कुमार ।
फणैरशेषैरपि शेषराजो यथावनम्रै कथमप्यधत्ताम् ॥[2]

अर्थात् उस समय कुमार (जयन्त) अपनी सेनाओ से पृथ्वी के भार को बढाने वाले हुए तथा झुके हुए अशेष फणो से शेषराज भी किसी प्रकार पृथ्वी के भार को धारण कर सके ।

---

१ काव्यादर्श, १/१७ ।
२ जयन्तविजय, १०/१३ ।

इसी प्रकार रणभेरी का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव कहते हैं—

रमाकुचस्पर्शसुखेन शायिन मुकुन्दमप्यम्बुनिधौ विविप्रयन् ।
निदेशतो विक्रमसिंह भूपते प्रयाणभेरीध्वनित ततोऽभवत् ।।[1]

अर्थात् इसके पश्चात् विक्रमसिंह के आदेश से समुद्र मे रमा के कुच के स्पर्श से सुखपूर्वक शयन करने वाले मुकुन्द को भी विकृत करते हुए प्रयाण की भेरी ध्वनित हुई ।

यहाँ पर अतिशयोक्ति के माध्यम से कवि की कल्पना शक्ति व्यक्त हुई है । शेषनाग भी सेनाओ के भार से बोझिल पृथ्वी को धारण करने मे समर्थ न हो सके । इसीलिए झुककर उन्होने किसी प्रकार उसके भार का वहन किया तथा प्रयाण की भेरी की ध्वनि से जब समुद्र मे निवास करने वाले भगवान् विष्णु भी शयन न कर सके तो सामान्य व्यक्ति के लिए कहना ही क्या ? इस प्रकार यहाँ पर सेना तथा ध्वनि की भीषणता व्यक्त हुई है ।

प्रयाण के अवसर पर रणभेरी के शब्द का वर्णित एक अन्य स्थल भी अवलोकनीय है ।

भेरीरवस्तत्र समुल्ललास तथा यथा ध्यानजुषा मुनीनाम् ।
स सभ्रमाणा करपङ्कजेभ्यो द्रुत निपेतु स्फटिकाक्षमाला ।।
तत्रैककाल परिवाद्यमान निश्वान भेरी पटह प्रणादै ।
सस्थापिता सारथिना त्रसन्त कथ कथचित्तरणेस्तुरङ्गा ।।[2]

अर्थात् वहाँ पर उस प्रकार भेरी-रव सुनायी पडा कि जिससे ध्यानलीन मुनियो के करकमलो से शीघ्र हो स्फटिक अक्षमाला गिर पडी तथा एक ही समय मे बजने वाली शब्दपूर्ण भेरी तथा पट की ध्वनि से डरे हुए सूर्य के घोडे किसी प्रकार से सारथी के द्वारा रोके जा सके ।

मुनियो की ध्यानमग्नता सर्वविदित है, किन्तु जब उनके हाथ से भी भेरी रव सुनकर अक्षमाला छूट गयी तो वहाँ पर उस समय उपस्थित मनुष्यो पर उस ध्वनि का क्या प्रभाव पडा होगा ? इसी प्रकार जब सूर्य का सारथी भेरी तथा पट की ध्वनि से डरे हुए घोडो को बडे प्रयत्न से रोक पाया तो यहाँ के घोडो तथा सारथियो की क्या दशा हुई होगी ? इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर भी ध्वनि की भीषणता व्यक्त हुई है ।

प्रयाण के अवसर पर मुहूर्त का सम्यक् विचार भी लोक-विश्वास पर आधारित है । इसी लिए शकुन तथा अपशकुन का महत्त्व सस्कृत कवियो के महाकाव्यो

---

१ जयन्तविजय, ६/५६ ।
२ वही, १४/६,११ ।

मे परिलक्षित होता है । कवि अभयदेव भी इसी भावना से प्रभावित है । उनका कहना है—

तथाप्यवज्ञाय तदीयमन्त्रित प्रयाणमाधत्त मदोद्धतस्तत ।
अरिष्टससूचित मृत्युरप्यसौ विलघ्यते कैर्भवितव्यताथवा ॥[१]

अर्थात् मदोद्धत राजा ने मन्त्रियो की मन्त्रणा की अवहेलना कर प्रस्थान किया यद्यपि उसे अरिष्टो की सूचना से मृत्यु की सभावना हो रही थी अथवा भवितव्यता को किसके द्वारा भेजा जा सकता है ।

प्रयाण के अवसर पर राजा के अश्वो का वर्णन भी अनेक श्लोको मे किया गया है । यह वर्णन नैषध मे किये गये नल के अश्व-वर्णन का स्मरण दिलाता है—

तुरङ्गमास्तस्य चतु समुद्री रज समाजै स्थलता नयन्ति ।
खुरोद्धतैर्दातुमिवावकाशमपारनासीर पर पराणाम् ॥
मत्तोऽधिक तच्छिबिर ह्रियेति विस्तार्यपिव्योम तदाविलम्बम् ।
लीन तदीयाश्वखुरोत्थधूली पटीकुटीकोटरकोणकोटौ ॥[२]

अर्थात् मानो उसके घोडे खुरो से उडाई गयी धूलि से सेनाओ की परम्परा को अवकाश देने के लिए चारो समुद्रो को स्थल बना रहे है । 'मुझसे बढकर इसके शिविर है' इस लज्जा से लज्जित होकर आकाश शीघ्र उसके घोडो के खुरो से उडाई गयी धूलि के पट के कुटी के कोटर मे क्रोड मे लीन हो गया ।

यहाँ पर घोडो के खुरो से उडाई गई धूलि से समुद्र स्थल बन गया है तथा आकाश लज्जित होकर छिप गया है । अत उत्प्रेक्षा अलकार द्वारा भावी विजय प्राप्ति रूप वस्तु ध्वनित हो रही है ।

सेना की भीषणता का वर्णन करते हुए भी कवि का कथन है, कि सम्पूर्ण जल का शोषण करने वाली सेना के उपस्थित होने पर क्षारता ही समुद्र के जल की रक्षिका हुई । इसीलिए समुद्र ने उस क्षारता की ही स्तुति की

उपस्थितोऽपि मशोषे पानद्यो रस्य सैन्यत ।
रक्षिका क्षारतैवेति तुष्टुस्तातुष्टुवेऽम्बुधि ॥[३]

यहाँ पर हेतु अलङ्कार है, क्योकि समुद्र के जल की रक्षा उसकी क्षारता के कारण हुई है । अन्यथा सेना के जलपान के कारण समुद्र सूख जाता है । इस प्रकार कवि ने अतिशयोक्ति के माध्यम से सेना की विशालता को प्रदर्शित किया है ।

---

१ जयन्तविजय, ६/५२ ।
२ वही, १०/७,१० ।
३ वही, ११/१४ ।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रयाण वर्णन प्रस्तुत किया है, जो कि काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है ।

युद्ध-वर्णन

महाकवि अभयदेव द्वारा विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे युद्ध-वर्णन का भी विशेष महत्त्व है, क्योकि इस महाकाव्य का अङ्गीरस वीर है । इसमे चार स्थलो पर युद्ध का सजीव चित्रण किया गया है । सर्वप्रथम चतुर्थ सग मे राजा विक्रमसिंह तथा एक योगी के मध्य मे युद्ध वर्णित है । दूसरे, दशम सर्ग मे सिंहलभूपति हरिराज तथा विक्रमतनय जयन्त के मध्य मे । तृतीय, युद्ध का स्थल युवराज जयन्त का दिग्विजय के लिए प्रस्थान है । वह मार्ग मे कलिङ्ग, केरल, पाण्ड्य, काञ्ची नरेश, कर्णाटक नरेश तथा हूण राजाओ पर विजय प्राप्त करता है । इसके पश्चात् युद्ध का चतुर्थ स्थल चतुर्दश सर्ग है, इसमे महेन्द्र चक्रवर्ती तथा जयन्त के मध्य युद्ध का वर्णन किया गया है । कवि द्वारा प्रस्तुत युद्ध वर्णन वीर रस के साथ ही भयानक, वीभत्स तथा रौद्र रस की अभिव्यक्ति मे भी सहायक सिद्ध हुआ है । यह वर्णन इतना सुन्दर एव सजीव है, कि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि स्वय ही प्रत्यक्ष युद्ध का द्रष्टा रहा होगा अन्यथा इस प्रकार का सजीव चित्रण करने मे वह कैसे समर्थ होता ? कवि के शब्दो मे युद्धस्थल यमराज की सगीतशाला है, क्योकि युद्धस्थल मे रथ के पहिये से उत्पन्न ध्वनि ही वाद्य है, हाथियो का चिङ्घाडना ही कण्ठनाद है तथा मारे गये वीरो के कबन्ध ही नर्तक है -

> रथाङ्गधीरध्वनिनादमुद्यत्प्रहारकूजत्करिकण्ठनादम् ।
> नृत्यत्कबन्ध समराङ्गण तत्कृतान्तसगीततुलाप्रपेदे ॥[1]

यहाँ पर उपमा अलङ्कार है, क्योकि युद्धस्थली को यमराज की सगीत शाला के सदृश बताया गया है । सगीतशाला मे वादक वाद्य बजाते हैं । यहाँ पर रथ के पहिये से उत्पन्न गम्भीर ध्वनि ही वादक का वाद्य है । वहाँ पर गायक राग का मधुर कण्ठ से अलाप करते है । यहाँ हाथियो के कण्ठ से नि सृत आवाज ही कण्ठनाद है तथा सङ्गीतशाला मे जिस प्रकार नर्तक नृत्य करते है । उसी प्रकार युद्धस्थल मे तलवार से खण्डित वीरो के कबन्ध नृत्य कर रहे हैं ।

कवि अभयदेव की कल्पना उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब वह भयकर युद्ध को देखकर यह कल्पना करने लगते है कि महावत मानो यमराज को प्रसन्न करने के लिए वीरो की भेट चढा रहे है । कवि के शब्दो मे—

---

१ जयन्तविजय, १४/७० ।

गजेन्द्रात्स्वेपितैर्वीरैः स्वैरमाधोरणाबभुः ।
प्रीतये प्रेतनाथस्य प्रस्तुतोपायना इव ।।[1]

अर्थात् हाथियो से स्वतन्त्रतापूर्वक गिरते हुए वीरो द्वारा महावत यमराज की प्रसन्नता के लिए उपायन (भेंट) प्रस्तुत करते हुए प्रतीत हो रहे है ।

इसी प्रकार—

आधोरणैस्तीव्ररुष प्रयुक्ता करैः प्रवीरान्करिणोऽभिगृह्य ।
चक्रु समाक्रम्य वपु पदाभ्या शिर सरोजैर्बलिमन्तकाय ।।[2]

अर्थात् महावतो से प्रेरित अत्यन्त क्रोधी हाथी अपने शुण्डदण्डो से वीरो को पकडकर पैर से शरीर को दबाकर उसके शिर कमलो से यमराज के लिए बलि दे रहे है ।

इन दोनो श्लोको मे वर्णन साम्य है, क्योकि कवि ने एक ही भाव को दो स्थलो पर व्यक्त किया है । प्रथम श्लोक मे यदि महावत यमराज को प्रसन्न करने के लिए वीरो की भेट चढा रहे है तो द्वितीय श्लोक मे महावतो से प्रेरित क्रोधी हाथी अपने शुण्डदण्डो से वीरो के शिरो को कमल की भाँति यमराज के लिए भेट स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं ।

युद्धस्थल मे प्रयुक्त होने वाले विविध प्रकार के आयुधो का वर्णन भी प्रस्तुत महाकाव्य मे किया गया है—

नाराचबाणासिभुसण्डिभल्ली चक्रार्धचक्रप्रमुखास्त्र शस्त्रैः ।
भूमण्डली खण्डितवीरमुण्डमालाकुलालोहितपङ्किलाभूत् ।।[3]

अर्थात् वहाँ की भूमण्डली तरकस से निकले हुए वाण, असि, भुसुण्डि, भल्ली, चक्र और अर्धचक्र इत्यादि अस्त्र-शस्त्रो से कटे हुए वीरो की मुण्डमाला से भर कर रक्त से लाल कीचड काली हो गयी । इन आयुधो के अतिरिक्त तुमुल[4], तोमर[5], गजास्त्र[6], पञ्चाननास्त्र[7], शरभास्त्र[8], आग्नेयमस्त्र[9], पाथोधरास्त्र[10], वायव्यमस्त्र[11], पवनाशनास्त्र[12], पत्ररथेन्द्रसञ्ज्ञम्[13], तिमिरास्त्र गुञ्जामुखम्[14], प्रद्योतनास्त्र[15],

---

१ जयन्तविजय, ११/६६ ।
२ वही, १४/६६ ।
३ वही, १०/४३ ।
४. वही, १०/३६ ।
५ वही, १०/६५ ।
६ वही, १४/७८ ।
७ वही, १४/८० ।
८ वही, १४/८२ ।
९ वही, १४/८४ ।
१० वही, १४/८६ ।
११ वही, १४/८८ ।
१२ वही, ११/९० ।
१३ वही, १४/९२ ।
१४ वही, १४/९४ ।
१५ वही, १४/९६ ।

तथा त्रिपुरान्तकास्त्र,[1] का प्रयोग भी जयन्तविजय महाकाव्य में मिलता है। जिससे तत्कालीन शस्त्रास्त्रो के विषय मे ज्ञान प्राप्त होता है।

युद्ध वर्णन के प्रसङ्ग मे कवि अभयदेव ने गजयुद्ध तथा अश्वयुद्ध के साथ ही साथ रथ युद्ध का भी सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है जो वास्तविकता पर आधारित प्रतीत होता है—

योधेप्रसिद्धैर्युयुधेरिसौधै सहाश्ववारै सममश्ववारै।
रथि प्रवीरैरथिकैश्च सार्धं समानकक्षैर्जयबद्धलक्षै ॥[2]

अर्थात् प्रसिद्ध शत्रुओ के साथ शत्रु, असवारो के साथ असवार और रथी के साथ रथी समान कक्ष मे जय के लक्ष्य को बाँधते हुए युद्ध मैं डट गये।

रथ युद्ध का एक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है—

प्रमादिन वीक्ष्य विपक्षवीरमरातिसूत प्रयत प्रहर्तुम्।
तदीयनिर्स्त्रिशहतोरुयुग्म सद्य प्रपेदेऽरुणसारथित्वम् ॥[3]

अर्थात् शत्रु के सारथी ने विपक्षी वीर को मारने वाले प्रमादी को देखकर उसके शस्त्र मे कटी हुई दोनो जाँघ के कारण शीघ्र ही अरुण के सारथित्व का प्राप्त किया। तात्पर्य यह है, कि सूर्य का सारथी पैरो से रहित है उसी प्रकार इस सारथी को भी विपक्षी शत्रु ने अपनी तलवार द्वारा पैरो से रहित कर दिया।

युद्धभूमि मे भी सेनाओ की अनन्तता के कारण सर्वत्र अन्धकार व्याप्त है। उस अधकार मे दिखायी न पडने के कारण वीरो के अस्त्रो के परस्पर टकराने से चिनगारियाँ उठ रही है, किन्तु कवि अभयदेव की कल्पना मे वह चिनगारियाँ चिनगारियाँ नही हैं अपितु वीरो को देखने के लिए विजय लक्ष्मी ने मानो दीपक जलाया है—

परस्परास्त्रसघट्टाद्रेक्षुरग्निस्फुलिङ्गका।
वीरैर्विलोकनायेव कृता दीपा जयश्रिय ॥[4]

अर्थात् आपस मे अस्त्रो के सघर्षण से उत्पन्न होने वाली अग्नि की स्फुलिङ्गो के बहाने से जयश्री ने वीरो को देखने के लिए मानो दीपक जलाया।

युद्धस्थल मे वीरो की तलवार के प्रहार से गिरने वाली गजमुक्तावली का भी कवि ने सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ श्लोक प्रस्तुत है—

भटस्य कस्यापि बभौ शितासिभिन्नेभकुम्भोच्छलितापतन्ती।
मुक्तावली मूर्द्धनि पुष्पवृष्टिर्मुक्तेवदेवैरवदान तोषात् ॥[5]

अर्थात् किसी वीर के शिर पर तीक्ष्ण तलवार से काटे गये गजमस्तक से

---

१ जयन्तविजय, १४/१०६।
२ वही, १०/४०।
३ वही, १४/५४।
४ वही, ११/७०।
५ वही, १०/४२।

उछलकर गिरी हुई मुक्तावली दान से तुष्ट देवताओ के द्वारा छोडी गयी पुष्पवृष्टि के समान सुशोभित हुई।

युद्ध मे सैनिको की वीरता के सम्मुख पराजित होकर पलायन करती हुई शत्रु सेना का कितना सुन्दर व सजीव वर्णन निम्नलिखित श्लोक मे हुआ है—

असीम सग्राम महार्णवेषु पारीणतां येऽपि ययु प्रवीरा.।
कल्पान्तवातैरिव तस्य शस्त्रैर्विनिन्यिरे तेऽपि दिशामुखेषु ॥[1]

अर्थात् असीम सग्राम युद्ध मे जो भी वीर विजेता थे वे भी महाप्रलय-कालीन वायु के समान उसके शस्त्रो से दिशाओ के मुखो मे पहुँचा दिये गये (अर्थात् भाग निकले)। यहाँ पर वीरो के शौर्य का वर्णन किया गया है जिसके परिणाम-स्वरूप विपक्षी वीरो को समराङ्गण छोडकर भागना पडा। इसी प्रकार कवि अभयदेव द्वारा वर्णित द्वन्द्व युद्ध का चित्र भी अत्यन्त सजीव बन पडा है। उदाहरणार्थ राजा विक्रमसिंह तथा योगिराज के मध्य होने वाले मल्लयुद्ध का वर्णन द्रष्टव्य है—

अपहृतासि पराभवकोपितस्तदनु योगिपति कृतसाहस।
चिरमयुध्यत मल्लयुधा क्रुधा नृपतिना सहदु सहतजसा ॥[2]

अर्थात् इसके बाद तलवार को छीनने के पराभव से क्रुद्ध साहसी योगपति ने क्रोध से अत्यन्त पराक्रमशाली राजा के साथ मल्लयुद्ध किया।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे युद्ध का सजीव चित्रण उपस्थित किया है।

सूर्यास्त वर्णन

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सूर्यास्त का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। सूर्यास्त का वर्णन कवि सम्प्रदाय सिद्ध प्रसिद्ध प्रतीको, सूर्य और कमलिनी, भ्रमर और नलिनी एव चक्रवाक और चक्रवाकी का आश्रय लेकर उत्प्रेक्षा, उपमा एव रूपक आदि अलङ्कारो के माध्यम से किया गया है। वर्णन परम्परा शैली मे उपनिबद्ध होते हुए भी माघ और श्रीहर्ष की अतिरंजित शास्त्रीय बहुज्ञता, पौराणिक व्युत्पत्ति, श्लेष और यमक की क्लिष्टता से शून्य होने के कारण सरल, स्वाभाविक एव काव्यत्व से परिपूर्ण है। दिवस भर तपनत्व का विस्तार करने के पश्चात् सूर्य अस्ताचल की ओर गमनशील हो जाते है। इस सम्बन्ध मे कवि ने एक अत्यन्त सरस परिकल्पना की है। दिन के अन्त मे सूर्य भगवान् का मण्डल निश्चय ही अस्ताचल को प्राप्त हुआ क्योंकि काल के परिणाम को प्राप्त करने वाले की स्थिति इसी प्रकार अत्यन्त दु खदायिनी होती है क्योंकि उच्च पद वाले की स्थिति भी स्थिर नही होती।

---

१ जयन्तविजय, १०/६२।   २ वही, ४/५८।

दिनावसाने दिनरत्नमण्डले निपातमाप द्रुतमस्तभूभृत ।
दुरन्यय कालविपाकमीयुष स्थिति स्थिरा नोच्चपदश्रियोऽपिहि ॥[१]

सूर्य मण्डल के अस्त हो जाने पर दिन भी अस्त हो जाता है क्योकि अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी अत्यन्त निर्मल हृदय वाला कोई व्यक्ति कृतज्ञता को नही छोडता । इसीलिए सूर्य से उन्नति को प्राप्त दिन उसके साथ ही अस्तता को प्राप्त होने लगा—

निजासु (जाशु) नाशेऽपि नितान्त निर्मल कृतज्ञता मुञ्चति नैव कश्चन ।
समुन्नति भानुमताधिरोपित सहैव तेनास्तमियाय वासर ॥[२]

काल कुचक्र मे पड जाने के कारण भी तेजस्वी हतप्रभ नही होते । कवि अभयदेव ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के द्वारा इसी भावना को व्यक्त किया है । उनका कहना है कि जो सूर्य पहले उदयाचल पर्वत पर मौलिमाणिक्य की कान्ति के समान, इसके पश्चात् आकाश गङ्गा मे स्वर्ण कमल के समान सुशोभित था वही अब पश्चिमी गिरि की लक्ष्मी के भाल मे तिलक बिन्दु के समान प्रतीत हुआ क्योकि अन्त मे प्रभा रखने वाला शरीरधारी (सूर्य) कहाँ मण्डन का कारण नही बनता —

प्रथममुदय शीले मौलिमाणिक्यकान्ति-
स्तदनु गगननद्या स्वर्णपद्मोपमोऽभूत् ।
रविरपर गिरिश्रीभालकालेय बिन्दु-
द्युतिरथ वमुरन्त स्फु क्व नो (?) मण्डनाय ॥[३]

सन्ध्या वर्णन

सस्कृत साहित्य के अन्य कवियो की भाँति ही कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सन्ध्या का रोमाचकारी वर्णन भी प्रस्तुत किया है । सूर्यास्त होने के पश्चात् दिङ्मण्डल अरुणिमा से व्याप्त हो जाता है । कवि अभयदेव की कल्पना है कि जिस प्रकार कोई सखी अपनी प्रिय सखी से मिलकर हर्षातिरेक से रागवती हो जाती है उसी प्रकार वारुणी दिशा ने दिन मणि सूर्य के चले जाने पर अपनी सखी रूपी सन्ध्या से मिलकर नवीन कुकुमो से किये हुए अङ्गराग के समान अरुणिमा को प्राप्त किया—

अथ स्वभर्त्तुर्द्युमणे समागमेऽरुणाङ्ग शोभा दिगवाप वारुणी ।
समेत्य सख्येव च सध्ययाद्भुत कृताङ्गरागेव नवीनकुकुमै ॥[४]

इसके पश्चात् सुन्दर कोमल नृप सुन्दरियो के बोलने वाले मञ्जु-मज्जीरको

---

१ जयन्तविजय, २/४५ ।
२ वही, २/४७ ।
३ वही, ८/४६ ।
४ वही, २/४४ ।

की आवाज के समान अनेक प्रकार के विहगो के कूजन से जागरूक, दशो दिशाओ की अरुणिम आभा वाले बादलो से युक्त करती हुई सन्ध्या प्रकट हुई—

दधति दश दिशोऽथ स्निग्ध सध्याभ्रशोणा
विविधविहगराजीकूजितो जागरूका ।
मसृणघुसृणभासा भूपते सुन्दरीणा
प्रतिकृतिमिह सिञ्जन्मञ्जुमञ्जीरकाणाम् ॥[1]

अन्धकार वर्णन

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अन्धकार का मूर्तिमान् रूप प्रस्तुत किया है। सूर्यास्त होते ही सर्पणशील अन्धकार शनै-शनै आकाश मण्डल को आच्छादित कर लेता है --

अथाम्बुधेरम्भसि भानुमण्डले
निलीय मानेऽरुणपङ्कजत्विषि ।
दिशा मुखेभ्यस्तदनु प्रधाविता
मधुव्रतव्रातनिभा तमस्तति ॥[2]

अर्थात् लाल कमल की कान्ति मे सूर्यमण्डल के समुद्रजल मे छिप जाने पर दिशाओ के मुख से भौंरो के समान अन्धकार दौडने (फैलने) लगा ।

अन्धकार की सघनता वस्तुज्ञान एव दिशाज्ञान दोनो का सर्वथा विलुप्तीकरण कर देती है। अतएव तिमिराच्छन्न दिशाओ के सम्बन्ध मे केवल कवि प्रतिभोत्थित सशय अथवा सभावना ही व्यक्त की जा सकती है। संस्कृत साहित्य के कवियो ने प्रगाढान्धकार वर्णन के सन्देह और उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया है। कवि अभयदेव के अन्धकार वर्णन मे भी उत्प्रेक्षा, सन्देह जैसे उपयुक्त अलङ्कार का प्राधान्य है। कवि कल्पना मे अन्धकार से व्याप्त आकाश मण्डल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो तमाल से मण्डित हो अथवा कुन्तल वर्ण की भ्रमरावलियो से समस्त ससार चुम्बित किया गया हो अथवा चारो ओर अजन मे राजपट्ट ही घटित कर दिया गया हो—

कलितमिव तमालै कुन्तलीकुन्तलाली-
रुचिभिरिव तताभिश्चुम्बित विश्वविश्वम् ।
स्थगितमिव समन्तादञ्जनै राजपट्टै-
र्घटितमिव चकामे व्याप्त मिद्धैस्तमोभि ॥[3]

प्रस्तुत स्थल मे वर्णित अन्धकार की कृष्णिमा एव सान्द्रता कवि की उत्प्रेक्षा मे और अधिक स्निग्ध एव कोमल हो गयी है जो शूद्रक की 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'[4] का स्मरण करा देती है,

---

१ जयन्तविजय, ८/४७ ।
२ वही, २/४६ ।
३. वही, ८/५१ ।
४. 'मृच्छकटिकम्', १/३४ ।

सर्वत्र विस्तृत निविड अन्धकार में कही कुछ दृष्टिगोचर नही हो रहा है। कालिमा से आच्छादित होने के कारण सभी दिशाएँ एक मे समाहित प्रतीत होती हैं। ऐसे समय मे ही अभिसारिकाओ को स्वेच्छापूर्वक रमण करने का अवसर मिलता है—

अभिनव मृगनाभीपङ्क क्लृप्ताङ्गरागा
भ्रमररुचिदुकूलैर्वेष मुद्रां दधाना।
मरकतकृत भूषा· पक्ष्मलाक्ष्य· सलील
रमणमभिसरन्ति स्वैरमिद्धे ऽन्धकारे ॥[1]

अर्थात् अभिनव कस्तूरी के पङ्क से अङ्गराग किये हुए, भ्रमर की कान्ति के समान साडियो से वेष मुद्रा को धारण किये हुए, मरकत मणि का आभूषण पहने हुए कमलनेत्रियां लीलापूर्वक बढे हुए अन्धकार में स्वेच्छापूर्वक रमणो का अभिसरण करती है।

मानवीकरण के रूप मे भी अन्धकार वर्णन में कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कवि अन्धकार मे एकछत्र राज्य करने वाले राजा का आरोप करता हुआ कहता है—

सपदि दधति जातैकातपत्र प्रभुत्व
जगति तिमिरराज्ञे लुप्तभूभृत्समाजे।
तरणितरुण वीरैस्तैरवस्कन्द हेतो-
रिव बहुविशिखाढ्यैर्भूरिदीपैरदीपि ॥[2]

अर्थात् भूभृत् समाज के लुप्त हो जाने पर शीघ्र ही ससार मे एकछत्र राज्य करने वाले अन्धकार को जीतने के लिए सूर्य के उन तरुण वीरो के समान बढी हुई विशिष्ट शिखा वाले दीपको ने अपना प्रभुत्व जमाया।

चन्द्रोदय वर्णन

कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अन्धकार के पश्चात् चन्द्रोदय का वर्णन यथाक्रम निर्दिष्ट किया है। चन्द्रोदय वर्णन मे विशेषत कवि ने रूपक, उत्प्रेक्षा एव समासोक्ति आदि अलङ्कारो का आश्रय लिया है। सूर्य के तपनत्व विस्तार रूप कार्य से वैराग्य ले लेने के अनन्तर ही ससार अन्धकाररूपी सागर मे निमग्न हो जाता है किन्तु इस अन्धकाररूपी शत्रु को शीघ्र ही अपने किरणरूपी भटो से चन्द्रमा जीत लेता है क्योंकि पृथ्वी पर धनवालों के लिए क्या साध्य नही है—

---

१ जयन्तविजय, ८/५२। २. वही, ८/५३।

तिमिररिपुजयाय प्रस्थितस्याथ राज्ञो
रुचिर किरणवीरै प्रोल्लसद्भि समन्तात् ।
जगदखिल मकारि क्षिप्रमेवाविपक्ष
किमिव वसुमता न क्ष्मातले साध्यमस्ति ॥[1]

उदयकालीन चन्द्र का वर्ण पाण्डु दिखलायी पडता है किन्तु क्रमश चन्द्र की पाण्डुता ईषत् रक्तिमा का स्पश करने लगती है। कवि की यह सम्भावना प्रस्तुत स्थल पर अत्यधिक सुन्दर एव उपयुक्त प्रतीत होती है—

क्षणमदधत पूर्वाशावधूवक्रपद्मे
घुसृण तिलकलक्ष्मीडम्बर चन्द्रबिम्बम् ।
तदनुकिरण मुक्ताजालकस्फीतशोभ
मदनधरणिभर्त्त पुण्डरीकश्रिय च ॥[2]

अर्थात् पहले चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पूर्व दिशारूपी वधू के मुख पद्म पर लगे हुए तिलक के समान प्रतीत हुआ और इसके पश्चात अपनी किरण की मोतियो के जाल से बढी हुई शोभा वाले विष्णु के कमल की सुन्दरता को धारण किया। प्रस्तुत स्थल मे पहले उदित चन्द्रमा की पाण्डुता की समता पूर्व दिशारूपी वधू के कमल मुख पर लगे हुए तिलक मे और थोडी देर बाद विष्णु के कमल से स्थापित की गयी है। इस प्रकार उपमा के माध्यम से प्रस्तुत दृश्य उपस्थित किया गया है।

इसके पश्चात् उचित कलाओ को धारण करने मे दक्ष चन्द्रमा ने ससार के नेत्रो के अन्धकार पटल के योग को हरण करने की इच्छा मे धीरे-धीरे क्रम मे अमृत-रूपी शलाका के समान अपनी रुचि (चाँदनी) को बिखेर दिया।

तिमिर पटल योग हर्तुकामो जगत्या-
स्तदनु च नयनानामौषधीश क्रमेण ।
अमृतमयशलाका सनिभा मन्दमन्द
रुचिमुचित कलाभृत्तत्र चिक्षेप दक्ष ॥[3]

चन्द्रमा मे प्रतिबिम्बित होने वाली कालिमा का भी कवि ने मनोहारी चित्र उपस्थित किया है क्योकि जब चन्द्र ने सम्पूर्ण जगत् को अन्धकार से रहित करने का व्रत लिया तो उस समय यह कालिमा अपने प्राणो की रक्षा के लिए अन्यत्र शरण न मिलने के कारण उसी चन्द्र मे जाकर छिप गयी।

चन्द्र की कामोद्दीपता कवि सम्प्रदाय मे प्रसिद्ध ही है। सयोग शृङ्गार मे

---

१ जयन्तविजय, ८/५८
२ वही, ८/५६।
३ वही ८/५४।

चन्द्र सुप्त काम को जाग्रत कर कामियो का मित्रवत प्रिय सम्पादन करता है । कामदेव ऐसे समय मे ही उन्हे अपने बाणो का लक्ष्य बनाता है—

भुवनमपतमिश्र सर्वतोऽपि प्रपेदे-
ऽभ्युदयमुदितराज्ये कौमुदी जीवितेशे ।
तदनु च कुसुमेषोर्मार्गणै पञ्चसख्यै-
रपि भुवनविजित्वैर्लक्ष्यतां को न नीत ॥[1]

अर्थात् कुमोदिनी नायक चन्द्रमा के राज्य के बढ़ने पर सारा संसार अन्धकार रहित होते हुए अभ्युदय को प्राप्त हुआ और इसके बाद त्रिभुवन विजयी पञ्चसख्या वाले कामदेव के बाणो का लक्ष्य कौन नही बना ।

किन्तु यही चन्द्र विप्रलम्भ शृङ्गार मे वियोगियो को विशेषत पीडित करता है । रात्रि के ऐसे समय मे कवि चकोर पक्षी का दृष्टात उपस्थित कर देता है । कही वह अपनी प्रियतमाओ की आवाज श्रवण मात्र से आनन्दित होते हैं तो कही स्मरण मात्र से बेसुध हो जाते है—

दधति मुदमुदारां क्वापि चञ्चच्चकोरी-
ध्वनि विघटिततन्द्राश्चन्द्रिकाया चकोरा ।
क्वचिदरतिमय ते चक्रवाका सशोका
सुखमसुखमिह स्यादात्मकर्मानुरूपम् ॥[2]

अर्थात् कही चाँदनी मे चञ्चल चकोरियो के बोलने की ध्वनि से टूटी हुई नीद वाले चकोरो ने अत्यन्त उदारपूर्ण आनन्द को धारण किया और कही पर शोकयुक्त चक्रवाक अरति को प्राप्त हुए क्योकि ससार मे अपने कर्म के अनुकूल सुख-दु ख होता है ।

पूर्ण चन्द्र का ललित वर्णन करने के उपरान्त कवि शोभाविहीन कमलिनी और प्रफुल्लित होती हुई कुमुदिनी को देखकर दार्शनिक बन जाता है । कवि की भावुकता चरम सीमा पर पहुँचकर विश्व का शाश्वत सत्य सामने रख देती है—

तिमिररिपुमयस्य प्रौढिमुल्लास्यदूर
कुवलयरमणीया चन्द्रिकासपद च ।
अपरदिशिचचाल क्षोणि पालायमान
कृतसकलविधेयो यामिनीकामनीश ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, ८/६२ ।

२ वही, ८/६० ।

३ वही, ८/६३ ।

अर्थात् यामिनी कामिनीश (चन्द्र) तिमिररूपी शत्रु की उद्दण्डता के साथ कुवलय की रमणीयता को दूर कर एवं चन्द्रिकारूपी सम्पत्ति को उल्लसित कर पृथ्वी पर दौडते हुए सारे ससार को अपना विधेय बनाकर पश्चिम दिशा की ओर चल पडा ।

कवि ने ससार के इस सत्य को भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है कि अपनी किरणो की शोभा के वैभव को नष्ट जानकर चन्द्र पश्चिमी पर्वत की चोटियो से शरीर को छिपाने की कामना से छिप गया क्योकि क्षीण धनवानो की लज्जा का विस्तार होता है—

विगलितवसुशोभावैभव स्वं विदित्वा
तदनु शिशिररश्मिर्जातविच्छायकाय ।
अपरगिरिशिरोभि काममन्तर्हितोऽभू-
द्विघटितविभवाना स्फूर्जित ह्रीपद हि ॥[1]

वास्तविकता तो यह है, कि लौकिक ससार मे प्रबल शत्रु को देखकर प्रतिद्वन्द्वी सामने से हट जाया करते हैं । इसी भावना को कवि ने प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है—

अनवरतमखण्ड मण्डल निष्कलङ्क
प्रथयति कमलाना काममुन्निद्रता च ।
अयमिति परिभाव्य क्ष्मापतेर्विक्रमस्य
प्रविशति हिमरश्मिर्लज्जयेवाम्बुराशिम् ॥[2]

अर्थात् 'इसका मण्डल निरन्तर अखण्डित एव निष्कलङ्क है और कमलो की उन्निद्रता को यथेष्ट विस्तृत करता है' इस प्रकार सूर्य के पराक्रम को जानकर चन्द्रमा लज्जा के वशीभूत होकर समुद्र मे प्रवेश करता है ।

इस प्रकार कवि अभयदेव द्वारा वर्णित चन्द्रोदय वर्णन नितान्त ही स्वाभाविक है ।

प्रभात वर्णन

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्रभात वर्णन की ओर अपनी विशेष अभिरुचि नही व्यक्त की है । यह वर्णन 'जयन्तविजयम्' महाकाव्य के अष्टम सर्ग मे हुआ है । प्रात काल होते ही हाथियो के हिलने से उनके शृखलाओ की खडखडाहट, अश्वशाला मे बँधे हुए घोडो की हिनहिनाहट एव बजने वाले मङ्गल वाद्य के निनाद से चतुर प्रिया की भाँति निद्रा ने नृपति जयन्त के नेत्रो को छोड दिया—

---

१. जयन्तविजय, ८/६४ । २ वही, ८/६५ ।

मागाना क्रमभृङ्खलाक्षणक्षणध्वानै प्रबोधक्षणे
सपत्सुन्दरमन्दुरोदरचरद्दप्ताश्व हेषारवै ।
माद्यन्मङ्गलतूर्यवर्यनिनदप्रोद्दाम लीलायितै-
स्तस्य क्षोणिपते प्रियेव चतुरा निद्रामुमुल्लोचने ॥[1]

निशावसान की स्निग्ध वेला मे चलने वाली वायु मानिनी नायिका के मान को भङ्ग कर देती है जिसके परिणामस्वरूप कामदेव की आज्ञा को पाकर वह स्वय ही अपने प्रियतमो का आलिङ्गन करने लगती है—

मानोत्तानतया सखीषु कलुषा प्रेङ्खोलरोषाश्चिरु
दूतीषु स्वयमानतेऽपि दयिते याश्चक्रिरे वक्रताम् ।
ता प्रातश्चरणायुधध्वनिमिभादाज्ञामिवाप्यस्मर-
क्षोणीशस्य समुत्सुका प्रियपरीरम्भ स्त्रियस्तन्वते ॥[2]

प्रिय के स्वय नत होने पर मान की वृद्धि से सखियो पर कलुषित, दूतियो पर बढे हुए रोषवाली जो स्त्रियाँ वक्रता को धारण किये हुए थी वे प्रात वायु के ध्वनि के बहाने उत्सुकतापूर्वक कामदेव की आज्ञा को पाकर अपने प्रियतमो का आलिङ्गन करने लगी ।

प्रात कालीन सूर्य उदयाचल पर्वत पर उदय होता है किन्तु कवि की कल्पना मे मानो वह अपने किसी विपक्षी शूर को देखने के लिए ही पूर्वी पर्वत पर चढ गया है—

माद्यन्मण्डलचक्रवालकलित स्थेय सुखश्रीकर
सख्यातीतरथश्चवैभवपद नक्षत्रलोपावहम् ।
शके सूरमपूर्वमीक्षितुमय त्व कौतुकीवाधुना
पूर्वक्ष्माधरमारुरोहन्नृपते पाथोजिनीवल्लभ ॥[3]

अर्थात् हे राजन् ! अपने मण्डल के चक्रवाल मे सुशोभित स्थिर सुख श्री वाला, असख्य रथ, अश्व और समृद्धि युक्त नक्षत्रो को लुप्त करने वाला, कौतुकी आपके समान यह कमलिनी नायक सूर्य अपूर्व शूर को देखने के लिए पूर्वी पर्वत पर चढ गया । ऐसा मैं मानता हूँ ।

सूर्य की किरणो के स्पर्श लाभ होते ही कमलिनी प्रफुल्लित हो जाती है । कमलिनी के दलो मे रात्रिपर्यन्त बन्दी रहने वाला भ्रमर स्वतन्त्र हो जाता है । प्रस्तुत प्रसङ्ग मे कवि ने प्रकृति मे मानवीय भावनाओ का आरोप किया है जिसके

---

१ जयन्तविजय, ८/६७ ।
२ वही, ८/६८ ।
३ वही, ८/७० ।

परिणामस्वरूप मानसिक विकारो एव भावनाओ की भी अभिव्यजना हुई है। कवि भ्रमर और सूर्य मे प्रेम, द्वेष, प्रतिशोध आदि भावनाओ का आरोप करते हुए कहता है—

मद्वल्लभा कैरविणीमुपेत्य चुम्बन्त्यमी रागवतेति राज्ञा।
अमोचयत्पङ्कज गुप्तिबद्धान्मित्र प्रभाते वसुभिर्द्विरेफान् ॥[१]

रात्रि मे भ्रमर कमलो के बन्द होने से कमल मे ही बन्द हो जाते हैं और प्रात काल सूर्य की किरणो का स्पर्श पाकर कमलो के विकसित होने पर बाहर आते हैं। इस प्राकृतिक तथ्य का कवि ने बडा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि की कल्पना मे इन भ्रमरो ने रात्रि मे चन्द्रमा को प्रेयसी कुमुदिनी का चुम्बन किया है। इसीलिए इनके इस अपराध के कारण चन्द्रमा ने इन्हे कमलरूपी कारागार मे बन्द कर दिया है किन्तु प्रात काल सूर्य अपनी किरणो द्वारा कमलरूपी कारागार को खोलकर उन्हे मुक्त करवाता है जैसे कोई राजा अपनी प्रेयसी के कामुक व्यक्ति को कारागार मे डाल देता है किन्तु उसका विरोधी धन लेकर उसे मुक्त कर देता है।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने पूर्ववर्ती महाकवियो की भाँति ही प्रभात का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है किन्तु अनेक स्थलो पर कवि की अनेक कल्पनाये नवीन एव मौलिक है।

सरोवर वर्णन

सस्कृत साहित्य के कवियो ने अपने महाकाव्यो मे सरोवर का अति रमणीय चित्रण भी प्रस्तुत किया है। कवि अभयदेव भी इसी प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सरोवर का रुचिर वर्णन प्रस्तुत करते है। कवि के शब्दो मे 'जहाँ पर ससार चक्र के कल्याण कमल का सार पद्माकर सुशोभित है जो अद्भुत सम्पत्तियो की रमणीयता की विश्राम-भूमि है—

ससार चक्रस्य चकास्ति सार पद्माकर शर्मसरोरुहस्य।
विश्रामभूमी रमणीयताया य सपदामास्पदमद्भुतानाम् ॥[२]

ऐसा वह सरोवर गम्भीरता मे वारिधि को भी तिरस्कृत करता है तथा दृष्टिपर्यन्त होने के कारण ससार मे सज्जनो को परमाह्लादित करता है—

प्रीति परा यत्र नयन्ति लोक सरासिचेतासि च सज्जनानाम्।
अदृष्टपर्यन्ततया श्रितानि गम्भीरतान्यक्कृतवारिधीनि ॥[३]

---

१ जयन्तविजय, ८/७१।
२ वही, १/३३।
३ वही, १/३७।

कवि की कल्पना उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब वह सरोवर पर मानवता का आरोप करता है और उसमे मानव की भाँति ही ईर्ष्या-द्वेष की भावनाएँ व्यक्त करता है—

यस्मिन्कटाक्षयन्तीव सरासि क्षीरसागरम् ।
नीलोत्पलदलैर्लोलरोलम्बपरिचुम्बितै ॥[१]

सरोवर मे कमल खिले हुए है । उन नील कमलो का परिचुम्बन चचल भ्रमर कर रहे है परिणामत वह दोलायमान हो रहे हैं । इस प्राकृतिक दृश्य का कवि ने अति सुन्दर निरूपण किया है । वह कहता है, कि खिले हुए नील कमल सरोवर के नेत्र है और चचल भ्रमर नेत्र मे रहने वाली काली पुतली हैं । इन्हीं नील कमल रूपी नेत्रो के द्वारा मानो वह सरोवर क्षीर सागर पर कटाक्ष कर रहा है ।

मानवीकरण के रूप मे प्रकृति का यह रूप पाठक के हृदय को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है क्योकि मानव के समान सरोवर भी मानसरोवर पर ईर्ष्या कर रहा है ।

सरोवर के जल की स्वच्छता का वर्णन करते हुए कवि का कहना है कि राहु के द्वारा ग्रसे जाने के भय से भयभीत होकर चन्द्रमा की चन्द्रिका ही मानो इसके जल के रूप मे निवास कर रही है किन्तु जन्मभूमि (आकाश) के छूट जाने के कारण उसे अत्यन्त दु ख हुआ है और उसी दु ख को वह लहरो की आवाज के माध्यम से व्यक्त कर रही है—

भयभरशिथिलाङ्गाद्द्राद्गुणा ग्रस्यमान
त्कथमपि पतिताधश्चन्द्रतश्चन्द्रिकेयम् ।
गगनपतनदु खात्क्रन्दमानेवयस्मि-
न्गुरुलहरिविरावैर्लक्ष्यतेऽम्भोमिषेण ॥[२]

जिस तालाब मे भय के भार से शिथिल अङ्ग वाले राहु से ग्रसी जाती हुई यह चन्द्रमा की चन्द्रकान्ति आकाश से किसी तरह गिरी हुई है जो कि गगन से गिरने के दु ख से रोती हुई गुरुत्तर लहरियो की आवाज सी प्रतीत हो रही है ।

ऐसे उस सरोवर मे निवास करने वाली लक्ष्मी द्वारा महाकाव्य के नायक जयन्त के गुणो का गान करवाने मे कवि अपनी अपूर्व शक्ति का परिचय देता है । कवि की कल्पना मे, सरोवर मे निवास करने वाली लक्ष्मी कमलरूपी नेत्रो से लीलापूर्वक पति की भाँति जयन्त को देख रही है । पवन द्वारा उत्प्रेरित तरङ्ग-

---

१ जयन्तविजय, ३/१४ ।

२ वही, ८/३३ ।

रूपी हाथो से नर्तन कर रही है तथा भ्रमरो के सुन्दर शब्दो के ब्याज से उनके गुणों का गान कर रही है—

रमण इव सहेलं श्रीजयन्ते पुरस्थे
कुवलयनयनै श्रीर्यत्र स पश्यतीव ।
पवनचलितवीचीबाहुभिर्नृत्यतीव
भ्रमरविरसनादैस्तद्गुणान्गायतीव ॥[१]

इस प्रकार कवि अभयदेव को महाकाव्यों मे वर्णित 'मानसरोवर', रामायण मे वर्णित 'पम्पा' तथा कादम्बरी मे वर्णित 'अक्षोद' इस सरोवर के सामने सार रहित प्रतीत होते हैं। निष्कर्ष यह है कि यह एक अत्यन्त पवित्र एव महत्त्वपूर्ण जलाशय है जिसकी दैनिक जीवन मे बडी उपयोगिता थी। इस प्रकार कवि अभयदेव द्वारा वर्णित यह जलाशय वर्णन अत्यन्त मनोहारी है।

ऋतु वर्णन

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे पूर्ववर्ती कवियो की भाँति ही षड्ऋतु परम्परा का निर्वाह किया है किन्तु वर्षाऋतु की हरीतिमा, शरद की निर्मलता, ग्रीष्म की उद्दण्डता एव बसन्त की मादकता ने कवि को अधिक प्रभावित एव आकर्षित किया है। अतएव विशेष रूप से इन ऋतुओं का ही वर्णन 'जयन्तविजयम्' महाकाव्य मे विशेष रुचिकारी एव रमणीय प्रतीत होता है।

वसन्त वर्णन

कवि ने सर्वप्रथम वसन्त ऋतु का वर्णन किया है। हर्ष और उन्माद के प्रतीक ऋतुराज वसन्त के आगमन मात्र से ही प्रकृति की रमणीयता का विस्तार हो जाता है। इसीलिए वन्दीगणो के जय-जयकार शब्द की भाँति पञ्चम स्वर से नाद करने वाली कोकिला कूज उठती है—

श्री वसन्तनृपते समागमे कोकिलध्वनिरुदच्छल … ।
बन्दिवृन्दवदनाम्बुजान्तर प्रोल्लसज्जयजयारवोपम ॥[२]

शीतल, सुरभित एव मन्द मलयानिल प्रवाहित होने लगती है—

केरली कुचतटी विलासिन कुन्तली चलित कुन्तलाञ्चला ।
सिहलीवदन चुम्बनप्रिया सचरन्ति मलयाचलानिला ॥[३]

अर्थात् केरल कामिनी के कुचतट पर विलास करने वाली, कुतल कामिनी के

---

१ जयन्तविजय, ८/३४ ।
२ वही, ७/२५ ।
३ वही, ७/२७ ।

चञ्चल कुन्तल के अञ्चल वाली, सिंहलद्वीप की कामिनी के मुख को चूमने वाली प्रिय मलयाचल की वायु प्रवाहित होने लगी।

बसन्त की कामोद्दीपकता लोकप्रसिद्ध है अतएव वसन्त के प्रसङ्ग मे संस्कृत कवियो ने वसन्त के प्रिय मित्र कामदेव का विविध प्रकार से वर्णन कर अपनी कला-चातुरी प्रदर्शित की है। इन स्थलो पर उनकी कल्पना का विस्तार सीमातिक्रमण कर गया है। एक से एक सुन्दर उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति आदि की सृष्टि हुई है। वसन्त ऋतु मे मानसरोवरो मे जल की कमी के कारण कमल सूखने लगते हैं। चम्पा के पुष्प विकसित हो जाते हैं। अत कामदेव उन जीर्ण-शीर्ण निर्गुण कमलो को छोडकर चम्पा के पुष्पो की चाप का आश्रय लेकर बलशाली हो जाता है—

> कौन्द पुष्पमपहाय जर्जर निर्गुणं धनुरजायताधिकम्।
> चम्पक प्रसवचापमण्डलीलाभलोलुभमना मनोभव ॥[1]

अर्थात् चम्पा के पुष्प की चाप के लीला के लाभ का लोभी कामदेव जीर्ण शीर्ण निर्गुण कमलो का छोडकर अधिक बलशाली हुआ।

इसीलिए भ्रमर समुदाय से चुम्बित चम्पा की कलियाँ पथिको को मारने के लिए कामदेव से बनाये गये विषैले वाण की भाँति सुशोभित हो रही हैं—

> चञ्चरीकनिकरम्बचुम्बिताश्चम्पकेषु कलिकाश्चकासिरे।
> मन्मथेन पथिकप्रमाथिना निर्मिता विषशिखा इवेषव ॥[2]

वसन्त ऋतु मे आम्र वृक्ष मे मञ्जरी आ जाती है। उन पर कोकिलें कूजने लगती हैं। कवि की कल्पना मे, सहकार वृक्ष की मञ्जरी का रसास्वादन कर बाल-कोकिलें विलासी जनो के लिए कामदेव के विजय धनु की टङ्कार को व्यक्त कर रही है—

> यद्विलिह्य सहकार मञ्जरी कूजिता किमपि बालकोकिलै।
> तद्बभार विषमेषुकार्मुकज्यानिनादपदवी विलासिषु ॥[3]

वसन्त ऋतु विरही जनो के लिए अत्यन्त दुखदायी होती है। इसकी सुभग छटा को देखकर उनके हृदय मे अपने प्रियतमो से मिलने के लिए उत्कण्ठा बढ जाती है किन्तु समागम न हो पाने के कारण वे अत्यन्त बेचैन हो जाती है। इसीलिए क्षीर सागर से उत्पन्न होने वाला चन्द्रमा अपनी अत्यन्त सुन्दर उज्ज्वल किरणो को बिखेरता हुआ भी उनके मन को हर्षित न कर अपितु मलिन ही करता है—

---

१ जयन्तविजय, ७/२६। २ वही, ७/३०।
३ वही, ७/२३।

क्षीरनीर नीधिचारिमुञ्जुल मुञ्चतापि करजालमुज्ज्वलम् ।
रोहिणीप्रणयिना विनिर्ममे स्वैरिणीजनमनो मलीमसम् ।।[1]

वसन्तश्री के बढने के साथ ही कामदेव कुसुम के शायक को छोडकर वायु को अपना शायक बनाता है और अधिक सौरभ वाले उसको धारण करते हुए पथिकों को निश्चय ही मार देता है—

मारुत शरमुपाददे स्मर कौसुम तमपहाय सायकम् ।
नूनमादधदनूनसौरभ मन्ममाथ मलयानिलोध्वगान् ।।[2]

कवि अभयदेव ने प्रस्तुत स्थल पर प्रकृति का मानवीकरण भी प्रस्तुत किया है । मल्लिका पुष्पो मे निकलने वाला मकरन्द ऐसा प्रतीत होता है । मानो प्रोषित-पतिकाओ की दुर्दशा को देखकर वह आँसुओ द्वारा अपने हृदय की व्यथा को प्रकट कर रहा है । जैसे कोई व्यक्ति किसी की दुर्दशा को देखकर द्रवीभूत हो जाता है और उसके नेत्रो से एकाएक अश्रुओ की धारा फूट पडती है । यहाँ पर कवि की प्रकृति भी मानव की भाँति सप्राण और स्पन्दनशील है । इसीलिए प्रोषितपतिकाओ को देख-कर आँसू बहा रही है—

अध्वगप्रणयिनीपु दुर्दशा वीक्ष्यते करुणयेह मल्लिका ।
रोदतीव विपुलाश्रुभिर्भृश स्पन्दमानमकरन्द बिन्दुभि ।।[3]

कवि अभयदेव द्वारा वर्णित इस दृश्य को भी हम कभी नही भूल पकते कि जब ऐसे सुभग समय मे चारो ओर नाना प्रकार के वृक्ष पुष्पित है किन्तु मधूक के वृक्ष अपने चारो ओर पत्र समुदाय को छोडे हुए 'हम आश्रितो से रहित हो गये है' ऐसा विचार कर दु खी होकर पृथ्वी पर गिर रहे है—

त्यक्तपात्रनिकर समन्ततश्चया (?) विरहितोऽस्मदाश्रय ।
इत्यमूनि मधुकानि दु खितानीव पेतुरवनीतले तत ।।[4]

कवि अभयदेव ने बसन्त और बसन्तश्री का वर्णन करने के लिए बसन्त को नायक एव बसन्तश्री को नायिका के रूप मे कल्पना करके किञ्चित् नवीनता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है । उनका कथन है कि जिस प्रकार स्मितमुखी कुल-कामिनी अनुराग सागर मे निमग्न होती हुई पति के आगमन पर स्निग्ध आत्म-हृदय को समर्पित करती है उसी प्रकार नवीन बसन्तरूपी प्रियतम के आगमन पर बकुल की श्री अनुराग के वशीभूत होती हुई सौन्दर्य की माला को समर्पित कर रही है—

---

१ जयन्तविजय, ७/३७ ।
२ वही, ७/३६ ।
३ वही, ७/४० ।
४ वही, ७/४७ ।

प्रेयसा नवसमागमे मधौ तत्क्षणोद्यदनुरागसागरे ।
अर्पयन्ति बकुलश्रिय' स्रज स्निग्धमात्महृदय च सुभ्रुव ॥[1]

यहाँ पर कवि ने बकुल श्री की सती स्त्री से उपमा देकर कोमल भावना की सृष्टि की है । कवि की यह कल्पना सुन्दर एव नवीन प्रतीत होती है ।

बसन्त ऋतु कामिनियो के लिए विशेष कष्टदायक क्यो होती है ? इसका कवि अभयदेव ने स्पष्ट उत्तर दिया है । उनका कहना है कि कामदेव जिस समय अशोक वृक्ष की शाखाओ पर दृष्टिपात करता है उस समय उसे भगवान् शङ्कर के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि का स्मरण हो आता है । अत अन्यत्र शरण न पाकर विलास की तरङ्गो से तरङ्गित अङ्गनाओ की शरण मे आ पहुँचता है—

वीक्ष्य पुष्पितमशोक शाखिन त्र्यम्बकाम्बकहुताशशङ्कया ।
उद्विलासलहरीस्तरङ्गिणीरङ्गना शरणिमादधे स्मर ॥[2]

प्रस्तुत स्थल पर कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है । कवि की कल्पना है कि प्रत्येक प्राणी अपनी रक्षा के लिए सुरक्षित स्थान की खोज करता है ।

बसन्त ऋतु मे शनै -शनै दिन दीर्घता को प्राप्त होने लगते है । इस सम्बन्ध मे कवि का कथन है, कि सूर्य काञ्ची प्रदेश की रहने वाली कामिनियो की काञ्चन की किंकिणियो की आवाज से जाग गया है तथा मृगनयनियो के लोकोत्तर दोलान्दोलन के कौतुक को देखने मे लीन हो गया है । उसके घोडे थक चुके हैं अत मन्द गति से जा रहे है । इसीलिए दिन अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं—

काञ्चीकाञ्चन किंकिणीरणरणत्काराप निद्रस्मर
दोलान्दोलन कौतुक मृगदृशामालोक्य लोकोत्तरम् ।
तत्रासक्तमना प्रयाति नलिनीकान्त प्रशान्तैर्हयै-
र्मन्दमन्दमतीव वृद्धिमधिका पुष्णन्त्यमी वासरा ॥[3]

अर्थात् काञ्ची की काञ्चन की किंकिणियो की आवाज से समाप्त निद्रा-वाला, मृगनयनियो के लोकोत्तर दोलान्दोलन के कौतुक को देखकर वहाँ पर आसक्त मनवाला नलिनीकान्त थके हुए घोडो से अत्यन्त मन्द-मन्द जाता है अतएव दिन अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

बसन्त ऋतु मे नायिका के पाद-प्रहार से अशोक वृक्ष के पुष्पित होने की ओर भी कवि अभयदेव की दृष्टि गयी है—

---

१ जयन्तविजय, ७/५० ।
२ वही, ७/५१ ।
३. वही, ७/७४ ।

स्त्रीणां पादप्रहारैः कुचकलशतटीताडनैरीक्षणाद्यै-
निश्चिन्तन्ये (?) प्यशोक प्रमुखविटपिना पुष्पराजिच्छलेन
व्यक्त कामानुराग प्रसरति पुलकै कामुकानामिवास्य
प्राज्ये राज्ये विलासातिशय इह मधौ कस्य धत्ते न चित्तम् ॥[1]

अर्थात् स्त्रियो के पैर के प्रहार, कुचकलशतरी के ताडन एव अवलोकन से निश्चयपूर्वक अशोक के पुष्पित होने पर, काम के बढे हुए राज्य मे यह मधुमास किसके मन मे विलासातिशयता को धारण नही करता ? यह विचित्र ही है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बसन्त के वर्णन मे कवि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है । उसका यह वर्णन परम्परागत होते हुए भी मौलिक भावनाओ से ओत-प्रोत है ।

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

बसन्त ऋतु के अनन्तर कवि अभयदेव ने क्रमानुसार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन प्रस्तुत किया है । ग्रीष्म ऋतु के आते ही सूर्य उग्र हो जाता है । 'जयन्तविजय' मे वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि 'वृक्षो पर दावाग्नि की भाँति भयकर परिताप का भार सूर्य के निकलते ही पृथ्वी पर उदित होता है । ऐसी निदाघ ऋतु क्या दुर्जन नही है ? (अर्थात् अवश्य ही दुर्जन है)

यदभिसगमत खलु मित्रतोऽप्युदयते परितापभरो भुवि ।
उपदवादिव वीरुधिदारुण किमु निदाघ ऋतु स न दुर्जन ॥[2]

ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्डता के कारण सम्पूर्ण जगत् सतप्त रहता है । किसी को शीतलता प्राप्त नही होती है । सृष्टि का सृजन करने वाले विधि ने ही इस ऋतु का विधान किया है । अत पुराण पुरुष होते हुए भी उन्हे अपनी मूर्खता के कारण पृथ्वी पर कलकित होना पडा है—

अकृत सृष्टिममुष्य सरस्वती सुचिर शोषकृतोऽपि ऋतोर्विधि ।
भुवि पुराणपुमानिति मन्दधीरति कलङ्कपद स ततोऽजनि ॥[3]

अर्थात् रसवती वसुन्धरा का भली-भाँति शोषण करनेवाली इस ऋतु का विधि ने सृजन किया इसीलिए पृथ्वी पर सबसे प्राचीन पुरुष होकर भी मन्दबुद्धि कहलाते हुए वे कलङ्कित हुए ।

ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की जो किरणे त्रिभुवन के लिए दु खदायी होती है । वही कमलनियो के लिए दु खदायी क्यो नहीं होती ? इस प्रश्न का हल कवि अपनी सूक्ष्म

१ जयन्तविजय, ७/७७ ।
२ वही, १८/२ ।
३ वही, १८/३ ।

निरीक्षण शक्ति द्वारा लौकिक संसार से ही खोज निकालता है। उसका कहना है कि 'प्रियतमाओ पर कौन कोमल नहीं होता ?' अर्थात् सभी होते हैं। इसीलिए सूर्य की किरणें कमलनियो के लिए दु खदायी नहीं होतीं—

दिनकर करदण्डनिपातनैस्त्रिजगतां परित परितापद ।
तदपि पङ्कजिनीष्वमृतायते प्रियतमासु न को हि मृदुर्भवेत ॥[1]

अर्थात् दिनकर अपनी प्रचण्ड किरणो के गिराने से त्रिभुवन को चारों ओर सतप्त करने वाले हुए किन्तु उनकी किरणो का निपातन कमलनियों के लिए अमृत तुल्य हुआ क्योकि औरतो पर कौन कोमल नही होता।

प्रस्तुत स्थल पर कवि ने प्रकृति पर मानवता का आरोप किया है जिसके परिणामस्वरूप समस्त मानवीय भावनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं। जिस प्रकार अपने अत्याचारो से ससार को त्रस्त करने वाला पुरुष भी अपनी प्रियतमा के प्रति कोमलता रखता है। उसी प्रकार सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणो से त्रिभुवन को सन्तप्त करता हुआ भी प्रेयसी कमलनियो के प्रति अमृत तुल्य शीतलता प्रदान कर रहा है।

ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन करते हुए कवि आगे भी कहता है—

पथिषु पान्थजनस्य चरेणवस्तपनतापवन नखपचा । (?)
स्फुरितवह्निकणैरिव वर्षिण सततगाश्वनितान्तमरुतुदा ॥[2]

अर्थात् पथिको के मार्ग मे नाखूनो को तप्त करने वाली, अग्निकणो के समान निरन्तर वर्षा करने वाली धूल सूर्य के ताप वन को सन्तप्त करती हुई निरन्तर ग्रीष्म जीवो के लिए दु खदायी हुई।

ग्रीष्म ऋतु मे दिन बडे एव रात्रियाँ छोटी होती है। इस सम्बन्ध में कवि अभयदेव का कहना है कि सूर्य ने अत्यन्त तृषाकुल की भाँति समस्त अवनी के रस का पान कर डाला है। अतएव उसका भार अत्यन्त बढ गया है जिसके परिणाम-स्वरूप उसके रथ मे जुते हुए अश्वो की गति धीमी हो गयी है। फलत दिन निश्चय रूप से बढ रहे हैं—

बहुतृपेव रसारसपानतस्तरणिरेष महाभरदुर्वह ।
अभवदस्य रथाश्वगति शनैर्ध्रुवमतो दिनवृद्धिरजायत ॥[3]

ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की गर्मी से स्त्रियो को बहुत कष्ट होता है अत इस कष्ट को शान्त करने के लिए वे प्रसाधन सामग्री का प्रयोग करती हैं। इस सम्बन्ध मे

---

१ जयन्तविजय, १८/४।
२ वही, १८/५।
३ वही, १८/६।

कवि का कथन है, कि सरस चन्दन के पङ्क के विलेपन से, सुपनसार के पराग की तरङ्गों से, शिशिरता आदि गुणो से, निरन्तर चलने वाले सुर और तक्र आदि निदाघ के शत्रुओ से, बादलो के समान कदली दल के मण्डपो से, कामदेव को जगाने के लिए निपुणता के पाडित्य से, निर्मल मोतियो के भूषण की भूषा से, चन्द्रमा की किरणो से, चन्द्रमा की रुचिर किरणो के कोरो से धोये हुए मधुर धरातल वाले उपवनो से, खिले हुए सुगन्धित कमल पराग से, तरगित पानी मे मुख के धोने से, अभीष्ट अन्य शीतलता से, कामोद्दीपक रसपूर्ण रसायनो के भोग के उपयोग लाकर भोगी जनो से ससार भर मे निदाघ ऋतु को शीघ्र दबाया गया -

सरसचन्दनपङ्क विलेपनै सुपनसारपरागतरङ्गितै ।
शिशिरतादिगुणै स्विभि (?) रञ्चितै सततगै सुरनक्रमहारिभि ॥
घननिभै कदलीदलमण्डपै स्मरविबोधनबन्धुर पण्डितै ।
विमलमौक्तिकभूषणभूषया तुहिनरश्मिरुचाच जलार्द्रया ॥
हिमरुचे रुचिरै करकोरुकैरुपवनैर्मधुधौतधरातलै ।
स्मितसरोजरज सुरभीभवन्न ' पयस्सु रयस्सु वमज्जनै ॥
अभिमतै शिशिरैरपरैरपि स्मरनरेन्द्ररसाढ्यरसायनै ।
जगति भोगिजनेन पुरस्कृतैर्लघुनिदाघ ऋतु परिभूयते ॥[1]

ग्रीष्म ऋतु मे कवि अभयदेव ने प्रपा का भी मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। मृगनयनियाँ कुम्भ के जल से प्रपा का निर्माण कर रही है। ऐसे सुभग अवसर पर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करते हुए युवको मे उनके कुचो के प्रति भी अद्भुत पिपासा उत्पन्न हो रही है—

व्यरचि यो मृगलोचनया प्रपा सुरभिकुम्भजलेन युवा तृष ।
लवणिमा मृतनिर्भरपानतोऽजनि स तत्कुचयो स्तृषितोऽद्भुतम् ॥[2]

कवि का मन निदाघ की प्रचण्डता से ऊब जाता है अत कतिपय श्लोको मे ही इस ऋतु का वर्णन समाप्त करता है। कवि का कथन है कि अपने शासन के द्वारा यह रतिसुन्दरी का प्रियतम अत्यन्त उग्रता को नही सहन कर सकता। इसीलिए मानो भय से काँपता हुआ यह उग्र ऋतु शीघ्र भाग गया—

न परमुग्रमय रतिसुन्दरी प्रियतम सहते निजशासनात् ।
इति भयादिव कम्पितमानसस्त्वरितमुग्रऋतु प्रपलायत ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, १८/७-१० ।
२ वही, १८/१२ ।
३ वही, १८/१५ ।

वर्षा ऋतु वर्णन

ग्रीष्म ऋतु के अनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन होता है। कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस ऋतु का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि वर्षा ऋतु का मानवीकरण करते हुए कहता है कि यह वर्षा ऋतु रूपी राजा निदाघ ऋतु को पराजित करने के लिए ही पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। जय-जयकार करने वाले मङ्गल पाठको की भाँति मयूरो के समूह इसका जय-जयकार कर रहे हैं। मेघो की आवाज के व्याज से ही विजय-दुन्दुभि बज रही है। मेघो के मध्य विचरणशील विषकण्टिका ही इसका चँवर है तथा पृथ्वी पर उगे हुए शिलन्ध्री पुष्पो के छत्र (आतप वारण) को यह धारण किये हुए है—

जयजयोन्मुखमङ्गलपाठकैरिव कलापिकुलै कलनादिभि ।
घनघनाघनघोषमिषेण च प्रसृमरैर्जयदुन्दुभिनि स्वनै ।।
जलदमध्यचलद्विशकण्टिकावनिमिषाच्चमरैश्च चलाचले ।
स्फुटशिलन्ध्रिततातपवारणैर्भुवि तपात्ययभूभृदवातरत् ।।[1]

वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव ने निदाघ की प्रचण्डता से तप्त पृथ्वी को नवीन जीवन प्रदान करने वाली सुधास्यन्दिनी जलधारा का भी मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है —

जलदवारिकणै परिचुम्बित नवकदम्बमुदञ्चितकेसरम् ।
अनुकरोति विलासिनमुच्चकै पुलकित दयितापरिरम्भणै ।।[2]

अर्थात् (वर्षा ऋतु ने) दयिता के आलिङ्गन से पुलकित विलासी की भाँति नये निकले हुए केसर वाले नवकदम्बो को जलद वारिकणो से परिचुम्बित किया। यहाँ पर भी मेघ के व्यवहार मे नायक के व्यवहार की प्रतीति हो रही है। जिस प्रकार कोई नायक बहुत दिनो के पश्चात् नायिका से मिलने के उपरान्त उसका चुम्बन करता है। उसी प्रकार मेघ ग्रीष्म के उपरान्त नवकदम्बो से मिल रहे हैं। अतएव उनके द्वारा चुम्बन करना स्वाभाविक ही है।

वर्षाऋतु कामोद्दीपक होती है। अतएव कवि अभयदेव ने कुछ वर्णन परम्परागत किये हैं। यथा—आतप को नष्ट करने वाला पयोधर अमृत वृष्टि से ससार को सुखी बनाता है किन्तु कामाग्नि से विरहिणियो को सन्तप्त करता है। वस्तुत विधि के विविध चरित्र की यही विशेषता है

भुवनमप्यमृतेन पयोधर सुखयति प्रहृतातपवैशस ।
विरहिणीर्दहति स्मरवह्निना पुनरहो चरित विविधविधे ।।[3]

---

१ जयन्तविजय, १८/१६-१७। २ वही, १८/२४।
३ वही, १८/२२।

इसीलिए तो मनस्विनी के स्पष्ट मान के खण्डन करने मे निपुण विलासी जगत के कामियो के उपकारी नव वारिद के आने पर उसका सम्मान किया जाता है। कवि के शब्दो मे—

जगविलाससमयेऽपि मनस्विनी स्फुरितमानविखण्डनपण्डिते ।
नवघनेबहुमानपरम्परा निशमभूदुपकारिणि कामिनाम् ॥[१]

केतकी की कामोद्दीपकता का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि स्पष्ट केतकी द्युति वाले कुटजों से बढी हुई कटाक्ष परम्परा वाली मुस्कुराती हुई यह बादलो की विभूति भूमण्डल पर सुशोभित हुई—

स्मितवती कुटजै स्फुटकेतकीद्युतिभिरिद्धकटाक्षपरम्परा ।
घनविभूतिरियं जगतीतले ललति रञ्जितकामनरेश्वर ॥[२]

प्रस्तुत स्थल पर भी कवि ने मेघ तथा केतकी पर नायक एव नायिका का आरोप किया है।

कवि अभयदेव ने वर्षाऋतु मे प्रवाहित होने वाली नदियो का भी मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है—पर्वत की चोटियो से गिरने वाली नदियो का जल-प्रवाह मानो त्रिलोक का उपकार करने से घूमते हुए बादलो के यश के समान सुशोभित हो रहा है—

गिरिशिर परिपातितरङ्गिणीतरलतुङ्गतरङ्गपय प्लव ।
त्रिजगतामुपकारितया भ्रमद्यश इव प्रतिभाति पयोमुच ॥[३]

इस प्रकार कवि अभयदेव द्वारा वर्णित वर्षाऋतु के वर्णन मे सरलता और स्वाभाविकता है तथा प्रसाद गुण ने उसके सौन्दर्य को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है।

शरद ऋतु वर्णन

वर्षा ऋतु के उपरान्त शरद ऋतु का आगमन होता है। कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शरद ऋतु का चित्रण करने मे अपनी विशेष सहृदयता एव सुरुचि का परिचय दिया है। शरत्कालीन दृश्य को कवि ने अत्यन्त रोचकता के साथ अनुप्रास, यमक तथा उपमा अलङ्कार के माध्यम से चित्रित किया है। काव्यगत अलङ्कारो के अतिरिक्त कवि का मन कमल समुदाय पर रमण करने वाले हस समूह मे रम जाता है कारण, कि इस ऋतु मे कमल समुदाय पर कलरव करने वाला हस समूह उस पर बलात् रमण करता है क्योकि गुणियो का सगम अत्यन्त इष्ट वस्तुओ पर धुरीणता को प्राप्त करता है—

---

१ जयन्तविजय, १८/२६।   २ वही, १८/२७।
३. वही, १८/२५।

इह मरालकुलं कमलाकरे सरभस रमते कलकूजितम् ।
विशदपक्षवतां गुणिसङ्गम. कलयतीष्टतरेषु धुरीणताम् ॥[1]

शरद ऋतु के आगमन मात्र से ही आकाश निर्मल हो जाता है। फलत विमल चन्द्र की कान्ति द्विगुणित हो उठती है। आकाशमण्डल मे व्याप्त नक्षत्र समूह भी ऐसा प्रतीत होता है कि मानो श्वेत मोती बिखेर दिये गये हों—

जलदबन्धनमुक्तिमहे विधो' स्नपयितुर्जलधेरिव वीचित' ।
पतितमुज्ज्वलमौक्तिकमण्डलं स्फुरति तारकचक्रमिषादिव ॥[2]

शरद ऋतु मे रमणीयता का विस्तार हो जाता है, क्योंकि वर्षाऋतु में उत्पन्न होने वाला कीचड दृष्टिगोचर नहीं होता है—

जगति पङ्कमकारि मम द्विषा जलभृता सरितश्च विवर्धिता ।
इति रुषेव रविस्तद शोषयत्प्रविदधेति तनूरबला हिता ॥[3]

अर्थात् ससार मे पङ्क ने मुझसे द्वेष किया था यौर नदियो को बढ़ाया था इसलिए कुपित होता हुआ सूर्य उसका शोषण करने लगा तथा अबलाओ के हित के लिए तनु शरीर धारण किया। प्रस्तुत स्थल पर कवि ने मानवीय व्यापारो का आरोप किया है क्योंकि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने विपक्षी का दमन करता हुआ स्वजनो पर अनुकूल रहता है उसी प्रकार सूर्य अपने विपक्षी का दमन करता हुआ भी अबलाओ का हितैषी है।

शरद ऋतु मे गोपाङ्गनायें जडहन धान से लहलहाते हुए खेतो की रक्षा करती हैं। उनके कोकिल कण्ठ से नि सृत ध्वनि तरुणो के लिए घातक हो सकती है। अतएव कवि की कल्पना मे मृगनयनी नवगोपिकायें हिरण आदि से कलमशाली (जडहन धान) वन की उसी प्रकार रक्षा करती हैं जिस प्रकार से कामदेव के बाणो के गिरने से नवसगम मे अपने कलरवो से तरुणो की रक्षा करती है—

कमलशालिवन नवगोपिका मृगदृश परिपान्ति मृगादित ।
कलरवैस्तरुणान्नवसगमे कुसुमसायकसायकपातत ॥[4]

शरद ऋतु मे शनै -शनै चन्द्रमा की शुभ्रता पीतिमा मे परिवर्तित हो जाती है किन्तु अभयदेव इसका कारण भी खोज निकालते हैं—

---

१ जयन्तविजय, १८/३६ ।
२ वही, १८/३७ ।
३ वही, १८/३८ ।
४ वही, १८/४३ ।

मृगदृशां कलगीतरसे निशि प्रसरतीह जगन्मुदमाययौ ।
मृगवियोगभिया मृगलाञ्छन. पुनरभूदतिपाण्डुवपुर्ध्रुवम् ॥[१]

अर्थात् रात मे मृगनयनियो के कलकलगीत रस के फैलने पर सारा ससार परम आनन्द को प्राप्त हुआ परन्तु चन्द्रमा हिरण के वियोग के भय से अत्यन्त पीले शरीर वाला फिर से हो गया ।

कवि अभयदेव को शरद ऋतु को नारी के रूप मे चित्रित करना विशेष प्रिय प्रतीत होता है । उन्होंने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शरद की कल्पना नारी के रूप मे की है—

जगति राजसि रक्षयमण्डलैर्धनसमृद्धिबलैश्चविभूषित ।
इति जयन्तनृप सुभगैर्गुणैर्हृतहृदा शरदा समुपासत ॥[२]

अर्थात् जयन्त राजा धन की समृद्धि और बल के अक्षय मण्डल से देदीप्यमान ससार मे विभूषित है इसलिए उसके शुभगुणो से आकृष्ट होकर शरद् ऋतु ने भली-भाँति उसकी सेवा की ।

कवि अभयदेव द्वारा की गयी यह कल्पना वस्तुत नवीन नही कही जा सकती । शरद् ऋतु की वधू के रूप मे कल्पना सस्कृत काव्य मे अनेक कवियो ने की है । सर्वप्रथम कविकुलगुरु कालिदास ने शरद ऋतु को बधू के रूप मे चित्रित किया है—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहसरवनूपुरनादरम्या ।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टि प्राप्ता शरन्नवधूरिवरूपरम्या ॥[३]

अर्थात् विकसित काँस के परिधान धारण किये हुए मत्त हसो की बाली के सुन्दर नूपुर पहने हुए, पके हुए धान से मनोहर शरीर वाली एव विकसित कमल रूपी मुख वाली शरद ऋतु नवविवाहिता रूपवती वधू के समान आ पहुँची ।

महाकवि भारवि ने भी शरद् ऋतु की वधू अथवा अङ्गना के रूप मे कल्पना की है—

धृतबिसवलयावलिर्वहन्ती कुमुदवनैकदुकूलमात्तबाणा ।
शरदमलतले सरोजपाणौ धनसमयेन वधूरिवाललम्बे ॥[४]

अर्थात् मृणालतन्तुरूप ककण को, कुमुदनी के वन रूप वस्त्र को एव बाण के पुष्पो को धारण करती हुई शरद्रूपी वधू के सुकोमल कर-कमलो का आलम्बन वर्षा ऋतु रूपी वर ने किया ।

---

१ जयन्तविजय, १८/४५ ।
२ वही, १८/४६ ।
३ कालिदास, ऋतुसहार, ३/१ ।
४ किरातार्जुनीय १०/२४ ।

भारवि के पश्चात् कवि माघ ने भी शरद् की वधू के रूप में कल्पना दो स्थलो पर की है। यथा—

सविकचोत्पलचक्षुषमैक्षतक्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव ।
शरदमच्छगलद्वसनोपमाक्षमघनामघनाशकीर्तन ॥[1]

अर्थात् जिनके कीर्तनमात्र से सम्पूर्ण पाप पुञ्ज नष्ट हो जाते हैं। ऐसे भगवान् कृष्ण ने विकसित कमलरूपी नेत्रो वाली एव नीचे गिरते हुए निर्मल वस्त्रों के समान श्वेत मेघो से युक्त शरद् ऋतु को रैवकत (राजा) के अङ्क मे विराजमान स्त्री की भाँति देखा।

अपि च—

विलुलितामनिलैं शरदगना नवसरोरुहकेशरसम्भवाम् ।
विकरितुं परिहासविधित्सया हरिवधूरिवधूलिमुदक्षिपत् ॥[2]

अर्थात् शरद वधू ने वायु से उडाई हुई, नवीन कमलो की केसरो से उत्पन्न धूलि को परिहास की इच्छा से मानो कृष्ण की स्त्रियो के ऊपर बिखेरने के लिए फेंक दिया।

इस प्रकार सस्कृत कवियो द्वारा शरद् का वधू के रूप मे चित्रण काव्य परम्परागत है किन्तु प्रत्येक कवि के वर्णन की शैली मे अपनी मौलिकता है। यदि कवि कालिदास ने उपमा और रूपक की ससृष्टि से शरद को एक वधू के रूप मे चित्रित किया है तो भारवि ने श्लेषमूलातिशयोक्ति एव उपमा के शङ्कर से शरद वधू का वर से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी नूतन कल्पना का परिचय दिया है। किन्तु माघ ने उपमा के आधार पर एक अद्वितीय चित्र ही प्रस्तुत किया है जो कवि कालिदास और भारवि से बिल्कुल ही भिन्न है। कवि अभयदेव ने शरद ऋतु का वधू के रूप मे चित्रण श्लेषोपमा के माध्यम से किया है जो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक साम्य रखता है।

कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे षड् ऋतुओ मे से इन्ही चार ऋतुओ का सामयिक चित्रण प्रस्तुत किया है। ऋतु वर्णन मे कवि प्रकृति से अत्यधिक प्रभावित है। ऋतुओ का सम्बन्ध प्रकृति से होने के कारण यह स्वाभाविक ही है। महाकाव्यो की प्राचीन परम्परा को सॅजोते हुए कवि ने नवीनता को भी प्रश्रय दिया है। निश्चय ही कवि का यह वर्णन सरस एव हृदयग्राही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कवि अभयदेव कृत वस्तु वर्णन से उनके महाकाव्य मे सरसता और रोचकता का स्पन्दन हुआ है क्योंकि प्रकृति की मनोरम सौन्दर्य भावना सभी प्राणियो को आकर्षित करती है। सभी के

---

१ शिशुपालवध, ६/४२। २ वही, ६/५२।

हृदय में प्रकृति की छवि प्राण शोभा आनन्द का सागर उडेल देती है। कवि तो और भी सौन्दर्य द्रष्टा होता है। सामान्य जन जिस वस्तु को साधारण दृष्टि से देखते हैं कवि उसको उत्कृष्ट रूप मे देखता है। कवि अभयदेव द्वारा वर्णित किसी भी वस्तु का अति विस्तारपूर्वक वर्णन न होने के कारण उसमे रोचकता एवं आकर्षण बना हुआ है। कालिदास जैसी नैसर्गिक काव्य प्रतिभा की प्रकृष्टता का अभाव होने पर भी एव भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसी क्लिष्टता और पौराणिक व्युत्पत्ति का स्पर्श न होने के कारण भी उनका वस्तु वर्णन हृदय सवेद्य है। उपमा और उत्प्रेक्षा की स्वाभाविक छटा पाठक को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। सूर्यास्त चन्द्रोदय आदि वर्णन मे उनकी वर्णनशक्ति अपने सुन्दरतम रूप मे प्रकृष्ट हुई है। वस्तु वर्णन में कवि ने प्राय अभिधावृत्ति द्वारा वाच्यरूप मे भाव व्यक्त किये हैं। यत्रतत्र व्यञ्जना वृत्ति का स्फुरण भी हुआ है। दर्शन के तत्त्वो से प्रभावित होने के कारण कवि का लक्ष्य दार्शनिक वस्तुओ का विश्लेषण करना ही अधिक रहा है किन्तु फिर भी कवि की अन्त प्रवृत्ति प्राकृतिक छटा को देखने मे रम गयी है। फलत वस्तु वर्णन की अप्रतिम क्षमता उसके 'जयन्तविजयम्' महाकाव्य मे परिलक्षित होती है।

षष्ठ अध्याय

'जयन्तविजय' महाकाव्य में रस निरूपण

रस विषयक विचार

प्राय· समस्त काव्य-प्रकारो का आत्म-तत्त्व रस है, यही कारण है कि प्राचीन काल से ही काव्य-मर्मज्ञो ने रस की व्यापकता एव महत्ता को स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन के मतानुसार काव्य के शोभावर्द्धक तत्त्व, गुणालङ्कार-रीति एव छन्द की योजना काव्य मे अन्ततोगत्वा रसोत्कर्ष मे सहायक सिद्ध होनी चाहिए, अन्यथा वे परिहार्य है।[1] महाकाव्य अथवा नाटक मे सन्धि सन्ध्यगो की योजना भी रसानुकूल होनी चाहिए, शास्त्र सम्पादन की इच्छा से नही।[2] ध्वन्यालोककार के उपर्युक्त मन्तव्य से स्पष्ट है कि काव्य का मुख्य तत्त्व रस है। अन्य तत्त्व रसाश्रित है।

भरत मुनि ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावो के सयोग से रस की निष्पत्ति बताई है।[3] लोक-व्यवहार मे जो कारण, कार्य और सहकारी होते है, वे ही जब नाट्य अथवा काव्य मे रति आदि स्थायी भावो के होते है, तब उन्हे कारण, कार्य और सहकारी न कहकर विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहा जाता है। उन विभाव आदि के द्वारा जो स्थायी भाव व्यक्त होता है वह रस कहलाता है।[4]

साहित्य दर्पणकार के अनुसार भी सहृदय-हृदय मे वासनारूप से अवस्थित रत्यादि रूप स्थायी भाव जब (कवि वर्णित) विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के द्वारा अभिव्यक्त हो उठते ह तब वे रस कहे जाते है।[5]

'जयन्तविजय' मे रस योजना

कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य का प्रधान रस वीर है। किन्तु रौद्र और भयानक रस वीर रस के परिपोष मे सहायक सिद्ध हुए है। इसके अतिरिक्त यथास्थान अङ्ग रूप मे वात्सल्य, शृङ्गार और शान्त रस भी विद्यमान है। महाकाव्यो मे प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसो को भी गौण रूप मे रखन

---

१ ध्वन्यालोक २/१६, ३/१४। २. वही, ३/१२।

३ विभावानुभाव व्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति। —नाट्यशास्त्र, अध्याय ६।

४ कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादे स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्य काव्ययो.॥
विभावानुभावास्तत् कथ्यते व्यभिचारिण।
व्यक्तस्स तैर्विभावाद्यै स्थायी भावो रस स्मृत॥ —काव्यप्रकाश, ४/२७,२८।

५ विभावेनानुभावेन व्यक्त सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादि स्थायीभाव सचेतसाम्॥ —साहित्यदर्पण, ३/१।

का विधान किया गया है, क्योंकि मानवीय जीवन एक रस न होकर बहुभाव समन्वित है।[1] अत: महाकाव्य मे अनेक रसो की उपलब्धि उचित तथा स्वाभाविक ही समझ पड़ती है।

शृङ्गार रस

संस्कृत के प्राय सभी काव्यशास्त्रियो ने 'शृङ्गार' का विवेचन सर्वप्रथम किया है। भोज ने तो शृङ्गार, वीर आदि दस रसो के स्थान पर रस की सज्ञा केवल 'शृङ्गार' को ही दी है।[2] आनन्दवर्धन भी इसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि 'शृङ्गार रस समस्त ससारी प्राणियो के अनुभव का विषय होने के कारण कमनीयता की दृष्टि से प्रमुख है।' अत इसके वर्णन मे कवि को अत्यन्त सावधान एव प्रयत्नशील होना चाहिए।[3] इसी कारण सस्कृत साहित्य के महान् कवियो, आचार्यों तथा मनीषियो ने समस्त रसो मे शृङ्गार रस को ही अधिक ग्राह्य और सार्वभौम मानकर इसी का ही अधिकाधिक विवेचन किया है।[4]

'शृङ्गार रस' शब्दार्थ की दृष्टि से कामोद्रेक अथवा कामवृद्धि का द्योतक है। शृङ्गार शब्द दो शब्दो के योग से बना है—शृङ्ग+आर। 'शृङ्ग' का अर्थ है कामोद्रेक अथवा काम की वृद्धि तथा 'आर' गत्यर्थक 'ऋ' धातु से बना है जिसका अर्थ है प्राप्ति। अतएव 'शृङ्गार' का अर्थ है 'काम वृद्धि की प्राप्ति'। 'शृङ्गार रस' रति नामक स्थायी भाव से उद्भूत होता है। इस रस के आलम्बन उत्तम प्रकृति के प्रेमीजन होते हैं। अनुराग शून्य वेश्या नायिका को छोडकर अन्य प्रकार की नायिकाएँ तथा दक्षिण आदि प्रकार के नायक ही इसके उपयुक्त आलम्बन विभाव होते है।[5]

---

१ 'अङ्गानि सर्वे रसा ', साहित्यदर्पण, ६/३१७।

२ शृङ्गारवीरकरुणद्भुतरौद्रहास्य
बीभत्सवत्सल भयानक शान्तनाम्न।
अम्नासिषु दशरसान सुधियो वयतु
शृङ्गारमेव रसनाद्रसमाम नाम ॥ —शृङ्गार प्रकाश पृ० ४७०।

३ शृङ्गार रसो हि ससारिणा नियमेनानुभव विषयत्वात् सर्वरसेभ्य कमनीयतया प्रधानभूत। —ध्वन्यालोक, ३/३० कारिका।

४ Of all the rasas howevre sringar (or love) from the absorbing theme of sanskrit poetry and Drama in original and as this particular poetic sentiment has an almost universal appeal, these writers naturally work out this important ras in all its phases.
S K De—'Studies in the history of Sanskrit poetics' Page-333

५ शृङ्ग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुक।
उत्तम प्रकृति प्रायो रस शृङ्गार इष्यते॥
परोढा वर्जयित्वा तु वेश्या चानुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिका स्युर्दक्षिणाद्याश्चनायका॥ —साहित्यदर्पण।

चन्द्रमा, भ्रमर, एकान्त स्थान आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। अनुराग भ्रकुटि भङ्ग, कटाक्ष आदि उसके अनुभाव तथा उग्रता, मरण, आलस्य, जुगुप्सा के अतिरिक्त अन्य (सञ्चारी भाव) इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।[१]

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शृङ्गार के सयोग-वियोग दोनो ही पक्षों का विवेचन हुआ है। इस महाकाव्य मे विप्रलम्भ पक्ष प्रथम आया है, संभोग बाद मे। विप्रलम्भ, शृङ्गार-पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणात्मक राग से चार प्रकार का होता है। मिलन के पूर्व नायक और नायिका मे मिलन की उत्कण्ठा के कारण उत्पन्न होने वाली व्याकुलता को पूर्वराग कहते हैं। पूर्वराग चार प्रकार से सम्भव है—चित्रदर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन एव प्रत्यक्ष दर्शन। कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे गुण श्रवण नामक पूर्वराग का बडा ही सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है। यथा—

यामिनीचरमयामचिरागे चक्रवाक इव सभृतराग ।
स प्रियां नृपतिवशपताका ता तदेक्षितुमभूदनिमेष ॥
आस्य सौरभमिलन्मधुपालिध्वानमास लितनूपुर नादे ।
तत्र काचन विभाव्य मृगाक्षी सोऽपि कौतुकवशेन विवेश ॥[२]

अर्थात् उस राजकुमारी के गुणो को सुनकर ही रात्रि के अन्तिम प्रहर के सुन्दर समय मे चक्रवाक के समान बढे हुए अनुराग वाले वे नृपति जयन्त नृपतिवश की पताका के समान प्रिया को देखने के लिए निर्निमेष हुए और मुख की सुगन्ध से मिले हुए पराग से एव मार्ग मे बजते हुए नूपुर नादो से वहाँ पर किसी मृगाक्षी को जानकर कुतूहलवश प्रवेश किया।

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे रति स्थायीभाव है। आलम्बन कनकवती तथा आश्रय नृप जयन्त है। कनकवती का रूप तथा उसके गुण उद्दीपन विभाव हैं। हर्ष, मद, औत्सुक्य, चपलता आदि व्यभिचारी भाव है। भावातिरेक के कारण जयन्त का प्रस्थान करना अनुभाव है। हर्ष के कारण स्वेद, स्तम्भ आदि सात्विक भाव हैं।

गुण श्रवण की भाँति ही 'प्रत्यक्षदर्शन' नामक पूर्वराग का भी बहुत ही सुन्दर वर्णन कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे किया है क्योकि विद्युत्

---

१ चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपन मतम् ।
भ्रू विक्षेप कटाक्षादिरनुभाव प्रकीर्तित ॥
त्यक्त्वोग्र्यमरणालस्य जुगुप्साव्यभिचारिण ।
स्थायिभावो रति श्याम वर्णोऽय विष्णुदैवत. ॥ —साहित्यदर्पण, ३/१८५ ।

२. जयन्तविजय, १३/९,१० ।

की कान्ति को जीतने वाली एव अपने रूप से त्रिभुवन के नेत्रो को तृप्त करने वाली कनकवती को देखकर आश्चर्य से चकित होकर जयन्त सोचने लगते हैं कि क्या इस पर्वत पर पर्वत पुत्री पर्वत की सुन्दरता को देखने के लिये आई है ? या रति है ? अथवा रमा है ? अन्त मे वे यह निश्चय कर लेते है कि निमेष लगने के कारण यह मृत्युलोक की ही ललना है। इसके चरणो की सौभाग्य लक्ष्मी के लाभ की लम्पटता के कारण पृथ्वी के भार को वहन करने के व्रत का पालन करते हुये कूर्म रसिक हो गये। वे कल्पना करते हैं कि इस सुन्दर भौंहो वाली के जुही के समान पैर रखने एव सुवर्णमणि की नूपुर ध्वनियो से कामदेव राजा सदैव जागता रहता है। इसकी सुन्दर रोम रहित निरकुश जघाओ की रमणीयता को देखकर ऐक ललना ने पराभव के दु ख के कारण ही वनवास का आश्रय लिया। कवि की कल्पना उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब युवराज जयन्त सोचने लगते हैं कि कुचो के गुरुतर भार से दबाये गये और विस्तृत जाँघो से रोके गये इसके उदर ने असह्यतम वेदना से ही कृशता को प्राप्त किया है तथा इसकी सीधी ऊँची नासिका के बगल मे फैले हुए दोनो नेत्र एक नाल मे दो कमल के पुष्प के समान सुन्दर वैभव को धारण करते हुए से प्रतीत हो रहे है—

ता तडिद्द्युतिविजित्वरकान्ति रूपर्अपितजगत्त्रयनेत्राम् ।
वीक्ष्यविस्मयतरङ्गितचेता स व्यचिन्तयदिद युवराज ॥
पर्वते किमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
किं रति किमु रमाखलु नैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ॥
एतदङ्घ्रि सुभगा कृति लक्ष्मीलाभलम्पटतयेव सदापि ।
क्षोणिभारवहनव्रतचर्यासेवनैव रसिकोऽजनि कूर्म ॥
सुभ्रुव क्रमपरिक्रमणेऽस्या जात्यहेममणिनूपुरनादैं ।
बोभवीति मकरध्वजभूभृन्निद्रया सततमेव दरिद्र ॥
रामणीयकमनङ्कुशमस्या जङ्घयोरनघयोरवलोक्य ।
नूनमुद्गतपराभवदु खा सत्तुरेणललना वनवासम् ॥
भारित गुरुभरेण कुचाभ्या विस्तृतेन जघनेन च रुद्धम् ।
इत्यसह्यतमवेदनयेन प्राप्तमेतदुदर ननु कार्श्यम् ॥
एतदीय सरलोन्नतनासा वशपार्श्वगतलोचनयुग्मम् ।
एकनालकमलद्वयशोभावैभव दधदिव प्रतिभाति ॥[1]

यहाँ पर रति स्थायी भाव है। आलम्बन कनकवती तथा आश्रय युवराज जयन्त हैं। कनकवती का रूप उद्दीपन विभाव है। हर्ष, उन्माद, औत्सुक्य, चपलता

---

१ जयन्तविजय, १२/११, १२, १६, १७, १९, २४ तथा २६।

आदि व्यभिचारी भाव है। सुन्दरी के ग्रहणार्थ उत्सुकता-अनुभाव है जिसके द्वारा पूर्ण शृङ्गार की अभिव्यक्ति हो रही है।

मान—विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत मान का बड़ा ही सरल, स्वाभाविक एव सजीव चित्रण महाकवियो के महाकाव्य मे प्राप्त होता है। कवि अभयदेव ने भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे नायिका के मान का बडा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि का कथन है कि विशेष वियोगी दिनो मे चित्रित समस्त कानन पर ताप से तप्त मानिनी के मानस मे मदन ने अति विस्तारिता को प्राप्त किया। इसीलिये तो मनस्विनी के स्पष्ट मान के खण्डन करने मे निपुण विलासी जगत् के कामियो के उपकारी नववारिद के आने पर बहुमान परम्परा हुई अर्थात् वर्षा-ऋतु का विलासी जगत् ने स्वागत किया क्योकि यह उनकी नायिकाओ के मान को खण्डित कर देता है—

तत्र चित्रित समस्त काननेऽनेहसि क्षपितविप्रयोगिणि।
प्राय तापकलितेषु मानिनीमानसेषु मदनोऽति विस्तृतिम् ॥[1]
जगत विलाससमये ऽपि मनस्विनी स्फुरितमान विखण्डन पण्डिते।
नवघने बहुमान परम्परा निशमभूदुपकारिणि कामिनाम् ॥[2]

मान खण्डन—सस्कृत कवियो ने मान वर्णन क पश्चात् मान खण्डन का भी ललित वर्णन प्रस्तुत किया है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि उसी परम्परा का अनुसरण करते हुये मान खण्डन का बडा ही स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत करता है—'मृगनयनियो के मान खण्डन की विधि मे वसन्त प्रिय कामदेव से कोमल सुन्दर निनाद करने वाली कोयल की पञ्चम ध्वनि को अस्त्र बनाया गया। इसीलिए पति के स्वय नत होने पर भी मान की वृद्धि से सखियो पर कलुषित, दूतियो पर अत्यन्त क्रोध करने वाली जो स्त्रियाँ वक्रता को धारण किये हुए थी, वे स्त्रियाँ प्रात वायु की ध्वनि के बहाने उत्सुकतापूर्वक कामदेव की आज्ञा को पाकर प्रिय का आलिङ्गन करने लगी—

माधव प्रणयिना मनोभुवा मानखण्डन विधौ मृगीदृशाम्।
कोमलोऽपि कलकण्ठकामिनी पञ्चमध्वनिरमीयतास्त्रताम् ॥[3]
मानोत्तानतया सखीषु कलषा प्रेङ्खोलरोषाश्चिर
ता प्रातश्चरणायुधध्वनिमिभादाज्ञामिवाप्यस्मर-
क्षोणीशस्य समुत्सुका प्रियपरीरम्भ स्त्रियस्तन्वते ॥[4]

---

१ जयन्तविजय, ७/३५।
२ वही, ८/३६
३ वही, ७/३१।
४ वही, ८/६८।

अपि च—

अथकर जलयन्त्रैर्वारिपूर किरद्भि
स्फुरति वियति वर्षाडम्बरेऽन्योन्यमुच्चै ।
जलललितिषु तासा प्रीतिवल्लीविलास
कलयति स च शोष मानमुद्राजवास ।।[1]

अर्थात् जलकेलि के प्रसङ्ग मे कवि अभयदेव का कहना है, कि हाथरूपी पिचकारियों से एक दूसरे पर अत्यधिक मात्रा मे जल को बिखेरने से आकाश मे वर्षाडम्बर को प्रकट करती हुई जल की क्रीडाओ मे उनके प्रेमरूपी लता का विलास तथा मानरूपी मुद्रा का ह्रास उत्पन्न हुआ ।

सम्भोग शृंगार—कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे सम्भोग शृङ्गार का भी चरमोत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है । अष्टम सर्ग मे जयन्त अपनी प्रियाओ के साथ वन विहार, जल विहार आदि का रसास्वादन करते है । इस अवसर पर सभोग शृङ्गार का पूर्ण परिपाक प्राप्त होता है । सभोग शृङ्गार के समस्त भेदो—सन्दर्शन, स्पर्श, वस्त्रग्रहण, चुम्बन, आलिङ्गन, दोलान्दोलन, पुष्पावचय, जलकेलि आदि का यथोचित वर्णन 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्राप्त होता है ।

सन्दर्श का उदाहरण

व्यालिलेख मुहुरङ्घ्रिणा मही सा चकर्ष भृश मशुकाञ्चलम् ।
श्रीजयन्तयुवराजदर्शने कारिता किमु न पुष्पधन्वन ।।[2]

प्रस्तुत उदाहरण मे उस समय का वर्णन किया गया है जब रतिसुन्दरी जयन्त को देखती है । यहाँ रति स्थायी भाव है । आलम्बन विभाव जयन्त तथा आश्रय रतिसुन्दरी है । जयन्त का रूप तथा उनके गुण उद्दीपन विभाव है । हर्ष, क्रीडा, मद, जडता, चपलता, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं । भूमि को पैर के नखो से खोदना, अशुकाञ्चल को खीचना आदि अनुभाव है । हर्ष के कारण स्वेद, स्तम्भ आदि सात्विक भाव है । यहाँ पर नायिका का सभोग अभिलाषत्व व्यग्य हो रहा है । जयन्त को देखते ही उसके हृदय मे सभोगेच्छा बलवती हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह अपने अशुकाञ्चल को बार-बार खीच रही है ।

इसी प्रकार त्रयोदश सर्ग मे जयन्त और कनकवती के परस्पर सन्दर्शन का उदाहरण भी कवि अभयदेव ने प्रस्तुत किया है—

यत्परस्परसमर्पितचि साचि सचरितनेत्रयुग तत् ।
यन्मनोभवमनोरथपात्र तत्तयोरजनि दर्शनमत्र ।।

---

१. जयन्तविजय, ८/३७ । २ वही, १६/३७ ।

रूपकौतुकविलोकनलोलं लोचनाम्बुजयुगं च मिथस्तौ ।
हर्षबिन्दुभिरिवार्घयत स्म स्वाभिवाञ्छितकर खलु पूज्य: ।।
तौ मिथोऽप्रतिमकौतुक रूप श्री विलोकन विमोहित नेत्रौ ।
तत्क्षणाद मृत सिन्धुतरङ्गस्नापिताविव तदा समभूताम् ।।[1]

प्रस्तुत प्रसग मे स्थायी भाव रति है। जयन्त कनकवती की हृदयस्थ रति का आलम्बन तथा रति सुन्दरी जयन्त की हृदयास्थ रति का आलम्बन विभाव है। परस्पर एक दूसरे का रूप तथा गुण उद्दीपन विभाव है। हर्ष, मद, जडता, औत्सुक्य, चपलता, मोह आदि व्यभिचारी भाव हैं। नेत्र निमीलन, वस्त्र का भीग जाना आदि अनुभाव है। हर्ष के कारण स्वेद, रोमाञ्च आदि सात्विक भाव है।

स्पर्श का उदाहरण

क्वचन जघनविम्बे क्वापि तुङ्गस्तनान्ते
क्वचिदपि मुखपद्मे क्वापि कण्ठेऽम्बुपूरम् ।
प्रगुणितकरयन्त्रैरक्षिपत्प्रेयसीना
करकमलमिवाय कामकेलौ विलासी ।।[2]

यहाँ नायक जयन्त कामकेलि के प्रसग मे कही जघन स्थल पर, कही ऊँचे उरोजो पर, कही मुखकमल पर और कही कण्ठ पर भरे हुए पानी के चुल्लू को करतल के सदृश फेंक रहे हैं। रति स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव नायिका और आश्रय नायक है। सरोवर की शोभा तथा नायिका के अगो की सुन्दरता उद्दीपन विभाव हैं। नेत्र निमीलन, मुस्कुराहट एव नत मुख आदि अनुभाव आक्षिप्त हैं। स्तम्भ, रोमाञ्च आदि सात्विक भावो के द्वारा शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है।

वस्त्राहरण का उदाहरण

पयसि लघु निलीन कौतुकेनापकर्ष-
त्परिहितसि (च) यान्त दक्षयालक्षिकान्त ।
तदनु च स तयोक्त कोऽपि चौरोऽमेव
सरसविधि बबन्धे बाहुपाशेन सद्य ।।[3]

प्रस्तुत प्रसग मे जयन्त अपनी प्रिया के साथ सरोवर मे जलक्रीडा कर रहे है। शीघ्रतापूर्वक डुबकी लगाये हुए तथा कुतूहलवश वस्त्र खीचते हुए उन्हें किसी दक्ष स्त्री के द्वारा पकड लिया गया तथा 'यह कोई चोर है' इस तरह से कहते हुए

---

१ जयन्तविजय, १३/६८-१०० ।
२ वही, ८/४२ ।
३ वही, ८/४१ ।

बाहुपाश मे पकड लिया गया। यहाँ रति स्थायी भाव है। परस्पर आलम्बन विभाव जयन्त व उनकी प्रिया है। सरोवर की सुन्दरता उद्दीपन विभाव है। हर्ष, उन्माद, औत्सुक्य, चपलता आदि व्यभिचारी भाव है। वस्त्र ग्रहणार्थ उत्सुकता तथा अनुनय-विनय अनुभाव है, जिससे पूर्ण शृ गार की अभिव्यक्ति हो रही है।

चुम्बन का उदाहरण

कुवलयदलनेत्रा पक्वनारंगवल्क-
त्वगुदितरसधाराक्षेपतो व्याकुलाक्षीम्।
विदधदथ जयन्तोऽन्यां चुचुम्बे तदग्रे
गुरुरिह चतुरत्वे कामदेवोऽस्य नूनम्॥[1]

प्रस्तुत उद्धरण मे जयन्त वसन्त ऋतु मे अपनी प्रियाओ के साथ विहार कर रहे हैं। नाना प्रकार की उनकी क्रीडाओ को देखकर वह प्रेमातुर हो उठते हैं परन्तु उन समस्त नायिकाओ के समक्ष चुम्बन करने मे लज्जा का अनुभव करते है। अत किसी नायिका के सामने पकी हुई नारगी के वल्कल से निकले हुए रस के गिराने से उसे व्याकुल नेत्र वाली करते हुए जयन्त ने कमल दल के समान नेत्र वाली दूसरी नायिका का चुम्बन किया। वस्तुत उसकी इस क्रीडा मे कामदेव ही उसका गुरु ठहरा। यहाँ रति स्थायी भाव है। जयन्त और उनकी प्रिया परस्पर आलम्बन विभाव है। उपवन, वन विहार तथा नायिकाओ की क्रीडाये उद्दीपन विभाव हैं। हर्ष, उन्माद, चपलता, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। आलिगन और चुम्बन अनुभाव हैं। रोमाञ्च, स्वेदादि सात्विक भाव आक्षिप्त है। जिनके सहयोग से सयोग शृ गार आस्वादित हो रहा है।

आलिङ्गन का उदाहरण

मुद्रितेक्षणयुग सुखनिद्रामुद्रया नववधूपरिरम्भात्।
उत्तरगरतिसागरमग्नस्तत्क्षण क्षणमिवैष निनाय॥[2]

प्रस्तुत प्रसग मे कवि अभयदेव कुमार जयन्त तथा नवपरिणीता कनकवती के परस्पर आलिगन का वर्णन करते हुए कहते है कि 'राज कुमार ने दोनो नेत्र बन्द कर नववधू के परिरम्भन मे मुग्ध की निद्रा से उत्कर्ष तरग वाले रति के सागर मे निमग्न होते हुए उन क्षणो को एक क्षण के समान बिताया। यहाँ स्थायी भाव रति है। जयन्त और कनकवती परस्पर आलम्बन विभाव है। महल की रमणीयता एव शय्या की सजावट उद्दीपन विभाव है। हर्ष, उन्माद, चपलता, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव है। रोमाञ्च स्वेदादि सात्विक भाव है। इनके सहयोग से सम्भोग शृ गार अभिव्यक्त हो रहा है।

१ जयन्तविजय, ८/२१।
२ वही, १३/१०१।

पुष्पावचय, जलकेलि आदि के उदाहरण वर्णन प्रसंग वाले अध्याय मे किये जा चुके हैं।

वीर रस

'उत्साह' रूप स्थायी भाव का आस्वाद ही वीर रस कहा जाता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के वीर होते हैं। इसका वर्ण गौर है, तथा इसके देवता महेन्द्र हैं। महेन्द्र को सभी का वीराधिपतित्व प्राप्त है। वीर रस का स्थायीभाव 'उत्साह' है। उत्साह का अर्थ स्पष्ट करते हुए शारदातनय ने 'भावप्रकाश' मे कहा है कि किसी भी कार्य-विशेष को करने के लिए हमारे मानस में एक विशेष प्रकार की सत्वर क्रिया सजग रहती है। इसी क्रिया के द्वारा हम किसी भी कार्य को करने की प्रबल इच्छा रखते हैं। यही 'उत्साह' है।[1] जिस व्यक्ति मे शक्ति या बल नही होता उसमे उत्साह भी नही होता। भानुदत्त के अनुसार पूर्णतया परिपुष्ट 'उत्साह' अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियो का प्रहर्ष ही वीर रस है।[2] इसके आलम्बन विभाव जितेव्य शत्रु आदि होते है। इन जितेव्य शत्रु आदि की चेष्टायें इसके उद्दीपन विभाव हैं। युद्धादि की सामग्री अथवा अन्यान्य सहायक साधनो का अन्वेषण इसका अनुभाव है। धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क रोमाञ्च आदि इसके व्यभिचारी भाव है।[3]

जयन्तविजय' महाकाव्य का अङ्गी रस वीर है। वीर चार प्रकार के माने गये है— दानवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा युद्धवीर। वीरता के यह चारो गुण पुरुष मे प्रदर्शित किये गये है। कवि अभयदेव के जयन्तविजय महाकाव्य मे दानवीर, धर्मवीर एव दयावीर का साङ्गोपाङ्ग चित्रण हुआ है। किन्तु युद्धवीरता का चित्रण किञ्चित विस्तार के साथ किया गया है—

युद्ध वीर—युद्धवीर का पूर्ण परिपाक चतुर्थ, नवम, दशम, एकादश तथा त्रयोदश सर्ग मे प्राप्त होता है। इस प्रसङ्ग मे कुछ उद्धरणो को देख लेना न्याय-सगत होगा —

---

१ उत्साह सर्वकृत्येषु सत्त्वरा मानसी क्रिया। —भावप्रकाश पृ० ३३।

२ रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, पृ० ३५६ पर उद्धृत।

३ उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साह स्थायिभावक।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृत ॥
आलम्बन विभावास्तु विजेतव्यादयोमता।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपन रूपिण।
अनुभावास्तु तत्र स्यु सहायान्वेषणादय।
सञ्चारिणास्तु धृतिमति गर्वस्मृतितर्करोमाञ्चा ॥
सच दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धास्यात् ॥
—साहित्यदर्पण, ३/२३२-२३४।

स विक्रमक्षोणिधवान्वयाम्बर प्रभाकर प्रीणितबन्धुपङ्कज ।
असीमतेज शमितारिकौशिकस्तत प्रतस्थे चतुरङ्गसेनया ॥[1]

प्रस्तुत स्थल पर पिता विक्रमसिंह की आज्ञा से युद्ध के लिए जाते हुए युवराज जयन्त का वर्णन किया गया है। 'उत्साह' स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव सिंहलराज तथा आश्रय जयन्त है। हरिराज की सेना उद्दीपन है। जयन्त के पास इनके गर्वोक्तिपूर्ण सन्देश अनुभाव हैं। गर्व, आवेग, अमर्ष आदि स्थायी भाव है जिनके सहयोग से वीर रस आस्वादित हो रहा है।

पुनश्च—

अथविक्रमभूभर्तु पुत्र प्राज्यपराक्रम ।
प्रताप इव पिण्डस्थ प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥
श्री जयन्त स्तत पूर्व पूर्वस्यामचलद्दिशि ।
चतुरङ्गचमूश्चक्रे चलयन्नचलामपि ॥
ततश्चीर खुरक्षुण्णक्ष्मापीठप्रभवैर्भृशम् ।
रजोभिरभवन्वन्ध्यावापारास्तरणेस्त्विष ॥
तस्मिश्चलतिभूपालमौलिलालित शासने ।
अहितानामवर्धन्तत्रास श्वासमहोर्मय ॥[2]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे युवराज जयन्त के दिग्विजय के लिए प्रस्थान का वर्णन किया गया है। यहाँ 'उत्साह' स्थायी भाव है। विपक्षी राज आलम्बन एव आश्रय जयन्त हैं। दिग्विजय की अभिलाषा उद्दीपन विभाव है। विपक्षी राजाओ को युद्ध के लिए आमन्त्रित करना एव गर्वोक्ति अनुभाव है। गर्व, औत्सुक्य, मद तथा असूया आदि व्यभिचारी भाव हैं जिनसे 'उत्साह' परिपोष्य प्राप्त कर युद्ध वीर मे आस्वादित हो रहा है।

युद्ध के लिए प्रस्थान करते हुए सैनिको मे वीर रस का सुन्दर निर्वाह करते हुए कवि अभयदेव कहते हैं कि शीघ्र होने वाले सग्राम के उत्साही वीर समूहो के मन मे दर्प व्याप्त हो गया और हर्षातिरिक के कारण रोमाञ्च शरीर मे उत्पन्न हो गया जिसके परिणामस्वरूप उनके शरीर मे कवच बडी कठिनाई से आ रहा हैं। 'मुझ नवीन विजयश्री का तुम्हारी बल्लभा से आज सपत्न हो' इस प्रकार गद्-गद् वाणी से प्रिय आशीर्वाद को प्राप्त कर कोई वीर रण मे अत्यन्त हर्षित हो रहा है—

आसन्नसग्रामसमुत्सहिष्णोर्वीरव्रजस्यानशिरे मनांसि ।
हर्ष प्रकर्षे समुदञ्चदुच्च रोमाञ्चचक्रैश्च चिरं वपूषि ॥

१ जयन्तविजय, ८/६८।
२ वही ११/१-२, ४-५।

रणोत्सवोत्साह समुद्भ विष्णु रोमाञ्चचञ्चत्कवचान्तरस्य ।
एकस्य कस्यापि महाभटस्य भातिस्मकृच्छ्रेणतनौतनुत्रम् ।
सापत्न्यमप्यस्तु जयश्रियामे नवीनया वल्लभया तवाद्य ।
प्रियाशिष गद्गदया गिरेति श्रुत्वा ययौ कोऽपि रणेऽतिहर्षित ।।[1]

यहाँ वीरो के हृदय मे 'उत्साह' स्थायीभाव है । वैरी हरिराज आलम्बन तथा जयन्त आश्रय हैं । हरिराज का सीमा पर आ जाना तथा जयन्त द्वारा युद्ध की आज्ञा देना उद्दीपन विभाव है । वीरो का कवच धारण करना, निर्भय होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करना, शरीर का रोमाञ्चित होना अनुभाव है । गर्व, आवेग, औत्सुक्य, हर्ष आदि सञ्चारी भाव है । इस प्रकार युद्ध प्रयाण जनित उत्साह की भव्य निदर्शना यहाँ प्रस्तुत की गयी है ।

युद्ध क्षेत्र मे एकत्रित होने वाली सेनाओ के अप्रतिम 'उत्साह' का वर्णन करने मे कवि को विशेष सफलता मिली है । यथा—

तदाग्रसैन्ये रणतूर्यनादै सहाच्छलद्भिस्तुमलोल्बणास्यै ।
शितास्त्रशस्त्रैर्ववृषेऽतिमात्र वर्षाम्बुवाहैरिव वारिवारै ।।
योधै प्रसिद्धैर्युयुधेरिसौ (रो) धै महाश्ववारै सममश्ववारै ।
रथिप्रवीरै रथकैश्च सार्धं सभानकक्षैर्जयबद्ध लक्षै ।।
विनश्वरैरप्यसुभि स्वकीयैरनश्वर जन्ययशोऽर्थयद्भि ।
राजन्यकैस्तत्र चिर ·········चक्रेऽहपूर्विकापूर्वकमाजिकेलि ।।
भटस्यकस्यापि बभौ शितासिभिन्नेभकुम्भोच्छलिता पतन्ती ।
मुक्तावली मूर्द्धनिपुष्पवृष्टिर्मुक्तेव देवैरवदानतोषात् ।।
मा कादिशीकत्वमिहाश्रयध्वयशश्चिनुध्व निजपूर्वजानाम् ।
अदृष्टपूर्वं भवता हि पृष्ट सख्येष्वयि · वैरिवीरै ।।
कोलाहल सिंहलराजसैन्ये जित जित न प्रभुणेत्युदस्थात् ।।
मूर्च्छावसाने च स भीमसेनोऽप्यथात्मसैन्यप्रमदेन सार्धम् ।
नीरन्ध्रवाणान्तरितान्तरिक्ष न्याक्ककारनादैर्बधिरी कृताशम् ।।
रणे तयो स्फूर्जितमूर्जित तद्बभूव वा गोचरमेति यत्र ।।[2]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे जयन्त और हरिराज दोनो की सेना मे वर्षाकालीन मेघो से जल की भाँति रण के तूर्यनाद के साथ अस्त्र-शस्त्रो की वर्षा कर रही है । युद्ध स्थल मे प्रसिद्ध शत्रुओ के साथ शत्रु, असवारो के साथ असवार और रथी के साथ रथी जय के लक्ष्य को बाँधते हुए डटे हुए हैं । राजागण अपने प्राणो के मोह को छोड़-

---

१ जयन्तविजय, १०/२७,२८,३२ ।

२ वही, १०/३८-४२, ४६, ५५, ५७ ।

कर अविनाशी यश की प्रथम प्राप्ति की आकुलता से युद्ध कर रहे है। किसी वीर के शिर पर तीक्ष्ण तलवार से काटे गये गजमस्तक से उछल कर गिरी हुई मुक्तावली दान से तुष्ट देवताओ के द्वारा छोडी गयी पुष्पवृष्टि के समान सुशोभित हो रही है। ऐसे घमासान युद्ध मे सैनिको का उत्साह प्रशसनीय है। उनका कहना है कि किसी दिशा को मत जाओ, यही पर रहो, अपने पूर्वजो के यश को एकत्रित करो, क्योकि युद्धस्थली मे आपकी पीठ शत्रुओ ने कभी नही देखी है। तदनन्तर 'हमारे प्रभु ने जीत लिया, जीत लिया' इस तरह से कोलाहल सिंहलराज की सेना मे उठ खडा हुआ और मूर्छा की समाप्ति मे वह वीर भीमसेन भी अपनी सेना की प्रसन्नता के साथ उठ खडा हुआ। वहाँ पर अत्यधिक वाणो के गिरने से आकाश नीरन्ध्र हो गया। नगाडो की आवाज से दिशाएँ बहरी हो गयी। उन दोनो के बढे हुए ऊर्जित तेज के युद्ध मे जो हुआ वह दृष्टिपथ पर नही आया।

कवि आगे कहता है कि ये दोनो अत्यन्त बलशाली परिश्रमी और अस्त्र चलाने मे समान है इनकी इस वीरता को देखकर इन दोनो मे से कौन विजयी होगा। इस तरह से विधाता को भी सन्देह हुआ। तलवार का तलवार से, बाण का बाण से जवाब देने वाले युद्ध को करते हुए एव अपार कुतूहल रस को दृष्टि के सामने फैलाते हुए उन दोनो के युद्ध के गुण के उत्कर्ष और अपकर्ष के क्षण मे विमुग्ध विजयश्री से किसके पास जाऊँ ? इस तरह से परेशान होकर विचारा गया—

> एतावुभावप्यनिवार्यवीर्यौ कृतश्रमौ द्वावपि चास्त्रशस्त्रौ।
> युद्धे सदृक्षावथ वीक्ष्य वीर जेतानयो क ममशेरतेत्थम् ॥
> खड्ग खड्गिशराशरप्रभृतिभिर्युद्धप्रकारै र्युध
> कारकारमपार कौतुकरम विस्तारयन्तौ दृशाम्।
> प्रत्येक विजयश्रिया रणगुणोत्कर्षापकर्षक्षणे
> क यामीति विमुग्धया प्रतिकल नौ खिन्नया ॥[1]

वीर रस का जहाँ अन्तिम उत्कर्ष है ऐसी युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस युद्धस्थल मे कटे हुए हाथियो के कुम्भस्थल मे गिरे हुए मोती के दाने कुमार के शौर्य की अद्भुत क्रिया मे रणक्षेत्र के हास्य के आलस्य की तरह सुशोभित हुए—

> रराज तत्र क्षतकुम्भि कुम्भस्थलीगलन्मौक्तिकचक्रवालम्।
> कुमार शौर्याद्भुतरञ्जिताया रणक्षमाया इव हास्यलास्यम् ॥[2]

इस प्रकार प्रस्तुत स्थल मे 'उत्साह' स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव हरिराज तथा आश्रय जयन्त है। युद्धस्थल मे बजायी गई भेरी, वीरो की ललकार,

---

१ जयन्तविजय, १०/५८, ७१। २ वही, १०/६४।

अस्त्र-शस्त्रों की आवाज उद्दीपन विभाव है। जयन्त के द्वारा बाणों की वृष्टि अनुभाव है। मति, धृति, औत्सुक्य, मद आदि व्यभिचारी भाव हैं जिनके योग से वीर रस स्पष्ट हो रहा है।

दिग्विजय प्रसङ्ग मे युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए कवि अभयदेव एकादश सर्ग मे भी कहते हैं कि स्वर्ग मे तीक्ष्ण शस्त्रो से उत्पन्न देदीप्यमान सम्पूर्ण आतपत्रो (छत्रो) से दिन मे भी चन्द्र ग्रहण की शङ्का हो गयी। हाथियो से स्वतन्त्रतापूर्वक फेके गये वीरो से महावत मानो यमराज को प्रसन्न करने के लिए भेंट चढ़ा रहे हैं। आपस मे शस्त्रो के सघर्षण से उत्पन्न होने वाली अग्नि स्फुलिङ्ग को मानो विजय लक्ष्मी ने वीरो को देखने के लिए दीपक की भाँति जलाया है—

सोमग्रहणशङ्काभूदातपत्रै समस्तकै ।
दिवापि दिवि दीव्यद्भि शितशस्त्रसमुद्धतै ॥
गजेन्द्रान्क्षेपितैर्वीरै स्वैरमाधोरणाबभु ।
प्रीतये प्रेतनाथस्य प्रस्तुतोपायना इव ॥
परस्परास्त्रसघट्टाद्रेक्षुरग्निस्फुलिङ्गका ।
वीरैर्विलोकनायेवकृता दीपा जयश्रिय ॥[1]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे वीरो का उत्साह स्थायी भाव है। विपक्षियो की सेना तथा नृप परस्पर आलम्बन एव आश्रय है। युद्धस्थल मे शस्त्रो के सघर्षण एव वीर उद्दीपन विभाव है, दिग्विजय की अभिलाषा अनुभाव है। गर्व, औत्सुक्य, मद तथा असूया आदि व्यभिचारी भावो से वीर रस आस्वादित हो रहा है।

दानवीर—कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे दानवीरता के सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। पाणिग्रहण सस्कार के अवसर पर कवि अभयदेव पवनगति की दानवीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस कन्यादान के अवसर पर पवनगति ने सुवर्ण, घोडे, हस्तिनी की घटाओ और रत्नकिन्नरो से याचक समाज को श्री पति विष्णु की भाँति कर दिया—

तत्र दानसमये खचरेन्द्र प्राज्यवाजिकरटीन्द्रघटाभि ।
स्वर्णरत्ननिकरैश्च स चक्रे श्रीपति हरिमिवार्थिसमाजम् ॥[2]

प्रस्तुत उदाहरण मे 'उत्साह' स्थायीभाव है। आलम्बन विभाव याचक तथा आश्रय पवनगति है। दान के द्वारा राजा का यशोलाभ उद्दीपन विभाव है। याचको को दान देने के साथ ही सम्मान देना अनुभाव है। हर्ष, गर्व, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव है। जिनके परिणामस्वरूप दानवीर अनुभवजन्य हैं।

---

१ जयन्तविजय, ११/६८, ६६, ७०।
२ वही, १३/६४।

विक्रमसिंह की दानवीरता की प्रशंसा करते हुए कवि अभयदेव की कल्पना चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह कहता है कि उनके द्वारा भूरिदान सलिल से कीर्तिलता को इतना अधिक सींचा गया जिससे कि वह विश्वमण्डप के नीचे तारा रूपी कुसुम के समान पृथ्वी मे न समा सकी—

> तेन कीर्तिलतिका तथाधिक भूरिदानसलिलैरसिच्यते ।
> तारकाकुसुमशालिनी यथा विश्वमण्डपतलेऽपि न ममौ ॥[1]

दानवीरता का गुण पुरुष मे ही पाया जाता है किन्तु कवि अभयदेव ने प्रकृति के द्वारा प्राणियो को दान दिलाकर अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि का कथन है, कि जहाँ पर अनेक तरुवर बड़े-बड़े पल्लवरूपी हाथो से शरीरधारियो को खाने के लिए अपनी फलरूपी सम्पत्ति का दान देते हुए कुटुम्बी की भाँति स्थित हैं—

> हस्तैरिवोच्चैस्तरव पलाशैश्छाया दधाना फलसपदा च ।
> पथ्यङ्गिना पथ्यदनाय यत्र स्वबन्धुबुद्धेव भवन्ति भूय ॥[2]

धर्मवीर—धर्मवीरता का सुन्दर चित्रण भी कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्राप्त होता है। महाकाव्य का नायक जयन्त युद्धवीर होने के साथ ही साथ धर्मवीर भी है। शत्रु की क्षय की इच्छा रखने वाला वह हरिराज की सीमा पर पहुँचकर भी एकाएक आक्रमण नही करता है। अपितु उसके देश की रक्षा ही करता है क्योकि स्वभाव से वैरी नकुल सर्प के गृह मे प्रविष्ट होकर उसे नही मारता—

> ररक्षदेश स्वमिवाप्यशत्रो क्षय स तस्यैव यतश्चिकीर्षु ।
> स्वभाववैरान्नकुलो हि सर्पं निहन्ति नो तत्सदन प्रविष्ट ॥[3]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे स्थायी भाव 'उत्साह' है। आश्रय स्वय राजा जयन्त है। राजा के शत्रु आलम्बन है। शत्रु के प्रति राजा का व्यवहार उद्दीपन है। राजा की गम्भीरता अनुभाव तथा धर्मयुक्त मति, तर्क आदि सचारी भावो के सहयोग से धर्मवीरता की सिद्धि हो रही है।

दयावीर—वीर रस के प्रभेदो मे 'दयावीर' का भी प्रमुख स्थान है। कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अनेक स्थलो पर इसका प्रयोग किया गया है। रक्षणीय उस राजा के राज्याभिषेक को सुनकर उसके पास नतमस्तक

१ जयन्तविजय, ७/१६।
२ वही, १/३१।
३ वही, १०/१८।

समस्त भूमिपालो ने आकर प्रणाम करके उसकी सेवा की। फलत उस राजा ने अपनी कृपा से राजाओ को आनन्दित किया। वे लोग भी उस राजा के अनन्यगुणो से अपने अन्त करण को प्रमुदित करते हुए अपने-अपने राज्य को चले गये—

> श्रुताभिषेक जनकस्य राज्ये तमेत्य भूगोचरखेचरेन्द्रा ।
> नत्वोपढौक्योऽङ्घ्रि तढोकनानि सिषेविरेनम्रशिर किरीटा ॥
> प्रमोदितास्तेन महाप्रसादैर्निज निज राज्यमयुर्विसृष्टा ।
> महीपतेस्तस्य गुणैरनन्यै सदानितान्त करणस्ततस्ते ॥[1]

यहाँ पर 'उत्साह' स्थायी भाव है। राजा जयन्त आश्रय है। आत्मरक्षा करने वाले भूमिपाल जो दयनीय परिस्थिति के प्राणी हैं, आलम्बन विभाव है। शत्रुओ को पीडा पहुँचाकर विजय प्राप्त करना उद्दीपन विभाव है। परन्तु शत्रु द्वारा नतमस्तक होना अनुभाव है। हार मान लेने पर राजा को हर्ष की प्राप्ति होती है। हर्ष सचारी भाव है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और सचारी भाव के सयोग से यहाँ पर दानवीर प्रस्फुटित हो रहा है।

रौद्ररस

रौद्ररस का वर्णन 'जयन्तविजय' महाकाव्य के नवम् एव चतुर्दश सर्ग मे प्राप्त होता है। रौद्ररस का स्थायी भाव 'क्रोध' है। इसका वर्ण रक्त है। इसके देवता रुद्र माने जाते है। इसके आलम्बन रूप मे शत्रु का वर्णन किया जाता है और शत्रु की चेष्टाये उद्दीपन विभाव का कार्य करती है। इसकी विशेष उद्दीप्त मुष्टिप्रहार, भूपातन, भयकर मार-काट, शरीर विदारण, कठोर वचन, द्रोह सग्राम, सभ्रम आदि मे हुआ करती है।[2] भ्रकुटि-भङ्ग, दाँत तथा ओठ चबाना, भुजाये फडकाना, ललकरना, आरक्त नेत्र, स्वीकृत वीर कर्म वर्णन, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, आवेग, रोमाञ्च, स्वेद, कम्प, मद, आक्षेप, क्रूरदृष्टि आदि इसके अनुभाव है। मोह, अमर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव है।[3]

---

१ जयन्तविजय, १९/४२-४३।

२ रौद्र क्रोधस्थायीभावो रक्तो रूद्राधिदैवत ।
आलम्बनमरिस्तस्य तच्चेष्टोद्दीपन मतम् ॥
मुष्टिप्रहार पातन विकृतच्छेदावदारणोश्चैव ।
सग्रामसम्भ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत् प्रौढा ॥ —साहित्यदर्पण—३/२२७-२८।

३ भ्रू वि भङ्गौष्ठनिर्दंश बाहुस्फोटनतर्जना ।
आत्मावदनकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ॥
अनुभावास्तथाक्षेप क्रूर सदर्शनादय ।
उग्रतावेगरोमाञ्चस्वेदवेपथवोमद ॥
मोहामर्षादयस्तत्र भावा स्युर्व्यभिचारिण ॥ —साहित्यदर्पण—३/२२९-३०।

नवम सर्ग मे विक्रमसिंह अपनी सभा मे आये हुए सिंहलेश्वर के गज को बन्दी बना लेते हैं। कुछ समय के बाद सिंहलेश्वर का दूत उसे लेने के लिए सभा मे आ पहुँचता है। परन्तु विक्रमसिंह गज लौटाने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। दूत राजा से अपने पराक्रम के विषय मे बताना चाहता है। परन्तु नृपनन्दन जयन्त उसके स्वामी के लिए कटु वचनो का प्रयोग करते है। जयन्त के उन वचनो को सुनकर दूत के क्रोधित होने मे रौद्ररस की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है—

निशम्य निन्दामथ भर्तुरात्मन परिस्फुरत्कोपभरारुणेक्षण ।
जगाद दूत क्षितिनाथनन्दन प्रकम्पसपवलितोत्तराधरः ॥
निपीड्य दोर्दण्डबलेन तत्प्रभुद्विपाधिराज सह राज्य सपदा ।
न यावदादास्यतितावदस्य ते प्रभो प्रतीतिर्न भविष्यति ध्रुवम् ॥[1]

अर्थात् अपने स्वामी की निन्दा को सुनकर क्रोधयुक्त लाल-लाल नेत्र, वाले फडकते हुए रक्तिम अधर वाले एव काँपते हुए उस दूत ने राजा के पुत्र (जयन्त) से कहा कि हे नृपनन्दन ! जबतक अपनी भुजाओ के द्वारा राजसम्पत्ति के साथ आपके राज्य तथा गज को जीतकर मेरे प्रभु न ले लेगे तब तक उनके पराक्रम से आपको निश्चय ही विश्वास न होगा। यहाँ पर क्रोध स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव भूपति विक्रमसिंह एव उनके पुत्र जयन्त विक्रमसिंह तथा आश्रय दूत है। विक्रमसिंह द्वारा आत्मश्लाघा एव हरिराज की निन्दा करना उद्दीपन है। नेत्र का रक्त होना, ललाट पर भ्रकुटि पडना, कांपना आदि अनुभाव है। गर्व, आवेग, अमर्ष, तिरस्कार आदि सचारी भाव है। इन सबके सहयोग से दूत का क्रोध रौद्ररस मे आस्वादित हो रहा है।

अपिच —

अथेति दूतादवगम्य सम्यग्विद्याधराणामधिप प्रवृत्तिम् ।
कराल कोपस्फुरदोष्ठ पृष्ट क्षणादभूद्भ्रूकुटिभीषणास्य ॥
जयश्रिय सयति लब्धुमिच्छोस्तस्याबभु स्वेदलवा शरीरे ।
सापत्न्यसभावनया विमुक्ता बाष्पाम्बुलेशा इव राजलक्ष्म्या ॥
दोष्ण कृपाणे च रुषाभिताम्रातस्याघदृष्टि शुशुभे पतन्ती ।
सग्रामकालस्य जयाय पूजानिमित्तमम्भोरुहमालिकेव ॥
रराजगुञ्जारुणनेत्र कान्ति करम्बिता तस्य कृपाणलेखा ।
समस्तवैर क्षितिपालशौर्य सूर्यास्त सध्येव परिस्फुरन्ती ॥
करीन्द्र कुम्भाहतिकर्कशेन स ताडयन्न सतट करेण ।
चिराय वैरिव्ययत प्रसुप्त प्रबोधयञ्शौर्यमिव व्यराजत् ॥[2]

---

१ जयन्तविजय, ६/३८,३६।
२ वही, १४/१-२,४-६।

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे महेन्द्र अपने पुत्र के लिए पवनगति से उनकी कनकवती कन्या को माँगता है। परन्तु पवनगति जयन्त के साथ पहले ही उस कन्या का पाणिग्रहण सस्कार कर देते है। अत महेन्द्र के दूत से उस कन्या को देने से इन्कार कर देते हैं। फलत भूपति महेन्द्र दूत के मुख से समाचार पाकर क्रुद्ध होता है। यहाँ पर 'क्रोध' स्थायी भाव है। आलम्बन विभाव पवनगति एव आश्रय महेन्द्र है। पवनगति के जामाता जयन्त द्वारा महेन्द्र की निन्दा एव उसके दूत का अपमान उद्दीपन विभाव है। आँखो का लाल होना, काँपना, ओठो का फडफडाना आदि अनुभाव है। गर्व, आवेग, अमर्ष, तिरस्कार आदि सचारी भाव है विद्याधर अधिप महेन्द्र का जयन्त पर सहज उत्पन्न होने वाला क्रोध रौद्ररस मे आस्वादित हो रहा है।

भयानक रस– सस्कृत महाकवियो ने अपने महाकाव्यो मे भयानक रस को गौण रूप मे स्वीकार किया है। कवि अभयदेव भी इसी परिपाटी का अनुसरण करते है। इसका आलम्बन भयोत्पादक दृश्य होते है। इसका वर्ण कृष्ण है और इसके देवता काल है। भयोत्पादक मनुष्यो की भीषण चेष्टाये इसके उद्दीपन विभाव है। विवर्णता, गद्‌गद भाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इतस्तत , अवलोकन आदि इसके अनुभाव है। जुगुप्सा, आवेग, सम्मोह, सत्रास, ग्लानि, दीनता, शका, अपस्मार सभ्रम, मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव होते है।[1]

कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे यत्र-तत्र भयानक रस के उदाहरण प्राप्त होते है। एकादश सर्ग मे दिग्विजय के लिए जयन्त के प्रस्थान करने पर उनके आक्रमण के भय से रात मे गुफा के अन्दर छिपे हुए उसके वैरीगण उसके जाज्वल्यमान प्रताप से जलती हुई महौषधियो के लिए ईर्ष्या करते है—

तदा पातभयान्नक्त निलीना कन्दरोदरे ।
अमूयन्ति महौषध्ये ज्वलन्त्यस्तस्य वैरिण ॥[2]

---

१ भयानको भय स्थायिभावो भूताधिदैवत ।
स्त्रीनीच प्रकृति कृष्णो मतस्तत्व विशारदै ॥
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बन मतम् ।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपन पुन ॥
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्य गद्‌गद स्वर भाषणम् ।
प्रलयस्वेद रोमाञ्चकम्पादि क्प्रेक्षणादय ॥
जुगुप्सावेगसमोह सत्रासग्लानिदीनता ।
शङ्कापस्मार सभ्रान्ति मृत्य्वाद्या व्यभिचारिण ॥
—साहित्यदर्पण, ३/२३५-३८ ।

२ जयन्तविजय, ११/८७ ।

यहाँ पर शत्रुओ के मन मे आक्रमण की शङ्का होने से 'भय' स्थायी भाव है। जयन्त आलम्बन तथा उसके वैरीगण आश्रय हैं। नृप के प्रताप एव औषधियो का जलना उद्दीपन विभाव है। शत्रुओ का गुफा मे छिपना अनुभाव है। विषाद, दैन्य, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार विभावादि के सहयोग से 'भय' स्थायी भाव चर्वणा के योग्य हो गया है।

पुनश्च –

विलोलकर्णानिलवीचि शीतलै सदाभिषिञ्चन्तिकराग्रशीकरै ।
विमूर्च्छितान्यस्य भयेन दिग्गजान्स्वजातिवात्सल्यधियेव हस्तिन ।।[1]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे विक्रमसिह के व्यवहार से असन्तुष्ट सिहलभूप हरिराज द्वारा जयन्ती पर आक्रमण करने के समय उसकी सेना के हाथियो का वर्णन किया गया है। उसके हाथी भय से अपनी जाति की वत्सलता के कारण चञ्चल कर्णों की वायु के झोको से शीतल शुण्डो से गिरे हुए जलविन्दुओं से मूर्छित दिग्गजो का निरन्तर अभिषेक कर रहे है। यहाँ पर स्थायी भाव 'भय' है। आलम्बन विक्रम-सिह की सेना एव हरिराज के हाथी आश्रय हैं। विपक्षी सेना की भीषणता उद्दीपन विभाव है। हरिराज के हाथियो का फेन डालना उद्दीपन विभाव है। विषाद, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार इन सबके सहयोग से भय स्थायी भाव परि-पुष्ट हो रहा है।

युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए भी कवि अभयदेव कहते है कि उस समय धनुष से वादल की भाँति बाणो की झडी लगा देने पर कीर्तिकदलित राज-कुमारो से आकाशगमन सा प्रतीत होने लगा। इस समय कृतान्त को भी कँपा देने वाले, भय को भी भयकर लगने वाले तथा वैरीकुल को समाप्त करने वाले युद्ध को जयन्त ने किया—

तस्मिन्पर्जन्यवत्तत्र शरासार विमुञ्चति ।
राजहसै समुड्डीनमुद्भूत कीर्तिकन्दलै ।।
भयकर भयस्यापि कृतान्तस्यापि कम्पकृत ।
चकार वैक्रिमिर्वैरिकुलान्त करण रणम् ।।[2]

यहाँ पर घमासान युद्ध का प्रसङ्ग होने से 'भय' स्थायी भाव होकर भयानक रस का आस्वाद करा रहा है।

वीभत्स रस––घृणित वस्तु को देखकर मानव मन मे जो घृणा की भावना उदित होती है, वही वीभत्स रस का स्थायी भाव है। 'जुगुप्सा' स्थायी भाव का

१. जयन्तविजय, ६/५३ ।
२ वही, ११/७३-७४ ।

अभिव्यञ्जन ही 'वीभत्स रस' है। उसका वर्ण नील है। इसके देवता महाकाल हैं। इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मास, रक्त, मेदा (चर्बी) आदि है। दुर्गन्धमय मासादि मे कीडे पडना इसका उद्दीपन विभाव है। थूकना, मुँह फेरना, नेत्र बन्द करना आदि इसके अनुभाव हैं और मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव है।[1]

वीभत्स रस शृगार, करुण आदि की भाँति आह्लादकारी न होने के कारण कवियो को विशेष प्रिय नही रहा है। महाकाव्यो मे उसका वर्णन स्फुटरूप में प्राप्त होता है। कवि अभयदेव के काव्य मे भी वीभत्स रस निम्न स्थल मे दर्शनीय है—

मृतकोटिकरालकलेवर प्रचुरदु सहगन्ध भरावहे ।
अभिमुखागत गन्धवहैर्मुहुर्यदतिदूर विवर्त्यपि सूच्यते ॥
मिलिद सख्य शिवाकृत फेत्कृतैर्यद सुकम्पकृदूद्धितमूर्द्धजम् ।
अधिक घूकघनार्तिदघूत्कृतै स्खलितकातरजन्तुगतागति ॥
भृतदिगन्तरदु श्रवहु कृतै विकृतवेषवपुर्मुखनर्तनै ।
प्रचुरराक्षस भूत पिशाचकैर्भय कुलैरि दुर्गपथ नृणाम् ॥
विपुल मासवसामदिरोन्मद वितत मुत्कलकेशमवस्त्रभृत् ।
भ्रमति यत्र सताण्ड व डाकिनी कुलमकाल मृतेरिव सादरम् ॥
निशि च यत्र निशाचर निर्मितामति भयकरकेलिविलोकनम् ।
छलयति स्म विधैर्यधन जन यमगृहा तिथिता नयते च ताम् ॥
किमिह भूरिवचोभिरुदीरितैस्तदपर भुवि काल निकेतनम् ।
निजगृह स्थिर धैर्यवता पुन पितृवन स ददर्श नृपस्तत ॥[2]

प्रस्तुत प्रसङ्ग मे श्मशान के दृश्य का वर्णन किया गया है। यहाँ पर आश्रय, पाठक अथवा कवि के हृदय मे विद्यमान जुगुप्सा स्थायी भाव है। आलम्बन श्मशान है जहाँ अनेक जीव मरे हुये पडे है। शृगालियो की आवाज एव मास, वसा और मदिरा आदि से उन्मत्त डाकिनियो का नर्तन उद्दीपन है। आक्षेप से रोमाञ्च एव दृष्टि सकोच को अनुभाव माना जा मकता है। ग्लानि एव जडता सचारी भाव

---

१ जुगुप्सा स्थायिभावास्तु वीभत्स कथ्यते रस ।
नीलवर्णो महाकालदेवतोऽयमुदाहृत ॥
दुर्गन्धमासरुधिर मेदास्यालम्बन मतम् ।
तत्रैव कृमिपातश्च मुद्दीपनमुदाहृतम् ॥
निष्ठीवनास्यवलननेत्र संकोचनादय ।
अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिण ।
मोहोऽपस्मार आवेगोव्याधिश्च मरणादय ॥ —साहित्यदर्पण, ३/२३९-४१।
२. जयन्तविजय, ४/६-१४।

है । इन सभी विभाव, अनुभाव एव व्यभिचारी भाव के सयोग से 'वीभत्स रस' की पुष्टि हुई है ।

अद्भुतरस किसी भी अद्भुत वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना को देखकर अथवा पढकर गुमसुम हो जाना, नेत्रो का स्तब्ध रह जाना स्वाभाविक है। 'विस्मय' नामक स्थायी भाव का अभिव्यञ्जन ही अद्भुत रस है । इसका वर्ण पीत है । इसके देवता गन्धर्व है । इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु है । अलौकिक वस्तु का गुण कीर्तन इसका उद्दीपन है । स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गद स्वर, सभ्रम, हर्ष, नेत्र विकास आदि इसके अनुभाव हैं । वितर्क, आवेग, सभ्रम, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव माने गये है ।[1]

सस्कृत महाकाव्यो मे अद्भुत रस गौण रूप मे प्राप्त होता है । कवि अभयदेव का महाकाव्य भी इससे अछूता नही है । कवि का एक स्थल दर्शनीय है - विद्युत की द्युति को जीतने योग्य कान्ति वाली, अपने रूप से त्रिलोक के नेत्रो को तृप्त रखने वाली उस कनकवती को देखकर चकित होते हुए युवराज जयन्त सोचने लगते है कि क्या यहाँ इस पर्वत पर पर्वतपुत्री सुन्दरता को देखने के लिए आई है ? या रति है ? अथवा रमा है ? परन्तु जब वे उसे ध्यानपूर्वक देखते है तो उनका आश्चर्य दूर हो जाता है और निमेष के कारण उसे मृत्युलोक की ललना समझते है —

ता तडिद्द्युतिविजित्वरकान्ति रूपतर्पितजगत्त्रयनेत्राम् ।
वीक्ष्य विस्मयतरङ्गित चेता स व्यचिन्तयदिद युवराज ॥
पर्वते किमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
कि रति किमु रमा खलु नैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ॥[2]

प्रस्तुत वर्णन मे युवराज जयन्त को कनकवती के रूप-सौन्दर्य के प्रति आश्चर्य होता है । यहाँ पर जयन्त आश्रय तथा कनकवती विषयालम्बन है । कनकवती का अद्भुत सौन्दर्य ही उद्दीपन है । अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर जयन्त का आश्चर्य से स्तब्ध रह जाना एव सभ्रम मे पड जाना ही अनुभाव है । वितर्क सञ्चारी भाव है । इस प्रकार इन सबसे पुष्ट होकर विस्मय स्थायी भाव अद्भुत रस के रूप मे अभिव्यक्त हो रहा है ।

---

१ अद्भुतो विस्मयस्थायीभावो गन्धर्वदैवत ।
पीतवर्णोवस्तु लोकाति गमालम्बन मतम् ॥
गुणाना तस्य महिमा भवे दुद्दीपन पुन ।
स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्च गद्गद् स्वरसभ्रमा ॥
तथा नेत्र विकासाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता ।
वितर्क वेग सभ्रान्ति हर्षाद्या व्यभिचारिण ॥ —साहित्यदर्पण, ३/२४२-२४४ ।

२ जयन्तविजय, १३/११-१२ ।

अपि च –

लोचनैरिव विकस्वरपुष्पै पल्लवै करतलैरिवशोणै ।
उत्कुचैरिव फलैर्वन लक्ष्म्यास्तत्र विस्मयमतीव सा भजे ।।[1]

यहाँ पर वन की शोभा का वर्णन किया गया है । जिस शोभा को देखकर युवराज चकित हो जाते है । कवि का कथन है कि उस वन मे वनलक्ष्मी के नेत्र के समान खिले हुए पुष्पो से, करतल के समान रक्तिम पल्लवो से और उन्नत कुचो के समान फलो से वहाँ पर विस्मय प्रादुर्भूत हुआ । इस प्रकार 'विस्मय' स्थायी भाव के द्वारा अद्भुत रस की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो रही है।

शान्त रस—कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शान्त रस का भी वर्णन प्रस्तुत किया है । 'नाट्य-शास्त्र' मे शान्त रस का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण शान्त रस के सम्बन्ध मे विभिन्न मत प्रचलित हो गये है । कुछ आचार्यों ने तो शान्त नामक रस को स्वीकार ही नही किया है, कुछ आचार्य ऐसे भी हैं जिन्होने काव्य मे शान्त रस को स्वीकार किया है किन्तु नाट्य मे उसका होना असम्भव बताते है ।[2]

विश्वनाथ कविराज शान्त रस के समर्थक काव्याचार्यों मे है । आचार्य मम्मट ने भी शान्त रस का समर्थन किया है, किन्तु शान्त रस के स्थायी भाव के सम्बन्ध मे दोनो आचार्यों मे मतभेद है । आचार्य मम्मट के अनुसार शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है ।[3] परन्तु विश्वनाथ कविराज ने शान्त रस का स्थायी भाव 'शम' को माना है ।[4] विश्वनाथ के अनुसार शान्त रस वह है जिससे 'शम' रूप स्थायी भाव का आस्वाद होता है । इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति होते हैं । इसका वर्ण कुन्द श्वेत अथवा इन्द्र श्वेत है । इसके देवता नारायण है । अनित्यता अथवा दु खमयता के कारण समस्त सासारिक विषयो की नि सारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्मस्वरूप का ज्ञान ही इसका आलम्बन है । पवित्र आश्रम, भगवान की लीला मर्तियाँ, तीर्थ स्थान, रम्य कानन, साधु सन्तो का सत्सङ्ग आदि इसके उद्दीपन है । रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं और निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि व्यभिचारी भाव हैं ।[5]

---

१ जयन्तविजय, १३/५ ।
२ शममपि केचित्प्राहु पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य । —दशरूपक, ४/३५ ।
३ निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस । —काव्यप्रकाश, ४/४७ ।
४ शान्त शम स्थायिभाव उत्तम प्रकृतिर्मत । —साहित्यदर्पण, ३/२४५ ।
५ कुन्देन्दुसुन्दरच्छाया श्री नारायण दैवत ।
अनित्यत्वादिनाऽशेष वस्तुनि सारतातु या ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे शान्त रस के उद्धरण भी प्राप्त है क्योकि जिस प्रकार आनन्द की सम्प्राप्ति के लिए शृङ्गार की परम उपादेयता है उसी प्रकार परममोक्ष की आध्यात्मिक सुखानुभूति के लिये शान्त रस की अपेक्षा है। लौकिक जगत् मे किसी विशेष घटना द्वारा मन पर प्रभाव पडने से जब समस्त संसार असार, क्षणभगुर तथा दु खमय प्रतीत होता है और सासारिक भोगो से वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है तो ऐसी स्थिति को ही 'निर्वेद' कहते हैं। प्रस्तुत प्रसङ्ग हमे 'जयन्तविजय' महाकाव्य के अष्टादश सर्ग मे प्राप्त होता है। राजा विक्रमसिंह के हृदय मे ससार की अनित्यता को देखकर विरक्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है। वे विचारने लगते है यह शरीर जो पहले सुख का साधन था वह भी रोग और वृद्धावस्था से ग्रस्त हो जाता है। अत यहाँ पर कौन सा इष्ट फल को उत्पन्न करने वाला वन है जो कि दावाग्नि की शिखा की भाँति क्षणभगुर न हो ? अर्थात् यहाँ सब कुछ क्षणभगुर ही है। शरद् कालीन बादल के सगे भाई की भाँति ससार मे उत्पन्न होने वाला सुख है। अभिप्राय यह है, कि वह भी कुछ समय के पश्चात् नष्ट हो जाता है तथा परिणाम मे नीरस एव मुख मे मधुर विषतरु की भाँति मनुष्य पके हुए फल के समान है। अर्थात् जिस प्रकार पका हुआ फल किसी समय गिर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य भी किसी समय शरीर का त्याग कर सकता है, क्योकि ससार मे नित्य सब को अनित्यता का कवल बनाते हुए खेल सा हो रहा है इसीलिए शीघ्रातिशीघ्र अनन्त सनातन अतुलनीय कल्याण वाले व्रत का आधान करना चाहिए—

वपुरिद प्रथम सुख साधन तदपि रोगजरादिभिरस्थिरम्।
किमिह मिष्टफल प्रभव वन वनजवह्निशिखाभिरभगुरम् ॥
भवति शारदनीरदसोदर सकलमेव भवप्रभव सुखम्।
परिणतौ विरस मधुर मुखे विषतरोरिव पक्वफल नृणाम् ॥
त्रिभुवनेष्वपि नित्यमानित्यताकवलित निखिलखलु खेलति।
तदविलम्बमनन्तसनातनानुपमशर्मकर व्रतमादधे ॥[1]

यहाँ पर राजा विक्रमसिंह के जरावस्थाजन्य ससार की नश्वरता को देखकर हृदय मे उत्पन्न विरक्ति का वर्णन किया गया है। अत विक्रमसिंह 'आश्रय' है।

परमात्म स्वरूप वा तस्यलम्बन मिष्यते।
पुण्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थ रम्यवनादय ॥
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिण।
रोमाञ्चाद्यानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिण ॥
निर्वेदहर्षस्मरणयति भूतदयादय। —साहित्यदर्पण, ३/२४५-४८।

१ जयन्तविजय, १८/५०,५५-५६।

ससार की अनित्यता 'विषय' है। शरद्कालीन बादल एव पका हुआ फल उद्दीपन है। 'निर्वेद' सचारी भाव है। इस प्रकार 'शम' स्थायीभाव शान्त रस की पुष्टि कर रहा है।

वात्सल्य रस—कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे 'वात्सल्य रस' भी दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि अभिनवगुप्त, रुद्रट, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने वात्सल्य को रस के रूप मे स्वीकार नही किया है।[1] क्योकि उन्होने इसे स्नेह का ही नामान्तर माना है तथा इसका अन्तर्भाव 'भाव' मे ही कर लिया है किन्तु आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य रस मे चमत्कार होने के कारण स्वतन्त्र रूप से उसकी प्रतिष्ठा स्थापित की उनके अनुसार इसका स्थायी भाव 'वात्सल्य प्रेम' है। पुत्र आदि इसके आलम्बन विभाव है। पुत्रादि चेष्टाओ मे उनकी विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। आलिङ्गन, अङ्ग स्पर्श, शिशु चुम्बन, सस्नेह वीक्षण, रोमाञ्च, आनन्द से अश्रुओ का निकलना आदि इसके अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।[2]

'जयन्तविजय' मे अपने शिशु जयन्त को देखकर राजा विक्रमसिह का हृदय पुत्र प्रेम से भर जाता है जो कि वात्सल्य रस का सुन्दर उदाहरण है। कवि के शब्दो मे—

> ससम्भ्रमाथ प्रतिपत्तिपूर्वमुर्वीपतेरासनमाश्रितस्य।
> ततोऽनुजन्मानमिव स्मरस्य सादर्शयन्नन्दनमिन्दुकान्तम्॥
> तमङ्कमारोप्य निरूप्य सम्यक्सल्लक्षणैर्लक्षितकाययष्टिम्।
> अमन्यत क्षोणिपतिर्धरित्रीभार समुत्तीर्णमिव स्वदोष्ण ॥[3]

अर्थात् सम्भ्रम से उस रानी ने आसन पर बैठे हुए राजा को कामदेव के अनुज के समान इन्दुकान्त नन्दन को दिखाया तथा राजा ने उस बालक को गोदी

---

१ अभिनवभारती, अध्याय ६, पृ० ६४०, रुद्रट काव्यालकार, १२/३ तथा काव्यानुशासन अध्याय २, पृ० ६७।

२ स्फुट चमत्कारितया वत्सल चरस विदु।
स्थायी वत्सलता स्नेह पुत्राद्यालम्बन मतम्॥
उद्दीपनादि तच्चेष्टा विद्याशौर्य दयादय।
आलिङ्गनाङ्गसस्पर्श शिरश्चुम्बनमीक्षणम्॥
पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता।
सचारिणोऽनिष्ट शङ्काहर्षगर्वादयो मता॥ —साहित्यदर्पण, ३/२५१-५३।

३ जयन्तविजय, ६/८६-८७।

में बैठाकर अच्छे लक्षणो से युक्त उस पुत्र के शरीर को देखकर अपनी भुजाओ से सम्पूर्ण पृथ्वी के भार को उत्तीर्ण की भाँति समझा। अर्थात् अपने को धन्य माना।

यहाँ पर राजा विक्रमसिंह की पुत्र-विषयक रति स्थायी भाव है। पुत्र जयन्त उनका आलम्बन है। जयन्त का मनोहारी कामदेव के समान रूप और बाल चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव है। पुत्र को गोद मे लेना तथा उसके शरीर को एकटक दृष्टि से देखना अनुभाव है। हर्ष, औत्सुक्य, उत्साह आदि सचारीभाव हैं। इन सबसे परिपुष्ट होता हुआ वात्सल्य रस अत्यन्त चमत्कारी व आनन्ददायक है।

इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक भी पिता के शिशुप्रेम को प्रकट करता हुआ वात्सल्य रस को अत्यन्त पुष्ट कर रहा है—

कान्तकूर्चकचकर्षणैरसौ स्पर्शतश्चपलकोमलाङ्गजै।
मन्मनैश्च वचनैर्ददे पितुर्वागगोचर सुखोदया दशाम्॥[1]

अर्थात् मनोहर दाढी और सुन्दर कच के रगडने से, चञ्चल कोमल अङ्गो के स्पर्श से एव मनोहर वचनो से इस बालक (जयन्त) ने पिता को अगोचर सुख को पैदा करने वाली दशा को प्राप्त कराया।

यहाँ पर कुमार की दाढी, कच, कोमल अग एव मनोहर वचन उद्दीपन विभाव है। 'देखना' अनुभाव तथा 'हर्ष' सचारी भाव है।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने जयन्तविजय महाकाव्य मे अन्य रसो की भाँति वात्सल्य रस की योजना भी की है।

जयन्तविजय महाकाव्य मे भाव योजना

रस वर्णन के साथ ही भाव योजना भी प्रस्तुत महाकाव्य मे वर्णनीय है, क्योकि रस की भाँति भाव भी सामाजिक चर्वणा का विषय बन जाते है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ रसाभास, भावाभास भावोदय इत्यादि को आस्वाद का विषय बताते हुए उनमे उपचार मे 'रस' शब्द के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।[2] इस प्रकार स्पष्ट है, कि काव्य मे रस के समान ही भाव योजना का भी महत्त्व है।

आचार्य मम्मट ने भी अपने काव्यप्रकाश' मे भाव योजना के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनका कथन है—

रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथाञ्जित भाव प्रोक्त।[3]

---

१ जयन्तविजय, ७/१०

२ रसभावो तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ।
सन्धि शबलता चेति सर्वोऽपि रसनाद्रसा॥ —साहित्यदर्पण, ३/२५९-६०।

३ काव्यप्रकाश, ४/३५, सूत्र ४८।

अर्थात् देवादि विषयक रति (आदि स्थायी भाव तथा व्यग्य व्यभिचारी भाव) भाव कहलाते है ।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार—

सञ्चारिण प्रधानानि देवादिविषया रति ।
उद्बुद्धमात्र स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥[1]

अर्थात् प्रधान रूप से प्रतीयमान व्यभिचारी भाव तथा देवता गुरु आदि के विषय मे अनुराग एव सामग्री के अभाव मे रस रूप को प्राप्त न हो सकने वाले उद्बुद्ध मात्र स्थायी भाव भाव के अन्तर्गत आते है ।

महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अनेक स्थलो पर भाव योजना के उदाहरण प्राप्त होते है । यथा देव-विषयक रति का उदाहरण—

श्रेयासि विश्राणयतादजस्र नाभेयदेवस्य पदाम्बुज व ।
समस्तसपन्मधुबद्धरागा यत्र त्रिलोकी भ्रमरीव भाति ॥[2]

अर्थात् नाभेयदेव का चरणकमल आप लोगो को निरन्तर कल्याण प्रदान करता रहे । जिस चरणकमल मे त्रिलोकी सम्पूर्ण सम्पत्तिरूपी मधु मे अनुराग लगाये हुए भ्रमरी की भाँति सुशोभित होता है ।

यहाँ पर कवि का इष्टदेव 'नाभेयदेव' के प्रति भक्तिपरक रतिभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है । अत यह भाव का उदाहरण है । इसी प्रकार कवि वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के प्रति अपनी भावना को व्यक्त करते हुए कहता है—

निर्णिक्तमुक्तामणिमञ्जुकर्णताटकयुग्म विरराज यस्या ।
आस्यश्रिय लुभ्यमिवोडुचारुचन्द्रद्वय पातु सरस्वती सा ॥[3]

अर्थात् जिसके बनाये गये मुक्तामणि से सुन्दर कान मे पहना हुआ ताटक युग्म नक्षत्रयुक्त चन्द्रद्वय के समान सुन्दर मुख की शोभा का लोभी है । वह सरस्वती आप लोगो की रक्षा करे ।

यहाँ पर देवी सरस्वती के प्रति कवि का भक्तिपरक रतिभाव परिलक्षित होता है । अत यह भाव का उदाहरण है ।

भाव का एक अन्य उदाहरण निम्नलिखित श्लोक मे प्राप्त होता है जिसमे कवि की अपने गुरु के प्रति श्रद्धारूप भाव का चित्रण किया गया है—

प्रसृत्वरामोद गुणप्रबोध दिशन्ति शिष्यप्रकराम्बुजानाम् ।
ये स्पर्धयेवाम्बुजिनीप्रियस्य जयन्तु ते मे गुरवो मुनीन्द्रा ॥[4]

---

१ साहित्यदर्पण, ३/२६०-६१ ।
२ जयन्तविजय, १/१ ।
३ वही, १/७ ।
४ वही, १/८ ।

अर्थात् जो कमलरूपी शिष्य समूह को शीघ्र गन्धरूपी गुणो से जगाने मे सूर्य से स्पर्धा करते हैं। उन मेरे मुनीन्द्र गुरु की जय हो।

यहाँ पर कवि का अपने गुरु के प्रति अनुराग स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा है। इसी प्रकार कवि अभयदेव का उन सभी कवियो के प्रति श्रद्धारूप भाव व्यक्त हुआ है जिनकी सत्प्रेरणा के मन्द बुद्धि वाले कवि भी कविता मे प्रवीण हो गये हैं—

जयन्ति ते सत्कवयो यदुक्त्या बाला अपि स्यु कविता प्रवीणा ।
श्री खण्डवासेन कृताधिवासा श्रीखण्डता यान्त्यपरेऽपि वृक्षा ॥
जयन्तु सर्वेऽपि कवीश्वरास्ते यदीयसत्काव्यसुधा प्रवाह ।
विकूणिताक्षेण सुहृज्जनेन निपीयमानोऽप्यति पुष्यतीव ॥[1]

अर्थात् उन सत्कवियो की विजय हो जिनकी रचना से बाल (मन्द बुद्धि वाले) भी कविता मे प्रवीण हो जाते हैं, क्योकि मलयागिरि चन्दन के वास से अधिवासित हो जाने पर अन्य वृक्ष भी मलयगिरिता को प्राप्त होते है तथा वे सभी कवीश्वर, जिनके सत्काव्य के अमृत का प्रवाह विस्फारित नेत्रो वाले सुहृज्जनो के द्वारा पान किया जाता हुआ फलित होता है, जय को प्राप्त करे।

यहाँ पर कवि का अपने पूर्ववर्ती कवियो के प्रति अनुराग स्पष्टत है। अत भाव का उदाहरण है।

राजा विषयक रति के उदाहरण भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्राप्त होते हैं। यथा—

एतत्प्रभावप्रथित त्रिलोकीहृद्य त्रिवर्गानुपमप्रकर्षम् ।
वीरव्रतालकरण चरित्र श्रीमज्जयन्तस्य नृपस्य वक्ष्ये ॥[2]

अर्थात् इस प्रकार के प्रभाव से विख्यात, त्रिभुवन के हृदयग्राही धर्म, अर्थ, काम की असीम विशेषता वाले, वीरव्रतधारियो के लिए अलकरण, श्रीयुत जयन्त-राज के चरित्र को कहता हूँ।

यहाँ पर जयन्त के प्रति कवि अभयदेव का स्तुति रूप भाव प्रकट हुआ है। अत यह नृपविषयक रति का उदाहरण है।

इस प्रकार भाव के अन्तर्गत देव विषयक, गुरुविषयक तथा नृपविषयक रति के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं किन्तु इसके अतिरिक्त जहाँ पर स्थायी भाव पोषक सामग्री के अभाव मे रस रूप को नही प्राप्त कर पाता केवल उद्बुद्ध मात्र होकर रह जाता है। उसका विवेचन भी भाव के अन्तर्गत किया जाता है। यद्यपि

---

१ जयन्तविजय, १/१७-१८।
२ वही, १/२४।

सामान्यरूप से 'जयन्तविजय' मे रस का पूर्ण परिपाक विद्यमान है किन्तु इस प्रकार के उद्‌बुद्ध मात्र स्थायीभाव के एकाध स्थल उदाहरणस्वरूप काव्य मे मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ उद्‌बुद्ध मात्र रतिरूप स्थायीभाव का निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत है—

किं चावदत्कापि विलाससारा सारगकान्ता कमनीयनेत्रा।
स्मरोऽङ्गलक्ष्म्या यमपूर्वरूपस्तत्पूजयैन सखिनेत्रपुष्पै ॥[1]

अर्थात् किसी कमनीय नेत्र वाली मृगनयनी ने विलासपूर्ण होकर कहा—हे सखि! ये अङ्गलक्ष्मी के अनुपम रूप कामदेव हैं। अत इनकी नेत्ररूपी पुष्पो से पूजा कीजिये।

यहाँ पर सुन्दरी के हृदय मे जयन्त के लिए रतिरूप स्थायी भाव का चित्रण है, परन्तु आलम्बनादि सामग्री के अभाव मे यह रस रूप को नही प्राप्त हो पाया है। अत यह भाव का उदाहरण है।

इसके अतिरिक्त जहाँ पर व्यभिचारी भाव प्रधान रूप से व्यक्त हो रहे हो वहाँ पर भी भाव का स्थल समझना चाहिए। यद्यपि काव्य मे रस प्रधान तत्त्व होता है तथा व्यभिचारी भाव उसकी पोषक सामग्री के रूप मे होने के कारण उसकी तुलना मे गौण रहते है तथापि किसी-किसी स्थल पर व्यभिचारी भाव भी प्रधानता को प्राप्त कर लेते है। मम्मट ने इसको भृत्य तथा राजा के उदाहरण से स्पष्ट करते हुए कहा है कि यद्यपि भृत्य की तुलना मे राजा प्रधान होता है, किन्तु किसी भृत्य के विवाह के अवसर पर उपस्थित होते हुए राजा की तुलना मे भृत्य प्रधान हो जाता है। उसी प्रकार रस के मुख्य होने पर भी कभी-कभी भावादि को भी प्रधानता प्राप्त हो जाती है।[2]

साहित्य दर्पणाकार आचार्य विश्वनाथ इसी भाव को दूसरे ढङ्ग से व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार प्रपानक रस की भाँति शृङ्गारादि रस मे विभावादि का मिलाकर एक आस्वाद होता है। इस प्रकार यद्यपि सचारी भाव पृथक् नही रहता तथापि जिस प्रकार प्रपानक रस मे मिर्च, खाड आदि का एकीकरण होने पर भी कभी-कभी (मिर्च आदि) की अधिकता हो जाती है उसी प्रकार सचारी भाव की कही-कही प्रधानता हो जाती है।[3]

---

१ जयन्तविजय, १६/२६।

२ मुख्ये रसेऽपि तेऽङ्गित्व प्राप्नुवन्ति कदाचन।
ते भाव शान्त्यादय। अङ्गित्व राजानुगतविवाहप्रवृत्तभृत्यवद्।
—काव्यप्रकाश, ४ ३७ सूत्र ५१ तथा वृत्ति।

३ ननूक्त प्रपानक रसवद्विभावादीनामेकोऽत्राभासो रस इति तत्र सञ्चारिण। पार्थक्याभावात्कथ प्रधान्येनाभिव्यक्तिरित्युच्यते यथामरिचखण्डादेरेकीभावे प्रपानेक। उद्रेक कस्यचिद्क्वापि तथा सञ्चारिणो रसे।—साहित्यदर्पण, ३/२६१-६२।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अनेक स्थलो पर व्यभिचारी भाव के उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। जिनमे से कुछ निम्नवत् हैं—

असूया

मधुरसविभवेन स्पर्द्धते नो धरात्री-
रुणिम सुकुमारत्वेन पाणिप्रवालैः ।
कमलवनमितीवासूययोत्पाटयन्ती-
रविशदथ जयन्तस्ता पुरस्कृत्य तत्र ॥[1]

अर्थात् इसके पश्चात् वहाँ पर मधुरस के विभव के द्वारा अधरो से स्पर्धा करने वाले तथा अरुणिमा और सुकुमारता के द्वारा पाणिप्रवाल से स्पर्धा करने वाले उस कमलवन को अत्यन्त ईर्ष्या से उखाडती हुई उन स्त्रियो को आगे करके श्री जयन्त ने प्रवेश किया।

यहाँ पर कमलो के प्रति स्त्रियो की असूया अथवा ईर्ष्यारूप सञ्चारी भाव की स्पष्ट रूप से प्रतीति हो रही है। अत यह भाव का उदाहरण है।

इसी प्रकार कवि ने प्रकृति मे मानवीय भावनाओ का आरोप कर अनेक प्रकार के मानसिक विकार एव भावो का विश्लेषण किया है—

मद्वल्लभा कैरविणीमुपेत्य चुम्बन्त्यमी रागवतेति राज्ञा ।
अमोचयत्यब्जुज गुप्तिनद्धान् मित्र प्रभाते वसुभिर्द्विरेफान् ॥[2]

अर्थात् ये भ्रमर चन्द्रमा की प्रेयसी कुमुदिनी का रात्रि मे चुम्बन करते हैं। अत चन्द्रमा उन्हे कमलरूपी कारागार मे बन्द कर देता है। किन्तु प्रातकाल सूर्य उन्हे अपनी किरणो से कमलरूपी कारागार को खोलकर मुक्त कर देता है, जैसे कोई राजा अपनी प्रेयसी के कामुक व्यक्ति को कारागार मे डाल देता है किन्तु प्रात उसका विरोधी धन लेकर उसे मुक्त कर देता है।

यहाँ पर भ्रमरो के प्रति चन्द्रमा की असूया अथवा ईर्ष्या रूप सचारी भाव की स्पष्ट रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। अत मानवीकरण के रूप मे प्रकृति का यह प्रयोग कलात्मक होने के साथ-साथ भाव का उदाहरण भी बन गया है। इसी प्रकार—

तदापातभयान्नक्तं निलीना कन्दरोदरे ।
असूयन्ति महौषध्ये ज्वलन्त्यस्तस्य वैरिण ॥[3]

अर्थात् उसके आक्रमण के भय से रात मे गुफा के अन्दर छिपे हुए उसके

---

१ जयन्तविजय, ८/३५।
२ वही, ८/७१।
३ वही, ११/८७।

वैरीगण उसके जाज्वल्यमान प्रताप से जलती हुई महौषधियों के लिए ईर्ष्या करते हैं।

प्रस्तुत उदाहरण मे रात्रि मे जलने वाली महौषधियो के प्रति शत्रुओ की ईर्ष्या व्यक्त हो रही है। अत भाव का उदाहरण है। और भी—

कीर्तन विशतु मा स्म कन्यका काक्षिणामपरभूभृतामिव।
अंगुलीकिसलयेन कश्चन श्रोत्रसपुटमिति व्यघण्टयत् ॥[1]

अर्थात् यह कन्या, चाहने वाले दूसरे राजाओ की वाणी मे प्रविष्ट न हो। इसीलिए किसी राजा ने अंगुलिपल्लव से स्रोत सम्पुट को बन्द कर लिया।

यहाँ पर एक राजा की दूसरे राजा के प्रति असूया अथवा ईर्ष्या व्यक्त हुई है। अत यह भी भाव का उदाहरण है।

लज्जा

यथा—

मधुकलसमनाभि स्फारसौरभ्यसार
कुसुमनिवहमेता य गृहीतु प्रयान्ति।
तदभिरुचितवासैस्ता अदृश्यन्तभृङ्गै
परपरिभवकारी क किल प्रीतिमेति ॥[2]

अर्थात् मधु से सुशोभित मध्य भाग वाले, बढ़ती हुई सुगन्धसार वाले जिन पुष्प समुदाय को लेने के लिए स्त्रियाँ जाती हैं। उनमें रुचिकरवास वाले भौंरे ने उन्हे देखा, क्योकि दूसरे का अनादर करने वाला कौन प्रसन्न होता है।

यहाँ पर स्त्रियो के पुष्पावचय का वर्णन किया गया है। किन्तु जब वे स्त्रियाँ पुष्पो तो तोडने के लिए जाती हैं तो उनमे बैठे हुए भौंरे उन्हें देखते हैं। अत वे लज्जित होकर वापस चली आती हैं। इस प्रकार यहाँ लज्जा रूप व्यभिचारी भाव की प्रतीति हो रही है। इसी प्रकार—

अनवरतमखण्ड मण्डल निष्कलङ्क
प्रथयति कमलाना कामभुन्निद्रतां च।
अयमिति परिभाव्य क्ष्मापतेर्विक्रमस्य
प्रविशति हिमरश्मिर्लज्जयेवाम्बुराशिम् ॥[3]

अर्थात् इसका मण्डल निरन्तर अखण्डित एव निष्कलक है और कमलो की उन्निद्रता को यथेष्ट बिस्तृत करता है। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम को जानकर चन्द्रमा लज्जा के वशीभूत होकर समुद्र मे प्रवेश करता है।

१ जयन्तविजय, १६/४५। २ वही, ८/१८।
३ वही, ८/६५।

प्रस्तुत स्थल पर भी सूर्य के पराक्रम को जानकर चन्द्रमा की लज्जा के विस्तार का वर्णन किया गया है। अत लज्जारूप व्यभिचारी भाव दृष्टिगोचर हो रहा है।

इसी प्रकार त्रयोदश सर्ग मे भी कनकवती के जघाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना लज्जित होकर वनवास का आश्रय लेती है। कवि के शब्दो मे –

रामणीयकमनकुशमस्या जङ्घयोरनघयोरवलोक्य ।
नूनमुद्गत पराभवदु खा सत्वरेणललना वनवासम् ॥[1]

अर्थात् इसकी सुन्दर रोमरहित निरकुश जघाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना ने पराभव के दु ख के उत्पन्न होने के कारण वनवास का आश्रय लिया।

यहाँ पर भी लज्जारूप व्यभिचारी भाव की प्रतीति हो रही है।

इसी प्रकार—

सा विकासिवदनापि कुलीना लज्जया निगदितु न शशाक ।
कि तु कम्पपुलकाञ्चितगात्रैरेव त वरतया प्रतिपेदे ॥[2]

अर्थात् विकसित वदन वाली वह कुलीन कन्या लज्जा से कुछ कहने मे समर्थ नही हुई किन्तु पुलकित गात्रो मे उसको वर बनाने के समान प्राप्त हुई।

यहाँ पर भी नारी-विषयक लज्जा का मनोहारी वर्णन किया गया है।

नारी-विषयक लज्जा का एक मनोहारी उद्धरण चतुर्दश सर्ग से प्रस्तुत है—

प्रहार मूर्छाप्रविलुप्तसज्ञ वरार्थिनी कचिदुपेत्य वीरम् ।
पुन प्रवृत्त प्रधनाय दृष्ट्वा जगाम लज्जा विधुरासुरस्त्री ।[3]

अर्थात् वर को चाहने वाली, पतियो से हीन देवाङ्गनाएँ, प्रहार की मूर्छा से शून्य सज्ञा वाले किसी वीरवर के पास आकर फिर से उसको युद्ध के लिए प्रवृत्त देखकर बडी लज्जा को प्राप्त हुई।

यहाँ पर भी लज्जा रूप व्यभिचारी भाव का निरूपण हुआ है।

चिन्ता—

यथा—

इति प्रतिज्ञावचनादमुष्य सा मुमूर्छ वज्राभिहतेव तत्क्षणम् ।
पपात च च्छिन्नलतेव भूतले किमद्भुत प्रेमवतामिद हि वा ॥[4]

१, जयन्तविजय, १३/१६।
२ वही, १३/४६।
३ वही, १४/६८।
४ वही, २/३२।

अर्थात् इस तरह से वह राजा के प्रतिज्ञा वचन से वज्राघात के समान उसी समय मूर्छित होकर भूतल पर छिन्न लता की भाँति गिर पडी, क्योकि प्रेमी जनो के लिए इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

यहाँ पर रानी प्रीतिमती के चिन्ताविषयक व्यभिचारी भाव का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार

तव स्फूर्जच्छौर्यप्रभवयशसा चन्द्रमहसा
भृश शुभ्रीभूत खकचनिचय वीक्षितवती ।
पलिन्कीत्वभ्रान्त्या कुलितहृदयात्रौषधविधे
शची पृच्छाक्लेशे निपतति मुहु स्वर्गिभिषजो ॥[1]

अर्थात् तुम्हारे बढे हुए शौर्य के प्रभाव के यशवाले चन्द्र से अत्यन्त शुभ्र होते हुए अपने कच निचय को देखती हुई, बाल के पकने की भ्रान्ति से व्याकुलहृदय वाली शची स्वर्गीय वैद्य अश्वनीकुमारो से बार-बार पूछने के क्लेश मे पड गयी।

यहाँ पर कवि की कल्पना सराहनीय है, क्योकि इन्द्राणी को भी यह चिन्ता उत्पन्न हो गयी, कि कही हमारे बाल तो नही पक गये हैं। अत वह स्वर्गीय वैद्य अश्वनीकुमारो से बारम्बार व्याकुलता के साथ पूछ रही है। अत यहाँ पर भी चिन्तारूप व्यभिचारीभाव की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

औत्सुक्य

यथा—

निशम्य भूभुजङ्ग तमुपायान्त रसादथ ।
साध्वसध्यासिता प्रापदक्षिणाकम्पसपदम् ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् उस राजा को आते हुए सुनकर रसवती दक्षिण दिशा कम्प को प्राप्त हुई।

यहाँ पर दिग्विजय के प्रसङ्ग का वर्णन हुआ है। जिस प्रकार कोई नायिका नायक के शुभागमन को सुनकर उससे मिलने की इच्छा से उत्सुक हो जाती है उसी प्रकार दक्षिण दिशारूपी नायिका के मन मे राजा के शुभागमन को सुनकर उत्सुकता बढ गयी है। इसीलिए शरीर मे रोमाञ्च उत्पन्न हो गया है। अत यहाँ पर औत्सुक्य रूप व्यभिचारी भाव की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे रस भाव का पूर्ण निर्वाह हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, कि प्रस्तुत काव्य मे विभिन्न रसो तथा भावो का सन्निवेश कुशलतापूर्वक किया गया है किन्तु वीर रस के प्रयोग मे कवि ने यथेष्ट सफलता प्राप्त की है।

---

१ जयन्तविजय, ६/७२। २ वही, ११/२४।

सप्तम अध्याय

आदान-प्रदान

'जयन्तविजय' महाकाव्य पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

कवि पर पूर्ववर्ती एव सामयिक कवियो का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। राजशेखर ने इस प्रभाव को हरण की सज्ञा प्रदान की है। 'हरण' के औचित्य को अस्पष्ट करने के लिए उन्होने प्राचीन आचार्यों के मत का उल्लेख किया है। यथा—'पुराणकवि क्षुण्ये वर्त्मनि दुरापमस्पृष्ट वस्तु ततश्च तदेव सस्कर्तुं प्रयतेत इत्याचार्या।' अर्थात् काव्य मार्ग का प्राचीन कवियो ने सम्यक् अभ्यास किया है अत उनसे असम्पृष्ट वस्तु असम्भव है। कवियो का कर्तव्य है कि वे प्राचीन कवियो से अभ्यस्त वस्तु का ही सस्कार करे।[1] फलत निज काव्यकृति के सर्जन के अवसर पर पूर्ववर्ती एव समसामयिक कवियो के प्रभाव की उपेक्षा करना कवि के लिए असम्भव सा था। कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के प्रारम्भ मे जो श्लोक प्रस्तुत किये है, उनसे भी यह ज्ञात हो जाता है, कि उन्होने अपने पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ का सम्यक् अध्ययन किया था। कवि के शब्दो मे—

जयन्ति ते सत्कवयो यदुक्त्या बाला अपिस्यु कविताप्रवीणा।
श्रीखण्डवासेन कृताधिवासा श्रीखण्डता यान्त्यपरेऽपि वृक्षा ॥[2]

अर्थात् वे सत्कवि जय को प्राप्त करे, जिनकी उक्तियो से बाल (मन्द बुद्धि वाले) भी कविता मे प्रवीण हो जाते है क्योकि चन्दन की सुगन्ध से सुगन्धित हो जाने पर अन्य वृक्ष भी चन्दन बन जाते है।

अत स्पष्ट है, कि कवि ने चन्दन सदृश उन सत्कवियो के काव्य का अवलोकन अवश्य किया है। जयन्तविजय काव्य उनकी प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। इसमे उन्होने प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्यो का उतना आश्रय नही लिया जितना पौराणिक एव कालिदास प्रभृति भावपक्ष प्रधान कवियो के काव्यो का आश्रय लिया है। यही कारण है कि उनके काव्य पर जिनसेन के महापुराण तथा कालिदास, भारवि, माघ एव श्रीहर्ष आदि कवियो के काव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जिनसेन

सस्कृत कवियो ने अपने महाकाव्य का कथानक अधिकाशत पुराणो से ग्रहण किया है। अत बाद मे होने वाले जैन कवियो पर भी इन्ही कवियो का प्रभाव पडा और उन्होने अपने पूर्ववर्ती कवियो का अनुकरण करके अपने महाकाव्य के कथानक

---

१ काव्य मीमासा, अध्याय १२, पृ० १५८ (चौ० प्र०)।

२ जयन्तविजय, १/१७।

का आधार जैन महापुराण बनाये। किन्तु कवि अभयदेव की विचारधारा इन पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती कवियो से भिन्न रही है, क्योकि उन्होने अपने महाकाव्य का कथानक किसी भी पुराण से नही लिया है। हाँ इतना अवश्य है, कि उनके महाकाव्य पर जिनसेन के 'महापुराण' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जिनसेन ने अपने 'महापुराण' के अट्ठाइसवें पर्व से लेकर सैंतीसवे पर्व तक भरत की दिग्विजय का वर्णन किया है। भरत सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं और मार्ग मे वेग से चलते हुए उनके घोडो के समूह के खुरों से उडी हुई पृथ्वी की धूल केवल शत्रुओ के तेज को ही नही अपितु सूर्य के तेज को भी रोक देती है। भरत के समीप पहुँचते ही शत्रु राजाओ का सब तेज नष्ट हो जाता है, उनके भारी-भारी श्वासोच्छ्वास चलने लगते है, वे अन्त करण मे व्याकुल हो जाते हैं तथा उनका मरना ही केवल शेष रह जाता है—

प्राची दिशमथो जेतुम् आपयोधेस्तमुद्यतम् ॥
तत प्रचलदश्वीयखुरोद्भूत महीरज ।
न केवल द्विषा तेजो रुरोध द्युमणेरपि ॥
ध्वस्तोष्मप्रसरा गाढ्य उच्छ्वसन्तोऽन्तराकुला ।
प्राप्तेऽस्मिन् वैरिभूपाला प्रापुर्मर्तव्यशेषताम् ॥[१]

इसी प्रकार कवि अभयदेव ने भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य के एकादश सर्ग मे जयन्त की दिग्विजय का वर्णन किया है। जयन्त भी अपनी सेना द्वारा पृथ्वी को चलायमान करते हुए सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करते है और उनके घोडो के खुरो से खोदी गयी पृथ्वी के पृष्ठ भाग से उडी हुई धूलि से सूर्य की किरणे ढक जाती हैं तथा समस्त भूमण्डल के राजाओ के द्वारा शिरोधार्य आदेश वाले उनके प्रस्थान करने पर विपरीत (शत्रु) राजाओ की भय के कारण स्वास की तरङ्गें बढ जाती हैं—

श्रीजयन्तस्तत पूर्वं पूर्वस्यामचलद्दिशि ।
चतुरङ्गचमूश्चक्रे चलयन्नचलामपि ॥
ततश्चीर खुरक्षुण्णक्ष्मापीठप्रभवैर्भृशम् ।
रजोभिरभवन्बन्ध्यावापारास्तरणेस्त्विष ॥
तस्मिश्चलति भूपालमौलिलालितशासने ।
अहितानामवर्धन्त त्रासश्वासमहोर्मय ॥[२]

---

१ महापुराण, २८/५, ३०/६६ तथा २६/२०।
२. जयन्तविजय, ११/२,४-५।

इस प्रकार यहाँ पर जिनसेन तथा कवि अभयदेव के भावो मे साम्य है, जिसका एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि जिनसेन तथा कवि अभयदेव दोनो ही जैन धर्मावलम्बी हैं।

कवि अभयदेव जयन्त की दिग्विजय का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं—कि मार्ग मे कुछ राजा लोग अपना सर्वस्व दान देकर तथा कुछ लोग अपना अभिमान छोडकर शरण देने वाले उन जयन्त की शरण लेकर उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। जयन्त सर्वप्रथम पूर्व दिशा मे भिल्लो को पराजित करते हैं तथा इसके पश्चात् सुह्मानो के तेज को नष्ट करते हैं। गौड राजा उन्हे हाथी भेंटकर अपनी अधीनता स्वीकार करते हैं। इसके पश्चात् वे समुद्र तट पर पहुँचते हैं—

सर्वस्वादानत केचिन्मानभङ्गाच्च केचन ।
शरण्य शरणीकृत्य मार्गभूपास्तमन्वयु ॥
स पूर्व पर्वतोत्सङ्गतरङ्गित महोत्सवान् ।
विजिग्ये तरसा भूरिभिल्लानुल्लङ्घितक्रम ॥
तत समुत्तरन्सुह्मानजिह्मितपराक्रम ।
चकार चरणन्यस्तमस्तकानस्ततेजस ॥
नागानुपायनीकृत्य तमेवोर्जितविक्रमम् ।
सिषेवे खर्वित जानन्गौड शौण्डीर्यमात्मन ॥
स वैरिकैरवरविर्दृप्यद्दोर्दण्ड मण्डल ।
प्रापत्तमालहिन्ताल श्यामल कूलमम्बुधे ॥[1]

यहाँ पर 'महापुराण' के श्लोको का कवि अभयदेव पर प्रभाव स्पष्ट है क्योकि जिनसेन ने भरत की दिग्विजय का वर्णन भी इसी प्रकार किया है—

महामुकुटबद्धाना सहस्राणि समन्तत ।
तमनुप्रचलन्ति स्म सुराधिपमिवामरा ॥
प्रतिराष्ट्रमुपानीतप्राभृतान् विषयाधिपान् ।
सम्भावयन् प्रसादेन सोऽत्यगाद् विषयान् बहून् ॥
दृश व्यापारयामास कुल्याबुद्ध्या महोदधौ ॥
व्रजन् मद्राश्च कच्छाश्च चेदीन् वत्सान् ससुह्मकान् ।
पुण्ड्रानोण्ड्रांश्च गौडाश्च मतमश्रावयद् विभो ॥
ददुरस्मै नृपा प्राच्यकलिङ्गाङ्गारजान गजान् ।
गिरीनिव महोच्छ्रायान प्रश्चोतन्मदनिर्झरान् ॥
कालिन्दकालकूटौ च किरातविषय तथा ॥[2]

---

१ जयन्तविजय, ११/७-११।
२ महापुराण, २८/१०,२६,६६, २६/४१,४३,४८।

अर्थात् जिस प्रकार देव लोग इन्द्र के पीछे-पीछे चलते है उसी प्रकार हजारो मुकुटबद्ध राजा लोग चारो ओर भरत के पीछे-पीछे चल पडते है। तथा भरत प्रत्येक देश मे भेंट लेकर आये हुये वहाँ के राजाओ का बडी प्रसन्नता से आदर सत्कार करते हुये बहुत से देशो का अतिक्रमण कर आगे बढ़ जाते हैं। वे आगे चलकर नदी के समान समुद्र को देखते है। भरत का सेनापति मद्र, कच्छ, चेदि, वत्स, सुह्य, पुण्ड्र, औण्ड और गौड देशो मे जाकर सब जगह भरत की आज्ञा सुनाता है तथा वहाँ के राजागण जिनसे मद के निर्झरने झर रहे है ऐसे पूर्व देश मे उत्पन्न होने वाले तथा कलिंग और अगार देश मे उत्पन्न होने वाले, पर्वतो के समान ऊँचे-ऊँचे हाथी उन्हे भेट मे देते हैं। इसके पश्चात् भरत का सेनापति कालिंद, कालकूट तथा भीलो के देश मे भी पहुँचता है।

इस प्रकार जिनसेन के 'महापुराण' का कवि अभयदेव के जयन्त-दिग्विजय वर्णन पर स्पष्ट प्रभाव है।

भरत पूर्व दिशा के समस्त राजाओ को जीतकर दक्षिण दिशा के राजाओ को जीतने की इच्छा से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते है—

इत्थ स पृथिवीमध्यान पौरस्त्यान्निर्जयन्नृपान् ।
प्रत्स्थे दक्षिणामाशा दक्षिणात्यजिगीषया ॥[1]

इसी प्रकार जयन्त भी पूर्व दिशा मे राजाओ को परास्त करते हे और जब राजाओ की रानियाँ अपने पुत्रो के लिए भिक्षा की याचना करती है तो वे उनके पुत्रो को राज्य पर अभिषिक्त कर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते है—

तस्यावरोधनै पुत्रभिक्षामभ्यर्थितस्तत ।
निवेश्यतत्सुत राज्ये प्रतस्थे दक्षिणा दिशम् ॥[2]

इसके पश्चात् वे केरल की ओर जाते हे और केरल निवासी इनके प्रताप रूपी सूर्य से व्याकुल होकर इनके पैर के नाखून की चन्द्र सदृश किरणो से अपने को शीतल करते है—

विश्रम्य विविधैस्तत्र विनोदैर्भूरिवासरान् ।
प्रताप,ग्रेसर सोऽथ प्रतस्थे केरलान्प्रति ॥
प्रतापतपनेनास्य केरलैराकुलीकृतै ।
आत्मा निर्वापित पादनखचन्द्रमरीचिभि ॥[3]

कवि अभयदेव के इन श्लोको पर भी 'महापुराण' के अग्रलिखित श्लोको का प्रभाव है—

---

१ महापुराण, २६/७७।
२ जयन्तविजय, ११/२३।
३ जयन्तविजय, ११/३२, ३६।

त्रिकलिङ्गाधिपानोद्रान् कच्छान्ध्रविषयाधिपान् ।
प्रातरान् केरलाश्चोलान् पुन्नागांश्च व्यजेष्ट सः ॥
नृपानेतान् विजित्याशु प्रणमय्य स्वपादयो ।
हृत्वा तत्साररत्नानि प्रभु प्रापत् परां मुदम् ॥[1]

अर्थात् दक्षिण में भरत ने त्रिकलिङ्ग, औद्र, कच्छ, प्रातर, केरल, चेर और पुन्नाग देशो के सब राजाओ को जीता तथा इन सब राजाओ को शीघ्र ही जीतकर उनसे अपने चरणो मे प्रणाम कराया तथा उनके सारभूत रत्न लेकर परम आनन्द को प्राप्त किया ।

भरत का सेनापति महेन्द्र पर्वत का उल्लघन कर विन्ध्याचल के समीपवर्ती प्रदेशो को जीतता हुआ नागपर्वत पर चढकर मलयपर्वत पर पहुँचता है—

महेन्द्राद्रिं समाक्रामन् विन्ध्योपान्त च निर्जयन् ।
नागपर्वतमध्यास्य प्रययौ मलयाचलम् ॥[2]

इसी प्रकार जयन्त भी राजाओ से सम्मानित होते हुए मलयाचल की ओर प्रस्थान करते है—

अथ स्मर शिशु क्रीडा साक्षिभिर्दक्षिणानिलै ।
सूचितोऽनाध्वना भूप प्रतस्थे मलय प्रति ॥[3]

अर्थात् इसके पश्चात् काम शिशु की क्रीडा के साक्षी दक्षिण वायु से सूचित होकर बिना मार्ग के ही राजा जयन्त मलयाचल की ओर चल पडे ।

जयन्त मार्ग मे पर्वतीयो को जीतकर उनसे भेट स्वीकार करते है । इसके पश्चात् वे पाण्डु देश को जीतने के लिए प्रस्थान करते हैं और युद्ध मे पाण्डु देश के राजा को जीत लेने है—

वैक्रमिर्विक्रमेणाथ पार्वतीयान्विजित्य स ।
तेभ्य सारमिवास्याद्रेरुपायनमुपाददे ॥
चमूचक्ररज पुञ्जै शोषयन्दक्षिणोदधिम ।
जयन्त पर्वतात्तस्माज्जेतु पाण्ड्याश्चचाल स ॥
तस्मिन्पाण्ड्यमहीभर्तु समूलोन्मूलनोद्यते ।
भङ्गभीतेश्च तल्लक्ष्मीर्भेजेऽस्य भुजपञ्जरम् ॥[4]

---

१ महापुराण २९/७९, ८१ ।
२ वही, २९/८८ ।
३ जयन्तविजय, ११/३७ ।
४ वही, ११/४२, ४४, ४६ ।

अर्थात् जयन्त ने अपने पराक्रम से पर्वतीयो को जीतकर उनसे पर्वत के सार की भाँति उपायन को स्वीकार किया और अपनी सेना के समूह के रजपुञ्जों से दक्षिण समुद्र का शोषण करते हुए उस पर्वत से पाण्डु देश को जीतने के लिए प्रस्थान किया तथा उस पाण्डु राजा के समूल उन्मूलन के लिए तत्पर उनके भुज पञ्जर मे लक्ष्मी टूटने के भय से स्वय आ गयी।

यहाँ पर कवि अभयदेव के वर्णन मे नायक के अद्‌भुत पराक्रम का सकेत मिलता है। इसी प्रकार भरत के पराक्रम का सकेत भी किया गया है—

प्रसाध्य दक्षिणामाशा विभुस्त्रैराज्य पालकान्।
सम प्रणमयामास विजित्य जय साधनै ॥
कृतावासश्च तत्रैन ददृशुस्तद्वनाधिपा।
वन्यैरूपायनै श्लाघ्यै अगदैश्च महौषधै ॥[1]

अर्थात् भरत ने अपनी विजयी सेना के द्वारा दक्षिण दिशा को वश मे करके चोल, केरल और पाण्ड्य इन तीन राजाओ को एक साथ जीत लिया और एक ही साथ उनसे प्रणाम कराया तथा विन्ध्याचल के वनो के राजाओ ने वनो मे उत्पन्न हुई रोग दूर करने वाली और प्रशसनीय बडी-बडी औषधियाँ भेंटकर वहाँ पर निवास करने वाले राजा भरत के दर्शन किये।

यहाँ पर 'महापुराण' मे वर्णित भरत 'जयन्तविजय' मे वर्णित जयन्त की अपेक्षा अत्यन्त पराक्रमी हैं क्योकि जयन्त पर्वतीयो को जीतकर उनसे उपायन प्राप्त करते है जबकि भरत को आया हुआ जानकर विन्ध्याचल के वनो के राजा स्वय जाकर उन्हे उपायन देते हुए उनके दर्शन करते हैं। इसी प्रकार जयन्त पाण्डु राजा को अकेले युद्ध मे जीतते हैं जब कि भरत एक साथ ही चोल, केरल तथा पाड्ण्य इन तीनो राजाओ को जीतकर उन्हे अपने अधीन बनाते हैं। यहाँ कवि अभयदेव तथा जिनसेन के वर्णन का क्रम उल्टा है। परन्तु भावो मे साम्य है।

इसी प्रकार दक्षिण दिशा को जीतने के पश्चात् पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं और पश्चिमी राजाओ को जीतते हैं। कवि जिनसेन के शब्दो मे—

पतन्यत्र पतङ्गोऽपि तेजसा याति मन्दताम्।
दिदीपे तत्र तेजोऽस्य प्रतीच्या जयतो नृपान् ॥[2]

अर्थात् जिस दिशा मे जाकर सूर्य भी अपने तेज की अपेक्षा मन्द (फीका)

---

१ महापुराण, ३०/३५, ६२।
२ वही, ३०/११६।

हो जाता है उसी दिशा मे पश्चिमी राजाओ को जीतते हुए चक्रवर्ती भरत का तेज अतिशय देदीप्यमान हो रहा था ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी दिग्विजय का यही क्रम वर्णित है, क्योकि जयन्त भी दक्षिण दिशा को जीतने के बाद पश्चिम दिशा की ओर मुड़ जाते हैं—

सैन्धवीना कपोलेषु लुम्पन्पत्रलताङ्कुरान् ।
रजोभि सैन्यसभूतै प्रतस्थे पश्चिमामथ ।।[१]

अर्थात् सैन्धव देश की कामनियो के गालों पर बने हुए पत्रलताङ्कुर को सेना से उत्पन्न धूलि से दूर करते हुए उन्होने पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया ।

जयन्त का भी पश्चिमी राजाओ से युद्ध होता है और वे उन राजाओ पर विजय प्राप्त करते है । कवि अभयदेव के शब्दो मे—

इतिनिर्जित्य पाश्चात्यभूपतीनवनीपति ।
स्वविक्रमकथोद्घोषे चक्रे वैतालिक न कम् ।।[२]

अर्थात् इस प्रकार पाश्चात्य भूपतियो को जीतकर राजा जयन्त ने अपने पराक्रम की कथा के उद्घोष मे किसको वैतालिक नही बनाया । अर्थात् जयन्त के पराक्रम की सभी ने प्रशसा की ।

भरत पश्चिम दिशा को जीतने के बाद उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते है

कौबेरीमथ निर्जेतुम् आशामभ्युद्यतो विभु ।
प्रतस्थे वाजिभूयिष्ठै साधनै स्थगयन दिश ।।[३]

अर्थात् इसके पश्चात् उत्तर दिशा को जीतने के लिए उद्यत हुए भरत अनेक घोडो से युक्त सेनाओ से दिशाओ को व्याप्त करते हुए निकल पडे ।

इसी प्रकार जयन्त भी पश्चिम दिशा को जीतने के बाद उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते है—

अथ मानवता मूर्ध्नि पदमुद्दाम विक्रमा ।
कुर्वन्नुर्वीपतिर्भेजे धनदाधिष्ठिता दिशम् ।।[४]

---

१ जयन्तविजय, ११/६२ ।
२ वही, ११/७७ ।
३ महापुराण, ३१/१ ।
४ जयन्तविजय, ११/७८ ।

अर्थात् इसके पश्चात् प्रचण्ड विक्रम वाले उन जयन्त ने घमण्डियो के शिर पर पैर रखते हुए धनदाधिष्ठित (उत्तर) दिशा की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के एकादश सर्ग में जयन्त की दिग्विजय का वर्णन जिनसेन के 'महापुराण' के आधार पर किया है। कवि ने यत्र-तत्र कल्पना का आश्रय लिया है किन्तु भाव 'महापुराण' के ही हैं। यही कारण है, कि कवि के वर्णन मे विशेष नवीनता परिलक्षित नहीं होती है।

दिग्विजय के अतिरिक्त अन्य स्थलो पर भी कवि ने 'महापुराण' के भावो को ग्रहण किया है।

उदाहरणार्थ सैनिको के प्रयाण काल मे बजने वाले नगाडे के शब्द का वर्णन करते हुए जिनसेन कहते है—

अन्योन्यस्येति सञ्जल्पै सम्प्रास्थिषत सैनिका।
प्रयाणभेरीप्रध्वान तदोद्यन् द्या मधिध्वनत् ॥[१]

अर्थात् परस्पर वार्तालाप करते हुए भरत के सैनिको ने प्रस्थान किया तथा उस समय प्रयाणकाल मे बजने वाले नगाडो के उठे हुए शब्द ने आकाश को शब्दायमान कर दिया।

'जयन्तविजय' मे भी सैनिको के प्रयाण के वर्णन मे कवि ने कुछ इसी प्रकार भाव व्यक्त किये हैं—

अमीमसामन्तमहर्द्धिडम्बर प्रयाणभेरीरवपूरिताम्बर ॥[२]

अर्थात् असीम राज्य मण्डल की समृद्धि को सूचित करने वाले प्रस्थान कालीन भेरी रव ने अम्बर को भरपूर कर दिया।

इस प्रकार कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर जिनसेन के 'महापुराण' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जिसका प्रमुख कारण यह है, कि जिनसेन तथा कवि अभयदेव दोनो ही जैन धर्मावलम्बी है। अत जैन कवि होने के कारण अभयदेव ने जैन महापुराण के भावो को लेकर अपने महाकाव्य की रचना की।

कालिदास

कविकुलगुरु कालिदास की रचनाओ का जितना अधिक अनुकरण परवर्ती कवियो ने किया है उतना किसी अन्य कवि का नही हुआ है। कवि अभयदेव भी

१ महापुराण, २८/१५।
२ जयन्तविजय, ६/५६।

उनके असख्य भक्तो में से एक हैं। यद्यपि उन्होंने किसी का नाम लेकर प्रशसा नहीं की किन्तु उनका कथन कालिदास सरीखे कवियो के लिए ही है—

जयन्तु सर्वेऽपि कवीश्वरास्ते यदीयसत्काव्यसुधाप्रवाह ।
विकूणिताक्षेण सुहृज्जनेन निपीयमानोऽप्यतिपुष्यतीव ॥[1]

अर्थात् वे सभी कवीश्वर, जिनके सत्काव्य के अमृत का प्रवाह विस्फारित नेत्रों वाले सुहृज्जनो के द्वारा पान किया जाता हुआ अत्यन्त फलित होता है, जय को प्राप्त करें।

यहाँ पर कवि अभयदेव के कथन से स्पष्ट है कि वे अपने पूर्ववर्ती कवियों की इसीलिए प्रशसा करते हैं, क्योकि उनके काव्य का परवर्ती कवियो द्वारा अनुकरण किया जाता है। अत उन्होने कालिदास सरीखे कवियो को अपना उपजीव्य अथवा गुरु स्वीकार किया है। इसीलिए उनके 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर इनका प्रभाव होना स्वाभाविक है।

कालिदास ने 'रघुवश' महाकाव्य मे रघु के जन्म के अवसर पर कल्याणमय वातावरण का इस प्रकार वर्णन किया है—

दिश प्रसेदुर्मरुतो ववु सुखा प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशसि तत्क्षण भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥[2]

अर्थात् बालक (रघु) के जन्म के समय चारो दिशाएँ निर्मल हो गयी। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। अग्नि दक्षिण दिशा की ओर घूमकर हवन की सामग्री ग्रहण करने लगा। इस प्रकार सभी शकुन अच्छे-अच्छे हो रहे थे। यह उचित ही है क्योकि ऐसे महापुरुषो का जन्म ससार के हित के लिए ही होता है।

'रघुवश' के इसी भाव को कवि अभयदेव ने जयन्त के जन्म के अवसर पर निम्नलिखित श्लोक मे व्यक्त किया है—

दिश प्रसन्ना शरदीव नद्यो वातास्तदामोदभृतो जनाश्च ।
बभूवुरभ्रे सुरदुन्दुभीना पयोदनादप्रतिमा निनादा ॥[3]

अर्थात् दिशाएँ निर्मल हो गयी। शरद् ऋतु के समान नदी निर्मल हुई, शुद्ध वायु प्रवाहित होने लगी तथा लोग आनन्दित हुए और देवताओ के नगाड़े का शब्द मेघो के शब्द के समान होने लगा।

इसी प्रकार पुत्र जन्म से हर्षित दिलीप और विक्रमसिंह के वर्णनो मे भी समानता है। उदाहरणार्थ—

---

१. जयन्तविजय, १/१८।
२ रघुवश, ३/१४।
३ जयन्तविजय, ६/८०।

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम् ।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपते शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥[१]

अर्थात् अमृत के समान अक्षरो वाले पुत्रजन्म के समाचार को सुनाने वाले अन्त पुर के सेवक को राजा दिलीप ने राजचिह्न, छत्र और चामर को छोडकर शेष सभी आभूषण दे डाले अथवा सब कुछ देने को तैयार हो गये ।

इसी भाव को कवि अभयदेव ने लगभग समान रूप मे व्यक्त किया है —

पीत्वेति वाच श्रुतिशुक्तिकाभ्या सुधामिवासा विदधे प्रसादम् ।
स स्वर्णवस्त्रैर्मणिभूषणैश्च कन्दैरिवैश्वर्य महाद्रुमस्य ॥[२]

अर्थात् राजा विक्रमसिंह ने अपनी कर्ण सुक्तिकाओ से सेवको की अमृतमयी वाणी को सुनकर अत्यन्त हर्षित होते हुए ऐश्वर्य महाद्रुम के कन्द (सार) की भाँति स्वर्ण, वस्त्र, मणि तथा आभूषणो से उन लोगो को प्रसन्न किया ।

यहाँ पर कवि अभयदेव का वर्णन अधिक उदात्त बन पडा है क्योकि दिलीप के लिए तीन वस्तुएँ अदेय है किन्तु विक्रमसिंह के लिए उन वस्तुओ का उल्लेख न करके कवि ने अपनी प्रतिभा-चातुरी का परिचय दिया है ।

जयन्त का वर्णन भी अनेक स्थलो पर रघु के वर्णन से प्रभावित है । उदाहरणार्थ रघु के शैशव वर्णन का यह श्लोक दृष्टव्य है—

पितु प्रयत्नात्स समग्रसपद शुभै शरीरावयवैर्दिनेदिने ।
पुपोष वृद्धिर्हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा ॥[३]

अर्थात् जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा सूर्य की किरणे पाकर दिन-दिन बढ़ने लगता है वैसे ही बालक रघु के अग भी सम्पत्तिशाली पिता की देखरेख मे बढने लगे ।

जयन्त के शैशव वर्णन मे कवि अभयदेव ने भी इसी प्रकार के भावो को व्यक्त किया है—

शुक्लपक्ष इव चन्द्रमा क्रमाद्वृद्धिमाप सुदृशो सुधाञ्जनम् ॥[४]

अर्थात् स्त्रियो के सुनेत्रो के लिए सुधाञ्जन के समान वह बालक (जयन्त) शुक्लपक्ष की चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त हुआ ।

---

१ रघुवश, ३/१६ ।
२ जयन्तविजय, ६/८५ ।
३ रघुवश, ३/२२ ।
४ जयन्तविजय, ७/८ ।

अपि च—

तेन नीरधिरिवेन्दुना ततश्चन्द्र मौलिरिव शक्तिपाणिना ।
स्वर्गिणामिव पतिर्जयेन स श्रीजयन्ततनुजन्मना बभौ ॥[1]

अर्थात् इन्दु के द्वारा समुद्र की भाँति, कार्तिकेय के द्वारा चन्द्रमौलि की भाँति, जयन्त के द्वारा इन्द्र की भाँति उस श्री जयन्त नाम के पुत्र से वह विक्रमसिंह अत्यन्त सुशोभित हुए ।

यहाँ पर 'रघुवश' के निम्नलिखित श्लोक के भावो को कवि ने ग्रहण किया है—

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरदरौ ।
तथा नृप सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥[2]

अर्थात् जैसे कार्तिकेय के समान पुत्र को पाकर शकर और पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और जयन्त जैसे पुत्र को पाकर इन्द्र और शची प्रसन्न हुए थे, वैसे ही राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा भी उन दोनो के समान ही तेजस्वी पुत्र को पाकर प्रसन्न हुए ।

'रघुवश' मे रघु के गुणो का वर्णन करते हुए कवि कालिदास कहते हैं—

मदनद्रोत्कण्ठा कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ ।
फलेन महकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजा ॥[3]

अर्थात् जैसे आम के सुन्दर फल को देखकर लोग उसके बौर को भूल जाते है वैसे ही रघु मे राजा दिलीप से अधिक गुण देखकर लोग दिलीप को भूल गये थे।

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे जब जयन्त को हस्तिनापुर का राज्य मिलता है तो वे कुछ ही समय मे अपने गुणो के कारण लोकप्रिय हो जाते हैं और प्रजा हस्तिनापुर के राजा वैरिसिंह को भूल जाती है

अत्यन्त विस्मारितवैरिसिंहक्ष्माधिराज स्वगुणै प्रजानाम् ॥[4]

इसी प्रकार 'रघुवश' के चतुर्थ सर्ग मे वर्णित रघु की दिग्विजय से 'जयन्त-विजय' महाकाव्य के एकादश सर्ग मे वर्णित जयन्त की दिग्विजय भी प्रभावित है । रघु सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करते है ।

स ययौ प्रथम प्राची तुल्य प्राचीनबर्हिषा ।
अहितानिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभि ॥[5]

अर्थात् इन्द्र के समान पराक्रमी राजा रघु सर्वप्रथम दिग्विजय के लिए पूर्व

---

१ जयन्तविजय, ७/१३ ।
२ रघुवश, ३/२३ ।
३ रघुवश, ४/६ ।
४ जयन्तविजय, १६/१ ।
५ रघुवश, ४/२८ ।

की ओर चले। वायु लगने से सेना की जो झंडियाँ फहरा रही थी वे मानो शत्रुओ को अँगुली उठा-उठाकर डाँट रही थी।

रघु की भाँति ही जयन्त भी सर्वप्रथम दिग्विजय के लिए पूर्व दिशा की ओर जाते हैं। कवि अभयदेव के शब्दों मे—

श्रीजयन्तस्तत पूर्वं पूर्वस्यामचलद्दिशि।
चतुरङ्गचमूश्चक्रे चलयन्नचलामपि ॥[1]

अर्थात् इसके पश्चात् श्री जयन्त सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर चल पड़े और चतुरंग चमू के द्वारा अचला को भी चलायमान कर दिया।

यहाँ पर कालिदास तथा अभयदेव के भावो मे पर्याप्त साम्य है क्योकि यदि रघु की सेना मे फहराने वाली झण्डियाँ मानो अँगुली उठाकर शत्रुओ को डाँट रही हैं तो जयन्त भी अपनी सेना के द्वारा पृथ्वी को चलायमान कर रहे हैं।

रघु पूर्व से विजय करते हुए कलिङ्ग की ओर जाते हैं और वहाँ पहुँचकर कपिशा नदी पर पुल बनाकर उसे पार करते है। कलिङ्ग मे वे महेन्द्र पर्वत पर अपना शिविर स्थापित करते है। कलिग नरेश हाथियो की सेना लेकर रघु का सामना करता है किन्तु युद्ध मे विजयलक्ष्मी रघु को प्राप्त होती है—

स तीर्त्वा कपिशा सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभि ।
उत्कलादर्शितपथ कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥
स प्रताप महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णन्यवेशयत्।
अकुश द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिन ॥
प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधन ।
पक्षच्छेदोद्यत शक्र शिलावर्षीव पर्वत ॥
द्विषा विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम्।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ॥[2]

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी दिग्विजय का यही क्रम वर्णित है—

प्रतापतपनेनोच्चै शोषयन्कपिशा नदीम्।
समुत्कलकान्ताना कस्तूरीपत्रवल्लिभि ॥
सैन्यकोलाहलैर्दूर पूरयन्रोदसीमथ ।
चचाल नर शार्दूल कलिङ्गाधिपतिं प्रति ॥
अखण्डै खण्डितारातिभुजदर्पं प्रयाणकै ।
महेन्द्रविक्रम प्राप महेन्द्राद्रेरुपत्यकाम् ॥

१ जयन्तविजय, ११/२।
२ रघुवश, ४/३८-४१।

परस्परास्त्र संघट्ट स्फुरदग्निस्फुलिङ्गकम् ।
कलिङ्गपतिना सार्धमभवद्युद्धमद्भुतम् ॥
विलोड्याथ क्षणेनैव विपक्षबलसागरम् ।
कुमारः कैटभारातिरिवोद्दध्रे जयश्रियम् ॥[1]

यहाँ पर कवि अभयदेव ने कालिदास के भावो को उसी रूप मे प्रस्तुत कर दिया है। किन्तु कवि के वर्णन द्वारा यह ज्ञात होता है कि जयन्त रघु से अधिक पराक्रमी हैं, क्योंकि रघु कपिशा नदी पर पुल बनाकर उसे पार करते है जबकि जयन्त कपिशा नदी को अपने प्रताप के सन्ताप से ही सुखा देते हैं।

रघु पूर्व दिशा को जीतकर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं—

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥[2]

रघु की भाँति जयन्त भी पूर्व दिशा को जीतने के पश्चात् दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते है—

तस्यावरोधने पुत्रभिक्षामभ्यर्थितस्तत ।
निवेश्य तत्सुत राज्ये प्रतस्थे दक्षिणा दिशम् ॥[3]

कावेरी मे स्नानकर रघु की सेना मलयाचल की ओर जाती है—

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना ।
कावेरी सरिता पत्यु शङ्कनीयामिवाकरोत् ॥
बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वन ।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यका ॥[4]

जयन्त भी रेवानदी के तट पर होते हुए मलयाचल की ओर प्रस्थान करते है। कवि अभयदेव के शब्दो मे—

शीकरै पवनोद्धूतै प्ररूढपुलकामिव ।
अथ रेवां स हेवाकमवलोकयति स्म स ॥
स तत्तीरतरुप्रान्त विश्रान्तै किंनरीगणै ।
कर्पूर गौरमाश्रौषीद्गीयमान निज यश ॥
अथ स्मरशिशुक्रीडा साक्षिभिर्दक्षिणानिलै ।
सूचितोऽनाध्वना भूप प्रतस्थे मलय प्रति ॥[5]

---

१ जयन्तविजय, ११/१७-१८,२१-२२।
२ रघुवंश, ४/४४।
३. जयन्तविजय, ११/२३।
४ रघुवश, ४/४५-४६।
५ जयन्तविजय, ११/२८,२६,३७।

रघु मलयाचल पर्वत पर सर्पों से लिपटे हुए चन्दन वृक्षों को देखते हैं और उन चन्दन वृक्षों को पारकर पाण्ड्यनरेश से उनका युद्ध होता है तथा युद्ध मे पराजित होकर पाण्ड्य नरेश उन्हें मोती भेंट करते है—

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनाना समर्पितम् ।
नात्रसत्करिणा ग्रैव त्रिपदीछेदिनामपि ।।
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्या रवेरपि ।
तस्यामेव रघो पाण्ड्या प्रताप न विषेहिरे ।।
ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासार महोदधे ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यश स्वमिव सचितम् ।।[१]

रघु की भाँति जयन्त भी मलयाचल पर्वत पर सर्पों से घिरे हुए चन्दन वृक्षों का सेवन करते हैं तथा वहाँ से पाण्ड्य नरेश को जीतने के लिए चल पडते हैं और युद्ध मे पाण्डय नरेश को जीत लेते है—

निवेश्य भूभृतो भूभृत्कटके कटक तत ।
अध्यास्ताध्यासितान्भोगी भोगिभिश्चन्दनद्रुमान ।।
चमूचक्ररज पुञ्जै शोषयन्दक्षिणोदधिम् ।
जयन्त पर्वतात्तस्माज्जेतु पाण्ड्याश्चचाल स ।।
तस्मिन्पाण्ड्यमहीभर्तु समूलोन्मूलनोद्यते ।
भङ्गभीतेश्च तल्लक्ष्मी भेजेऽस्य भुजपञ्जरम् ।।[२]

रघु आगे चलकर हूणो को अपने अधीन बनाते है—

तत्र हूणावरोधाना भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोल पाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ।।[३]

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी हूणो पर जयन्त की विजय का वर्णन प्राप्त होता है—

सजाते समुखे तस्मिन्दैवे च विपराङ्मुखे ।
मनो हूणनरेन्द्राणा दध्रेदेशश्च शून्यताम् ।।
हूणा सोढुमपर्याप्ता सत्प्रताप रणाङ्गणे ।
इतीव व्योमवाहिन्या पय पूरमशिश्रयन् ।।[४]

इस प्रकार स्पष्ट है, कि 'जयन्तविजय' महाकाव्य के एकादश सर्ग मे वर्णित

---

१ रघुवश, ४/४८-५० ।
२ जयन्तविजय, ११/३८,४४,४६ ।
३ रघुवश, ४/६८ ।
४ जयन्तविजय, ११/८२-८३ ।

जयन्त की दिग्विजय जिनसेन के महापुराण के साथ ही 'रघुवंश' महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग मे वर्णित रघु की दिग्विजय से भी प्रभावित है। इसके साथ ही कवि अभयदेव ने 'रघुवंश' महाकाव्य के आधार पर ही जयन्त की दिग्विजय का वर्णन अनुष्टुप छन्द मे किया है। अत दोनों कवियों के भाव मे साम्य होने के साथ ही साथ वर्णन के छन्द मे भी साम्य है।

कवि अभयदेव ने दिग्विजय की भाँति ही 'जयन्तविजय' महाकाव्य के षोडश सर्ग मे वर्णित हस्तिनापुर नरेश वैरिसिंह की पुत्री रतिसुन्दरी के स्वयवर का आधार भी कालिदास द्वारा वर्णित 'रघुवश' महाकाव्य के षष्ठ सर्ग मे इन्दुमती का स्वयवर बनाया है। इन्दुमती के स्वयवर मे भोज द्वारा आमन्त्रित अज आते हैं और उनके द्वारा निर्दिष्ट सिंहासन पर बैठते हैं—

वैदर्भनिर्दिष्टमसौकुमार क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभगैर्मृगराजशावस्तुग नगोत्सगमिवारुरोह ॥
परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासन स ।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन ॥[1]

अर्थात् जैसे सिंह का बच्चा एक-एक शिला पर पैर रखता हुआ पहाड पर चढ जाता है वैसे ही राजकुमार अज भी सुन्दर सीढी पर चढ़कर भोज द्वारा बताये हुए मच पर जाकर बैठ गये तथा जिस सिंहासन पर वे जाकर बैठे, वह सोने का बना हुआ था, उसमे रत्न जडे थे और उस पर रग-बिरगे वस्त्र बिछे हुए थे। उस पर बैठे हुए वे ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो स्वय कार्तिकेय ही अपने मोर पर चढ कर बैठे हो।

'जयन्तविजय' मे जयन्त के वर्णन मे कवि अभयदेव ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये है—

तत्र चित्ररचनामनोहर काञ्चनोपचितमञ्चमुच्चकै ।
आरुरोह स नरेन्द्रदर्शित तुगभूधरमिवाशु केसरी ॥
विस्फुरत्यथ स दक्षिणेक्षणे पाणिपीडनविधानशसिनि ।
पूर्वभूधरतटीमिवार्यमा हैमविष्टरमलचकार च ॥[2]

अर्थात् वहाँ पर विचित्र रचना से मनोहर स्वर्ण से निर्मित कान्तिमान उच्च मञ्च पर वे ऊँचे पर्वत पर सिह की भाँति नरेन्द्र (वैरिसिंह) द्वारा दिखाये जाने पर बैठ गये तथा विवाह के विधान को सूचित करने वाले दाहिने नेत्र के फडकने पर उन्होंने पूर्व पर्वत की तटी पर स्थित सूर्य की भाँति हेम के विस्तर से अलकृत स्थान को सुशोभित किया।

---

१ रघुवश, ६/३-४।   २ जयन्तविजय, १६/२३-२४।

यहाँ पर स्पष्ट है, कि दोनों कवियों के वर्णन मे पर्याप्त साम्य है क्योंकि रघु भोज द्वारा निर्दिष्ट आसन पर बैठते हैं तो जयन्त वैरिसिंह द्वारा निर्दिष्ट आसन पर विराजमान होते हैं। रघु तथा अज दोनों के लिए सिंह को उपमान बनाया गया है। इसी प्रकार दोनो के मञ्च स्वर्णिम हैं। रघु के मञ्च पर रग-बिरगे वस्त्र बिछे हुए है अत कवि ने उन्हें साक्षात् मयूर पर बैठे हुए कार्तिकेय के सदृश बताया है। किन्तु अभयदेव ने स्वर्णिम बिस्तर पर बैठे हुए जयन्त की उपमा सूर्य से देकर अपनी मौलिकता की रक्षा की है।

इसी प्रकार इन्दुमती के स्वयवर मे अन्य राजागण अज को देखकर इन्दुमती को पाने की अभिलाषा छोड देते हैं। कवि के शब्दो मे—

> रतेर्गृहीतानुनयेन काय प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण।
> काकुत्स्थमालोकयता नृपाणा मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥[1]

अर्थात् जब दूसरे राजाओ ने अज को देखा तब उन्होने इन्दुमती को पाने की सब आशाएँ छोड दी क्योकि अज ऐसे लग रहे थे मानो साक्षात् कामदेव हो जिसे शिव जी ने रति की प्रार्थना पर फिर से जीवित कर दिया हो।

'जयन्तविजय' मे निम्नलिखित श्लोक इसी की प्रतिच्छाया है—

> भासयत्युरु सभा नभोऽङ्गण ता जयन्तयुवराजभास्करे।
> चेतसापि विजहु क्षितीश्वरा वासरश्रियमिवाशुतारका ॥[2]

अर्थात् युवराज जयन्तरूपी भास्कर के उस सभारूपी नभाङ्गण मे भासित होने पर आशुतारिका रूपी राजागणो ने दिन की शोभा की भाँति उसे हृदय से छोड दिया।

यहाँ पर कवि अभयदेव के वर्णन मे विशेष चमत्कार है क्योकि कालिदास ने अपने भावो को सरल ढग के व्यक्त किया है और उन्होने अज को कामदेव के सदृश सौन्दर्यशाली बताया है। इसीलिए अन्य राजाओ ने इन्दुमती को प्राप्त करने की अभिलाषा छोड दी है। जबकि कवि अभयदेव ने जयन्त को सूर्य के समान तेजस्वी बताया है और इसीलिए आशुतारिकारूपी राजागणो ने उनके तेज से दिन के समान तिरस्कृत होकर रतिसुन्दरी को प्राप्त करने की अभिलाषा अपने मन से निकाल दी है।

इन्दुमती को स्वयवर मे आयी हुई देखकर राजागण अपनी अनेक प्रकार से शृङ्गारिक चेष्टाएँ व्यक्त करते हैं—

---

१ रघुवश, ६/२।
२ जयन्तविजय, १६/३६।

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः ।
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टाविविधा बभूवुः ॥[1]

अर्थात् राजाओं ने अपना प्रेम जताने के लिए जो वृक्षों के पत्तों के समान अनेक प्रकार से भौंह आदि चलाकर शृङ्गार चेष्टाएँ व्यक्त कीं वे मानो उनके प्रेम को इन्दुमती तक पहुँचाने वाली दूतियाँ थीं।

इसी प्रकार का वर्णन 'जयन्तविजय' महाकाव्य में भी हुआ है -

एतदीयवदनेन्दुदर्शनादुत्तरङ्गगुरुराग सागराः ।
चेष्टितानि विदधुर्वसुधराधीश्वरा सदसि ते स्मरोद्धतम् ॥[2]

अर्थात् रतिसुन्दरी के चन्द्र तुल्य दर्शन से तरंगित परिपूर्ण राग वाले सागर के समान वे भूपगण सभा में काम से उद्धत चेष्टाओं को करने लगे।

अपि च—

ता सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय ।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीव ॥[3]

अर्थात् जैसे वायु से उठी हुई लहर के सहारे मानसरोवर की राजहंसिनी एक कमल से दूसरे कमल तक पहुँच जाती है, उसी प्रकार वेत्रधारी सुनन्दा भी राजकुमारी इन्दुमती को दूसरे राजा के पास पहुँचाकर खड़ी हो गयी।

'रघुवंश' के इस श्लोक की छाया 'जयन्तविजय' महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोक पर परिलक्षित होती है—

सम्मुखं सपदि वेत्रधारिणा तामथान्यनृपतेर्निनाय सा ।
हंसिकामिव तरङ्गपद्धति पङ्कजादपरपङ्कजं क्षणात् ।[4]

अर्थात् वेत्रधारी द्वारा उस स्त्री को शीघ्र अन्य राजा के सामने उसी प्रकार ले जाया गया जिस प्रकार तरङ्ग पद्धति से हंसिनी को एक कमल से दूसरे कमल पर ले जाया जाता है।

इन्दुमती स्वयंवर में आये हुए राजाओं को छोड़कर जब आगे बढ़ती है तो उस स्थिति का निरूपण करते हुए कवि कालिदास लिखते हैं—

सञ्चारिणी दीप शिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥[5]

अर्थात् रात्रि में जब हम दीपक लेकर चलते हैं तब जो-जो राजमार्ग के

---

१ रघुवंश, ६/१२ ।
२ जयन्तविजय, १६/३८ ।
३. रघुवंश, ६/२६ ।
४ जयन्तविजय, १६/५८ ।
५ रघुवंश ६/६७ ।

भवन पीछे छूटते हैं वे अँधेरे मे पडकर धुँधले पडते जाते हैं, वैसे ही जिन-जिन राजाओ को छोडकर इन्दुमती आगे बढ गयी उनका मुँह उदास पड गया।

महाकवि कालिदास द्वारा प्रस्तुत इन्ही भावो को कवि अभयदेव ने भी बडे ही मनोरम ढग से व्यक्त किया है—

यानपास्य नृपतीन्पतिंवरा सा जगाम गुरुकामविह्वलान्।
ते तयाञ्जनघनैर्विलोचनै श्यामता दधुरिवाक्षमेक्षिता ॥[1]

अर्थात् वह पतिम्बरा जिन गुरुतर काम से विह्वल राजाओ को छोडकर गयी वे राजागण उसके अञ्जन से युक्त नेत्रो द्वारा देखे गये श्यामता को प्राप्त हुए।

यहाँ पर कवि अभयदेव के वर्णन मे विशेष चमत्कार है, क्योकि स्वयवर मे आए हुए राजागण वरण न करने के कारण रतिसुन्दरी के अञ्जन युक्त नेत्रो से देखने पर श्यामता का प्राप्त हो रहे है जबकि कालिदास ने इसी भाव को व्यक्त करने के लिए अलग से दीपशिखा को उपमान बनाया है। उनके अनुसार जिस प्रकार दीपक की शिखा आगे बढने पर राजमार्ग के भवनो को अँधेरे मे छोड जाती है। उसी प्रकार इन्दुमती भी स्वयवर मे आये हुए राजाओ को छोडकर जब आगे बढती है तो वे राजागण राजमार्ग के भवनो की भाँति श्यामता को प्राप्त होते है। अत प्रस्तुत वर्णन मे कवि अभयदेव की कल्पना विशेष सराहनीय है।

इन्दुमती जब सर्वाङ्गसुन्दर राजा अज को देखती है तो वही पर रुक जाती है और फिर किसी राजा के सामने नही जाती क्योकि जब भौरो का झुण्ड आम्र के वृक्ष पर पहुँच जाता है तब उन्हे दूसरे वृक्षो के पास जाने की चाह नही रहती। सुनन्दा चन्द्रमा के समान मुखवाली इन्दुमती को अज पर अनुरक्त देखकर बहुत बढा-चढा कर अज की प्रशसा करती है—

त प्राप्य सर्वावयवानवद्य व्यवर्त्ततान्योपगमात्कुमारी।
न हि प्रफुल्ल सहकारमेत्य वृक्षान्तर काङ्क्षति षट्पदाली ॥
तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य ।
प्रचक्रमे वक्तमनुक्रमज्ञा सविस्तर वाक्यमिद सुनन्दा ॥[2]

'रघुवश' के इन्ही भावो को 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

सा विहाय नृपतीनथाजनि श्रीजयन्तमभि भूपते सुता।
नाकिनोऽनुपमरूपसपद श्रीर्मुकुन्दमिव मन्थनेऽम्बुधे. ॥

---

१ जयन्तविजय, १६/७२।
२. रघुवश, ६/६६-७०।

तत्र चित्रितजगत्त्रयाधिकं सानुरागमनसं विभाव्य ताम् ।
वेत्रभृत्तदनु ताममुञ्चकैरभ्यधत्त मधुराक्षरामिति ॥[1]

अर्थात् वह राजपुत्री अन्य राजाओ को छोडकर श्री जयन्त के सम्बन्ध मे, समुद्रमन्थन मे अनुपम रूप सम्पत्तिवाले देवताओ को छोडकर, लक्ष्मी से विष्णु की भाँति समुत्सुक हुई तथा वेत्रधारी ने वहाँ पर चित्रित त्रिभुवन में अधिक अनुराग मन वाली उसको समझकर मधुर अक्षरो से युक्त वाणी बोली अर्थात् जयन्त की खूब बढ़ा-चढा कर प्रशसा की ।

यहाँ पर भी दोनों कवियो के भावो मे पर्याप्त साम्य है क्योकि कालिदास ने इन्दुमती के लिए 'भ्रमरावली' को उपमान के रूप मे चित्रित किया है तथा कवि अभयदेव ने रतिसुन्दरी के लिए 'लक्ष्मी' को उपमान के रूप मे प्रस्तुत किया है । 'रघुवश' मे यदि वेत्रधारी सुनन्दा इन्दुमती को अज मे अनुरक्त देखकर अज की प्रशसा करती है तो 'जयन्तविजय' मे वेत्रधारी भी रतिसुन्दरी को जयन्त मे अनुरक्त देखकर जयन्त की प्रशसा करती है ।

'रघुवश' मे सुनन्दा अज के गुणो की प्रशसा करते हुए कहती है कि ये (अज) कुल, रूप, यौवन और नम्रता आदि गुणो मे तुम्हारे जैसे ही हैं अत इनसे विवाह अवश्य करो क्योकि जिससे रत्न और सोने का ठीक-ठीक मेल हो जाय । वेत्रधारी की इस प्रकार की बातो को सुनकर लाज के मारे इन्दुमती अपने प्रेम की बात को अज से कह तो न सकी पर उस प्रेम के कारण उसे रोमाच हो आया और घुँघराले बालो वाली इन्दुमती के हृदय का वह प्रेम छिपाने पर भी न छिप सका, मानो खडे हुए रोगटो के रूप मे वह प्रेम शरीर फोडकर निकल आया हो । इसके पश्चात् हाथी के सूँड के समान जघाओ वाली इन्दुमती ने सुनन्दा के हाथो रघु के पुत्र अज के गले मे वह स्वयवर की माला पहना दी जिसके डोरे मे लगी हुई रोली साक्षात् अनुराग के समान ही शोभा दे रही थी -

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै ।
त्वमात्मनस्तुल्यममु वृणीष्व रत्न समागच्छतु काञ्चनेन ॥
सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाक शालीनतया न वक्तुम् ।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टि भित्वानिराक्रामदरालकेश्या ॥
सा चूर्णगौर रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्या करभोपमोरु ।
आसञ्जयामास यथाप्रदेश कण्ठे गुण मूर्त्तमिवानुरागम् ॥[2]

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी इसी प्रकार वेत्रधारी रतिसुन्दरी के समक्ष

---

१ जयन्तविजय, १६/७३-७४ ।

२ रघुवश, ६/७९,८१,८३ ।

जयन्त की प्रशंसा करती है तथा जयन्त के गले में जयमाल डालने के लिए प्रोत्साहित करती है। रतिसुन्दरी भी जयन्त के गले मे हार पहनाती है । कवि अभयदेव के शब्दों मे—

कौशलेन कलया कुलेन च त्वं समेनमनुरूपमात्मन ।
एहि मुग्ध हृदये वृणु द्रुत रोहिणीव हरिणाङ्कमुत्सुका ॥

आकर्ण्य कर्णमधुरामिति वाचमुच्चै
किंचित्त्रपाभरमपास्य नरेन्द्रपुत्री ।
माला स्वयवर महोत्सवसाक्षिणी ता
श्रीमज्जयन्तनृपते क्षिपतिस्मकण्ठे ॥[1]

अर्थात् हे मुग्धे ! तुम कुशलता कलय तथा कुल से इनके अनुरूप हो। इसीलिए तुम इनका चन्द्रमा के लिए उत्सुक रोहिणी की भाँति शीघ्र वरण करो। इस प्रकार वह नरेन्द्र पुत्री कर्ण को मधुर लगने वाली ऊँची वाणी को सुनकर कुछ लज्जा के भार को दूर कर स्वयवर महोत्सव की साक्षिणी उस माला को जयन्त के गले मे डाल दिया।

इस प्रकार यहाँ पर भी दोनो कवियो के भावो मे साम्य है । इसी प्रकार युद्धवर्णन मे भी जयन्तविजय के कतिपय स्थलो मे रघुवश की छाया प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—रघुवश के सप्तम सर्ग मे अज तथा प्रतिपक्षी राजाओ के मध्य युद्ध वर्णन मे निम्नलिखित श्लोक आया है—

पत्ति पदाति रथिन रथेशस्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम् ।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थ तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूचयुद्धम् ।।[2]

अर्थात् (युद्ध प्रारम्भ होने पर) पैदल पैदलो से लडे, रथवाले रथारोहियो से और घुडसवार घुडसवारो से भिड गये, इस प्रकार बराबर के योद्धाओ का युद्ध हुआ। ।

'जयन्तविजय' मे निम्नलिखित श्लोक इसी की प्रतिच्छाया है—

योधेप्रसिद्धैर्युयुधेरिसौ(रो)घै सहाश्ववारै सममश्ववारै ।
रथि प्रवीरैरथिकैश्च सार्धं समानकक्षैर्जयबद्धलक्षै ॥[3]

अर्थात् प्रसिद्ध शत्रुओ के साथ शत्रु, असवारो के साथ असवार और रथी के साथ रथी समान कक्ष मे जय के लक्ष्य को बाँधते हुए युद्ध मे डट गये।

'रघुवश' के अतिरिक्त 'मेघदूत' के अनेक श्लोको का प्रभाव भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर परिलक्षित होता है । उदाहरणार्थ—मेघदूत के आरम्भ मे

---

१ जयन्तविजय' १६/८६ ८७ ।   २ रघुवश, ७/३७ ।
३ जयन्तविजय, १०/४० ।

जाता है कि कामपीड़ित व्यक्ति का विवेक समाप्त हो जाता है । अतः उसे जड़-चेतन का भेद प्रतीत नहीं होता—

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।[1]

'मेघदूत के इस भाव को 'जयन्तविजय' महाकाव्य में इस प्रकार व्यक्त किया गया है

कामान्धास्त्यक्तमर्यादा. किं किं पाप न कुर्वते ।[2]

अर्थात् मर्यादा को छोड़ने वाले कामान्ध लोग कौन-कौन सा पाप नहीं करते ।

महाकवि कालिदास 'मेघदूत' मे लिखते हैं कि यदि सच्चे मन से बड़ों का उपकार किया जाय तो वे अपने ऊपर भलाई करने वाले का आदर करने मे विलम्ब नही करते—

सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपचारो महत्सु ।[3]

यही भाव कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी द्रष्टव्य है—

फलति सहृदयेषु क्षिप्रमेवोपकार ।[4]

अर्थात् सहृदयों मे उपकार शीघ्र ही फलीभूत होता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव की शैली पर भी कालिदास का प्रभाव है । कालिदास वैदर्भी के मान्य आचार्य हैं । कवि अभयदेव ने भी अपना काव्य वैदर्भी रीति मे लिखा है । उसमे सरलता अर्थात् प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है तथा उसके साथ ओज और माधुर्य गुणो का यथावसर रुचिर मेल हुआ है । मध्यकाल मे जबकि जैन कवियो के काव्य मे पाण्डित्य प्रदर्शन का युग था तथा सहज सौन्दर्य के स्थान पर अलकार मण्डित कृत्रिम सौन्दर्य का ही बोलबाला था, उस समय कवि अभयदेव के द्वारा वैदर्भी की सहज सुषमा से युक्त महाकाव्य की रचना निस्सदेह उनके ऊपर महाकवि कालिदास के प्रभाव की परिचायक है ।

भारवि

भारवि का प्रभाव कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर विशेषरूप से परिलक्षित होता है । भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है । इसी प्रकार कवि अभयदेव ने भी अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे 'श्री' शब्द का प्रयोग किया है । कवि अभयदेव द्वारा प्रयुक्त यह श्री शब्द भी भारवि द्वारा प्रयुक्त

---

१ मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक-५ ।
२ जयन्तविजय, ३/५१ ।
३ मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक १६ ।
४ जयन्तविजय, ८/२४ ।

'लक्ष्मी' शब्द का ही वाचक है। भारवि ने 'किरातार्जुनीय' काव्य में राजनीति की विभिन्न दशाओ का वर्णन किया है। उनके अनुसार ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यक्ति को शत्रु की शक्ति की उपेक्षा नही करनी चाहिए—

> द्विषतामुदय सुमेधसा गुरुरस्वन्ततर सुमर्षण ।
> न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवण परिक्षय ।।[१]

अर्थात् ऐश्वर्य की कामना करने वाले मेधावी पुरुष शत्रु के महान् अभ्युदय की जो क्रमश अवनति को प्राप्त करने वाला है, उपेक्षा कर देते हैं, किन्तु यदि वह महान् अभ्युदय की ओर अग्रसर होता है, वर्तमान परिस्थिति मे वह चाहे भले ही अवनति मे पडा हो, कभी भी उपेक्ष्य नही है।

भारवि के इसी भाव को कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

> द्विषो न पोष्या प्रणिपातमन्तरा निजै पदार्थैरिति भूभृता नय ।
> न जातु तेषा तमपश्यता भवेज्जनाद्विशेष फणिदुग्धपायिन ।।[२]

अर्थात् शत्रु जब तक अधीनता स्वीकार न कर ले तब तक अपनी वस्तुओ से उसका पोषण नही करना चाहिए। यही राजनीति है क्योकि बिना देखे हुए किसी वस्तु मे कोई विशेषता नही बतलायी जा सकती, जिस प्रकार दूध पिलाने वाले सर्प मे कोई विशेषता दिखलायी नही पडती।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यहाँ पर प्रस्तुत भारवि तथा कवि अभयदेव के भावो मे पर्याप्त साम्य है, क्योकि कोई भी व्यक्ति अपने शत्रु का उत्कर्ष नही देख सकता।

इसी प्रकार 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे जिस किरात को युधिष्ठिर ने दुर्योधन की प्रजा के प्रति नीति को जानने के लिए हस्तिनापुर भेजा था वह किरात युधिष्ठिर के पास सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आता है और युधिष्ठिर अप्रसन्न न हो जायँ अत वह सर्वप्रथम क्षमायाचना के रूप मे निवेदन करता है—

> क्रियासु युक्तैर्नृप ! चारचक्षुषो न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि ।
> अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हित मनोहारि च दुर्लभ वच ।।[३]

अर्थात् हे राजन ! किसी कार्य को पूरा करने के लिए नियुक्त किये गये (राज) सेवको का यह परम कर्तव्य है कि वे दूतो की आँखो से ही देखने वाले अपने स्वामी को (झूठी तथा प्रिय बातें बताकर) न ठगें। इसलिए मैं जो कुछ अप्रिय

---

१ किरातार्जुनीय, २/८।
२ जयन्तविजय, ६/३३।
३ किरातार्जुनीय' १/४।

अथवा प्रिय निवेदन करूँ उसे आप क्षमा करेंगे, क्योंकि सुनने मे मधुर तथा परिणाम मे कल्याण देने वाली वाणी दुर्लभ होती है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी इसी भाव की छाया दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि सिंहलनरेश अपने जिस दूत को अपना हाथी वापस करने के लिए विक्रमसिंह की सभा में भेजता है, वह दूत वहाँ से वापस आकर इसी प्रकार कहता है –

रिपो स्वरूप विनिवेदयिष्यति स्फुटार्थमैतन्मयि मा रुष कृथा ।
महीभृता सत्यगिरो हि सेवका प्रसाद पात्र पुरतो हितैषिणम् ॥[1]

अर्थात् शत्रु के स्वरूप को स्पष्ट रूप से निवेदन करने वाले मेरे ऊपर आप क्रोध न करे क्योंकि सामने सच बोलने वाले सेवक राजाओ के हितैषी एवं प्रसन्नता के पात्र होते है।

'जयन्तविजय' मे सिंहलेश्वर का दूत जाकर विक्रमसिंह को समझाता हुआ कहता है—

गजेन्द्ररत्ने गृहमागते स्वय महीभुज कस्य मनो न लुभ्यति ।
तथापि हेय सबलीयसस्त्वया न सुन्दर क्वाप्यसमान विग्रह ॥[2]

अर्थात् हे राजन ! स्वय घर मे आये हुए गजेन्द्ररत्न पर किस राजा का मन लोभित नही होता है फिर भी आपके द्वारा वह बलवान हाथी त्याज्य है क्योकि असमान विग्रह कभी भी सुन्दर नही होता ।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डल भुव ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ॥[3]

अर्थात् वह दुर्योधन (शत्रु) राजाओ के विनिष्ट हो जाने के कारण सुस्थिर भूमण्डल पर समुद्र पर्यन्त राज्य शासन करते हुए भी आपकी ओर से आने वाली विपदा के भय से चिन्तित रहता है, क्योकि बलवान् के साथ का वैर-विरोध अमङ्गलकारी होता है।

इस प्रकार इन राजनैतिक स्थलो के अतिरिक्त भारवि ने अपने महाकाव्य मे षड् ऋतुओ, प्राकृतिक उपादानो —यथा हिमालय वर्णन, इन्द्रकील पर्वत इत्यादि का वर्णन भी उपस्थित किया है। इसी के साथ ही उन्होने जलक्रीडा, सायकाल, चन्द्रोदय इत्यादि का वर्णन भी विपुलता से किया है। भारवि की भाँति कवि अभयदेव ने भी जयन्तविजय मे ऋतुओ, जलक्रीडा सन्ध्या, सूर्यास्त, चन्द्रोदय इत्यादि का हृदयग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है किन्तु कवि अभयदेव के इस वर्णन को भारवि

१ जयन्तविजय, ९/४७ ।
२ वही, ९/१७ ।
३ किरातार्जुनीय, १/२३ ।

का प्रभाव नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्राचीन काव्य परम्परा के अनुसार इस प्रकार के वर्णन महाकाव्य के लिए आवश्यक हैं। हाँ इन वर्णनों में यत्र-तत्र उक्ति साम्य अवश्य दृष्टि गोचर होता है जिसे भारवि का प्रभाव कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ किरातार्जुनीयम् में सायकाल के समय कवि सूर्यास्त का वर्णन निम्नलिखित रूप से करता है—

> वीक्ष्य रन्तुमनस. सुरनारीरात्तचित्तपरिधानविभूषा ।
> तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्त भानुमानुपपयोधि ललम्बे ॥[1]

अर्थात् (जलक्रीडा के) अनन्तर विविध वस्त्रो एव आभूषणो से विभूषित एव रमण की इच्छुक उन देवाङ्गनाओं को देखकर सूर्य मानो उनकी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए अस्त होने की इच्छा से (पश्चिम) समुद्र की ओर लम्बायमान हो गये।

कवि अभयदेव ने भी सन्ध्या के विषय मे कुछ इसी प्रकार की उत्प्रेक्षा की है—

> पितुरथ ललितैस्तैस्तोषपीयूषवर्षं
> विदधति युवराजे तत्र सन्ध्याविरासीत् ।
> प्रगुणयितुमिवोच्चै स्फारशृङ्गारभङ्ग्या
> कुवलयदलनेत्रा सगमायप्रियाणाम् ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् उन सुन्दर जलक्रीडाओ से पिता के सन्तोष रूपी अमृत की वृष्टि का विधान कुमार के द्वारा किये जाने पर अधिक शृङ्गार की भङ्गिमा से बढी हुई मानो प्रियतमाओ के सगम के लिए कमल के समान नेत्रो वाली वहाँ पर सन्ध्या प्रकट हुई।

इस प्रकार भारवि के श्लोक की भाँति ही कवि अभयदेव ने अपने भावो को व्यक्त किया है। दोनो कवियो की दृष्टि मे सन्ध्या का आगमन प्रियतमाओं के सगम के लिए होता है। अत भाव साम्य स्पष्ट है।

इस प्रकार इन वर्णनो के अतिरिक्त युद्ध वर्णन मे भी 'जयन्तविजय' के कतिपय श्लोको पर 'किरातार्जुनीय' का प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ 'किरातार्जुनीय' के षोडश सर्ग मे आता है कि किरातवेषधारी भगवान् शङ्कर द्वारा अपने प्रस्वापन अस्त्र के विफल कर दिये जाने पर क्रोधित अर्जुन शत्रु की सेना पर सर्पास्त्र का प्रहार करते हैं—

---

१ किरातार्जुनीय, ९/१।   २. जयन्तविजय, ८/४५।

महास्त्र दुर्गे शिथिलप्रयत्न दिग्वारणेनेव परेण रुग्णे ।
भुजङ्गपाशान्भुजवीर्यशाली प्रबन्धनाय प्रजिघाय जिष्णु ॥[1]

अर्थात् इसके पश्चात् परम बाहुबलशाली अर्जुन ने महान् दुर्ग की भाँति दुर्गम अपने प्रस्वापन अस्त्र के दिग्गजो के समान शत्रु द्वारा थोडे ही प्रयास मे व्यर्थ बना दिए जाने पर, सम्पूर्ण प्रमथ सैनिको के लिए सर्परूपी पाशो का (सर्पास्त्र का) प्रहार किया ।

किन्तु किरात वेषधारी भगवान् शङ्कर ने गरुणास्त्र द्वारा अर्जुन के इस अस्त्र को निष्फल कर दिया—

तमाशु चक्षु श्रवसां समूहं मन्त्रेण तार्क्ष्योदयकारणेन ।
नेता नयेनेव परोपजाप निवारयामास पति पशूनाम् ॥[2]

अर्थात् तदनन्तर भगवान् शङ्कर ने उन सर्पों के समूह को गरुण को उत्पन्न करने वाले अपने मन्त्र के प्रभाव से इस प्रकार शीघ्र ही दूर कर दिया जिस प्रकार से जननेता अपने न्याययुक्त शासन द्वारा शत्रु के षड्यन्त्र को शीघ्र ही विफल कर देता है ।

कवि अभयदेव ने भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इन्ही अस्त्रो का वर्णन किया है—

तत प्रकोपप्रसरत्कदुष्ण श्वासानिलान्दोलितहारयष्टि ।
विद्याधरेन्द्र पवनाशनास्त्र मुमोच तच्चापलदोषहारि ॥[3]

अर्थात् इसके पश्चात् क्रोध से फैले हुए ऊष्ण श्वाँस की वायु से हिलने वाली हृदय की हार लता वाला विद्याधरेन्द्र ने पवन का भोजन करने वाले और पवन की चञ्चलता के दोष का अपहरण करने वाले सर्पास्त्र का विमोचन किया ।

किन्तु भगवान् शङ्कर की भाँति ही यहाँ पर युवराज जयन्त ने गरुणास्त्र को छोडकर उसके अस्त्र को विफल किया

भुजङ्गपूगग्रसनादजस्त्र प्रभञ्जने भङ्गुरता प्रयाते ।
प्रत्यस्त्र मुच्चैरमुचन्महीपो महीपति पत्त्ररथेन्द्रसञ्ज्ञम् ।[4]

अर्थात् सर्प समुदाय के ग्रसन से निरन्तर वायु प्रभञ्जन के छिन्न-भिन्न हो जाने पर महीपति ने रथेन्द्र सञ्ज्ञा (मोर) वाले अस्त्र को छोडा ।

---

१ किरातार्जुनीय, १६/३६ ।
२ वही, १६/४२ ।
३ जयन्तविजय, १४/६० ।
४ वही, १४/६२ ।

अपि च—

साफल्यमस्त्रे रिपुपौरुषस्य कृत्वा गते भाग्य इवापवर्गम् ।
अनिन्धनस्य प्रसभ समन्यु समाददेऽस्त्र ज्वलनस्य जिष्णु ॥[१]

अर्थात् पूर्व जन्मार्जित पुण्य कर्म के समान शत्रु के पराक्रम को सफल बना कर अपने सर्पास्त्र के (प्रभाव के) समाप्त हो जाने पर क्रोध से युक्त अर्जुन ने ईंधनादि सामग्री के बिना ही प्रज्ज्वलित होने वाले अग्निबाण को तुरन्त ही ग्रहण किया ।

किन्तु भगवान् शङ्कर ने अर्जुन के इस अग्निबाण को भी वरुणास्त्र के प्रयोग द्वारा विफल कर दिया—

लिलिक्षतीव क्षयकाल रौद्रे लोक विलोलार्चिषि रोहिताश्वे ।
पिनाकिना हृतमहाम्बुवाहमस्त्र पुन पाशभृत प्रणिन्ये ॥[२]

अर्थात् प्रलयकाल के समान अत्यन्त भयकर एव अपनी लपलपाती हुई ज्वालाओ से मानो सम्पूर्ण लोक को चाट जाने के लिए इच्छुक अग्नि के चारो ओर फैल जाने पर पिनाकधारी शङ्कर ने पुन बडे-बडे मेघो को बुलाने वाले वरुण अस्त्र का प्रयोग किया ।

'किरातार्जुनीय' मे वर्णित इन अग्नेयास्त्र तथा वरुणास्त्र का प्रयोग 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी परिलक्षित होता है—

तिरस्कृतान्वीक्ष्य विपक्षमुक्तै ‍र्सिहानथासौ शरभैर्नृसिह ।
अग्नेयमस्त्र त्रिपुराय पूर्वं पु न्तकारीव मुमोच दृप्तम् ॥[३]

अर्थात् इसके बाद उस नृसिह (जयन्त) ने शत्रुओ के द्वारा छोडे गये शरभो से सिहो को तिरस्कृत होते हुये यह देखकर प्राचीनकाल मे त्रिपुर के नाश करने के लिए त्रिपुरारी की भाँति उन्मत्त अग्नेयास्त्र का विमोचन किया—

किन्तु जयन्त द्वारा छोडे गये इस अग्नेयास्त्र को खेचर चक्रवर्ती ने अपन पाथाधरास्त्र द्वारा विफल कर दिया—

भस्मीकृतान्खेचरचक्रवर्ती शिखिप्रपञ्चै शरभानवेत्य ।
ततस्तदाटोपहर तपस्वी पाथोधरास्त्र तरसा मुमोच ॥[४]

अर्थात् इसके पश्चात् खेचर चक्रवर्ती ने अग्नि प्रपञ्चो से सरभगण को भस्मीभूत मानकर उस आरोप को दूर करने वाले पाथोधरास्त्र का शीघ्र उन्मोचन किया ।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वर्णित यह पाथोधरास्त्र 'किराता-

---

१ किरातार्जुनीय, १६/४६ ।
२ वही, १६/५४ ।
३ जयन्तविजय, १४/८४ ।
४ वही, १४/८६ ।

र्जुनीय' महाकाव्य मे वर्णित वरुणास्त्र का ही रूप है । अत स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने 'किरातार्जुनीयम्' मे वर्णित महाकवि भारवि के भावो को 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे अनेक स्थलो पर प्रस्तुत किया है ।

माघ •

भारवि द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य की शैली का उत्कर्ष माघ में परिलक्षित होता है, क्योकि माघ को सस्कृत साहित्य मे सर्वगुण सम्पन्न कवि के रूप मे स्वीकार किया गया है — माघे सन्ति त्रयो गुणा । अत इनके 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य का प्रभाव परवर्ती कवियो पर पडना स्वाभाविक ही है, क्योकि कलापक्ष प्रधान महाकाव्यो मे 'शिशुपालवध' का प्रमुख स्थान है । कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर भी इस 'शिशुपालवध' का प्रभाव अनेक स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है ।

उदाहरणार्थ 'शिशुपालवध' मे द्वारिकापुरी की रमणियो तथा स्वर्गीय अप्सराओ के भेद को स्पष्ट करते हुए महाकवि माघ लिखते है—

> यदङ्गनारूपमरूपतायाः कञ्चिद् गुण भेदकमिच्छतीभि ।
> आराधितोऽद्धा मनुरप्सरोभिश्चक्रे प्रजा स्वा सन्निमेषचिह्ना ॥[1]

अर्थात् जिस द्वारिकापुरी मे स्त्रियो की सुन्दरता की समानता से किसी भेद-कारक गुण को चाहने वाली अप्सराओ से प्रार्थित मनु ने अपनी प्रजाओ (द्वारिकापुरी मे बसने वाली अङ्गनाओ) को निमेषयुक्त चिह्नवाली कर दिया । भाव यह है, कि द्वारिकापुरी मे रहने वाली अङ्गनाओ एव स्वर्गीय अप्सराओ मे केवल यही भेद था कि इन अङ्गनाओ का निमेष (पलक गिरता) था तथा अप्सराओ का निमेष नही (पलक नही गिरता) था, शेष सौन्दर्यादि समस्त गुणो मे द्वारिकापुरी मे निवास करने वाली अङ्गनाएँ स्वर्ग की अप्सराओ के समान ही थी ।

'जयन्तविजय' मे भी इसी प्रकार जयन्तीपुरी मे निवास करने वाले पुरुषो तथा देवताओ के भेद को स्पष्ट किया गया है —

> सुरेशवेषाभरणाङ्गरागवरेण लावण्यतरङ्गिताङ्ग ।
> निमेषमात्रेण पर सुरेभ्यो विभिद्यते यत्रजन समस्त ॥[2]

अर्थात् देवताओ के वेष को धारण किये हुए अङ्गराग आदि लगाने से अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले जिस जयन्तपुरी के लोग देवताओ से पलक मूँदने के व्याज से ही भिन्न माने जाते है । भाव यह है कि जयन्तपुरी मे रहने वाले व्यक्ति तथा देवताओ मे केवल यही भेद है कि देवताओ की पलके नही लगती हैं तथा इस पुरी

---

१ शिशुपालवध, ३/४२ ।
२ जयन्तविजय, १/५४ ।

के रहने वाले व्यक्तियो की पलकें लगती हैं, शेष गुणो मे जयन्तीपुरी के व्यक्ति देवताओ के सदृश ही है।

इस प्रकार दोनो ही स्थलो मे भिन्नता का कारण एक ही बताया गया है। हाँ इतना अवश्य है, कि माघ मे जो भेद अङ्गनाओं तथा अप्सराओ के मध्य मे बताया है, कवि अभयदेव ने वही भेद पुरुषो तथा देवताओ के मध्य प्रतिपादित किया है।

इसी प्रकार वसन्त के आगमन के अवसर पर शिशुपालवध का एक श्लोक प्रस्तुत है—

> अजगणान् गणश प्रियमग्रत प्रणतमप्यभिमानितया न या ।
> सति मधावभवन्मदनव्यथा विधुरिता धुरिता कुकुरस्त्रिय ॥[1]

अर्थात् जिन यादवाङ्गनाओ ने सामने अनेक बार प्रणत हुए भी प्रिय को अभिमानिनी होने से नही गिना—मान त्यागकर सम्भोगार्थ तैयार नही हुई, बसन्त के आरम्भ होने पर काम पीडा से पीडित वे यादवाङ्गनाएँ आगे हुईं अर्थात् सभोगार्थ स्वयमेव पहले तैयार हो गयी।

यहाँ पर मानिनी नायिका का वर्णन किया गया है। कवि अभयदेव भी 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे मानिनी नायिका के मान भग की प्रक्रिया का इसी प्रकार वर्णन करते है—

> मानोत्तानतया सखीषु कलुषा प्रेङ्खोलरोषाश्चिर
> दूतीषु स्वयमानतेऽपि दयिते याश्चक्रिरे वक्रताम् ।
> ता प्रातश्चरणायुधध्वनिमिभादाज्ञामिवाप्य स्मर-
> क्षोणीशस्य समुत्सुका प्रियपरीरम्भ स्त्रियस्तन्वते ॥[2]

अर्थात् पति के स्वय नत होने पर मान की वृद्धि से सखियो पर कलुषित, दूतियो पर बढे हुए रोष वाली जो स्त्रियाँ वक्रता को धारण किए हुए थी, वे स्त्रियाँ प्रात वायु की ध्वनि के बहाने उत्सुकतापूर्वक कामदेव की आज्ञा को पाकर अपने प्रियतमो का आलिङ्गन करने लगी।

यहाँ पर दोनो ही स्थलो मे भाव साम्य समान है, किन्तु वर्णन मे किञ्चित भिन्नता है।

इसी प्रकार कवि अभयदेव के 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर समराङ्गण मे छोडे गये अस्त्रो पर भी 'शिशुपालवध' का प्रभाव परिलक्षित होता है क्योकि जयन्त-

---

१ शिशुपालवध, ६/१५।
२ जयन्तविजय, ८/६८।

विजय के चतुर्दश सर्ग में छोडे गये नागास्त्र[1], गरुणास्त्र[2], अग्नेयास्त्र[3] तथा मेघास्त्र[4] का वर्णन भी शिशुपालवध मे प्राप्त होता है।

श्रीहर्ष

बृहत्त्रयी के अन्तर्गत प्रतिपादित महाकाव्यो मे श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरित' का प्रमुख स्थान है। इसमे राजा नल के जीवन की सम्पूर्ण कथा वर्णित है। 'जयन्त-विजय' महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि कवि अभयदेव ने इस महाकाव्य का भी अध्ययन किया था, क्योकि नैषध मे राजा नल की कीर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वन्ध्या से पुत्र उत्पन्न होना, कच्छपी के दूध का होना, मूको का गान करना एव जन्मान्ध का देखना असम्भव है, उसी प्रकार इस राजा की अकीर्ति का होना सम्भव नही।

यथा -

अस्य क्षोणिपते पर्रार्द्धपरया लक्षीकृता सख्यया
प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणतिमिरप्रख्या किलाकीर्तय ।
गीयन्ते स्वरमष्टमङ्कलयता जातेन बन्ध्योदरान्
मूकाना प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि ।।[5]

जयन्तविजय मे विक्रमसिंह की कीर्ति का चित्रण भी इसी प्रकार किया गया है—

यस्य क्षोणिपते प्रतापदहनज्वालावलीकेलिभि
सप्ताप्यम्बुधयोऽम्बुबिन्दव इवाशोष्यन्त तेऽपिद्रुतम् ।
पूर्यन्ते स्म हतारिराजकवधूनेत्राम्बुपूरै पुन
स श्री प्रीतिमती प्रियामिव महाभोगामभुङ्क्तक्षमाम् ।।[6]

अर्थात् जिस राजा के प्रतापरूपी अग्नि की ज्वाला कणो की परम्परा से सप्तसागर भी जल की बूँद की तरह शीघ्र सूख जाते थे किन्तु वे समुद्र मारे गये शत्रु राजाओ की मृगनयनियो के अश्रुओ से पुन भर जाते थे। इस प्रकार वह राजा प्रीतिमती प्रिया की भाँति महाभोगो से परिपूर्ण पृथ्वी का भोग करता था।

यहाँ पर दोनो कवियो के वर्णन के भाव तथा पदावली मे साम्य है किन्तु वर्णन के प्रकार मे किंचित भिन्नता है।

---

१ जयन्तविजय, १४/६० तथा शिशुपालवध, २०/४१।
२ वही, १४/६२ तथा वही, २०/५२।
३ वही, १४/८४ तथा वही, २०/५६।
४ वही, १४/८६ तथा वही, २०/६५।
५ नैषधीयचरित, १२/१०६। ६ जयन्तविजय, १/७२।

इसी प्रकार कवि अभयदेव जयन्तीनगरी स्थित वृक्षो का मानवीकरण करते हुए लिखते हैं—

हस्तैरिवोच्चैस्तरव पलाशैश्छाया दधाना फलसपदा च ।
पथ्यङ्गिना पथ्यदनाय यत्र स्वबन्धुबुद्धेव भवन्ति भूय ॥[१]

अर्थात् जहाँ पर अनेक तरुवर बड़े-बड़े पल्लवरूपी हाथो से शरीरधारियो को खाने के लिए फल की सम्पत्ति तथा छाया को देते हुए मार्ग मे अपने कुटुम्बी की बुद्धि से स्थित हैं ।

जयन्तविजय के इस श्लोक पर नैषधीयचरित के निम्नलिखित श्लोक की छाया परिलक्षित होती है—

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते ।
स्थितै समाधाय महर्षिवार्द्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभि ॥[२]

अर्थात् पक्षियो के अत्यन्त उडने के कारण वायु से हिलते हुए पल्लवरूपी हाथ मे फल-फूलो को लेकर स्थित, वन के वृक्षो ने मानो बूढे महर्षियो के समूह से उस (नल) के अतिथि-सत्कार को करने के लिए सीखा है ।

यहाँ पर दोनो कवियो के भावो मे साम्य स्पष्ट ही है । इसी प्रकार नैषध के प्रथम सर्ग मे नल के आराम भूमि की प्रति प्रयाण क अवसर पर नल के अश्वो का वर्णन किया गया है जिसका साम्य जयन्तविजय के दशम् सर्ग मे रण प्रयाण के अवसर पर किये गये जयन्त के अश्व के वर्णन मे दृष्टिगोचर होता है । उदाहरणार्थ नल के अश्वो का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है—

प्रयातुमस्माकमिय कियत्पद धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम् ।
इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितै पयोधिरोधक्षममुत्थित रज ॥[३]

अर्थात् हम लोगो के चलने के लिए यह पृथ्वी कितने पैर (कितने कदम) होगी ? अर्थात् अत्यन्त थोडी होगी, इससे यह समुद्र भी स्थल बन जाय, मानो ऐसा विचार कर अपने वेग के अभिमानी घोडो ने समुद्र को पूरा करने (सुखाने) मे समर्थ धूलि को उडाया ।

जयन्तविजय मे निम्नलिखित श्लोक मे कुछ इसी प्रकार का वर्णन है—

तुरङ्गमास्तस्य चतु समुद्री रज समाजै स्थलता नयन्ति ।
खुरोद्धतैर्दातुमिवावकाशमपारनासीर पर पराणाम् ॥[१]

अर्थात् मानो उन (जयन्त) के घोडो के खुरो से उडाई गयी धूलि से सेनाओ की परम्परा को अवकाश देने के लिए चारो समुद्रो का स्थल बना रहे है ।

---

१ नैषधीय चरित, १/७७ ।
२ जयन्तविजय, १/३१ ।
३ नैषधीय चरित, १/६६ ।
४ जयन्तविजय, १०/७ ।

कवि श्रीहर्ष नैषध मे दमयन्ती के सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं। उनके अनुसार—

भजते खलु षण्मुख शिखी चिकुरैर्निर्मितबर्हगर्हण ।
अपिजम्भरिपु दमस्वसुर्जितकुम्भ कुचशोभयेभराट ।।[1]

अर्थात् दमयन्ती के बालो से (पराजित होने के कारण) पूँछो के बालो की निन्दा करता हुआ मयूर षडानन (स्वामी कार्तिकेय) की सेवा करता है तथा स्तनो की शोभा से पराजित कुम्भ (मस्तकस्थ कुम्भाकार मास-पिण्ड) वाला गज-राज (ऐरावत) इन्द्र की सेवा करता है।

इसी प्रकार कवि अभयदेव ने भी कनकवती का वर्णन किया है—

रामणीयकमनकुशमस्या जघयोरनघयोरवलोक्य ।
नूनमुद्गनगराभवदु खा सत्वरेणललना वनवासम् ।।[2]

अर्थात् इस (कनकवती) की सुन्दर रोमरहित निरकुश जङ्घाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना ने पराभव के दु ख के उत्पन्न होने के कारण वनवास का आश्रय लिया।

यहाँ पर दोनो कवियो के वर्णन मे साम्य है, क्योकि यदि दमयन्ती के केश तथा कुचो मे पराजित होकर मयूर तथा गजराज ने स्वामी कार्तिकेय तथा इन्द्र का आश्रय लिया है तो कनकवती की रोमरहित जघाओ से पराजित होकर हिरणी ने वनवास का आश्रय लिया है।

इसी प्रकार स्वयवर मे आयी हुई दमयन्ती को देखकर विभिन्न स्थानो से आये हुए राजा लोग कल्पना करते है—

रसस्य शृङ्गार इति श्रुतस्य क्व नाम जागर्ति महानुदन्वान ।
कस्मादुदस्थादियमन्यथा श्रीर्लावण्यवैदग्ध्यनिधि पयोधे ।।[3]

अर्थात् (नव रसो मे) 'शृङ्गार' ऐसे नाम मे सुने गये रस का विशाल समुद्र कहाँ है ? (कही न कही अवश्य है), नही तो सौन्दर्य की चातुर्य के निधि यह (दमयन्तीरूपिणी) लक्ष्मी किस समुद्र से निकली है।

जयन्तविजय के त्रयोदश सर्ग मे जयन्त भी कनकवती को देखकर इसी प्रकार कल्पना करते हैं—

पर्वते किमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
किं रति किमु रमा खलुनैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ।।[4]

१, नैषधीय चरित, २/३३ ।
२ जयन्तविजय, १३/१६ ।
३. नैषधीयचरित, १०/११५ ।
४ जयन्तविजय, १३/१२ ।

अर्थात् क्या यहाँ इस पर्वत पर पर्वतपुत्री पर्वत की सुन्दरता को देखने के लिए आयी है, या रति है अथवा रमा है, नही निमेष के कारण यह मृत्युलोक की ललना है।

यहाँ पर भी दोनो कवियो के भाव मे साम्य हैं, किन्तु दमयन्ती को देखकर राजागण उसे मृत्युलोक की रमणी नहीं मानते है जबकि जयन्त निमेष लगने के कारण कनकवती को मृत्युलोक की ललना है। ऐसा जान लेते है।

इस प्रकार कवि ने दमयन्ती के नेत्रो का वर्णन करते हुए लिखा है--

दृशौ किमस्याश्चपलस्वभावे न दूरमाक्रम्य मिथो मिलेताम्।
न चेत्कृत" स्यादनयो प्रयाणे विघ्न श्रव कूपनिपातभीत्या ॥[1]

अर्थात् इस दमयन्ती के चचल स्वभाव वाले कर्णान्त विशाल) नेत्र दूर तक जाकर परस्पर मे क्यो नही मिल जाते ? अर्थात् अवश्य मिल जाते। यदि इन नेत्रो के जाने मे कान-कूप मे गिरने का भय बाधक न होता।

जयन्तविजय मे कवि अभयदेव ने भी इसी प्रकार कहा है

लघितु श्रवणयोश्चिरसीमा लोचने मृगदृशो विवदाते।
निर्विवादविषयेऽपि विवाद शश्वदश्रुतिमता किमु चित्रम् ॥[2]

अर्थात् कानो की बढी हुई सीमा को लाँघने के लिए मृगनयनी (कनकवती) के दोनो नयन आपस मे विवाद करते थे, क्योकि निर्विवाद विषय मे अश्रुतिमानो का निरन्तर विवाद होता है इसमे क्या विचित्र है अर्थात् कुछ भी नही।

यहाँ पर भी भाव साम्य स्पष्ट है किन्तु श्रीहर्ष की दृष्टि मे नेत्रो को कर्ण-कूप मे गिरने का भय है अत वे आगे नही बढ सके है जबकि कवि अभयदेव की दृष्टि मे कनकवती के नेत्र कर्ण-कूप को लाँघने का उपाय खोज रहे है।

वसन्त ऋतु मे कोयल की आवाज विरहिणियो की कामभावना को और भी अधिक उद्दीप्त कर देती है, इसीलिए कामदेव उन्हे परेशान करने के लिए कोयल की आवाज को ही अपना बाण बनाता है। कवि श्रीहर्ष दमयन्ती को पीडित करने वाले इसी बाण का उल्लेख करते हैं—

सह तया स्मर ! भस्म झडित्यभू पशुपतिं प्रति यामिषुमग्रहीः।
ध्रुवमभूदधुना वितनो शरस्तव पिकस्वर एव स पञ्चम ॥[3]

अर्थात् हे कामदेव ! शिवजी के प्रति तुमने जिस बाण को (मारने के लिए)

१ नैषधीयचरित, ७/३४।
२ जयन्तविजय, १३/३०।
३ नैषधीय चरित, ४/६४।

ग्रहण किया, वह तुम्हारे साथ ही शीघ्र भस्म हो गया। किन्तु शरीरहीन तुम्हारे वे ही पाँच बाण इस समय निश्चित ही कोयल के शब्द हो गये हैं।

जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी कवि द्वारा प्रतिपादित यही भाव दर्शनीय हैं—

माधवप्रणयिना मनोभुवा मानखण्डनविधौ मृगीदृशाम्।
कोमलोऽपि कलकण्ठकामिनी पञ्चमध्वनिरमीयतास्त्रताम् ॥[1]

अर्थात् मृगनयनियों के मानखण्डन की विधि मे वसन्त प्रिय कामदेव से कोमल कल-कल निनाद करने वाली कोयल की पञ्चम ध्वनि को अस्त्र बनाया गया।

यहाँ पर भी भाव साम्य है, क्योंकि कोयल पञ्चम स्वर से बोलती है और यही उसका पचम स्वर ही मानो कामदेव द्वारा विरहीजनो पर प्रहार किये जाने वाले पाँच बाण है।

इसी प्रकार अन्धकार मे अभिसाराभिलाषी नायिकाओ की वेश-भूषा का वर्णन करते हुए कवि श्रीहर्ष लिखते है—

ध्वान्तैणनाभ्या शितिनाम्बरेण दिश शरै सूनशरस्य तारै।
मन्दाक्षलक्ष्या निशि मामनिन्दौ सेर्ष्या भवायान्त्यभिसारिकाभा ॥[2]

अर्थात् (हे प्रिये दमयन्ती) अन्धकाररूपी कस्तूरी से युक्त, काले कपडे से उपलक्षित, कामबाणो से पीडित, लज्जायुक्त अभिसाराभिलाषिणी दिशारूपिणी नायिकाएँ चन्द्ररहित अर्थात् अन्धकारयुक्त रात्रि म मेरे पास आ रही है अतएव तुम ईर्ष्यायुक्त होवो। भाव यह है कि जिस प्रकार कृष्णपक्ष की अँधेरी रात्रि मे कस्तूरी से सुगन्धित, काला कपडा पहने हुए, कामपीडित लजाती' हुई नायिका नायक के पास जाती है, तब नायक के समीप स्थित उसकी स्त्री उस अभिसार करने वाली स्त्री के प्रति ईर्ष्या करती है, उसी प्रकार ये दिशारूपी अभिसारिकाएँ मेरे पास आ रही हैं, अतएव तुम इनके प्रति ईर्ष्या करो।

महाकवि अभयदेव ने भी जयन्तविजय महाकाव्य मे अभिसाराभिलाषिणी नायिकाओ की साज-सज्जा का इसी प्रकार वर्णन किया है —

अभिनव मृगनाभीपङ्कक्लृप्ताङ्गरागा
भ्रमररुचिदुकूलैर्वेषमुद्रा दधाना।
मरकतकृतभूषा पक्ष्मलाक्ष्य सलील
रमणमभिसरन्ति स्वैरमिद्धेऽन्धकारे ॥[3]

---

१ जयन्तविजय, ७/३१।
२ नैषधीय चरित, २२/३२।
३ जयन्तविजय, ८/५२।

अर्थात् अभिनव कस्तूरी के पङ्क से अङ्गराग किये हुए, भ्रमर की कान्ति के समान साडियो से वेष मुद्रा को धारण किये हुए, मरकत मणि का आभूषण पहने हुए कमलनेत्रियाँ लीलापूर्वक बढे हुए अन्धकार मे स्वेच्छापूर्वक रमणो (नायको) का अभिसरण करती है ।

यहाँ पर नायिकाओ की साज-सज्जा का दोनो कवियो ने एक ही समान वर्णन किया है ।

इसी प्रकार दमयन्ती के विवाह मे राजा भीम द्वारा नल को दिये गये दहेज का वर्णन करते हुए कवि श्रीहर्ष लिखते है—

त तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु सख्यानुभवेऽभवत् क्षम ।
न शातकम्भेषु न मत्तकुम्भिषु प्रयत्नवान् कोऽपि न रत्नराशिषु ॥[1]

अर्थात् उन (राजा भीम) के द्वारा विवाह मे दक्षिणा (दहेज) दिये गये घोडो, सुवर्णो, मतवाले हाथियो और रत्नो के ढेरो की गणना करने मे प्रयत्नशील भी कोई व्यक्ति समर्थ नही हुआ ।

जयन्तविजय मे कवि अभयदेव भी पवनगति द्वारा अपनी पुत्री कनकवती के विवाह मे याचको को दिये गये दान का वर्णन भी इसी प्रकार करते है—

तत्र दानसमये खचरेन्द्र प्राज्यवाजिकरटीन्द्रघटाभि ।
स्वर्णरत्ननिकरैश्च स चक्रे श्रीपतिं हरिमिवार्थिसमाजम् ॥[2]

अर्थात् उस कन्यादान के समय खचरेन्द्र (पवनगति) ने सुवर्ण घोडे, हस्तिनी को घटाओ और रत्न समूहो से याचक समाज को श्रीपति विष्णु की भाँति कर दिया ।

यहाँ पर कवि अभयदेव के वर्णन मे श्रीहर्ष की अपेक्षा विशेष उत्कर्ष है क्योकि राजा भीम के द्वारा दमयन्ती के विवाह मे नल को दिये गये दहेज की गणना करने मे प्रयत्नशील व्यक्ति भी समर्थ नही हो सका है जबकि खचरेन्द्र पवनगति ने अपनी पुत्री कनकवती के दान के समय याचको का इतना अधिक धन दिया है कि वे भगवान् विष्णु की भाँति लक्ष्मी से युक्त हो गये है तो उन्होने अपने जामाता जयन्त को दहेज मे कितना धन दिया होगा, इसका अनुमान लग ना ही कठिन है ।

श्रीहर्ष नैषध काव्य मे भवितव्यता के सम्बन्ध मे अपने विचार करते है —

अवश्य भव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधस स्पृहा ।
तृणेनवात्येव तयानुगम्यत जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ॥[3]

---

१ नैषधीय चरित, १६/३४ ।
२ जयन्तविजय, १३/६४ ।
३ नैषधीय चरित, १/१२० ।

अर्थात् अवश्य होने वाले होनहार मे निर्बाध ब्रह्मा की इच्छा जिस ओर दौडती है, मनुष्य का अत्यन्त पराधीन चित्त भी वायु-समूह से तृण के समान उसी दिशा को जाता है। अर्थात् होनहार को कोई टाल नही सकता है।

नैषध महाकाव्य के यही विचार जयन्तविजय महाकाव्य मे दर्शनीय हैं—

तथाप्यवज्ञाय तदीयमन्त्रितं प्रयाणमाधत्त मदोद्धतस्तत ।
अरिष्ट ससूचित मृत्युरप्यसौ विलघ्यते कैर्भवितव्यताथवा ॥[1]

अर्थात् इसके पश्चात् मदोद्धत राजा ने मन्त्रियो की मन्त्रणा की अवहेलना कर प्रस्थान किया यद्यपि अरिष्टो की सूचना से मृत्यु की सम्भावना हो रही थी। अथवा भवितव्यता को किसके द्वारा टाला जा सकता है।

इसी प्रकार कुछ अन्य स्थल भी विशेष दर्शनीय हैं। यथा नैषध मे वर्णित—

१ स्वत एव सता परार्थता ग्रहणाना हि यथा यथार्थता। (नैषधीय चारित, २/-१)
२ कर्म क स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते। (नैषधीय चरित, ५/६)
३ दैवे विरुन्धति निबन्धनता वहन्ति हन्त।
   प्रयास परुषाणि न पौरुषाणि ॥ (नैषधीय चरित, ११/५५)

सूक्तियो का प्रभाव भी जयन्तविजय मे वर्णित निम्नलिखित सूक्तियो पर ारिलक्षित होता है—

१ सतामार्तपरित्राण प्रगुणाश्चित्तवृत्तय। (जयन्तविजय, ३/५२)
२ सुखमसुखमिह स्यादात्मकर्मानुरूपम्। (जयन्तविजय, ८/६०)
३ सर्वं विधौ हि विमुखे विमुख जनस्य। (जयन्तविजय, ५/५६)

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य की रचना करने के पूर्व नैषध महाकाव्य का विधिवत् अध्ययन किया था। अत उनकी रचना श्रीहर्ष के नैषधीय चरित से प्रभावित परिलक्षित होती है। हाँ इतना अवश्य है कि नैषध मे कवि श्रीहर्ष ने दुरूह शैली का आश्रय लिया है जबकि कवि अभयदेव ने सरस शैली को अपना कर नैषध के भावो को जयन्तविजय महाकाव्य मे यत्र-तत्र व्यक्त किया है।

विल्हण

ऐतिहासिक महाकाव्यो की परम्परा मे विल्हण रचित 'विक्रमाङ्कदेव चरित' महाकाव्य का प्रमुख स्थान है। इसमे चालुक्यवशीय राजा विक्रमादित्य (१०७५-११२६ ई०) के जीवन की घटनाओ का वर्णन किया गया है। महाकाव्य की शैली वैदर्भी है। कवि वैदर्भी रीति की प्रशसा करते हुए लिखता है—

---

१ जयन्तविजय, ६/५२।

अनभ्रवृष्टि श्रवणामृतस्य सरस्वती विभ्रमजन्मभूमि ।
वैदर्भरीति कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूयदानम् ।।[1]

अर्थात् वैदर्भी रीति का आविर्भाव उत्कृष्ट और अच्छे काव्य की रचना करने मे कुशल तथा पुण्यात्मा कवियो मे ही होता है । यह वैदर्भी रीति श्रवण को आनन्द देने वाले अमृत की बिना मेघो की वृष्टि है । वाणी के विलास का जन्म स्थान है और पदो को कविता मे यथोचित स्थान प्राप्त होकर उनके सौन्दर्य वृद्धि की जमानत करने वाली है ।

विक्रमाङ्कदेव चरित महाकाव्य की इसी वैदर्भी रीति का अनुकरण कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे किया है । अत शैली के साथ ही कवि ने महाकाव्य के भावो को भी यत्र-तत्र उन्ही रूपो मे प्रस्तुत किया है ।

विक्रमाङ्कदेव चरित मे कवि विल्हण विक्रमादित्य के गर्भ मे आने पर आह्वमल्ल की महारानी का वर्णन करते हुए लिखते है—

कृतावतार क्षितिभारशान्तये न पीड्यमाना सहते महीमयम् ।
इतीव सा गर्भभरालसा शनै पदानि विक्षेप मगायतेक्षणा ।।[2]

अर्थात् गर्भ के बोझ से धीरे-धीरे चलने वाली, मृग के समान बडे-बडे नेत्रो वाली रानी, मानो यह सोचकर कि पृथ्वी का बोझ कम करने के लिए शरीर धारण करने वाला मेरा गर्भस्थ कुमार, मुझसे पृथ्वी का बोझ द्वारा पीडित होना कैसे सहन करेगा, पृथ्वी पर धीरे-धीरे पैरो को रखती थी ।

जयन्तविजय मे जयन्त के गर्भ मे आने पर महारानी प्रीतिमती का वर्णन भी कवि अभयदेव ने इसी प्रकार किया है ।

वसुधराभारधुरधरस्य सुतस्य गर्भे समुपागतस्य ।
तदानुभावान्मणि कुटिटमेऽपि चचालसाम वरपादपातम् ।।[3]

अर्थात् वसुन्धरा के भार को वहन करने वाले पुत्र के गर्भ मे आने के कारण वह रानी प्रीतिमती गर्भ के प्रभाव से मणिजटित कुट्टियो पर भी गम्भीरता और शान्तपूर्वक पैर को रखती थी ।

विक्रमादित्य के जन्म के समय आकाश से भौंरो की गुजार से युक्त नन्दन वन के फूलो की वृष्टि होने लगती है, देवराज इन्द्र का नगाडा बजने लगता है तथा उनके जन्म के साथ उत्पन्न उनके उज्ज्वल गुणो से दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं—

---

१ विक्रमाङ्कदेव चरित, १/६ ।
२ वही, २/६६ ।
३ जयन्तविजय, ६/७१ ।

सुरप्रसूनान्यपतन्ननषट्पदध्वनीनि दध्वान सुरेन्द्रदुन्दुभि ।
पर प्रसादं ककुभ· प्रपेदिरे गुणैं कुमारस्य सहोत्थितैरिव ॥[1]

जयन्तविजय महाकाव्य मे जयन्त के जन्म के समय भी इसी प्रकार के माङ्गलिक वातावरण की छटा दर्शनीय है—

दिश प्रसन्ना शरदीव नद्यो वातास्तदामोदभृतो जनाश्च ।
बभूवुरभ्रे सुरदुन्दुभीना पयोदनाद प्रतिमा निनादा ॥[2]

अर्थात् दिशाएँ निर्मल हो गयीं, शरद् ऋतु के समान नदियाँ स्वच्छ हो गयीं, शुद्ध वायु प्रवाहित होने लगी, पुत्रजन्म से जन समुदाय प्रसन्न हुआ तथा आकाश से देवताओ के नगाडे का शब्द मेघ के शब्द के समान हुआ ।

विक्रमाङ्कदेव चरित मे कवि विल्हण आह्वमल्ल की सेना की भीषणता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

राशीकृत विश्वमिवावलोक्य वेलावने यस्य चमूसमूहम् ।
अम्भोविभूतेरपरिक्षयेण क्षारत्वमब्धिर्बहुमन्यते स्म ॥[3]

अर्थात् सम्पूर्ण जगत एकत्रित हो गया है ऐसा दिखलायी पडने वाले जिस राजा के सेना समूह को अपने तट पर एकत्रित देखकर जल सम्पत्ति का जरा भी खर्च न होने से समुद्र, अपने जल के खारेपन की सराहना करने लगा । अर्थात् यदि जल नमकीन न होता तो उस राजा की सेना उसका सब जल पी जाती ।

जयन्तविजय महाकाव्य मे भी यही भाव दर्शनीय है—

उपस्थितोऽपि मशोषे पानाद्धारस्य सैन्यत ।
रक्षिका क्षारतैवेति तुष्टुस्ता तुष्टवेऽम्बुधि ॥[4]

अर्थात् खारे जल का शोषण करने वाली इस सेना के सन्तुष्टतापूर्वक उपस्थित होने पर भी क्षारता ही इसकी रक्षिका है । इस तरह से समुद्र ने अपनी उस क्षारता की ही स्तुति की ।

इसी प्रकार जयन्त की सेना के घोडो के खुरो मे उडायी गयी धूलि जाकर समुद्र मे गिरती है किन्तु कवि की दृष्टि मे मानो वे घोडे इस पृथ्वी पर सेना के न समाने के कारण समुद्र को भी स्थल बनाना चाहते है—

तुरङ्गमास्तस्य चतु समुद्री रज समाजै स्थलता नयन्ति ।
खुरोद्धतैर्दातुमिवावकाशमपारना सीरपरपराणाम् ॥[5]

---

1 विक्रमाङ्कदेव चरित, २/८६ ।
2 जयन्तविजय, ६/८० ।
3 विक्रमाङ्कदेवचरित, १/११० ।
4 जयन्तविजय ११/१४ ।
5 जयन्तविजय, १०/७ ।

अर्थात् मानो उसके घोडो के खुरो से उडाई गयी धूलि से सेनाओं की परम्परा को अवकाश देने के लिए चारो समुद्रो को स्थल बना रहे हैं।

जयन्तविजय के इस श्लोक पर विक्रमाङ्कदेव चरित के निम्नलिखित श्लोक की छाया दर्शनीय है—

> अब्धिषु स्थलपथी कृतेषु न पूर्यते जवविधौ कुतूहलम्।
> इत्यकुर्वत दिगन्तगोचर नूनमस्य तुरगा क्षमारज ॥[1]

अर्थात् राजा विक्रमाङ्कदेव के घोडो ने, समुद्रो पर भी यदि जमीन पर का मार्ग बन जाता तो हम लोगो का वेग से चलने का हौसला पूरा हो जाता। इस प्रकार विचार कर उन्होने निश्चयपूर्वक पृथ्वी की धूलि को दिगन्तर-व्यापी बना दिया।

'विक्रमाङ्कदेव चरित' मे वर्णित राजा विक्रमादित्य अत्यन्त पराक्रमी सम्राट है। इसीलिए उनके दिग्विजय के लिए प्रस्थान करने पर द्रविड देश की भूमि नायिका की भाँति काँपने लगती है। कवि विल्हण के शब्दो मे—

> त विभाव्य रभसादुपागत क्ष्माभुजङ्गमुपजातसाध्वसा।
> लोलवारिनिधिनीलकुण्डला द्राविडक्षितिपभूरकम्पत् ॥[2]

अर्थात् चचल नीले रग के पूर्व पश्चिम समुद्ररूपी नीले कुण्डल को धारण करने वाली द्रविड राजा की भूमिरूपी कामिनी वेग से आए हुए पृथ्वी के राजा या कामुक विक्रमादित्य को देखकर भय से या लज्जा मे काँपने लगी।

यहाँ पर नायक विक्रमादित्य पर एक कामुक व्यक्ति का आरोप किया गया है। अर्थात् जिस प्रकार नीलम के बने हुए कुण्डलो को धारण करने वाली कामिनी पूर्व परिचित कामुक को वेग से आया हुआ देखकर लज्जा से सात्विक भाव उत्पन्न होने के कारण रोमाञ्चित हो, काँपने लगती है, उसी प्रकार नीले पूर्व पश्चिम समुद्ररूपी नीले (नीलम के) कुण्डलो को धारण करने वाली द्रविड राजा की भूमि वेग से आये हुए पूर्व परिचित विक्रमाङ्कदेव को देखकर काँपने लगी।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे दिग्विजय हेतु निकले हुए जयन्त के आगमन पर भी यही भाव दर्शनीय है—

> महसा समुखे तस्मिन्रागिणि क्षितिपाङ्गजे।
> तस्तकाञ्चीदिवैशाथ (?) चकम्पेद्राविडक्षिति ॥[3]

---

१ विक्रमाङ्कदेवचरित, १४/६२।

२ वही, ५/२८।

३ जयन्तविजय, ११/५१।

अर्थात् उस राजा (जयन्त) के सहसा सन्मुख आने पर अनुराग के कारण, काञ्ची से परिभूषित द्रविड देश की पृथ्वी कंपित हो उठी। भाव यह है कि जिस प्रकार अपने प्रियतम के आगमन पर नायिका की कमर फड़कने लगती है उसी प्रकार वह द्रविड देश की पृथ्वी भी अपने स्वामी (जयन्त) के आने पर काँप रही है।

यहाँ पर दोनों कवियों के वर्णन तथा भाव में साम्य स्पष्ट है।

'विक्रमाङ्कदेव चरित' में कवि बिल्हण द्वारा वर्णित विक्रमादित्य एक आदर्श राजा हैं। इसीलिए उनके राज्य में मेघ समय में वृष्टि करते हैं—

पयोभिरस्मात्परिपूरयन्ति ये
पयोधयस्ते दधतेऽस्य वश्यताम्।
इतीव तत्सेवनवाञ्छया जलं
यथोपयोगं मुमुचुः पयोमुचः ॥[1]

अर्थात् जो समुद्र जल से हम मेघों को भर देते हैं वे समुद्र इसके वश में हैं, ऐसा विचार कर मानो मेघ इसकी सेवा करने की इच्छा से इसके राज्य में यथेच्छ वृष्टि करते थे। अर्थात् इसके राज्य में कभी भी अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं होती थी।

'जयन्तविजय' महाकाव्य में वर्णित जयन्त भी एक आदर्श राजा है। इसीलिए उनके राज्य में भी मेघ समय पर वर्षा करते हैं और जनता इति-भीति के भय से मुक्त दिखलायी पड़ती है—

तस्मिन्मही पालयति क्रमात्ता नयाचिते पञ्चमलोकपाले।
ववर्ष काले जलदः समस्तप्रशस्यसस्योद्गममूलबीजम् ॥[2]

अर्थात् उस राजा के क्रमशः पृथ्वी का पालन करने पर नीति से पाँचवें लोकपाल के समान समय पर जलद सब प्रकार के प्रशंसनीय धान्य को उत्पन्न करने के मूल बीज को अर्थात् जल को बरसाते थे।

'विक्रमाङ्कदेव चरित' में कवि बिल्हण चन्द्रलेखा के स्वयंवर में आये हुए राजाओं की शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं

तदीयवक्त्रेन्दुविलोकनेन सान्द्रोल्लसद्रागपयोनिधीनाम्।
तत्रागतानां पृथिवीपतीनामासन्विचित्राणि विचेष्टितानि ॥
उत्कृष्यमाणं निजहारदाम समस्तभूपालविभूषणेभ्यः।
वक्षःस्थलेनोन्नमितेन दूरं कश्चिन्नरेन्द्रः प्रकटीचकार ॥[3]

अर्थात् चन्द्रलेखा के मुख चन्द्र को देखकर वहाँ आये हुए, अत्यधिक बढ़े हुए

---

१ विक्रमाङ्कदेव चरित, १७/३।
२ जयन्तविजय, १६/७१।
३ विक्रमाङ्कदेव चरित, ६/७५-७६।

प्रेम सागर से युक्त, राजा लोग, विचित्र-विचित्र चेष्टाएँ दिखाने लगे। किसी राजा ने, अन्य सब राजाओ के आभूषणों से उत्कृष्ट अपने हार को अपना सीना आगे बढ़ाकर दिखाया। अर्थात् तुमको भी इसी तरह हृदय में धारण करूँगा, ऐसा संकेत किया।

राजाओ की इन्ही शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य के षोडश सर्ग मे रतिसुन्दरी के स्वयवर मे भी हुआ है। कवि अभयदेव के शब्दो मे—

एतदीय वदनेन्दुदर्शनादुत्तरङ्गगुरुराग सागरा ।
चेष्टितानि विदधुर्वसुधराधीश्वरा सदसि ते स्मरोद्धतम् ।।
प्राप्तरखमखिलेषु भूभुजां भूषणेषु निजहारमुज्ज्वलम् ।
उन्नतेन हृदयेन सर्वत काऽप्यदर्शयदखर्वगर्वत ।।[१]

अर्थात् इस (रतिसुन्दरी) के चन्द्र तुल्य दर्शन से तरङ्गित परिपूर्ण राग वाले सागर के समान वे राजागण सभा (स्वयवर) मे काम से उद्धत चेष्टाओ को करने लगे तथा कोई राजा राजाओ के सम्पूर्ण आभूषणो पर रेखाङ्कित अपने उज्ज्वल हार को अपना सीना आगे बढाकर बडे गर्व से दिखाने लगा।

इसी प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वर्णित ऋतु वर्णन यद्यपि पारम्परिक है किन्तु उस पर भी 'विक्रमाङ्कदेव चरित' महाकाव्य की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। विक्रमाङ्कदेव चरित मे कवि विल्हण ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए लिखते है—

प्रतापमारोप्य परा समुन्नति यश प्रदर्श्येव च दावभस्मभि ।
भजन्निदाघ कृतकृत्यतामिव स्वपौरुषाविष्करणान्न्यवर्तत ।।[२]

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु, अपने प्रताप को अर्थात् गर्मी को पराकाष्ठा तक पहुँचा कर दावानल से जले पेडो की सफेद राख मे मानो अपना सफेद यश दिखाकर अर्थात् फैलाकर कृतकृत्य होकर मानो अपने पुरुषार्थ को प्रकट करने से निवृत्त हो गया। अर्थात् अब ग्रीष्म की गर्मी कम होने लगी।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव भी इसी प्रकार कहते हैं—

गिरिदवानलदग्धवनोद्भव भ्रमति भस्मसित वितनीकृतम् ।
जगति बन्दिजनैरिव वायुभिर्यश इवोष्ण ऋतोरवनीपते ।।
न परमुग्रमय रतिसुन्दरी प्रियतम सहते निजशासनात् ।
इति भयादिव कम्पित मानसस्त्वरितमुग्र ऋतु प्रपलायत ।।[३]

---

१ जयन्तविजय, १६/३८-३९।
२ विक्रमाङ्कदेव चरित, १३/१।
३ जयन्तविजय, १८/१३,१५।

अर्थात् संसार में बन्दियों से राजा के दीप्त यश की भाँति वायु द्वारा उड़ती हुई निदाघ ऋतु की ऊष्णता दावानल से जलाये गये वन से उत्पन्न फैली हुई श्वेत भस्म के समान प्रतीत हुई तथा अपने शासन के द्वारा यह रतिसुन्दरी का प्रियतम अत्यन्त उग्रता को नहीं सहन कर सकता इसीलिए भय से काँपता हुआ यह उग्र ऋतु शीघ्र भाग गया।

यहाँ पर प्रस्तुत दोनों स्थलो मे भाव साम्य है किन्तु कवि अभयदेव द्वारा प्रस्तुत वर्णन मे विशेष चमत्कार है क्योकि विल्हण की दृष्टि में ग्रीष्म ऋतु स्वाभाविक रूप से अपना उत्कर्ष दिखला कर शान्त हो जाती है जब कि कवि अभयदेव की दृष्टि मे ग्रीष्म ऋतु अपना उत्कर्ष तो प्रकट करती है किन्तु उसे यह भय है कि रतिसुन्दरी का प्रियतम जयन्त अपने राज्य मे अधिक समय तक मेरी उग्रता सहन नहीं करेगा अत भय के कारण भाग जाती है।

ग्रीष्म ऋतु में दिन बढने लगते है। यह एक लौकिक तथ्य है किन्तु कवि विल्हण दिनो की दीर्घता के हेतु की सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत करते हैं—

> खे समस्त क्षितिमध्यग रस निपीय पीनत्वमतीव बिभ्रत ।
> भरेण वाजिष्विव मन्दगामिषु क्रमेण दैर्घ्यं दिवसा प्रपेदिरे ॥[1]

अर्थात् समस्त पृथ्वी के जल को पीकर अत्यन्त स्थूल हुए सूर्य के बोझ से मानो घोडो के धीरे-धीरे चलने से दिन धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

कवि अभयदेव ने भी दिन के वृद्धि की यही कल्पना की है—

> बहुतृपेव रसारसपानतस्तरणिरेष महाभरदुर्वह ।
> अभवदस्य रथाश्वगति शनैर्ध्रुवमतो दिनवृद्धिरजायत ॥[2]

अर्थात् अत्यन्त तृषाकुल की भाँति सारी पृथ्वी के रस के पान से यह सूर्य अत्यन्त भार से दुर्वह हो गया अतएव इसके रथ के अश्वो की गति धीमी हो गयी इसीलिए निश्चयरूप से दिन बढने लगे।

यहाँ पर दोनो ही स्थलो पर एक ही भाव को व्यक्त किया गया है तथा दोनो ही स्थलों पर रमणीयता एव कलात्मकता है।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि विल्हण ने उसका मानवीकरण किया है—

> तृणानि भूभृत्कटकेषु निक्षिपन् न कै स्फुरद्धीरमृदङ्गनिस्वन ।
> तडित्प्रदीपैश्चलदङ्कुलीलया निदाघमन्विष्यति वारिदागम ॥[3]

१ विक्रमांकदेव चरित, १३/५।
२ जयन्तविजय, १८/६।
३ विक्रमांकदेव चरित, १३/३६।

अर्थात् प्रकट होने वाले गम्भीर पखावज की ध्वनि के समान ध्वनि वाला और अपने आने की मोहर छाप करने वाला यह वर्षा ऋतु पर्वतो की घाटी मे या राजा की सेनाओ मे घासो को उत्पन्न करता हुआ किन-किन बिजलीरूपी दीपको से ग्रीष्म ऋतु की खोज नही करता है । अर्थात् ग्रीष्म ऋतु कही कोने मे छिपकर तो नही बैठी है, इसकी खोज करता है ।

कवि विल्हण के यही भाव 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी दर्शनीय हैं—

जलदकालनृपस्य घनो भट परिलसत्तरवारिसमुद्भट ।
'तडितमुग्रऋतो स्म दिदृक्षया क्षिपति दृष्टिमिवातिरुषां नृणाम् ॥[1]

अर्थात् अत्यन्त सुशोभित जल से भरपूर वर्षा ऋतु रूपी नृप के वीर (बादल) उग्र ऋतु को देखने की इच्छा से अत्यन्त क्रोधी मनुष्य की भाँति अपने नेत्र तडित को फेक रहे है ।

यहाँ पर दोनो ही स्थलो मे वर्षा ऋतु का मानवीकरण किया गया है तथा भाव साम्य दर्शनीय है ।

वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद ऋतु का आगमन होता है । यह शरद् ऋतु सबके लिए आनन्ददायक होती है । कवि विल्हण इस ऋतु मे सूर्य-चन्द्र के गुणो का वर्णन करते हुए लिखते है

आतप क्लममदत्त वासरे चन्द्रिका जनमनन्दयन्निशि ।
चक्रतुर्निजगुणप्रकाशन स्पर्धयेव तपनक्षपाकरौ ॥[2]

अर्थात दिन मे सूर्य की किरणे सब लोगो को कष्ट देने लगी । तथा रात्रि मे चन्द्रमा की किरणे सब लोगो को आनन्दित करने लगी । इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा मानो स्पर्धापूर्वक अपने-अपने गुणो को प्रकट करने लगे ।

जयन्तविजय महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी सूर्य और चन्द्र का इसी प्रकार वर्णन किया है—

अहनि तापमधत्त पर रविर्घनघना च शशी निशि चन्द्रिकाम् ।
शरद इष्टतरावधिकारिणाविव निदेशवशात्कृतस्तथा ॥[3]

अर्थात् दिन मे सूर्य परम ताप को प्राप्त हुआ और रात मे चन्द्रमा ने अत्यन्त घनी चन्द्रिका को धारण किया इस प्रकार शरद के आदेश से अत्यन्त प्रिय होते हुए अधिकारी की भाँति इन दोनो ने आज्ञा का पालन किया ।

यहाँ पर भी दोनो कवियों के वर्णन मे भाव साम्य है किन्तु कवि अभयदेव

१ जयन्तविजय, १८/२० ।
२ विक्रमाङ्कदेवचरित, १४/३३ ।
३ जयन्तविजय, १८/३६ ।

के वर्णन में विशेष चमत्कार है क्योंकि उनकी दृष्टि मे मानों सूर्य और चन्द्र शरद ऋतु के आदेश का पालन कर रहे हैं। जब कि विल्हण की दृष्टि में सूर्य और चन्द्र आपस मे स्पर्धा की भावना से अपने-अपने उत्कर्ष को प्रकट कर रहे हैं। इसके साथ ही प्रस्तुत स्थल पर उत्प्रेक्षा अलंकार की योजना भी दर्शनीय है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव द्वारा वर्णित वसन्त ऋतु के अन्तर्गत पुष्पावचय वर्णन भी यद्यपि पारम्परिक है किन्तु उस पर भी विक्रमाङ्कदेव चरित महाकाव्य की छाया स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है क्योंकि पुष्पावचय के प्रसङ्ग मे कवि विल्हण कहते है।

विधाय काचिन्नयने सपत्न्या क्रीडाच्छलात्पुष्पपरागपूर्णे।
पात्रत्वमाप प्रियचुम्बनस्य किमस्ति वैदग्ध्यवतामसाध्यम ॥[1]

अर्थात् किसी स्त्री ने खेल के बहाने से अपनी सौत की आँखें फूलो की धूलि मे भरकर अपने को विक्रमाङ्कदेव द्वारा चुम्बित होने का स्थान बना लिया। अर्थात् सौत की आँखे बन्द देखकर विक्रमाङ्कदेव ने उसका चुम्बन किया। चतुर जनो के लिए क्या असाध्य है, अर्थात् कुछ नही।

विक्रमाङ्कदेव चरित के इस श्लोक की छाया 'जयन्तविजय' महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोक पर दर्शनीय है—

कुवलयदलनेत्रा पक्वनारङ्गनव्य-
त्वगुदितरसधाराक्षेपतो व्याकुलाक्षीम्।
विदधदथ जयन्तोऽन्या चुचुम्बे तदग्रे
गुरुरिह चतुरन्ये कामदेवोऽस्यनूनम् ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् उस (नायिका) के सामने पकी हुई नारंगी के नवीन वल्कल से निकले हुए रस की धारा के गिराने से उसे व्याकुल नेत्र वाली करते हुए जयन्त ने कमलदल के समान नेत्रो वाली दूसरी का चुम्बन किया। निश्चय ही इस क्रीडा की चातुरी मे कामदेव इसका गुरु है।

यहाँ पर दोनो कवियो ने एक ही भाव को व्यक्त किया है किन्तु कवि अभयदेव के वर्णन मे विशेष उत्कर्ष है क्योंकि कवि ने नारी-सुलभ लज्जा की रक्षा की है। कवि के काव्य मे नायक जयन्त स्वय नारगी के नवीन वल्कल से निकली हुई रस की धारा से एक नायिका के नेत्रो को व्याकुल करता हुआ दूसरी नायिका का चुम्बन करता है किन्तु कवि विल्हण के काव्य मे नायिका स्वय अपनी सौत के नेत्रो मे पुष्प पराग झोककर अपने को नायक विक्रमाङ्कदेव के चुम्बन का पात्र बनाती

१ विक्रमाङ्कदेव चरित, १०/४६।
२ जयन्तविजय, ८/२१।

है। अत: स्पष्ट है कि कवि बिल्हण ने अपने महाकाव्य में नारी की जिस चपलता का वर्णन किया है 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने उसकी रक्षा की है।

अपि च—

एवमादिविनिवेद्य पार्थिवस्तत्र सान्त्वनशतानि सूचयन्।
त शशाक न निषेद्धुमक्रमाद्भूक्रमेति भवितव्यता कुत ॥[1]

अर्थात् विक्रमाङ्कदेव के इस प्रकार कहकर सैकडो सान्त्वना के प्रस्ताव सिंह-देव के पास भेजने पर भी वह, उसको अन्याय पथ से हटाने मे समर्थ न हो सका। होनहार कैसे टल सकती है।

विक्रमाङ्कदेव चरित के इन्ही भावो को 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

तथाप्यवज्ञाय तदीयमन्त्रित प्रयाणमाधत्त मदोद्धतस्तत ।
अरिष्टसूचितमृत्युरप्यसौ विलघ्यचते कैर्भवितव्यताथवा ॥[2]

अर्थात् इसके पश्चात् मदोद्धत राजा ने मन्त्रियो की मन्त्रणा की अवहेलना कर प्रस्थान किया यद्यपि उसे अरिष्टो की सूचना से मृत्यु की सभावना हो रही थी। अथवा भवितव्यता को किसके द्वारा मेटा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य की रचना के पूर्व 'विक्रमाङ्कदेव चरित' महाकाव्य का भी अवलोकन किया था क्योकि कल्पना वैचित्र्य और काव्यात्मकता की दृष्टि से दोनो ही महाकाव्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। इसके साथ ही दोनो ही महाकाव्यो मे महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो का यथा-सम्भव निर्वाह हुआ है। दोनो ही महाकाव्य वीर रस प्रधान है तथा इनके नायक धीरोदात्त है।

महाकवि अभयदेव सूरि जैन कवि है। अत उनके 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर जैन कवि तथा उनके काव्यो का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इसीलिए अब सस्कृत कवियो के अतिरिक्त जिन जैन सस्कृत कवियो के काव्य का प्रभाव उनके 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर पडा। उनका सक्षिप्त अध्ययन भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

वीरनन्दि

सस्कृत जैन काव्यो मे आचार्य वीरनन्दि विरचित 'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य

---

१ विक्रमाङ्कदेवचरित, १४/२२।
२ जयन्तविजय, ६/५२।

का प्रमुख स्थान है । इसमे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित मनोरम शैली में प्रस्तुत किया गया है । आचार्य वीरनन्दि का समय ई० सन् की दसवीं शती है ।

आचार्य वीरनन्दि सन्तान न होने के दुःख से दुःखी महारानी श्रीकान्ता का वर्णन करते हुए अपने 'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य मे लिखते हैं—

या स्त्यानधर्मिणी पुरन्ध्रिजने प्रसिद्ध स्त्रीशब्दमुदवहति कारणनिर्व्यपेक्षम् ।
सा हास्यभावमुपयाति जनेषु यद्वदन्ध सुलोचन इति व्यपदेशकाम. ॥[1]

अर्थात् श्रीकान्ता सोचने लगी—जो स्त्री गर्भ धारण के बिना ही स्त्री शब्द को धारण करती है, वह उस अन्धे के समान है, जो अपने को सुलोचना कहलाना चाहती है ।

वह आगे कहने लगती है—

तेनोज्झितां निजकुलैकवि भूषणेन सौभाग्यसौख्यविभवस्थिरकारणेन ।
मा शक्नुवन्ति परितर्पयितु विपुण्या न ज्ञातयो न सुहृदोन प्रतिप्रसादा. ॥[2]

अर्थात् उस अपने कुल के एक मात्र अलकार तथा सौभाग्य, सुखवैभव के स्थिर कारण पुत्र से रहित मुझ पुण्यहीना को बन्धुबान्धव, सुहृद्गण या पति की प्रसन्नता अथवा समादर आदि भी सुखी नही बना सकते ।

पुत्र के अभाव मे श्रीकान्ता ही दुःखी नही है अपितु उसका पति अजितजय भी दुःखी है क्योंकि वह भी सोचने लगता है—

कुसुमाद्यथा विटपिनो वपुषो नवयौवनाच्छ्रुतवत प्रशमात् ।
पुरुषान्वयस्य जगतीह तथा न सुपुत्रत परमलकरणम् ॥[3]

अर्थात् जिस प्रकार पुष्प ही वृक्ष की परम शोभा है, युवावस्था ही शरीर का परम शृङ्गार है, शान्ति ही शास्त्र के ज्ञाता पण्डित का आभरण है उसी प्रकार सुपुत्र ही मनुष्य के वश का परम अलङ्कार है ।

आचार्य वीरनन्दि विरचित 'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य के यही भाव कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे इस प्रकार व्यक्त हुए हैं—

नभस्थलीव द्युतिमद्विना कृता निशेव शीतद्युतिमण्डलोज्झिता ।
महौषधीवोन्मदवीर्यवर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशास्यते ॥
परा जनन्या जनधन्यनारत महाकुलीनस्तनयो नयाञ्चित. ।
महर्घतामेधयते गुणश्रियो न किं यशोराशिरदम्भ सौरभ ॥[4]

---

१. चन्द्रप्रभ चरित, ३/३२ ।
२ वही, ३/३५ ।
३ वही, ५/४८ ।
४ जयन्तविजय, २/२, ४ ।

किमन्यदाप्नोतिगौरव वधू प्रियस्यपुत्रै खलुवृत्तशालिभि ।
महार्घ्यता रत्नखनी न किं भजेन्मणि प्रकाण्डैरिति सा व्यचिन्तयत ।।
सुखैरशेषै सुखिनीषु मुख्यता ममेश शच्या अपि चित्तहारिणी ।
प्रसादतस्ते किमपूर्णमस्ति मे सुतं विना त्वेतदरुतुद हृद ।।[1]

अर्थात् पुत्र न होने के दु ख से दु खी राजा विक्रमसिंह की महारानी प्रीतिमती सोचने लगी—सूर्य के बिना आकाश, चन्द्रमा के बिना रात्रि विशिष्ट शक्ति के बिना औषधि के समान सन्तानहीन स्त्री की प्रशसा नही होती । नीतिमान, महाकुलीन, अदम्भी, यशोराशि पुत्र गुण युक्त माता की महार्घता को क्या नही बढता ? (अर्थात् माता के मूल्य को अवश्य ही बढाता है) स्त्रियाँ चरित्रवान पुत्र के द्वारा ही पति के अति गौरव को प्राप्त करती है क्योकि रत्न की खान प्रकाण्ड मणियो से बहुमूल्यता को क्या नही प्राप्त करती अर्थात् अवश्य प्राप्त करती है । वह राजा से पुन कहती है—हे ईश ! सम्पूर्ण सुखो से सुखी स्त्रियो मे इन्द्राणी से भी बढकर मेरी प्रमुखता आपकी कृपा से है किन्तु एक पुत्र के बिना हृदय को अकुश की भाँति दु खी करने वाला सब सुख अपूर्ण ही है ।

महारानी के इस कथन को सुनकर राजा विक्रमसिंह भी अत्यन्त दु खी होते है—

इति प्रियाया वचनन भूपतेर्मनोन्तर दाव इवानिलाद्वने ।
अपुत्रता दु खमवर्धताधिक चकार चिन्ता म ततस्तदिच्छया ।।
बिना विनीतन सुतेन गेहिना कुल गृह शून्यमनूनदु खदम् ।
क्रमेण नश्यन्ति च सर्वसम्पद स्थिर निरालम्बमहो न किंचन ।।
अनन्यसाधारणवैभवोद्भवै सुखै सदा दुर्ललितोऽपिमानव ।
अपुत्रजन्मप्रभवाभिबाधितो न कोटराग्निर्विटपीव नन्दनि ।।
वर दरिद्रोऽपि सनन्दनो जनस्तदीक्षणानन्दतरङ्गि लोचन ।
न शक्रतुल्योऽपि समृद्धिभि पर परामुखत्वेनविधरनात्मज ।।
जनेऽप्यपुत्रस्य गतिर्न विद्यते क्षय प्रयाति क्रमशश्च कीर्तनम् ।
इति प्रवाद खलु दु सह सनाम पुत्रिणा भूपविलोप्य सपदाम् ।।[2]

अर्थात् वन मे वायु से दावाग्नि के समान प्रिया के वचन से राजा के मन मे अपुत्रता का दु ख अत्यधिक बढ गया और वह उस (पुत्र) की इच्छा से अत्यन्त चिंतित हुआ । विनम्र पुत्र के बिना गृहस्थो का कुल और गृह शून्य तथा अत्यन्त दु खद है क्योकि क्रमश सभी सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती है और कोई स्थिर निरालम्ब नही

---

१. जयन्तविजय, २/७, १७ ।
२ वही, २/२०-२४ ।

रहता । अपुत्रता के प्रभाव से पीडित मानव विशिष्ट वैभव से ,उत्पन्न सुखों से कोटर मे स्थित अग्निवाले वृक्ष के समान कभी भी आनन्दित नहीं होता । पुत्र वाला दरिद्र भी मानव सन्तान के देखने के आनन्द से सुन्दर नेत्र वाला श्रेष्ठ है परन्तु भाग्य के विमुख होने से सन्तानहीन प्राणी सब प्रकार की सम्पत्तियो से युक्त भी तिनके के समान भी नहीं है अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट है । लोगो मे भी अपुत्रवाले की गति नही है क्योकि क्रमश उसका नाम भी क्षीण हो जाता है, इस प्रकार हे भूप ! अपुत्री सज्जनो की भी सम्पत्तियो को देखकर फैलने वाला प्रवाद असहनीय है । (अर्थात् उनकी सम्पत्ति निरवशियों की सम्पत्ति मानी जाती है ।)

इस प्रकार दोनो कवियो के काव्य के भावों मे पर्याप्त साम्य है क्योकि दोनों काव्यो मे नायक की उत्पत्ति के लिए उनके माता-पिता दु खी हैं तथा वर्णन शैली भी दोनो कवियो की एक ही समान है ।

'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य मे चन्द्रप्रभ के जन्म के समय दिशाओ का प्रसन्न-स्वच्छ होना एव शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु का प्रवाहित होना वर्णित है—

ककुभ प्रसेदुरजनिष्ट निखिलममल नभस्तलम् ।
तस्य जननसमये पवन सुरभिर्ववौ सुरभयन्दिगङ्गना ।।[1]

अर्थात् उस बालक चन्द्रप्रभ के जन्म के समय दिशाएँ और समस्त आकाश निर्मल हो गया । दिशारूपी अगनाओ को सुवासित करती हुई हवा चलने लगी ।

कवि वीरनन्दि के इसी भाव को लेकर कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे जयन्त के जन्म के समय का विश्लेषण किया है—

दिश प्रसन्ना शरदीव नद्यो वातास्तदामोदभृतो जनाश्च ।
बभूवरभ्रे सुरदुन्दुभीना पयोदनादप्रतिमा निनादा ।।[2]

अर्थात् दिशाएँ निर्मल हो गयी, शरद् ऋतु के समान नदियाँ भी निर्मल हो गयी, शुद्ध वायु प्रवाहित होने लगी तथा पुत्रजन्म के अवसर पर लोग प्रसन्न हो गये और आकाश से देवताओ के नगाडे का शब्द मेघ के सदृश होने लगा ।

यद्यपि कवि अभयदेव द्वारा प्रस्तुत यह वर्णन पारम्परिक है क्योकि कवि-कुल गुरु कालिदास ने भी अपने रघुवश (३/१४) महाकाव्य मे रघु के जन्म के समय इसी प्रकार के मागलिक वातावरण का दृश्य प्रस्तुत किया है किन्तु आचार्य वीरनन्दि भी कवि अभयदेव के पूर्ववर्ती होने के साथ ही जैन सम्प्रदाय के कवि है । अत कवि अभयदेव की दृष्टि कालिदास के अतिरिक्त अपने सम्प्रदाय के कवि वीरनन्दि द्वारा रचित 'चन्द्रप्रभचरित' 'महाकाव्य पर अवश्य पडी होगी अत उन्होने जयन्त के जन्म के अवसर पर उन्ही भावों को उसी रूप मे ग्रहण कर लिया होगा ।

---

१ चन्द्रप्रभचरित, १७/२ । २ जयन्तविजय, ६/८० ।

इसी प्रकार कवि वीरनन्दि युद्धस्थल का सजीव चित्रण करते हुए लिखते हैं—

जर्श मासोपदशासृगासवोन्मत्तचेतसाम् ।
डाकिनीना नटन्तीना कबन्धैर्नाट्यसूरिभि ॥[1]

अर्थात् रणभूमि मे रक्त की नदी प्रवाहित हो रही है। उसमे जड से कटी हुई हाथियो की सूँडे मगर सी तैर रही है। कच्चे मांस के साथ रक्तरूप आसव का यथेच्छ पान कर उन्मत्त हुई डाकिनियाँ नृत्य कर रही है। रणभूमि मे पडे हुए कबन्ध वहाँ नाट्याचार के समान जान पडते हैं।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी इसी भाव को लेकर कुछ इसी प्रकार वर्णन किया है।

यथा—

रथाङ्गधीरध्वनिनादमुद्यत्प्रहार कूजत्करि कण्ठनादम् ।
नृत्यत्कबन्ध समराङ्गण तत्कृतान्तसगीततुला प्रपेदे ॥[2]

अर्थात् वह युद्धस्थल रथ के पहिये की गम्भीर ध्वनि के शब्द वाला और प्रवृत्त प्रवाह से कूजन करने वाले हाथियो के कण्ठनाद से युक्त और कबन्ध को नर्तित कराने वाला यमराज की सगीतशाला के समान प्रतीत हुआ।

यहाँ पर भी दोनो कवियो के भावो मे साम्य है किन्तु कवि अभयदेव ने युद्धस्थल का यमराज की सगीतशाला के सदृश बताकर अपनी मौलिकता की रक्षा की है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने अपने पूर्ववर्ती कवि वीरनन्दि द्वारा रचित 'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य का भी अवलोकन किया था। अत उनके 'जयन्त-विजय' महाकाव्य पर 'चन्द्रप्रभचरित' महाकाव्य की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

महासेन

महाकवि महासेन विरचित 'प्रद्युम्नचरित' महाकाव्य का भी जैन सस्कृत महाकाव्यो मे प्रमुख स्थान है। इनका समय दसवी शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया गया है। महाकाव्य के वस्तु व्यापार एव वर्णन शैली के आधार पर ज्ञात होता है कि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य की रचना के पूर्व इस महाकाव्य का भी अवलोकन किया था।

---

१ चन्द्रप्रभचरित, १५/५३।
२ जयन्तविजय, १४/७०।

यथा—

तीर्थैरनेकैर्जिनपुङ्गवानां पुण्योऽस्ति तस्मिन् विषय सुराष्ट्र ।
स्वर्गैकदेश. पतित पृथिव्या यद्वन्निरालम्बतया विभाति ॥
सहस्रसंख्यै: सितरक्तनीलै सरांसि यस्मिन्कमलैर्विरेजु ।
कुतूहलेनेव मदीय लक्ष्मीं द्रष्टु समेतै सुरराजनेत्रै ॥
फलावनम्रा सरसा कुलीना. प्रसूनगन्धै सुरभीकृताशा ।
वनश्रियो यत्र मुदे जनानां पौराङ्गनाश्चाप्रमिता विभान्ति ॥[1]

अर्थात् जहाँ की भूमि श्रेष्ठ जिनेन्द्रो के अनेक तीर्थों के द्वारा पवित्र हो गयी थी ऐसा सुराष्ट्र नाम का देश भारतवर्ष मे है । यह देश पृथ्वी मे स्वर्ग से च्युत एक खण्ड के समान निरालम्ब रूप से सुशोभित होता है तथा जिस देश के सरोवरो मे श्वेत, रक्त और नील वर्ण के सहस्रों कमल विकसित हो सुशोभित हो रहे थे। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो इन्द्र के सहस्र नेत्र कुतूहल के कारण इस देश की लक्ष्मी को देखने के लिए प्रस्तुत हो और जहाँ के वनो मे वृक्ष फलो से नम्रीभूत रहते हैं और पक्षी उन पर चहचहाते रहते हैं । सुगन्धित पुष्पो की गन्ध से दिशाएँ सुरभित रहती है । वनश्री पुरुषो को आनन्दित करती रहती है तथा अगणित पौराग-नाएँ जहाँ सुशोभित होती रहती है ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी मगध देश की समृद्धता का वर्णन इसी प्रकार किया है—

मध्येऽखिलद्वीपसमुद्रसौध चञ्चत्सुवर्णाद्रिशिखावतस ।
दीपप्रदीपप्रतिमोऽस्ति जम्बूद्वीप सदालोकविलासलक्ष्मी ॥
तस्यावतसे भरताभिधाने क्षेत्रेऽस्ति देशो मगधाभिधान ।
कल्याणवृन्दै रुचिराङ्गहारैरिवानिश नृत्यति यत्र लक्ष्मी ॥
यत्रत्यकान्तानयनोत्पलश्री निरस्तशोभान्यसितोत्पलानि ।
इतीव तापात्सरसा जलेषु लुलन्तिमन्दानिलशीतलेषु ॥
सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डै ।
तै पद्मखण्डानि च राजहसै स्वै राजहसा सुगतिप्रचारै ॥
हस्तैरिवोच्चैस्तरव पलाशैश्छाया दधाना फलसपदा च ।
पथ्यङ्गिना पथ्यदनाय यत्र स्वबन्धुबुद्ध्येव भवन्ति भूय ॥[2]

अर्थात् सज्जनों के आलोक के विलास लक्ष्मी वाला, चमकने वाले सुमेरु पर्वत की शिखा के समान, प्रदीप्त दीप की शिखा के समान, सारे द्वीपो के समुद्र मे

---

१ प्रद्युम्न चरित, १/७, ८ तथा १० ।
२. जयन्तविजय, १/२५-२७, ३०-३१ ।

सुधा के समान जम्बू द्वीप मध्य मे स्थित है। उस जम्बू द्वीप के अवतस (क्रोड) मे भारतवर्ष के नाम वाले क्षेत्र मे मगध नाम का देश है जहाँ पर सुन्दर अगहारों द्वारा कल्याण परम्पराओ से रात-दिन लक्ष्मी नृत्य किया करती है। जहाँ की स्त्रियाँ नेत्र कमलो की सुन्दरता मे नीलकमलो को भी तिरस्कृत करती हुई मन्द-मन्द वायु से शीतल तालावो के जलो मे ताप के कारण स्नान करती हैं। जहाँ पर पृथ्वी सरोवरो से, सरोवर विकसित पद्मखण्डों से, वे पद्मखण्ड राजहसो से और वे राजहस अपनी सुगति के प्रचार से सुशोभित होते है तथा जहाँ पर अनेक तरुवर बडे-बडे पत्तो रूपी हाथो मे फल की सम्पत्ति को दान करते हुए शरीरधारियो को खाने के लिए प्रत्येक मार्ग मे अपने कुटुम्बी की बुद्धि मे स्थित है।

यहाँ पर दोनो ही स्थलो मे भाव साम्य होने के साथ ही वर्णन शैली मे समानता है। इसी प्रकार युद्धस्थल का वर्णन करते हुए महाकवि महासेन लिखते है—

शैलेन्द्राभै पातितै कुञ्जरौघैर्दु सचारै स्यन्दनैश्चापि भग्नै ।
भल्लूकाना फेत्कृतेरन्वभूतैर्वेतालैस्तद्भीममासीन्नटद्भिः ।।[1]

अर्थात् पर्वत के समान विशालकाय हाथियो के गिरने से, टूटे हुए रथो के कठिनाईपूर्वक चलने से, भालुओ के फेकरने से एव भीमकाय नाचते हुए वेतालो से वह रणस्थली भयानक प्रतीत हो रही थी।

जयन्तविजय महाकाव्य मे कवि अभयदेव द्वारा भी कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त हुए है—

मृतककोटिकरालकलेवर प्रचुर दु सहगन्धभरावहे ।
अभिमुखागतगन्धवहैर्मुहुर्यदतिदूरविवर्त्यपि सूच्यते ।।
मिलदसख्यशिवाकृतफेत्कृतैर्यदसुकम्पकृदुद्धितमूर्द्धजम् ।
अधिकघूकघनार्तिदघूत्कृतै स्खलितकातरजन्तुगतागति ।।[2]

अर्थात् करोडो मृतको की दुस्सह गन्ध भरी रहने से दूर से ही श्मशान भूमि की सूचना मिल जाती थी। असख्य शृगाल, भूत-पिशाच, डाकिनी आदि मास, चर्बी, रक्त आदि का भक्षण कर आनन्दानुभूति का अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य की रचना के पूव महाकवि महासेन विरचित 'प्रद्युम्नचरित' महाकाव्य का अवलोकन अवश्य किया था।

---

१ प्रद्युम्नचरित, १०/१६ ।
२ जयन्तविजय, ४/६-१० ।

असग

महाकवि असग 'वर्द्धमानचरित' महाकाव्य के रचयिता हैं। इनका समय ई० सन् की दसवी सदी है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर प्रस्तुत महाकाव्य का प्रभाव भी स्पष्ट है।

यथा—

जघामृदुत्वेन हृता नितान्त विसारता सत्कदली प्रयाता।
पयोधराभ्या विजितं च यस्या मालूरमास्ते कठिन वनान्ते॥
यद्वक्त्रसस्थानमनाप्य शोभा शशी समग्रोऽपि कलङ्कितोऽभूत्।
प्रभिन्नमातङ्गगतेस्तु तस्या केनोपमान समुपैति कान्ति॥[1]

अर्थात् श्रेष्ठ कदली वृक्ष उसकी जंघाओ की मृदुता के समक्ष लज्जित होकर ही निस्सारता को प्राप्त हो गया है। अत्यन्त कठोर बेल उसके पयोधरो से जीते जाने के कारण हो वन मे निवास करने लगा है। पूर्णचन्द्र इसके मुख की शोभा को न पाने से कलङ्कित हो रहा है। ऐसा कौन पदार्थ है, जो मदोन्मत्त गज की गति को तिरस्कृत करने वाली इस रमणी की कान्ति से अपमान को प्राप्त न हुआ हो।

अपि च—

अपास्तपद्मा कमलेव कान्तिर्गृहीतमूर्ति स्वयमागतेव।
रति स्मरस्येव बभूव देवी मनोहराङ्गी कनकादिमाला॥[2]

अर्थात् यह सुन्दर नीलकमल उसके नेत्र कमलो के आकार को न पाकर लज्जित होकर मानरहित हो गया है अतएव पश्चात्तापजन्य सन्ताप को दूर करने की इच्छा से ही अगाध सरोवर मे रहने लगा है।

महाकवि असग द्वारा वर्णित यही भाव 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे भी दर्शनीय है--

हारिणी क्रमगतिं हरिणाक्ष्या शिक्षितु सुचिरमभ्यसनेऽपि।
केलिहसललना न शशाक स्वत्पधी खलु जलाशय योगात्॥
रामणीयकमनकुशमस्या जङ्घयोरनघयोरवलोक्य।
नूनमुद्गतपराभवदु खा सस्रुरेणललना वनवासम्॥[3]

अर्थात् इस मृगनैनी के मनोहारी पैरो की गति को सीखने के लिए चिरकाल से अभ्यास करने पर कम बुद्धि वाली हस ललना जलाशयै योग के कारण समर्थ नही हो सकी तथा इसकी सुन्दर रोमरहित निरकुश जङ्घाओ की रमणीयता को देखकर

---

१. वर्धमानचरित, ५/१८-२०।
२ वही, ५/१७।
३. जयन्तविजय, १३/१८-१९।

ऐण ललना (मृगी) ने पराभव के दुःख के उत्पन्न होने के कारण वनवास का आश्रय लिया।

यहाँ पर दोनो कवियो के वर्णन मे भाव साम्य स्पष्ट ही है क्योंकि कवि असग की दृष्टि मे यदि श्रेष्ठ कदली वृक्ष नायिका की जङ्घाओ की मृदुता के समक्ष लज्जित होकर निस्सारता को प्राप्त होता है। कठोर बेल नायिका के पयोधरो से जीते जाने के कारण वन मे निवास करने लगता है तथा पूर्ण चन्द्र उसके मुख की शोभा न पाने के कारण कलङ्कित हो जाता है तो कवि अभयदेव की भी दृष्टि मे हस ललना जलाशय के याग के कारण नायिका की गति से तिरस्कृत हो जाती है और ऐण ललना (मृगी) उसकी रोम रहित निरकुश जङ्घाओ की रमणीयता को देखकर पराभव के दुःख के कारण दुःखी होकर वनवास का आश्रय ले लेती है।

वादिराज

संस्कृत जैन कवियो मे वादिराज का भी प्रमुख स्थान है। इनका समय ईस्वी सन् की ११वी सदी है। 'पार्श्वनाथ चरित' इनका प्रमुख महाकाव्य है। 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर इस काव्य की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। यथा—

> वनितानयनाभिरामलीलागुणचौर्यादिव दोषतो जनान्त ।
> अभिशङ्क्य न शिश्रिये कुरङ्गैः प्रविमुच्यापि वन दवाग्निभीत्या ॥[१]

अर्थात् दावाग्नि के भय से भागने वाले हिरणो के चित्रण मे कवि कल्पना की ऊँची उडान भरता हुआ कहता है कि इन हिरणो ने नगर की रमणियो के नेत्र-सौन्दर्य को चुरा लिया है, अतएव य पकडे जाने के भय से नगरो मे नही जाते। यही वन मे इधर-उधर भागते रहते है।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने भी इसी प्रकार वर्णन किया है—

> रामणीयकमनकुशमस्या जङ्घयोरनघयोरवलोक्य ।
> नूनमुद्गतपराभवदुःखा सस्रुरैणललना वनवासम् ॥[२]

अर्थात् इस (नायिका) की सुन्दर रोमरहित निरकुश जङ्घाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना (मृगी) ने पराभव के दुःख के उत्पन्न होने के कारण वनवास का आश्रय लिया।

यहाँ पर दोनो कवियो के वर्णन मे पर्याप्त भाव साम्य है क्योंकि कवि वादिराज की कल्पना मे हिरणो ने नगर की रमणियो के नेत्रो का सौन्दर्य चुरा लिया

---

१ पार्श्वनाथ चरित, ५/७० ।
२ जयन्तविजय, १३/१६ ।

है अतः उन्हें भय है कि हमें पकड़ न लिया जाय । इस लिए वे वन में इधर-उधर भागते रहते हैं । जबकि कवि अभयदेव की कल्पना में ऐण ललना (मृगी) स्वयं ही नायिका की रोमरहित सुन्दर जङ्घाओ से परास्त होने के दु.ख से दु.खी होकर वन में निवास करने लगी है । अत. दोनो कवियों के वर्णन मे भाव साम्य स्पष्ट ही है ।

हरिश्चन्द्र

'धर्मशर्माभ्युदय' महाकवि हरिश्चन्द्र की रचना है । इनका समय ई० सन् की १०वी शती है । 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर इस महाकाव्य का प्रभाव भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है । यथा—

> नूनं प्रियविरहार्तं चक्रवाक्या कारुण्यान्निशि रुदितं घन नलिन्या ।
> यत्प्रातर्जललवलाञ्छितारुणानि प्रेक्ष्यन्ते कमलविलोचनानि तस्या ॥[1]

अर्थात् पति के विरह से दु खी चकवी पर दया आने से कमलिनी मानो रात भर खूब रोती रही है, इसीलिए उसके कमलरूपी नेत्र प्रात.काल के समय जल-कणो से चिह्नित एव लाल-लाल दिखाई दे रहे है ।

यहाँ पर कवि ने प्रकृति पर मानवीय व्यापारो का आरोप करने के साथ ही मानवीय भावनाओ का भी आरोप किया है । 'जयन्तविजय' मे भी इसी प्रकार

> अध्वगप्रणयिनीषु दुर्दशा वीक्ष्यते करुणयेह मल्लिका ।
> रोदतीव विपुलाश्रुभिर्भृशं स्पन्दमानमकरन्द बिन्दुभि ॥[2]

अर्थात् टपकते हुए मकरन्द बिन्दु वाली विपुल आँसुओ से रोती हुई मल्लिका लता ने पथिको की कामिनियो को करुणापूर्वक देखा ।

यहाँ पर कवि अभयदेव ने भी प्रकृति का मानवीकरण किया है । मल्लिका पुष्पों से निकलने वाला मकरन्द ऐसा प्रतीत होता है मानो पथिको की प्रियाओ की करुणापूर्ण दुरवस्था को देखकर वह आँसुओ द्वारा अपने हृदय की व्यथा को प्रकट कर रही है । कोई व्यक्ति विशेष किसी की दुरवस्था को देखकर करुणा से द्रवित हो जाता है, आँखो मे आँसुओ की धारा फूट पडती है । यहाँ मल्लिका पुष्प का रोना उसका मानवरूप है ।

अत स्पष्ट है कि यदि हरिश्चन्द्र की दृष्टि मे कमलिनी, पति के विरह से दु.खी चकवी पर दया आने के कारण रो रही है तो कवि अयभदेव की दृष्टि मे भी मल्लिका लता, पथिको की प्रियाओ की करुणापूर्ण दुरवस्था को देखकर दया आने के कारण आँसुओ को गिरा रही है । अत दोनो कवियो के वर्णन मे भाव साम्य स्पष्ट ही है ।

---

१ धर्मशर्माभ्युदय, १६/२० । २. जयन्तविजय, ७/५० ।

अपि च—

निःसीमरूपातिशयो ददर्श प्रदह्यमानागुरुधूपवर्त्या ।
मुखं न केषामिह पार्थिवानां लज्जामषीकूर्चिकयेव कृष्णम् ॥[१]

अर्थात् धर्मनाथ के लोकोत्तर रूपातिशय को देख जलती हुई अगरु-धूप-बत्तियों से किस राजा का मुख लज्जारूपी स्याही की कूची से मानो काला नहीं हुआ। भाव यह है कि धर्मनाथ के लोकोत्तर रूपातिशय को देखकर स्वयंवर में पधारे हुए राजाओं के मुँह पर निराशा होने के कारण कालिमा छा गयी।

'जयन्तविजय' महाकाव्य के षोडश सर्ग में कवि अभयदेव ने भी रतिसुन्दरी के स्वयंवर का वर्णन भी इसी प्रकार किया है—

यैः पुरा स्फुरदुरुप्रभरा द्राजभिः सदसि भास्करायितम् ।
श्रीजयन्तयुवराज्यसंनिधौ ते दधुर्दिनविधूपमेयताम् ।[२]

अर्थात् पहले बढ़ी हुई विशिष्ट प्रभा के भार से जिन राजाओं ने सूर्य की उपमेयता को प्राप्त किया था वे ही श्री जयन्त युवराज के समीप दिन में चन्द्रमा की उपमेयता को प्राप्त हुए। यहाँ पर भी भाव वही है कि स्वयंवर में पधारे हुए राजाओं की कान्ति श्री युवराज जयन्त के लोकोत्तर रूपातिशय को देखकर निराशा के कारण धूमिल पड़ गयी।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव ने अपने 'जयन्तविजय' महाकाव्य में यत्र-तत्र हरिश्चन्द्र विरचित 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य के भावों को ग्रहण किया है किन्तु दोनों कवियों द्वारा वर्णित उपमाओं में निजी विशेषता है।

जिनपाल उपाध्याय

संस्कृत जैन कवियों में जिनपाल उपाध्याय का भी प्रमुख स्थान है। इनका समय तेरहवीं शती है। ये जयन्तविजय' महाकाव्य के रचयिता कवि अभयदेव सूरि के समवर्ती हैं। अतः समसामयिक होने के कारण दोनों कवियों का एक दूसरे की रचना पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यथा—

रंभा किमेषा त्रिदिवावतीर्णा किं वा रतिः प्रोज्झितभर्तृसङ्गा ।
लक्ष्मीस्ताहो ! हरिविप्रयुक्ता, शम्भौ सकोपा किमु पार्वती वा ॥[३]

अर्थात् क्या यह स्वर्ग में अवतीर्ण हुई रम्भा है अथवा पति का साथ छोड़े हुए रति है अथवा विष्णु से विमुक्त लक्ष्मी है अथवा शङ्कर के क्रोधित होने पर यह पार्वती भ्रमण कर रही हैं।

---

१ धर्मशर्माभ्युदय, १७/५।
२ जयन्तविजय, १६/२६।
३ सनत्कुमार चरित, १/७०।

जयन्तविजय महाकाव्य मे वर्णित यही भाव एव शैली दर्शनीय है—

पर्वतेकिमिह पर्वतपुत्री पर्वतश्रियमवेक्षितुमागात् ।
किं रति किमु रमा खलु नैव मर्त्यलोकललनैव निमेषात् ॥[1]

अर्थात् क्या यहाँ इस पर्वत पर पर्वतपुत्री पर्वत की सुन्दरता को देखने के लिए आयी है या रति है अथवा रमा है । नही, निमेष के कारण यह मृत्युलोक की ललना है ।

इस प्रकार कवि अभयदेव ने अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियो के काव्यो का अध्ययन किया था अत उनका प्रभाव इन पर होना स्वाभाविक है । किन्तु अनेक स्थलो पर अनेक वर्णन पारम्परिक है अत यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि कवि ने उस स्थल पर किस महाकाव्य के भावो को ग्रहण किया है । इसीलिए यहाँ पर उन समस्त कवियो के उन वर्णनो को उल्लेख किया गया है जिनका प्रभाव 'जयन्त-विजय' महाकाव्य पर परिलक्षित होता है ।

जयन्तविजय महाकाव्य का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

महाकवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य का प्रभाव उनके बाद में होने वाले कवियो तथा उनके काव्यो पर भी पडा । जिनमे से कुछ कवियो के नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

अर्हद्दास

महाकवि अर्हद्दास 'मुनिसुव्रत' काव्य के रचयिता है । इनका समय चौदहवी शताब्दी का पूर्वभाग है । अत ये जयन्तविजयकार महाकवि अभयदेव सूरि के परवर्ती कवि हैं । महाकवि अभयदेव सूरि ने अपने जयन्तविजय महाकाव्य के आरम्भ मे ही मगध देश का वर्णन कर उसकी व्यापक विशेषताओ पर प्रकाश डाला है । यथा

सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डै ।
तै पद्मखण्डानि च राजहंसै स्वै राजहंसा सुगतिप्रचारै ॥
प्रीतिं परा यत्र नयन्ति लोक सरासि चेतासि च सज्जनानाम् ।
अदृष्टपर्यन्ततया श्रितानि गम्भीरतान्यक्कृतवारिधीनि ॥
यत्राभिरामाणि विशालशालिक्षेत्राणि सरक्षितुमीयुषीणाम् ।
गोपाङ्गनानां मधुरोपगीतै कृच्छ्राद्युवान पथि यान्ति पान्था ॥[2]

अर्थात् जहाँ की पृथ्वी सरोवरो से, सरोवर विकसित पद्मखण्डो से, वे पद्म-

१ जयन्तविजय, १३/१२ ।
२. वही, १/३०, ३७-३८ ।

खण्ड राजहंसों से और वे राजहंस अपनी सुगति के प्रचार से सुशोभित होते हैं। जहाँ पर गम्भीरता मे वारिधि को भी तिरस्कृत करने वाले अदृष्ट पर्यन्त सरोवर सज्जनो के हृदय को ससार मे परम प्रीति को पहुँचाते हैं तथा जहाँ पर मनोहर विशाल धान के खेतो की रक्षा करने वाली गोपिकाओ के मधुर गीतों से तरुण पथिक मार्ग मे जाते है।

कवि अभयदेव के इसी वर्णन की छाया महाकवि अर्हद्दास के मुनिसुव्रत काव्य पर परिलक्षित होती है क्योंकि कवि अर्हद्दास ने भी अपने महाकाव्य के आरम्भ मे मगध देश का वर्णन इसी प्रकार किया है—

नगेषु यस्योन्नतवंशजाता सुनिर्मला विश्रुतवृत्तरूपा ।
भव्या भवन्त्याप्तगुणाभिरामा मुक्ता सदालोक शिरोविभूषा ॥
विभान्ति सस्यान्तरितानि यस्मिन हेमारविन्दानि मधूल्वणानि ।
आपाययन्त्या इव शालिपुत्रानातानि धात्र्या करसेचनानि ॥[1]

अर्थात् यहाँ पर भी कवि ने मगध देश के उत्तरी भाग मे फैले हुए पर्वत और उन पर विद्यमान वंश वृक्ष-समूह तथा मध्यवर्ती भाग मे लहलहाते हुए जलपूर्ण खेतो मे उत्पन्न रक्तकमलो का वर्णन करके मगध देश की प्रमुख विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न किया है।

यहाँ पर दोनो ही कवियों ने मगध देश का वर्णन किया है। अत वस्तु वर्णन मे प्रर्याप्त साम्य है। इसके साथ ही दोनो कवियो की वर्णन शैली मे भी पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है।

इसी प्रकार कवि अर्हदास ने पुरुष सौन्दर्य के चित्रण में शारीरिक सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन की ओर विशेष ध्यान दिया है। महाकाव्य के द्वितीय सर्ग मे सुमित्र के व्यक्तित्व के चित्रण मे उनके शौर्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है—

प्रयाणभेरीश्रवणेन यस्य पलायमानानरिभूमिपालान् ।
पदाभिघाताक्षमयैवसद्य प्रकाशयाभास समीरकेतु ॥
येनासिना युद्ध भिन्स्यरीणा साङ्च्छिदे वर्म्मणि रक्तधारा ।
विनिर्यती तेन यथा व्यराजीदुद्भूतकोपाग्नि शिखेव तेषाम् ॥[2]

कवि के इस वर्णन पर जयन्तविजय महाकाव्य के अग्रलिखित श्लोको की छाया स्पष्ट है—

---

१ मुनिसुव्रत काव्य, १/२४,३०।
२ वही, २/४-५।

यस्याहवे वैरि करीन्द्र कुम्भस्थलीगलत्तारकरम्बिताङ्ग ।
रेजे कृपाणोऽरिकुल जिगीषोर्यमस्य जिह्वेवसदन्तपंक्ति ।।
यस्यासिलूना चिरराजजन्यक्षेत्रेषु वैरिद्विपदन्तपक्ति ।
कीलालसिक्तेषु यशस्तरूणामुद्गच्छतामकुरमालिकेव ।।[१]

अर्थात् जिसके युद्ध मे अरिकुल को जीतने के लिए वैरियो के गजो के मस्तक पर गिरने मे रक्तरजित हाथ वाला कृपाण यम की दतपंक्ति से युक्त जिह्वा की भाँति सुशोभित हुआ तथा जिसकी तलवार से कटकर वैरियो के हाथियो की दंत-पक्ति बादल उत्पन्न आकाश मे पानी से भीगने पर ऊपर निकलने वाली यशरूपी तरुओ के अकुर की भाँति सुशोभित हुई।

यहाँ पर भी भाव साम्य के साथ ही वर्णन शैली मे भी समानता है। इसी प्रकार कवि अर्हदास रानी पद्मावती जो सब प्रकार से सुखी होने पर भी पुत्र के अभाव मे दु खी रहती है, का चरित्र-चित्रण करते हुए लिखते हैं—कि एक दिन क्रीडासक्त कलहसवधू को गर्भवती देखकर उसका पुत्र के अभाव का शोक बढ जाता है और वह अपने जन्म को ही निरर्थक मानने लगती है -

आपुष्पिताऽपि विफलेव रसालयष्टि सेनेव नायकगताऽपि जयेन शून्या ।
काले स्थिताऽपि घनराजिरवर्षणेव मिथ्या दधामि हत कुक्षिमदृष्टतोका ।।[२]

'मुनि सुव्रत काव्य' के इस श्लोक पर जयन्तविजय महाकाव्य के निम्न-लिखित श्लोक का प्रभाव स्पष्ट है क्योकि यहाँ पर भी रानी प्रीतिमती शिशुगज के साथ सरोवर मे क्रीडा करती हुई करिणी को देखकर अपनी अपत्यहीनता की स्मृति से दु खी हो जाती है और अपने जीवन को निरर्थक मानने लगती है—

नभस्थलीव द्युतिमद्विना कृता निशेव शीतद्युतिमण्डलोज्झिता ।
महौषधीवोन्मदवीर्यवर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशास्यते ।।[३]

अर्थात् सूर्य के बिना आकाश चन्द्रमा के बिना रात्रि, विशिष्ट शक्ति के बिना औषधि के समान सन्तानहीन स्त्री की प्रशसा नही होती।

'मुनिसुव्रत' काव्य मे वर्णित राजा सुमित्र स्नेहिल पिता है। पुत्रजन्म का शुभ सम्वाद सुनते ही वे हर्षोन्मत्त होकर अपने शरीर के सभी आभूषण दे डालते हैं—

कुमार जन्मादिभवार्तिकत्राकृताङ्गभूषो हृषित क्षितीन्द्र ।
विधूतपत्रोद्गतकोरकस्य विधामधान्नीपतरोर्मुहूर्तम् ।।[४]

कवि अर्हदास द्वारा वर्णित इस श्लोक पर भी 'जयन्तविजय महाकाव्य के अग्रलिखित श्लोक की छाया स्पष्ट है -

१ जयन्तविजय, १/६१-६२।
२ मुनिसुव्रतकाव्य, ३/२।
३ जयन्तविजय, २/२।
४ मुनिसुव्रतकाव्य, ४/२१।

पीवेतिवाच श्रुतिशुक्तिकाभ्यां सुधाभिवासां विदधे प्रसादम् ।
स स्वर्णवस्त्रैर्मणिभूषणैश्च कन्दैरिवैश्वर्यमहाद्रुमस्य ।।

अर्थात् कर्णसुक्तिको से वन्दियो की (पुत्रजन्म से सम्बन्धित) अमृतमयी वाणी को सुनकर परम प्रसन्न हुए (राजा विक्रमसिंह ने) ऐश्वर्य महाद्रुम से कन्द की भाँति वस्तु, सुवर्ण, मणि और आभूषण आदि देकर इन लोगो को प्रसन्न किया।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे वर्णित राजा जयन्त एक आदर्श राजा है। उनके राज्य मे मेघ समय पर वर्षा करते हैं और जनता इति-भीति के डर से मुक्त दीख पडती है—

तस्मिन्मही पालयति क्रमाप्ता न याचिते पचमलोकपाले ।
ववर्ष काले जलद समस्तप्रशस्यसस्योद्गममूलबीजम् ।।

अर्थात् उस राजा के क्रम से पृथ्वी के प्राप्त होने पर नीति से पाँचवे लोक-पाल के समान समय पर जलद सब प्रकार के प्रशसनीय धान्य के उत्पन्न करने के मूल बीज (जल) को बरसाता था।

'जयन्तविजय' महाकाव्य के इस श्लोक का प्रभाव भी मुनिसुव्रत काव्य के निम्नलिखित श्लोक पर स्पष्ट है, क्योंकि वहाँ पर भी वर्णित मुनिसुव्रत एक आदर्श नृप है। उनके राज्य मे भी सभी सुखी है और ईति-भीति के भय से मुक्त दीख पडते हैं—

जिनेऽवनी रक्षति सागरान्ता नयप्रतापद्वयदीर्घनेत्रे ।
कस्यापि नासीदपमृत्युरीति पीडा च नाल्पाऽपि बभूव लोके ।।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव विरचित जयन्तविजय' महाकाव्य का प्रभाव परवर्ती काव्य 'मुनिसुव्रत' पर पड़ा।

वर्द्धमान

महाकवि वर्द्धमान विरचित 'वराङ्गचरित' महाकाव्य का जैनसंस्कृत महाकाव्यो मे प्रमुख स्थान है। इनका समय ई० सन् की चौदहवी सदी है। जयन्तविजय महाकाव्य की इस महाकाव्य पर भी छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है क्योंकि कवि वर्द्धमान सज्जन प्रशसा एव दुर्जन निन्दा करते हुए लिखते है—

कृते कवित्वे कविभिर्मनोहरे न याति तोष भुवि दुर्जनो जन ।
अणुप्रमाणेऽपि गुणेऽपि सज्जनास्तथापि तुष्यन्ति तत करोम्यहम् ।।[1]

अर्थात कवियो द्वारा रचित सुन्दर रचना मे दुष्ट व्यक्ति सन्तोष को नही

१ वराङ्ग चरित, १/१०।

प्राप्त करता है किन्तु सज्जन व्यक्ति उस रचना मे अणु के समान भी गुण को पाकर सन्तोष को धारण करते हैं। अत उन्ही सज्जनो को मैं सन्तुष्ट करता हूँ।

कवि अभयदेव ने भी इसी प्रकार अपने जयन्तविजय महाकाव्य से सज्जनो की प्रशसा एवं दुर्जनो की निन्दा की है—

अभ्यर्थित सोऽपि यशोविलासलास्याय काव्यस्य धुनोति दोषम्।
समुद्धरत्येव हि वैद्यराज शल्यं तनो सौख्यकृते कृतार्थ ॥[1]

अर्थात् सज्जन कवि यशोविलास की प्राप्ति के लिए इच्छुक होकर काव्य के दोषो का निराकरण कर देता है क्योंकि सफल वैद्य शरीर के सुख के लिए काँटे को निकाल देता ही है।

किन्तु—

न दुर्जनस्यानुनयो गुणाय स्वभावदौर्जन्यमलीमसस्य।
सुगन्धिलक्षैरपि किं सुगन्धी कर्तुं हि शक्य लशुन कदापि ॥[2]

अर्थात् स्वभाव मे दुर्जनता एव मलिनतापूर्ण दुर्जन का अनुभव भी गुण के लिए नही होता क्योंकि हजारो सुगन्धियो से पूर्ण लहसुन को क्या कभी सुगन्धित किया जा सकता है। अर्थात् नही।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनो ही कवियो ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ मे सज्जनों की प्रशसा तथा दुर्जनो की निन्दा की है।

अपि च—

व्रणोत्थशोणितेनाभूत्पृथिव्या शोणितार्णव
यत्रेभपादखण्डानि कच्छपोपमता ययु ॥
मकराकरतामी युश्छिन्नाश्च करिणा करा।
पिशाचकाकगृध्राश्च कुक्कुटा पिशिताशिन ॥
विचेरुस्तत्र सानन्दा पलास्वादनलम्पटा ॥[3]

अर्थात् यहाँ भाव यह है, कि मासाहारी काक, गृध्र आदि पक्षी समरभूमि मे आनन्दपूर्वक विचरण कर रहे है।

कवि वर्द्धमान द्वारा वर्णित समरभूमि के इस स्थल पर जयन्तविजय महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोको का प्रभाव स्पष्ट है—

मृतक कोटि कराल कलेवरप्रचुरदु सह गन्धभरावहे।
अभिमुखागतगन्धवहैर्मुहुर्यदतिदूरबिबस्थैपि सूच्यते ॥[4]

---

१ जयन्तविजय, १/१२।
२ वही, १/१४।
३ वराङ्गचरित, ८/११७-११९।
४ जयन्तविजय, ४/६।

मिलदसख्यशिवाकृतफेत्कृतैर्यदसुकम्पकृदूहितमूर्द्धजम् ।
अधिकघूकघनार्तिदघूत्कृतै स्खलित कातर जन्तुगतागति ॥[1]

अर्थात् करोडो मृतको की दुस्सह गन्ध भरी रहने से दूर से ही श्मशान भूमि की सूचना मिल जाती थी । असख्य शृगाल, भूत-पिशाच, डाकिनी आदि मास, चर्बी, रक्त आदि का भक्षण कर आनन्दानुभूति कर रहे थे ।

इसी प्रकार वराङ्गचरित के 'असारससारसुखाभिलाषः'[2] के भावो पर भी जयन्तविजय महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है—

वशेऽत्रतसध्वजतुल्य मस्मिञ्जयन्तमेन विनिवेश्य राज्ये ।
त्वरेमहानन्दपदाय धीमान्विलम्बते क परलोक कार्ये ॥[3]

• अर्थात् इस वश मे उत्पन्न मनोहर ध्वजा वाले इन जयन्त को राज्यभार सौपकर महानन्द पद के लिए शीघ्रता करे क्योकि कौन बुद्धिमान प्राणी परलोक कार्य मे विलम्ब करता है ।

इस प्रकार 'जयन्तविजय' महाकाव्य का 'वराङ्गचरित' महाकाव्य पर प्रभाव स्पष्ट है–

मुनिभद्र सूरि

तेहरवी-चौदहवी शताब्दी के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो मे मुनि भद्रसूरि द्वारा रचित 'शान्तिनाथ चरित्र' महाकाव्य का भी उल्लेखनीय स्थान है । इस महाकाव्य की रचना स० १४१० मे हुई । अत पूर्ववर्ती होने के कारण 'जयन्तविजय' महाकाव्य का इस महाकाव्य पर प्रभाव पडना स्वाभाविक है ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे जयन्त के जन्म के समय दिशाएँ निर्मल हो जाती है शरद ऋतु के समान नदियाँ स्वच्छ हो जाती है शुद्ध वायु प्रवाहित होने लगती है तथा बच्चे के जन्म से लोग प्रसन्न हो जाते है और आकाश से देवताओ के नगाडे का शब्द मेघो के समान होने लगता है—

दिश प्रसन्ना शरदीव नद्यो वातास्तदामादभृता जनाश्च ।
बभूवुरभ्रे सुर दुन्दुभीना पयोदनादप्रतिमा निनादा ॥[4]

जयन्तविजय महाकाव्य के यही भाव 'शान्तिनाथ चरित्र' महाकाव्य मे भी व्यक्त हुए है क्योकि वहाँ पर भी शान्तिनाथ के जन्म के अवसर पर त्रिलोकी मे एक अपूर्व प्रकाश व्याप्त हो जाता है जिससे नरकवासियो को भी अतीव सुख प्राप्त

---

१ जयन्तविजय, ४/१० ।
२ वराङ्गचरित, १/१२ ।
३ जयन्तविजय, १६/४० ।
४ जयन्तविजय, ६/८० ।

होता है, आकाश मे दुन्दुभि बजने लगती है और अनुकूल पवन प्रवाहित होने लगता है—

तदा सुख दुर्गतिवासिनामपि क्षण महानन्दविवर्णिकाऽभवत् ।
समुल्ललास त्रिजगत्प्रकाशकस्तदा प्रकाश समभानुभूरिव ॥
दिवि स्वय दुन्दुभयोऽनदस्तमा तदा प्रणुन्ना इव पुण्यकर्मणा ।
तथाऽनुकूला पवना ववु पर निजा बुवाणा इव कामरूपताम् ॥[1]

कहीं-कही कवि ने प्रकृति को उद्दीपन-रूप मे भी चित्रित किया है । वसन्त ऋतु की प्रकृति विलासीजनो के मन को उद्वेलित करती है, मानिनी स्त्रियो को मान-त्याग करने पर बाध्य करती है और मृग-समूह को उन्मत्त बना दती है—

प्रोल्लासयन् कामिमनासि काम मान निरस्यन्नपि मानिनीनाम् ।
उन्मादयन् भृङ्गकुलानि पुष्पैरन्येद्युरागात् स ऋतुर्वसन्त ॥[2]

'शान्तिनाथचरित्र' के इस श्लोक पर भी जयन्तविजय महाकाव्य के निम्न-लिखित श्लोक का प्रभाव परिलक्षित होता है—

मानोत्तानतया सखीषु कलुषा प्रेङ्खोलरोपाश्चिर
दूतीषु स्वयमानतेऽपि दयिते याश्चक्रिरे वक्रताम् ।
ता प्रातश्चरणायुधध्वनिमिभादाज्ञामिवाप्य स्मर-
क्षोणीशस्य समुत्सुका प्रियपरीरम्भ स्त्रियस्तन्वते ॥[3]

अर्थात् पति के स्वय नत होने पर मान की वृद्धि स पतियो पर कलुषित, दूतियो पर बढे हुए रोष वाली जो स्त्रियाँ वक्रता को धारण किये हुए थी वे स्त्रियाँ प्रात वायु की ध्वनि के बहाने उत्सुकतापूर्वक कामदेव की आज्ञा को पाकर अपने प्रियतमो का आलिङ्गन करने लगी ।

यहाँ पर दोनो कवियो के वर्णन मे भाव साम्य स्पष्ट है ।

अपि च—

दृष्ट्वा शान्तेर्निरुपममिद केशपाश चमर्य
सम्भाव्यैतद् व्यपगतफल स्वस्य बालप्रियत्वम् ।
लज्जाक्रान्ता हिमगिरिभुव सश्रयन्ते स्म नूनम्
युक्त स्त्रीत्वे व्यवसितमिद मानिनो सा हि जाति ॥[4]

अर्थात् शान्तिनाथ के केशो के लावण्य को देखकर चमरी लज्जित होकर हिमगिरि प्रदेश मे चली जाती है ।

---

१ शान्तिनाथ चरित्र, १४/८७, ८६ ।
२ वही, १०/४२ ।
३ जयन्तविजय, ८/६८ ।
४ शान्तिनाथ चरित्र, १४/१६५ ।

जयन्तविजय, महाकाव्य मे कवि अभयदेव ने नायिका की सुन्दर रोमरहित निरकुश जङ्घाओ की रमणीयता को देखकर पराभव के दुःख से दुःखी ऐण ललना (मृगी) के वनगमन का वर्णन इसी प्रकार किया है—

रामणीयकमनकुशमस्या   जघयोरनघयोरवलोक्य ।
नूनमुद्गतपराभवदुःखा   सत्रुरेणललना वनवासम् ॥[1]

अर्थात्, इसकी सुन्दर रोमरहित निरकुश जघाओ की रमणीयता को देखकर ऐण ललना ने पराभव के दुःख से दुःखी होकर वनवास का आश्रय लिया। जयन्तविजय महाकाव्य के इस वर्णन से भी स्पष्ट है कि कवि मुनिभद्र सूरि ने अपने महाकाव्य 'शान्तिनाथ चरित्र' की रचना करने के पूर्व इस महाकाव्य का भी विधिवत अवलोकन किया था।

इस प्रकार स्पष्ट है, कि कवि अभयदेव विरचित 'जयन्तविजय' महाकाव्य पर पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव पडा। इसके साथ ही उनके परवर्ती कवियो ने भी उनके महाकाव्य के भावो को लेकर अपने महाकाव्यो की रचना की। किन्तु कवि के वर्णन मे पूर्ववर्ती कवियो के भावो का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है। शाब्दिक चित्रो की पूर्ण समानता कही भी परिलक्षित नही होती है और यदि कही पर किञ्चितमात्र प्राप्त भी होती है तो यह आवश्यक नही है कि कवि अभयदेव ने उन स्थलो पर प्राचीन काव्यो का अनुकरण ही किया हो क्योकि ध्वनिकार आनन्दवर्धन का स्वय कथन है कि बुद्धिमानो की बुद्धियाँ सवादिनी होती है[2]। अर्थात् विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो के हृदय मे एक ही प्रकार के भाव उत्पन्न हो सकते है। इस प्रकार जहाँ एक ओर उनके काव्य पर पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव उनके विस्तृत व गहन अध्ययन का परिचायक है वही दूसरी ओर परवर्ती कवियो के काव्यो पर उनके महाकाव्य का प्रभाव उनके महाकाव्य की उत्कृष्टता एव महत्त्व का द्योतक है।

———

१ जयन्तविजय, १३/१६।
२ (क) सवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम् ।—ध्वन्यालोक, ४/११।
(ख महात्मना हि सवादिन्यो बुद्धय एकमेवार्थमुपस्थापयन्ति ॥
—राजशेखर (काव्यमीमासा) अध्याय १२, पृ० ६२।

परिशिष्ट

पञ्चपरमेष्ठि भक्ति निरूपण

महाकवि अभयदेव ने 'जयन्तविजय' महाकाव्य मे पञ्चपरमेष्ठि नमस्कार के माहात्म्य का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार—

नमस्कार पर तत्र श्रीपञ्चपरमेष्ठिनाम्।
प्रयात्यनन्यसामान्य यान पात्र सगोत्रताम्॥
किं चाय विधिवद्ध्यात सर्वकर्मसु कर्मठ।
कल्याण कदलीकन्दस्यन्दमान सुधारस॥[1]

अर्थात् श्री पञ्चपरमेष्ठि का नमस्कार विशिष्ट एव अनन्य सामान्य ज्ञान को गोत्रता का प्राप्त करता है क्योकि यह विधिपूर्वक ध्यान किया हुआ सब कर्मों मे कर्मठ कल्याण कदली के अकुर से टपकने वाला सुधा रस है।

इसी मन्त्र के प्रभाव से प्राणियो पर क्रूर, गजेन्द्र, सिंह आदि राक्षस तथा दावानल आदि अग्नियां आक्रमण करने मे समर्थ नही हो सकती।

नमस्कारप्रभावेण प्रभवन्ति न जन्तुषु।
क्रूरागजेन्द्र सिंहादिरक्षोदावानलादय॥[2]

अत यहाँ पर कवि द्वारा निर्दिष्ट पञ्चपरमष्ठि के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सिद्ध, अर्हन्त, आचार्य, उपाध्याय तथा लोक के सर्वसाधु पञ्चपरमेष्ठि कहलाते है। आचार्य कुन्द-कुन्द का मत है, कि सिद्धो की भक्ति से परम शुद्ध सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है—

जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुमत्तिजुतस्य।
देतु वरणाणलाह बुहमणपरिपत्थण परमसुद्ध॥[3]

उनके अनुसार आठ कर्मों से रहित, आठ गुणो से युक्त परिसमाप्त कार्य और मोक्ष मे विराजमान जीव सिद्ध कहलाते है[4]। प० आशाधर 'सिद्ध' की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते है—'सिद्धि स्वात्मोपलब्धि सजाता यस्येतिसिद्ध'[5]। अर्थात् स्वात्मोपलब्धिरूप सिद्धि जिसको प्राप्त हो गयी है वह ही सिद्ध है आचार्य

---

१ जयन्तविजय, ३/२-३।   २ वही, ३/२७।
३ सिद्धभक्ति, पृ० ५८।
४ 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश', पृ० ३६-४०।
५ जिनसहस्रनाम—स्वपोज्ञवृत्ति, पृ० १३६।

कुन्द-कुन्द का 'परिसमाप्तकार्य' इसी 'स्वात्मोपलब्धिरूप' कार्य को पूर्ण करने के तथ्य की ओर प्रकाश डालता है । सिद्ध निराकार होते है । इनका निवास स्थान जीव लोकाग्रशिखर के ऊपर है । उसी को किसी ने मोक्ष, किसी ने सिद्ध शिला और किसी ने सिद्धपुरी कहा है। इन्हे प्राप्त होने वाला सुख अनिर्वचनीय है ।

अर्हन्त

अर्हन्त सकल परमात्मा का स्वरूप कहलाते है तथा सम्पूर्ण विश्व को उपदेश दते है । इन्हे मोक्ष की प्राप्ति करनी होती है । इसीलिए सिद्ध इनके द्वारा पूज्य होता है ।

आचार्य—'आचार्य' शब्द 'चर' धातु से बना है । 'चर्' का अर्थ है चलना अथवा आचरण करना । 'चटेराङ्चिागुरौ[1]' से 'आचार्यते आचार ' व्युत्पत्ति निष्पन्न होती है । जिसका अर्थ है कि आचार्य वह है जिसके उत्तम चरित्र का अन्य जन अनुचरण करने लगे । जैनाचार्य का मुख्य गुण मन्त्र की व्याख्या करना ही है । सर्वज्ञ की वाणी ही मन्त्र कहलाती है[2] । उसकी व्याख्या करने का अधिकार केवल आचार्य को ही होता है । अभिधानराजेन्द्रकोश मे आचार्य को नमस्कार करने मे विद्या और मन्त्र की सिद्धि स्वीकार की गयी है ।[3]

पञ्चपरमेष्ठियो की गणना मे सिद्ध और अर्हन्त के बाद आचार्य का ही प्रमुख स्थान है । आचार्य की परिभाषा करते हुए कुन्दकुन्दाचार्य ने 'अष्टापाहुण' मे लिखा है—

जिणबिम्बणाणमय सजमसुद्ध सुवीयराय च ।
ज देइ दिक्खसिक्खा कम्पक्खयकरणे सुद्धा ।।[4]

अर्थात् जो ज्ञानमय है, सयम मे शुद्ध है, सुवीतरागी और साधारण मुनियो को कर्मों का क्षय करने वाली शुद्ध शिक्षा-दीक्षा देते है, वे आचार्य परमेष्ठी जिनेन्द्र देव के साक्षात् प्रतिबिम्ब है ।

आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि मे लिखा है—

'तत्र आचरन्ति तस्माद् व्रतानि इति आचार्य ' ।[5]

अर्थात् जो स्वय व्रतो का आचरण करते है और दूसरो मे करवाते है वे ही आचार्य कहलाते है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य स्वय उच्च चरित्र का पालन करता है और

---

१ काशिकावृत्ति—४/२/१४ ।   २ सहस्रनाम—स्वपोज्ञवृत्ति, पृ० ८८ ।
३ अभिधानराजेन्द्रकोश, ५वाँ भाग, १०६७वी गाथा, पृ० १३६६ ।
४ अष्टपाहुण, १६वी गाथा ।
५ सर्वार्थसिद्धि, ६/२४ का भाष्य, पृ० ४४२ ।

दूसरो को भी करवाता है, वह मुनि सघ का अग्रणी होता है। मुनि के जीवन सचालन में उसकी आज्ञा अन्तिम और मान्य होती है। इन्द्रनन्दि के अनुसार—

पञ्चाचाररतो नित्य मूलाचार विदग्रणी ।
चतुर्वर्णस्य सघस्य य स आचार्य इष्यते ॥[१]

अर्थात् पञ्चाचार मे रत, मूलाचार का ज्ञाता और चतुर्वर्ण सघ का अग्रणी आचार्य कहा जाता है।

आचार्य का स्मरण जिनेन्द्र के स्मरण की भाँति ही मङ्गल देने वाला होता है। अनेक आचार्यों ने अपने पूर्व के आचार्यों का स्मरण केवल इसीलिए किया है जिससे उनके शास्त्र निर्विघ्न रूप से समाप्त हो सके। यथा—आचार्य जिनसेन ने अपने 'महापुराण' के प्रारम्भ मे ही सामन्तभद्र, सिद्धसेन, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र, शिवकोटि, जटासिंह नन्दि और वीरसेन आदि की वन्दना मङ्गल प्राप्ति के लिए ही की है।[२]

इन्ही आचार्यों की भक्ति करने वाला प्राणी अष्टकर्मों का नाश करके ससार समुद्र से पार हो जाता है—

गुरुभक्तिसयमाभ्या च तरन्ति ससारसागर घोरम् ।
छिन्दन्ति अष्टकर्माणि जन्म मरणे न प्राप्नुवन्ति ।[३]

उपाध्याय

उपाध्याय वह है जिसके पास जाकर मोक्ष के लिए शास्त्रो का अध्ययन किया जाता है—

मोक्षार्थं शास्त्रमुपेत्य तस्मादधीयत इत्युपाध्याय ।[४]

अपि च—

मोक्षार्थमुपेत्याधीयते शास्त्र तस्मादित्युपाध्याय ।[५]

उपाध्याय अज्ञानरूपी अन्धकार मे भटकते हुए जीवो को ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान करता है। वह विद्वान् होने के साथ चरित्रवान भी होता है। उपाध्याय वही हो सकता है जो साधु के चरित्र को पूर्णरूप मे पाल चुका हो—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवएसणे णिरदो ।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥[६]

आचार्य की भाँति उपाध्याय भी दीक्षा देने का अधिकारी होता है।

साधु

साधु वह है जो चिरकाल से जिनदीक्षा मे प्रव्रजित हो चुका हो[७]। उसे

१ नीतिशास्त्र।
२ महापुराण, १/४१-५६।
३ दशभक्ति, क्षेपक श्लोक, पृ० २१४।
४ सर्वार्थसिद्धि, पृ० ४४२।
५ तत्त्वार्थवृत्ति, पृ० ३०४।
६ द्रव्यसग्रह, ५३वी गाथा, पृ० ४०।
७ 'चिर प्रव्रजित साधु' —सर्वार्थसिद्धि, ६/२४, पृ० ४४२।

दृढ़तापूर्वक शीलव्रतो का पालन करना चाहिये और राग से रहित तथा विविध विनयो मे युक्त होना चाहिये—

थिरधरिय सीलमाला ववगयराया जसोहपऽहत्था ।
बहुविणयभूसियंगा सुहाइ साहू पयच्छंतु ॥[1]

यह साधु शिक्षा-दीक्षा देने का अधिकारी नही होता है किन्तु फिर भी साधना के पथ पर वह आचार्य और उपाध्याय की भाँति बढ़ता है ।

इस प्रकार सिद्ध, अर्हन्त, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ही पञ्चपरमेष्ठी कहलाते है और इन्ही पञ्चपरमेष्ठी का विधिपूर्वक ध्यान करने वाला प्राणी अष्ट कर्मो का नाश कर ससार के आवागमन से छूट जाता है । उसे सिद्धिसुख और बहुत मान प्राप्त होता है । पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति के बिना यदि कोई अपनी आराधना चाहता है, तो वह वैसा ही है जैसे बीज के बिना धान्य की इच्छा करना और बादल के बिना पानी चाहना —

बीएण विणा सस्स इच्छदि सो वासमब्भएण विणा ।
आराधणमिच्छंतो आराधणभत्तिमकरंतो ॥[2]

इसी लिए भगवज्जिन सेनाचार्य का भी कथन है

पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रै सकलीकृत्य निष्कलम् ।
पर तत्त्वमनुध्यायन् योगी स्याद् ब्रह्मतत्त्ववित् ॥[3]

अर्थात् पचनमस्कार के द्वारा जो योगिराज परमतत्त्व परमात्मा का ध्यान करता है वही ब्रह्मतत्त्व को जान पाता है ।

'जयन्तविजय' महाकाव्य मे प्रयुक्त सुभाषित

१ प्रमादनिद्रोदयमुद्रया हि क्रोडी क्रियन्ते सुधिया धियोऽपि ॥ १/६ ।
२ समुद्धरत्येव हि वैद्यराज शल्य तनो सौख्यकृते कृतार्थ ॥ १/१२ ।
३ सगन्धिलक्षैरपि कि सुगन्धीकर्तुं हि शक्य लशुन कदापि ॥ १/१४ ।
४ श्रीखण्डवासन कृताधिवासा श्रीखण्डता यान्त्यपरेऽपि वृक्षा ॥ १/१७ ।
५ जडाधिवासान्यपि यत्र चित्र पद्मानि मित्राभिमुखी भवन्ति ॥ १/३४ ।
६ यदस्य जन्मोत्सव ऋद्धिदर्शनैर्भवन्ति सद्य मुखनिर्मिता इव ॥ २/३ ।
७ महर्घतामेधयत गुणश्रियो न कि यशोराशिरदम्भ सौरभ ॥ २/४ ।
८ कुमुद्वतीना विभयाविभाविभोर्विकाससौख्य हि न जातु वल्गति ॥ २/६ ।

---

१ तिलोयपण्णत्ति, ५वी गाथा ।
२ भगवती आराधना, ५४वी गाथा ।
३ महापुराण, २१/२३६ ।

९ महार्घ्यता रत्नखनी किं न भजेन्मणि प्रकाण्डैरिति ।। २/७ ।
१० दिनेश्वरोदये नमस्तले वा क्व तमिस्रमभव ।। २/६१ ।
११ निमेषमुक्ता कुरुते हि पद्मिनी न पद्मबन्धोरपरं कदाचन् ।। २/१८ ।
१२ प्रियोपदिष्ट तनुते हि नात्र क ।। २/ ६ ।
१३ भवेच्छिदा येन सकर्णकर्णयोर्न तेन हेम्नापि खलु प्रयोजनम् ।। २/३६ ।
१४ ननन्द कुर्वन्तिन क प्रसृत्वरा मविस्मयस्मेरमुखाम्बुजश्रिय ।। २/४३ ।
१५ दुरत्यय कालविपाकमीयुष स्थिति स्थिरानोच्चपदश्रियोऽपि हि ।। २/४५ ।
१६ गुरुरिव यत पूज्यो मन्त्री नृपस्य विवेकवान् ।। २/५१ ।
१७ जीवन्नरो भद्राणि पश्यति ।। ३/१८ ।
१८ कामान्धास्त्यक्तमर्यादा किं किं पाप न कुर्वते ।। ३/४१ ।
१९ सतामार्तपरित्राण प्रगुणाश्चित्तवृत्तय ।। ३/५२ ।
२० जगाद किं न वाच्य हि सद्भाववाञ्छिननेजमाम् ।। ३/६१ ।
२१ मना तुल्या मनोवृत्तिरूपकायपकारिषु ।। ३/६७ ।
२२ नमस्कारमहामन्त्रात्कि नोच्चै प्राप्यते पदम् ।। /८२ ।
२३ सुधा पिबेद्वा नहि क सतृष्ण ।। ३/१०१ ।
२४ पृथुपचालापुण्यजना स्वय किमनुकूलमुपैति च हेलया ।। ४/४ ।
२५ मनुजजाति निसर्गभवद्रुषा ।। ४/१५ ।
२६ नतजने प्रभव खलु वत्सल ।। ४/३१ ।
२७ प्रणयिना हि समाधिविधिस्तया ।। ४/३४ ।
२८ किमग्युय तिमिर सततयस्तरणि ।। ४/५१ ।
२९ पूजा पात्र भवति हि मुहु सद्गुणोत्कर्षवत्ता ।। ४/६९ ।
३० गीतक्षतस्खलनजागरणे भये च ।
सम्मर्यते प्रियजनस्य हि नामलोके ।। ५/१३ ।
३१ किं कोऽपि दण्डधरदण्डनिपातचण्ड ।
दण्डस्य गोचरमुपैति न जीव लोके ।। ५/२२ ।
३२ काव कदापि न मुञ्चति कालिमानम् ।। ५/२३ ।
३३ प्राय कुकर्म विधयो हि तम सहाया ।। ५/२४ ।
३४ महता न मुधा हि तेज ।। ५/२५ ।
३५ क्वस्नेहमाहितधिया स्वहित प्रवृत्ति ।। ५/२८ ।
३६ माया बिना किमपि चेष्टितमद्भुत त-
न्मुह्यति येन सुतरा सुधियाधियोऽपि ।। ५/२९ ।
३७ ब्रह्मापिलक्षयितुमक्षम एव माया ।
मायाविनामतिशयेन हि सुप्रयुक्तात् ।। ५/३२ ।
३८ दण्डो विदेशगमन हि महागसोऽपि ।। ५/३५ ।

३९ उद्दामसंपदुदये खलु देहभाजां ।
पुण्यं प्रमाणमुदितं न गुणो***वा ॥ ५/४६ ।
४० सर्वं विधौ हि विमुखे विमुखं जनस्य ॥ ५/५६ ।
४१ क्षारं न किं लवणसागरतोऽम्बुमुष्टिम् ॥ ५/६० ।
४२ कालानपेक्ष्य पतनं खलु कालदण्ड ॥ ५/६९ ।
४३ यन्मित्रमावहति कस्य न नाम चित्ते ॥ ५/७० ।
४४ किं नो फाल्गुनफल्गुवल्गनबलात्क्षीणोऽपि वृक्षः क्षणा-
हनक्ष्मीर्याति विलोलपल्लवलतालास्यं प्रशस्या मधो ॥ ५/७३ ।
४५ किं केतकीषु स्फुटकण्टकासु न याति जाती परिहाय भृङ्ग ॥ ६/३ ।
४६ सद्योदानं विमर्दव्यसनापहारि ॥ ६/६ ।
४७ किं पङ्कसंपर्कजुषापि जात्यरत्नेन लभ्येत न भूरिलाभ ॥ ६/२१ ।
४८ सद्योऽप्यभीष्टार्थफलप्रमादं सर्वत्र दिव्या हि भवन्ति भावा ॥ ६/६४ ।
४९ श्रियोऽनुरूपा सुनजन्मकाले न जायते कस्य महप्रवृत्ति ॥ ६/८७ ।
५० सप्रमादमनसो हि देवता सुन्दरं तनुमतां समीहितम् ॥ ७/४ ।
५१ स्यान्न वा किमिह कल्पपादपात् ॥ ७/६ ।
५२ हस्तकौशलगुणेन धीमता धी विलासविधवो ह्यनेकधा ॥ ७/१२ ।
५३ साम्राज्यं मधुरं मधोर्मधुसखं स्वाधीनसंपद्भरं ।
वैराग्याञ्चितचेतसामपि चिरं केषां न रागास्पदम् ॥ ७/७६ ।
५४ प्राज्ये राज्ये विलासातिशय इह मधौ कस्य धत्ते न चित्रम् ॥ ७/७७ ।
५५ प्रिययुवतिवशे वा किं न यूनामनासि ॥ ८/९ ।
५६ समजनि हृतचित्त का न वा पूत्करोति ॥ ८/१४ ।
५७ परपरिभवकारी क किल प्रीतिमेति ॥ ८/१८ ।
५८ भवति हि मलिनानां सगमोभङ्गहेतु ॥ ८/२० ।
५९ फलति महृदयेषु क्षिप्रमेवोपकार ॥ ८/२४ ।
६० व्रजति किमु न नाशं वैभवं कुस्थितानाम् ॥ ८/२५ ।
६१ द्युतिरथ वमुरन्त स्फु क्व नो (?) मण्डनाय ॥ ८/४६ ।
६२ किमिव वसुमता न क्ष्मातले साध्यमस्ति ॥ ८/५८ ।
६३ सुखमसुखमिह स्यादात्मकर्मानुरूपम् । ८/६० ।
६४ विघटितविभवानां स्फर्जितं क्लीपदं हि ॥ ८/६४ ।
६५ पय प्रवेश कनमा स्पृहाम्बुधे ॥ ९/१५ ।
६६ न मन्दर क्वाप्यसमानविग्रह ॥ ९/१७ ।
६७ स्वत प्रसूता निधनं धनंजय ज्वलच्छिखा किं न नयन्ति शालिनम् ॥ ९/३५ ।
६८ फणीश्वर स्फारफणामणिं क्वचिज्जहाति जीवन्न हि दर्पदुर्धर ॥ ९/४६ ।
६९ हि सेवका प्रसादपात्रं पुरतो हितैषिणम् ॥ ९/४७ ।

७० विलङ्घ्यते कैर्भवितव्यता ।। ६/५२ ।
७१ प्रभाकरस्यापि विभो भवेदिद विभाकर किं न तमस्ततिच्छिदे ।। ६/६५ ।
७२ स्वभाव वैराम्नकुलो हि सर्पं निहन्ति नो तत्सदन प्रविष्ट ।। १०/१८ ।
७३ को हि प्रारब्धवैरावलिरप्युदास्ते ।। १०/२५ ।
७४ सता निस्त्रिंशोऽपि प्रभवति नहि भ्रूणहतये ।। १०/७२ ।
७५ उदेति य कोऽपि स एव वन्द्यते ।। १०/७५ ।
७६ रिपुविजयमनु क्षितीश्वराणा भवति पुरीषु न का महोत्सव श्री ।।१२/२ ।
७७ प्रथयति हि तनुत्वमम्बुराशेरविरवियोगदिशापि शीतरश्मे ।।१२/४ ।
७८ असुभगमिह जन्म कन्यकानामजनि ।। १२/११ ।
७९ सदृशगुणैर्हि समागमो गुणाय ।। १२/१५ ।
८० हितवचने हि रता शुभ लभन्ते ।। १२/२७ ।
८१ विनयगुणाञ्चितमानसा हि सन्त ।। १२/२९ ।
८२ सुरभयति न क शिरोवतंसीकृतमभिन स्मितपारिजात पुष्पम ।। १२/४६ ।
८३ शक्तिर्विलसति मोह महीन्द्र शासन हि ।। १२/५१ ।
८४ श्रीयते हि मधुसीरभसार पारिजात कुसुम भ्रमरीभि ।। १३/३ ।
८५ निर्विवादविषयेऽपि विवाद शश्वद श्रुतिमताम् ।। १३/३० ।
८६ दुर्लभो हि सदृशो खलु सङ्ग ।। १३/४६ ।
८७ प्रतिपन्नि नीचिनी त्यजति जातु कुलीन ।। १३/५३ ।
८८ स्वाभिवाञ्छित कर खलु पूज्य ।। १३/६६ ।
८९ उ कापिते यष्टिमुखेन सिंहे क्षेमो हि कौतस्कुतमङ्गभाज ।। १३/१०६ ।
९० उपेक्ष्यते कोऽभ्युदयी समीप समीयिवाम रिपुमस्तशस्त्रम् ।। १४/२६ ।
९१ किमस्त्यदेय हृदयगमानाम् ।। १४/ ० ।
९२ गम्योऽस्ति गोमायुशिशो कदाचिद्गृध्रोऽपि किं ।। १४/१०५ ।
९३ न नाम महता सेवा भजते जातु वन्ध्यताम् ।। १४/११० ।
९४ प्रेमपूर्वजनुरर्जित क्वचिज्जायते हि किमिवात्र कौतुकम् ।। १६/५७ ।
९५ सौकुमार्यं रसिका कुमुद्वती भाम्वतीव महसा समाश्रयौ ।। १६/६२ ।
९६ स्वपूर्वकर्मस्फुरितानुमार शुभाशुभ देह भृता फल हि ।। १७/१० ।
९७ क्व मन्दभाग्यस्य समीहिता वा ।। १७/१२ ।
९८ दुष्पूर्ग्सोदरपूरणाय प्राज्ञोऽपि दुष्कर्म करोति किं न ।। १७/१३ ।
९९ दुख व्याधि कुपथ्यादिव वर्द्धते तु ।। १७/२१ ।
१००. किं दुष्कर धर्मधनस्पृहा हि ।। १७/३० ।
१०१ दिव्यप्रभावात्प्रभुविष्णु किं न त्रिवर्गमर्त्यैस्वमितीन्दुकीर्ति ।। १७/५१ ।
१०२ प्रियतमासु न को हि मृदुर्यत ।। १८/४ ।
१०३ विशदपक्षवता गुणिसंगम कलयतीष्टनरेषु धुरीणताम् ।। १८/३६ ।

१०४ क्व खलु दुर्मदिनामुचितज्ञता ॥ १८/४२ ।
१०५ तत्त्वज्ञोऽपि विमुह्यतीष्ट विरहे धिङ्मोह लीलायितम् ॥ १८/६२ ।
१०६ कुल्या कुलाचार विधि प्रिया हि ॥ १६/३५ ।
१०७ श्लाघ्य हि बन्धो प्रतिपत्तिरेव ॥ १६/३८ ।
१०८ धीमान्विलम्बते क परलोककार्ये ॥ १६/४० ।
१०६ कुण्ठत्वमायाति हि वज्ररत्ने निशातधारापि कृपाणयष्टि ॥ १६/४५ ।
११ यदेव भाव्य भविता तदेव ॥ १६/४६ ।
१११ सिद्धित्रय निर्ममतान्वितस्य यदेह दण्डत्रितय मुमुक्षो ॥ १६/५१ ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

अभयकुमार चरित	चन्द्रतिलक उपाध्याय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१७ ई० ।
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास, चौखम्बा सस्कृत सीरीज बनारस, १९५३ ई० ।
अर्थशास्त्र	कौटिल्य, हिन्दी व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६२ ई० ।
औचित्य विचार चर्चा	व्याख्याकार आचार्य श्री व्रज मोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई० ।
उत्तरपुराण	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४ ई० ।
उत्तररामचरित	भवभूति, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,१९६९ ई० ।
कर्पूरमञ्जरी	राजशेखर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९७० ई० ।
कालिदास ग्रन्थावली	सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, स० २०१९ वि०, तृतीय सस्करण ।
काव्यादर्श	दण्डी व्याख्या० आचार्य रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय सस्करण १९७२ ई० ।
काव्यालङ्कार	भामह, वृत्तिकार उदय, श्रीनिवास प्रेस, १९३४ ई० ।
काव्यालङ्कार	रुद्रट, व्याख्या० डॉ० सत्यदेव चौधरी, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ई० ।
काव्यप्रकाश	मम्मट, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी,चतुर्थ सस्करण स०,२०२७ वि०।
काव्यमीमांसा	राजशेखर, व्याख्याकार डॉ० गङ्गासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई०
काव्यानुशासन	हेमचन्द्र, निर्णय सागर यन्त्रालय, बम्बई, १९०१ ई० ।
किरातार्जुनीयम्	भारवि, चौखम्बा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, १९६८ ई० ।
कुमारसम्भव	कालिदास, सम्पादक प० प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६३ ई० ।

कुमारपाल चरित — आचार्य हेमचन्द्र, अभय तिलक गणि विरचित स० टी० सहित, बम्बई संस्कृत एवं प्राकृत सीरीज, १९१५ एवं १९२१ ई० मे दो भागो मे प्रकाशित।

कुवलयमाला — सिन्धी जैन ग्रन्थमाला १९५९ ई०।

कीर्तिकौमुदी — सिन्धी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, वि स० २०१७।

गुप्त साम्राज्य का इतिहास — डॉ० वासुदेव उपाध्याय, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद तृतीय संस्करण १९६९ ई०।

चन्द्रप्रभचरित — वीरनन्दि काव्यमाला ग्रन्थांक ३०, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९१२ ई०।

छन्दशास्त्र — पिङ्गलाचार्य, सम्पादक प० केदारनाथ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३८ ई०।

छन्दोमञ्जरी — चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी १९६९ ई०।

जगडूचरित — सर्वानन्द प्रका० आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला सिटी १९२५ ई०।

जिनरत्नकोश — हरि दामोदर वेलणकर, पूना १९४४ ई०।

जैनलेख सग्रह — पूरण चन्द्र नाहर, भाग-१, कलकत्ता।

जैन शिलालेख संग्रह — भाग २, ३, बम्बई, १९५७ ई०।

जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, काव्य-साहित्य भाग-६ — डॉ० गुलाब चन्द्र चौधरी, प्रकाशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी—५, सन् १९७३ ई०।

जैन साहित्य और इतिहास — प० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९५६ ई०।

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास — मो० द० देसाई, बम्बई, १९३३ ई०।

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन-संस्कृत-महाकाव्य — डॉ० श्याम शंकर दीक्षित, मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, प्रथम संस्करण, १९६९ ई०।

दशरूपक — धनञ्जय, व्याख्याकार डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७३ ई०।

धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य — हरिश्चन्द्र सूरि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १६३३ ई० ।

ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन, सम्पादक जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६६५ ई ।

नरनारायणानन्द महाकाव्य — वस्तुपाल, स० सी० डी० दलाल और आर० अनन्त कृष्णशास्त्री, प्रका० सेन्ट्रल लाइब्रेरी बडौदा सन् १६१६ ई० ।

नाट्यशास्त्र — भरत मुनि, सम्पादक बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय, बनारस, १६२६ ई० ।

नेमिनिर्माण महाकाव्य — वाग्भट, स० शिवदत्त शर्मा, काशीनाथ शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १६३६ ई० ।

नैषधीयचरितम् — श्रीहर्ष, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, नवम सस्करण, १६५२ ई० ।

पद्मानन्द महाकाव्य — अमरचन्द्र सूरि, ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बडौदा १६३२ ई० ।

पाण्डवचरित — देवप्रभ सूरि, काव्य माला सिरीज, बम्बई १६११ ई० ।

पार्श्वनाथ चरित — वादिराजसूरि, स० प० मोहन लाल शास्त्री, प्रका० माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० स० १६७३ ई० ।

पुरातन प्रबन्ध सग्रह — सम्पादक मुनि जिन विजय, कलकत्ता, १६३६ ई० ।

प्रकृति एवं हिन्दी काव्य — डॉ० रघुवश, साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग स० २००५ ।

प्रद्युम्नचरित — महासेन, माणिक्यचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० १६७३ ।

प्राकृत जैन कथा साहित्य — डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, अहमदाबाद, १६७१ ई० ।

प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १६६६ ई० ।

प्राकृत साहित्य का इतिहास — डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, वाराणसी, १६६१ ई० ।

बाल भारत महाकाव्य — अमरचन्द्र सूरि, काव्यमाला (संख्या ४५), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८६४ ई० ।

बीकानेर जैन लेख संग्रह — सम्पा० अगरचन्द्र नाहटा, कलकत्ता वि० सं० २४८२।

बुद्धचरित भाग १-२ — अश्वघोष, स० महन्त श्री रामचन्द्र दास शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१, प्रथम भाग १९७२ तथा द्वितीय भाग १९७७ ई० ।

भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान — डॉ० हीरालाल जैन, भोपाल, १९६२ ई० ।

भासनाटकचक्र, भाग १-२ — स० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा, संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी-१ ।

मनुस्मृति — कुल्लूक भट्ट विरचित मन्वर्थ मुक्तावली व्याख्या सहित, पाण्डुरङ्ग जाव जी, बम्बई, १९३३ ई० ।

महापुराण — जिनसेनाचार्य ज्ञानपीठ काशी, १९५१ ई० ।

महाकाव्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल और संस्कृत साहित्य मे उसकी देन — ले० डॉ० भोगीलाल साडेसरा, प्रका० जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी, सन् १९५९ ई० ।

महावीरचरियं — गुणचन्द्र गणि नेमि विज्ञान ग्रन्थमाला अहमदाबाद, वि० स० २००८, पृ० १९-२० ।

मल्लिनाथ चरित — विनय चन्द्र सूरि, स० प० हरगोविन्ददास एव बेचरदास, धर्मशर्माभ्युदय प्रेस, बनारस, स० २४३८ ।

मुनिसुव्रत महाकाव्य — अर्हद्दास, जैन सिद्धान्त भवन, आरा, १९२९ ।

मुनिसुव्रतचरित महाकाव्य — विनयचन्द्र सूरि, लब्धि सूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी (बड़ौदा), वि० स० २०१३ ।

रत्नावली — श्रीहर्ष, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-२, १९६९ ई० ।

रसगंगाधर — पण्डित जगन्नाथ, सम्पा० प० बदरीनाथ झा तथा प० मदनमोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई० ।

रसार्णव सुधाकर — संशोधक डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, १९६९ ई० ।

वर्धमानचरित — असग, स० जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्र० राव जी सखा राम दोशी, सोलापुर, सन् १९३१ ई० ।

वराङ्गचरित — जटासिंह नन्दी, स० ए० एन० उपाध्ये, माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, सख्या ४०, बम्बई, १९३८ ई० ।

वसन्तविलास महाकाव्य — बालचन्द्र सूरि, गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, बडौदा, १९१७ ई० ।

विक्रमाङ्कदेवचरित — विल्हण, सस्कृत साहित्यानुसन्धान समिति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६४ ई० ।

व्यक्तिविवेक — महिमभट्ट, हिन्दी व्याख्याकार डॉ० रेवा प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी, १९६४ ई० ।

शान्तिनाथचरित — मुनिभद्र सूरि, यशोविलास ग्रन्थमाला (२०) वाराणसी ।

शिशुपालवध — माघ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय सस्करण, १९७२ ई० ।

शृंगार प्रकाश — भोजदेव, द्वितीय खण्ड, मैसूर, १९६३ ई० ।

श्रुतबोध — सम्पादक प० रामेश्वर भट्ट, श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, १९११ ई० ।

श्रेणिकचरित — जिनप्रभ सूरि, जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग पलियाना से केवल प्रथम सात सर्ग प्रकाशित, शेष ग्यारह सर्ग अब भी अप्रकाशित ।

श्रेयांसनाथचरित — मानतुङ्गसूरि, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर ।

समराइच्चकहा — स० प० भगवानदास, अहमदाबाद ।

सरस्वती कण्ठाभरण — भोजदेव, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय सस्करण १९३४ ई० ।

साहित्यदर्पण — कविराज विश्वनाथ सम्पादक श्री शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६७ ई० ।

सुवृत्ततिलक — क्षेमेन्द्र, व्याख्याकार प० ब्रजमोहन झा, चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६८ ई० ।

सौन्दरनन्द	अश्वघोष, स० सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी-१, वि०स० २०२१ ।
संस्कृत कविदर्शन	डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९६८ ई० ।
संस्कृत काव्य के विकास मे जैनकवियों का योगदान	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९७१ ई० ।
संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास	पी०वी० काणे, अनु० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६६ ई० ।
संस्कृत महाकाव्य की परम्परा	केशवराम मुसलगांवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६९ ई० ।
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	रामजी उपाध्याय, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, वि०२०२७ ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, अष्टम संस्करण, १९६८ ई० ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास	ए० बी० कीथ, अनु० मङ्गलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७ ई० ।
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	चन्द्रशेखर पाण्डेय, साहित्य निकेतन, कानपुर १९६० ई० ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६० ई० ।
हम्मीर महाकाव्य	नयचन्द्र सूरि, स० नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८७९ ई० ।
हरिवंश पुराण	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९[illegible] ई० ।
क्षेमेन्द्र और उनका समीक्षा सिद्धान्त	डॉ० शिवशेखर मिश्र, कुमार प्रकाशन, लखनऊ-७ ।

A History of Sanskrit Literature.	A M. MacDonell, New York, 1929.
A History of Indian Literature	M. Winternitz, University of Calcutta, 1960.
A Short History of Sanskrit Literature	H R Agarwal, Munshi Ram Manoharlal, Delhi.
History of Sanskrit Literature	Dr S N Dasgupta and S K De, Calcutta, 1947
History of Sanskrit Literature	A. B. Keith, Oxford, 1928
History of Classical Sanskrit Literature	M Krishnamachanor, Madras, 1937.
History of Sanskrit Poetics	P V Kane, Varanasi, 1961
Historical and Literary Inscriptions	Dr Raj Bali Pandey
Classical Sanskrit Literature	A B Keith, Calcutta 1932
Historical Geography of Ancient India	Bimal Charan
Ancient Indian History	V Smith
Political and Cultural History of Gupta Empire	B N Luniya, Indore, 1974
Political History of Northern India From Jain Sources	G C Chaudhari, Amritsar, 1963
Jainism in Gugrat	C B Seth, Bombay, 1953
Natya Darma · A Critical Study	K H Trivedi, Ahmedabad, 1966.
Sanskrit Darpan.	A B Keith, Oxford, 1924

Journal of the Asiatic Society of Bengal 1912

Indian Antiquary Vol II

Archaeological Survey of India Report—1880, Vol 10.

J B O R S, Vol III